



डॉ. नीरज रुवाली, पीएच.डी., डी.लिट., ने स्नातकोत्तर (इतिहास) की परीक्षा प्रथम स्थान प्राप्त करते हुए उत्तीर्ण की। कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल द्वारा उन्हें पीएच.डी., डी.लिट. की उपाधि प्रदान की गई। इन्हें 25 वर्षों से अधिक का शिक्षण अनुभव प्राप्त है। आपके निर्देशन में एक दर्जन से अधिक विद्यार्थियों ने शोध कार्य किया है। आपके 7 दर्जन से अधिक शोध पत्र राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इन्होंने 70 से अधिक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सेमिनार में प्रतिभाग किया है तथा विभिन्न सेमिनार कार्यशालाओं में रिसोर्स पर्सन एवं चेयरपर्सन के रूप में योगदान दिया है। ये

विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय में आर.डी.सी. के सदस्य हैं तथा इन्हें विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं, पुस्तकों के संपादक मंडल में स्थान दिया गया है। इन्होंने 11 पुस्तकों की रचना एवं 4 पुस्तकों का संपादन भी किया है। ये इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस एवं उत्तराखण्ड हिस्ट्री कांग्रेस के आजीवन सदस्य होने के साथ-साथ विभिन्न ऐतिहासिक परिषदों के सदस्य रहे हैं।

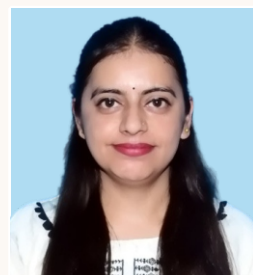
संप्रति - डॉ. रुवाली एम. बी. पी. जी. कॉलेज, हल्द्वानी, नैनीताल के इतिहास विभाग में कार्यरत हैं तथा उच्च अनुसंधान गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं।



मोहित कुमार शर्मा, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से सीनियर रिसर्च फेलो (इतिहास) हैं। वर्तमान में यह कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल में शोधरत हैं। इन्हें पाँच वर्षों से अधिक का शिक्षण अनुभव प्राप्त है। विभिन्न विषयों पर आपके 20 से अधिक शोधपत्र प्रतिष्ठित राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। आपने 50 से अधिक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों, सम्मेलनों और कार्यशालाओं में भाग लिया है तथा अपने शोध पत्र प्रस्तुत किए हैं।

आपने 'गांधी और विवेकानंद का दार्शनिक चिंतन एवं उसके विविध आयाम', "सामाजिक सशक्तिकरण के विमर्श एवं विकसित भारत" तथा "भारतीय संस्कृति : अतीत, वर्तमान और भविष्य" जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकों का संपादन किया है। आप 'बोहल शोध मंजूषा' (अंतरराष्ट्रीय पीयर-रिव्यूड शोध पत्रिका, नवम्बर 2024 अंक) के अतिथि संपादक भी रह चुके हैं।

आप विभिन्न इतिहास परिषदों के सक्रिय सदस्य हैं। इसके अतिरिक्त, आपने उत्तर प्रदेश तकनीकी शिक्षा बोर्ड से मैकेनिकल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा प्राप्त किया है तथा विभिन्न सरकारी एवं निजी औद्योगिक संस्थानों से प्रशिक्षण भी लिया है। शोध क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान हेतु आपको 'एकलव्य सम्मान-2024' तथा 'डॉ. बी. आर. अम्बेडकर एक्सीलेंस अवार्ड-2025' जैसे प्रतिष्ठित सम्मानों से सम्मानित किया गया है।



ज्योत्सना भट्ट, आई. सी. एच. आर. जूनियर रिसर्च फेलो (इतिहास) हैं। वर्तमान में यह एम. बी. पी. जी. कॉलेज, हल्द्वानी, नैनीताल में शोधरत हैं। इनके विभिन्न विषयों पर एक दर्जन से अधिक शोध पत्र विभिन्न जर्नलों एवं शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इन्होंने 20 से अधिक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों, सम्मेलनों एवं कार्यशालाओं में प्रतिभाग किया है तथा अपने शोध पत्रों को प्रस्तुत किया है। ये 'बोहल शोध मंजूषा' इंटरनेशनल पीयर रिव्यूड पत्रिका (नवंबर, 2024 अंक) की अतिथि सह-संपादक हैं। ये विभिन्न ऐतिहासिक परिषदों की सदस्या भी हैं। इनको गुरु फाउंडेशन, रोहतक द्वारा शोध

क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए 'श्री रतन नवल टाटा मेमोरियल अवार्ड-2024' प्रदान किया गया है।



SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Vol. : 12, Issue : 6

June : 2025

INDIA'S TIMELESS HERITAGE :
FROM TRADITION TO MODERNITY

Special Issue Editor :

Dr. Neeraj Ruwali
Mohit Kumar Sharma
Jyotsana Bhatt

Executive Editor :

Dr. Varsha Rani

Editor :

Dr. Naresh Sihag
Advocate



गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

SHODH SAMALOCHAN

India's Timeless Heritage: From Tradition to Modernity

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFERENCED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

संस्थापक संपादक

स्व. फतेहचंद UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

वर्ष-12, अंक-6

जून विशेषांक 2025

आईएसएसएन : 2348-5639

संपादक

• डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट

विशेषांक संपादक

• मोहित कुमार शर्मा

कार्यकारी संपादक

• डॉ. वर्षा रानी

प्रबंध संपादक

• डॉ. मुकेश 'ऋषिवर्मा'

सह-संपादक

• डॉ. लता एस. पाटिल,
• डॉ. सुलक्षणा अहलावत

अक्षर संयोजन

• मो. सलीम

कानूनी सलाहकार

• डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
• अजीत सिहाग, एडवोकेट

सलाहकार सम्पादक मंडल

- डॉ. निशीथ गौड, आगरा
- डॉ. ऊषा रानी, शिमला
- डॉ. गोविन्द सोनी, श्रीगंगानगर
- डॉ. सुषमा रानी, जीन्द
- डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट, श्रीनगर
- डॉ. दीपशिखा, पटियाला
- डॉ. गौतम कुमार साहा, दरभंगा
- श्री राकेश शंकर भारती, युक्तेन
- डॉ. के.के. मल्होत्रा, कैनेडा
- डॉ. आशीष कुमार दीपांकर, मेरठ
- डॉ. कामिनी कौशल, गाजियाबाद
- डॉ. रवि शंकर सिंह, आरा
- डॉ. संजय कुमार, रांची
- डॉ. संतोष कुमार भगत, रांची

1. 'शोध-समालोचन' का प्रबंधन और संपादन पूर्णतः अवैतनिक है।
2. 'शोध-समालोचन' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के अपने हैं। उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी हैं।
3. पत्रिका से संबंधित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र भिवानी न्यायालय ही मान्य होगा।
4. प्रकाशक/ स्वामी डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से मुद्रित करवाया।

'शोध समालोचन' की सदस्यता का शुल्क भुगतान राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सीधे ट्रांसफर या जमा किया जा सकता है। बैंक का विवरण निम्नानुसार है—बैंक : PUNJAB NATIONAL BANK Branch : Yamuna Vihar, Delhi-110053 IFSC : PUNB0225600 Account Holder : SANIA PUBLICATION Current Account No. 2256002100405546 भुगतान की मूल रसीद, शोध-पत्र पत्रिका की ई-मेल पर भेजना अनिवार्य है।

नोट :- इस अंक की प्रिंट कॉपी खरीदने के लिए सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से सम्पर्क करें मो. 9818128487

मूल्य : 995/- रु. एक प्रिंट प्रति

वार्षिक 5500/- रु.

Editorial Board Member

1. Dr. Priyanka Ruwali

Dept. Of Sociology

D.S.B. Campus, Kumaun University, Nainital, Uttrakhand

2. Ashutosh Singh

Department of History,

Kurukshetra University, Kurukshetra, Haryana

3. Mansi Sharma

ICSSR- Doctoral Fellow,

Department of Political Science,

University of Lucknow, Lucknow, U.P.

4. Kishor Kumar

Department of History,

Kumaun University, Nainital, Uttarakhand.

5. Vivek Kumar

Research Scholar,

Department of Medieval and Modern History,

University of Lucknow, U.P.

विषय विशेषज्ञ सलाहकार समिति :

• **Dr. Mudita Popli**

Principal, Maa Karni B Ed College Nal, Bikaner

• **Dr. Tapasya Chauhan**

Assistant Professor,

Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (Uttar Pradesh)

• **Dr. AMBILI V. S.**

Assistant Professor, Department of Hindi,

N.S.S. College, Pandalam, Pathanamthitta Distt. University of Kerala.

• **Dr. Om Prakash Mehrara**

Director, Shri Ramnarayan Dixit PG College, Srivijaynagar, Distt. Anupgarh (Rajasthan)

• **Dr. Anju Bala**

Assistant Professor Hindi,

Guru Nanak Girls College, Yamunanagar-135001

• **डॉ. श्रीमती अभिलाषा सैनी**

प्राचार्य, स्व. रामनाथ वर्मा शासकीय महाविद्यालय, मोपका, जिला-बलौदा बाजार, छत्तीसगढ़

• **डॉ. माया गोला**, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)

• **डॉ. मोहित शर्मा**

श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्क तीर्थ किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)-305815

• **रजनी प्रिया**

राँगाटाँड़ रेलवे कॉलोनी, क्वार्टर सं. 502/136, तरुण संघ क्लब दुर्गा मंदिर, धनबाद, लैण्डमार्क - नियर श्रमिक चौक, पोस्ट जिला-धनबाद, झारखंड-826001

- **डॉ. आँचल कुमारी**, असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
राम चमेली चड्ढा विश्वास गर्ल्स कॉलेज गाजियाबाद चौधरी चरणसिंह युनिवर्सिटी, मेरठ (उ. प्र.)
- **डॉ. सरिता भवानी मालवीय**
असिस्टेंट प्रोफेसर, फैकल्टी ऑफ लॉ,
आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- **डॉ. संदीप कुमार**, असि. प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी हिंदी तथा
भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. प्रमोद नाग**
सहायक प्राध्यापक, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेजुएट स्टडीज, बेंगलुरु-560107
- **पल्लवी आर्य**
असि. प्रोफेसर, भाषाविज्ञान विभाग, के.एम.आई. डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. अमित कुमार सिंह**
डी. लिट्., असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, के.एम. आई., डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
- **कोकिला कुमारी**
शोधार्थी, हिंदी विभाग, राँची वि.वि. राँची, झारखंड
- **गोस्वामी सोनीबाला**
शोधार्थी – जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार
- **डॉ. करुणेन्द्र सिंह**, असिस्टेंट प्रोफेसर
रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, गोरखपुर, बापू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पीपीगंज, गोरखपुर
- **डॉ. मीरा चौरसिया**
चमनलाल महाविद्यालय लंदौरा, रुड़की, हरिद्वार, उत्तराखण्ड-247664
- **Dr. Vimal Parmar**
Assistant Prof. Rajasthan P.G. Law College, Chirawa , Rajasthan
- **डॉ. तनु श्रीवास्तव**
असिस्टेंट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिला विश्वविद्यालय, इन्दौर
- **डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी**
उप-प्राध्यापक, केंद्रीय हिन्दी विभाग
त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल
- **Dr. Archana Tiwari** , Assistant Professor , History and Indian Culture, Uni. Rajasthan, Jaipur
- **डॉ. जगदीप दुबे**
सहायक प्राध्यापक वाणिज्य (म.प्र.), शासकीय आदर्श महाविद्यालय, डीनडोरी (म.प्र.)
- **डॉ. चन्द्रशेखर सिंह**
समाज कार्य विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- **लेफ्टि. डॉ. सन्दीप भांभू**
शारीरिक शिक्षा विभाग, टॉटिया वि.वि. श्रीगंगानगर

Request to Writers

Send quality original and unpublished works written on language, literature, society, science and culture. For publication, along with the translated works, also send the letters of consent received from the original authors. Compositions should be typed in Hindi Unicode Mangal font, English Time Roman. At the beginning of the article, a summary of the article is required which should be between 150 to 200 words maximum. The abstract must reflect the purpose of writing the article. Also write 5 to 7 'key words' (seed words) according to the article.

Write the article by dividing it appropriately into subheadings. Be sure to give a conclusion at the end of the article. The word limit should be 2000 to 2500 words. List of bibliographies at the end of the article APA Be in the format of. While sending the article, please write your name, address, phone number and title of the article in the e-mail. Submit a declaration to the effect that the article is original, unpublished, the author and not the editorial board will be responsible for any dispute related to it in future.

At the end of the composition, mention your complete postal address, mobile number and e-mail address.

- Editor

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज, विज्ञान एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएं भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फांट अंग्रेजी टाइम रोमन में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 (की वर्ड) (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2000 से 2500 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे संपादक मंडल नहीं।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें।

-संपादक

प्रकाशित पत्रिका प्राप्त करने के लिए संपर्क करे :

सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094

मोबाइल : 9818128487, 8383042929

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc.,)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals	08 per paper	10 per paper
2.	Publications (other than Research papers)		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

संपादकीय

प्रिय पाठकों,

भारत एक ऐसा देश है, जिसकी आत्मा उसकी सांस्कृतिक विरासत में रची-बसी है। यहाँ की मिट्टी में इतिहास की गूँज सुनाई देती है, तो हवा में वेदों की ऋचाएँ। सदियों पुरानी परंपराओं और आस्थाओं से लेकर आज की आधुनिक सोच और विज्ञान तक, भारत का सफर समय के साथ बदलता रहा, लेकिन उसकी आत्मा अडिग रही। यही भारत की पहचान है - शाश्वत विरासत, जो परंपरा से आधुनिकता की ओर गतिशील है, परंतु अपनी जड़ों से कभी अलग नहीं होती।

भारतीय सभ्यता हजारों वर्षों पुरानी है और इसकी सांस्कृतिक धरोहर बहुआयामी है। वैदिक ज्ञान, उपनिषदों का दर्शन, रामायण और महाभारत जैसे महाग्रंथों से लेकर योग, आयुर्वेद, संगीत, नाट्य और वास्तुशास्त्र जैसे प्राचीन विज्ञानों तक यह सब आज भी भारत की आत्मा में जीवित हैं। तक्षशिला और नालंदा जैसे विश्वविद्यालयों ने ज्ञान के दीप जलाए, जिनकी रोशनी आज भी शिक्षा के मार्ग को आलोकित करती है।

भारत की सांस्कृतिक विरासत केवल अतीत का गौरव नहीं है, वह आज की चुनौतियों का समाधान भी प्रदान करती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना - संपूर्ण विश्व को एक परिवार मानने का विचार आज वैश्विक समरसता की सबसे बड़ी ज़रूरत बन गया है। चाहे वह काशी की आरती हो, तमिलनाडु के मंदिर उत्सव हों, या पंजाब की गुरबानी भारत की विविध सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ एक साथ सह-अस्तित्व और समरसता की सीख देती हैं।

हालांकि भारत की यात्रा सिर्फ परंपरा तक सीमित नहीं रही। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने आधुनिकता को अपनाया, लेकिन अपनी परंपराओं की छाया में। विज्ञान, तकनीक, शिक्षा, अंतरिक्ष, चिकित्सा और डिजिटल दुनिया में भारत की अद्भुत उपलब्धियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि हम आधुनिकता की ऊँचाइयों को छूते हुए भी अपनी सांस्कृतिक नींव से जुड़े हुए हैं।

आज भारत डिजिटल युग में भी अपनी जड़ों से जुड़े रहने का श्रेष्ठ उदाहरण बन चुका है। योग को पूरी दुनिया में मान्यता मिली, आयुर्वेद फिर से चिकित्सा पद्धति के रूप में उभरा, भारतीय खानपान और वस्त्रशैली वैश्विक मंचों पर सराही जा रही है। 'मेक इन इंडिया', 'डिजिटल इंडिया', 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' जैसे अभियान इस बात का संकेत हैं कि आधुनिक भारत वैश्विक मंच पर अपनी सांस्कृतिक पहचान के साथ खड़ा है।

भारत की सबसे बड़ी ताकत उसकी विविधता में निहित एकता है। अनेक भाषाओं, धर्मों, जातियों और संस्कृतियों का यह संगम, न केवल लोकतांत्रिक भारत की बुनियाद है, बल्कि यह उसकी शाश्वत शक्ति भी है। इस विविधता को स्वीकारते हुए भारत ने उसे अपनी शक्ति में बदला है, यही इसकी सांस्कृतिक बौद्धिकता का प्रमाण है।

इस विशेषांक का उद्देश्य भी इसी समरसता और संतुलन को उजागर करना है। 'भारत की शाश्वत विरासत : परंपरा से आधुनिकता तक' विषय पर आधारित शोध-पत्र न केवल ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पहलुओं को उद्घाटित करते हैं, बल्कि यह भी दिखाते हैं कि किस प्रकार भारतीय समाज ने समय के साथ अपने मूल्यों को पुनर्परिभाषित करते हुए आधुनिक यथार्थ से संवाद स्थापित किया है।

इस अंक में भारतीय संगीत, नृत्य, स्थापत्य, दर्शन, साहित्य, लोक परंपराएं, चिकित्सा, तकनीक, शिक्षा, संस्कृति, और डिजिटल युग में भारतीयता की पुनर्व्याख्या जैसे विविध विषयों पर विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किए हैं। यह अंक अतीत से वर्तमान और वर्तमान से भविष्य की यात्रा का एक गहरा और संजीदा दस्तावेज़ बनकर उभरा है।

यह अंक न केवल शोधार्थियों और शिक्षाविदों के लिए उपयोगी है, बल्कि उन पाठकों के लिए भी प्रेरणास्पद है, जो परंपरा और आधुनिकता के संतुलन को समझना चाहते हैं। यह संवाद भारत के आत्म-निर्माण की प्रक्रिया का हिस्सा है - जहां हम जड़ों को थामे हुए, नई ऊँचाइयों की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

अंत में, मैं उन सभी विद्वानों और लेखकों का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस विशेषांक को समृद्ध बनाने में अपनी बौद्धिक ऊर्जा और दृष्टि प्रदान की। मैं विशेष रूप से विशेषांक संपादक डॉ. नीरज रुवाली सर एवं संपादक डॉ. नरेश कुमार सिहाग सर का भी आभार प्रकट करता हूँ, जिनकी दूरदृष्टि, रचनात्मक नेतृत्व और संपादन-दक्षता के कारण यह अंक अपनी विषयगत गरिमा और गुणवत्ता को साकार रूप दे सका है। साथ ही, मैं अपनी शोध-सहयोगी और मित्र ज्योत्सना भट्ट का भी धन्यवाद करता हूँ, जिनका रचनात्मक सहयोग और विचारशील सहभागिता इस विशेषांक को एक समृद्ध और सारगर्भित रूप देने में सहायक रही है। संपादक मंडल का भी धन्यवाद, जिनके सहयोग के बिना यह अंक संभव न होता।

आशा है कि यह विशेषांक पाठकों के चिंतन को समृद्ध करेगा और उन्हें अपनी सांस्कृतिक जड़ों को आधुनिक दृष्टिकोण से समझने की प्रेरणा देगा।

-मोहित कुमार शर्मा

विशेषांक संपादक

Contents

1	India's Soft Power Strategy : Harnessing Cultural Diplomacy for Shaping Global Geopolitics Mansi Sharma	12
2	Maritime heritage of ancient India: Early evidence of seafaring and maritime trade of Indians Rashmi Jayaswal	17
3	The Sanctity of Water in Indian Culture Abhijna	22
4	Exploring Connection between Cultural Heritage and Indian Economic System from Ancient to Modern Times Dr Niti Arora	25
5	Beyond Panels: Visual Politics and Narrative Form in Bhimayana Chudasama Bhikhanbhai Punjabhai	31
6	Continuity and Change in Indian Civilization: An Analytical Study of Traditions, Aesthetics, and Cultural Transitions from Antiquity to the Global Age (With a Focus on Buddhism) Debmitra Sanyal	39
7	Jaipur's Royal Cuisine: Exploring Food Culture and Rajmata Gayatri Devi's Culinary Contribution Pooja Vyas Dr. Asha Kumari Singh	43
8	Cultural Heritage of the Indus Valley Civilization: A Study of Identity, Innovation, and Influence Rahul Raj	49
9	Cultural Diversities Of Northeast India Prabhat Ranjan Singh	55
10	Consumer Protection in Indian Culture and Historical Context: A Socio-Legal Analysis Shubham Mishra	60
11	From Vedas to Virtual Reality: The Trajectory of Knowledge Systems in Indian Culture Dr. Amit Kumar Singh	65
12	Religious Conditions in the Chalukya Period Dr Anjani Kumari Badarala Hanuman Raju Gunturi	68
13	Development of Mining and Metallurgy after Independence Dr. Reena Kumari	72
14	Preservation and Revitalization of Ancient Languages through ICTs in India Nirmal Kumar Nirmohi Prof. (Dr.) Sudhir Kumar Singh	76

15	Buddhist Ecological Movement in Thailand Shubham Yadav	83
16	The Sound of Knowledge: Indian Classical Music as a Sacred Science in the Indian Knowledge System Dr. Sandeep Kumar	95
17	Socio-Economic and Legal Status of Transgender: Understanding the broader dynamics of social inclusion and inequality Minaxi Sharma Snehlata Jaiswal	99
18	From Military Medicine to Civil Health: A History of Indian Medical Service Rohit Raj Gupta	108
19	ICT & AI in Philosophy: Reimagining Dialogues with Buddha and Mahavir Amarjeet Kumar	112
20	Impact on River Bank Erosion: A Study of Lalgola CD Block, Murshidabad, West Bengal Pijush Bahalia	117
21	Indian Traditional Knowledge in Collective Environmental Conservation Prashant Tripathi	123
22	Colonial Influence on Indian Language and Literature (1750-1947) Roshni Pareek	127
23	Beyond The Mutiny : Re-examinig The 1857 Revolt Through Diverse Historical Lenses Priyanka	132
24	From Ancient roots to Modern branches: India's timeless heritage and the evolution of Customs and values Priyanka Sharma	137
25	Indian Culture and Its Growing International Influence Ms. Vijeta Dixit	142
26	Flora, Fertility, and Ganesha: A Sacred Bond Mrs. Sanyukta Padhi Dr. Sheila Vijay Dr. Tarlochan Kaur Sandhu	148
27	Social Media and the Virtual Celebration of Indian Festivals: A Cultural Shift Dr. Preeti Singh	163
28	Water, Worship and Wisdom: The Interplay Between Bihar's Rivers and Local Traditions Shubhendu Swati Kumari	169
29	The Taj – An Architectural Marvel or an Epitome of Love Aakanksha Bhatnagar	176
30	The Legacy of Ramayana in the Modern Times Santosh Kumar	181
31	Emergence of Nationalism & Revival of Indigenous Medical Activities in Colonial Bengal : A Historical Study Ashutosh Singh Prof. Gopal Parshad	186
32	सावित्रीबाई फुले: शिक्षा और सामाजिक सुधार की अग्रदूत किशोर कुमार	199

33	उपनिषदों और भगवद्गीता में जीवन दर्शन : आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता विवेक कुमार	205
34	1857 की क्रांति और अनुबंधित श्रमिक अप्रवासन अर्चना तिवारी, विशाल कुमार	210
35	चार्वाक दर्शन प्रासंगिकता आज व काल डॉ. गणेश कुमार कोशले	220
36	प्राचीन भारतीय मूर्ती और सांस्कृतिक धरोहर स्थल विपुल तिवारी	228
37	भारतीय स्वच्छता विरासत में सिंधु सभ्यता : एक अध्ययन डॉ. विजयभाई एम. कंटारिया	232
38	भारतीय मनीषा में लोकतंत्र प्रिया तिवारी	236
39	भारत में परम्परागत जल प्रबंधन प्रणालियाँ अशोक कुमार	242
40	मुंगेर प्रमण्डल का ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्त्व शुभम कुमार डॉ. दिलीप कुमार यादव	247
41	भारतीय नाट्यशास्त्र और परंपरागत रंगमंच डॉ. शिवाश्री सिन्हा	254
42	प्राकृतिक आपदा नियंत्रण एवं जन जागरण में मीडिया की भूमिका डॉ. अभिषेक अग्रवाल डॉ. श्रद्धा गर्ग	260
43	जनपद शाहजहाँपुर का ऐतिहासिक अध्ययन मोहित कुमार शर्मा विवेक कुमार ज्योत्सना भट्ट	264
44	श्री अरविन्दों की दृष्टि में राष्ट्रीय, अध्यात्म व मानवता का सम्बन्ध काजल पौनियाँ डॉ. अंजू बंसल	270
45	पितृसत्तात्मक भारतीय समाज में सूफीवाद और महिलाओं की भूमिका का विश्लेषण सुमन बिष्ट	278
46	छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति में लोकगीत और लोकनृत्य अविनाश बनर्जी	286
47	वट सावित्री (बढ़ अमावस्या) आशा शर्मा	292
48	बौद्ध एवं जैन धर्म का भारत पर प्रभाव ज्योति	295

49	भारतीय लोकनाट्य परम्परा केतन तिवारी	301
50	वैदिक संस्कृति : प्राचीन जड़ों से आधुनिक प्रभाव तक प्रीति भारती	314
51	‘श्री रामचरितमानस’ के ‘अयोध्याकाण्ड’ में वर्णित भारतीय संस्कार एवम् परंपराएं प्रणिता गोगोई	319
52	संत साहित्य में मानव मूल्य डॉ. रजिंदर कौर	324
53	डिजिटल युग में भारतीय परंपरा साक्षी	330
54	मुगलकालीन भारतीय स्थापत्य कला लक्ष्मी कुमारी	334
55	औद्योगिकीकरणचा ग्रामीण समुदायावर झालेल्या परिवर्तनाचे समाजशास्त्रीय अध्ययन (विशेष संदर्भ : नागपूर जिल्हा) देवानंद ना. कांबळे प्रोफेसर डॉ. किशोर ऊ. राऊत	338



INDIA'S SOFT POWER STRATEGY : HARNESSING CULTURAL DIPLOMACY FOR SHAPING GLOBAL GEOPOLITICS

Mansi Sharma

Ph.D. Scholar

Department of Political Science

University of Lucknow, Lucknow, Uttar Pradesh

Abstract

India's soft power strategy has become an important part of its foreign policy in the 21st century, which lies in its ancient cultural heritage and democratic values. As the world shifts to a more multi-polar and ideologically fragmented landscape, a soft strength-cultural effects, values and defined in non-co-operative methods have been developed. India appoints elements like Yoga, Bollywood, its global diaspora and spiritual philosophy to shape international perceptions and make diplomatic goodwill. This research paper examines how India uses cultural diplomacy to increase its global stature and create a long-term partnership. It assesses the role of institutions such as the Ministry of External Affairs in promoting the Cultural Relations Council (ICCR) and soft power for Indian cultural relations. The effort includes educational exchanges, global propagation of Indian languages and digital outreach initiatives in this attempt. Through Case Studies, the paper reflects the real world influences of these soft power strategies, focusing on India's association with ASEAN countries, African countries and its diaspora. It exposes both successes and borders, given that India's influence is often less than fragmented domestic messages, limited investment and rising international competition. Despite these obstacles, the paper argues that India has a strong ability to lead for example through attraction rather than the force. A more coordinated and strategic approach to cultural diplomacy can significantly increase India's global impact, keeping it in a developed international system as a moral and cultural leader.

Key Words - Soft Power, Cultural Diplomacy, Global Leadership, Diaspora

Introduction

In today's global politics, power is measured not only by military power or economic influence, but also by the ability to shape ideas through culture, values and ideas - known as soft power. For India, a nation-rich in the history of civilization and inherent in democracy, soft power presents an important tool to claim its impact internationally. The soft power of India stems from its various cultural and philosophical traditions including Yoga, Ayurveda, classical art and religious pluralism. It also includes its Democratic Institute, Multilingual Society, Dynamic Film and Music Industries and

a comprehensive diaspora that connects it to more than 200 countries. Since its economic liberalization in the 1990s, India has strategically adopted cultural diplomacy as part of its foreign policy. Organizations such as the Indian Council for Cultural Relations (ICCR) and foreign cultural centers play an important role in showing India's heritage and contemporary culture. Instruments such as The International Day of Yoga, Indian Film Festival and Educational Programs have expanded India's global cultural footprint. This research study analyzes how India uses cultural diplomacy to shape global assumptions and increase its geopolitical status. It examines the theoretical foundation of soft power, historical context of India's diplomatic efforts and currently used equipment. It also assesses India's successes and the challenges going on in taking advantage of soft power in a complex, divided global scenario. Overall, the study highlights the increasing importance of soft power in global affairs and efforts to lead India's efforts with its cultural and democratic appeal.

Theoretical Framework- Cultural Diplomacy

Joseph S. A concept, soft power, developed by NYE refers to the ability of a nation that affects others rather than forced or financial incentives through attraction and persuasion. Unlike hard power, which is based on military power and economic, soft power is derived from the culture of a country, political ideals and the attraction of moral foreign policies. A major tool of soft power is cultural diplomacy, including to promote mutual understanding and share cultural practices, values and traditions to create strong international relations. This approach helps nations to improve their global image, improve misconceptions and promote cooperation in political and economic fields. India reflects soft power as organic reflection of its deepest rooted civilized heritage. Historically, India has influenced regions in Asia through a peaceful proliferation of Buddhism, Hindu philosophy and non-violence and tolerance. In contemporary times, India's lively democracy, pluralistic society and rich cultural traditions appeal to the global audience. India's soft power strategy is well aligned with the Constructive International Relations Theory, which highlights the impact of ideas, identity and norms on global interactions. Emphasizing dialogue, moral values and non-co-integral engagement, India presents an alternative model for traditional power politics. This approach strengthens its credibility and attraction on the global stage. Finally, India's soft power mixes standard principles with cultural expression to shape international perceptions and promote strategic partnerships.

Instruments of India's Cultural Diplomacy -

India takes advantage of its cultural, spiritual, educational and media inheritance to shape global assumptions and influence international relations through attraction and shared values. A major pillar of this approach are

- **Yoga-** which is a symbol of the ancient philosophy and welfare tradition of India globally. International yoga supported by the United Nations has become a diplomatic tool through events organized by Indian missions worldwide.
- **Bollywood and Indian Entertainment** - Asia, Africa and Middle East work as impressive cultural exports with films and music. It's story and emotional appeal gives the audience a vivid glimpse in Indian life and values.
- **India's Diaspora** - It plays an important role in spreading more than 32 million, spreading Indian culture and increasing diplomatic relations. Government initiatives such as Pravasi

Diwas promotes cultural bonds and goodwill, while dominant Indian origin figures abroad enhance India's global stature.

- **Education Diplomacy**- India especially provides scholarship and educational exchange opportunities to students from developing countries through institutions like ICCR. It promotes long-term harmony and cultural exchange. Additionally, promoting Hindi, Sanskrit and Indian philosophical ideas enrich cultural understanding.
- **India's religious and civilized diplomacy**- In its role, it has been anchored in its role as the birthplace of major world religions like Hinduism, Buddhism, Jainism and Sikhism. It is spiritually attached through the heritage site restaurants, inter-religious dialogues and pilgrims with Asian countries, strengthening shared cultural relations.

India's Soft Power in Practice: Case Studies-

India's soft power strategy has greatly influenced its bilateral and regional relations through cultural diplomacy, as shown in several major case studies.

1. India-ASEAN TICE - India's Act East Policy has been influenced by deep roots cultural relations with South East Asia, such as a shared Buddhist heritage, Sanskrit influence and epics such as Ramayana. Initiatives such as Nalanda University, cultural ceremonies and revival of Buddhist tourism increase the strategic trust and help India to remain relevant among China's regional dominance.

2. India -Africa engagement - In Africa, India's soft power is used through education, diaspora and development cooperation. Indian films and education enjoy widespread popularity. Programs such as Indian Technical and Economic Cooperation (ITEC) and scholarships for African students promote people's relations with people for a long time. These efforts highlight India's role as a developmental partner rather than neo-colonial force.

3. Indian diaspora in the West - Indian diaspora contribute significantly to India's cultural diplomacy in Western countries like America, Britain and Canada. Leader of the leading Indian origin-like Kamla Harris and Rishi Sunak-India blows the global stature of India. Diaspora-led cultural programs, Times Square and Independence Day Parade, promote Indian identity within multicultural societies.

4. International Day of Yoga - Perhaps the most prominent symbol of India's global soft power is the International Day of Yoga. Celebrated in more than 190 countries, it presents India as a leader in welfare and spirituality, enhancing its image as a peaceful and health-oriented civilization. Together, these examples show how India's cultural diplomacy believes in peace, cultural harmony and multilateralism.

Challenges to India's Soft Power

Despite its vast cultural reservoir and increasing diplomatic engagement, India faces many challenges in deploying its soft power effectively. These obstacles stems from internal contradictions, external competition and institutional boundaries.

1. Reliability and domestic perception intervals- This rooted in soft power reliability. While India promotes itself as a pluralist, Democratic Society, international observers have sometimes raised concerns about religious intolerance, press freedom and civil rights. Such domestic development

can create a perception difference that reduces India's soft power story, especially when democratic values create an original of its appeal.

2. Institutional and Financially incorporates – The cultural diplomacy of India, including institutions such as ICCR and its cultural centers abroad, suffering from limited money, human resources and strategic coordination. Unlike Chinese well-funded Confucius institutions or cultural institutions of the US Department, India lacks an integrated and adequately revived soft power equipment. The absence of a national soft power strategy limits the consistency and impact.

3. Global competition and strategic noise - India's cultural diplomacy operates in a fast competitive environment. Countries like China, South Korea and Turkey are investing heavy in cultural exports, global media and education diplomacy. Additionally, geopolitical rivalry and media stories can distort India's soft power signs, especially in areas with competition.

4. Diaspora and Identity Politics - While diaspora is a strength, it can also face challenges when political partitions within Indian origin communities affect the assumptions of the host country. The diaspora are being seen as a political instrument, which can backfire in contexts of sensitive foreign policy. To address these challenges, soft power requires a strategic, inclusive and transparent approach - a one that aligns domestic values with global aspirations, supported by strong institutions.

Conclusion

Soft Power Diplomacy is an essential pillar of its 21st century foreign policy, which is inherent in its ancient culture and democratic ethos. Through devices such as yoga, cinema, education, spiritual diplomacy and migrant engagement, India projects a legend of peace, inclusion and civilization that distinguishes it into a competitive global environment. As the Case Studies has shown, cultural diplomacy enables India to make India goodwill, promote the long-term partnership and enhance its global image without relying on tremendous means. In regions such as South East Asia and Africa, India's soft power provides a non-threatening counter-balance for a hard power-dominated relationship. However, to fully feel its soft power ability for India, it must overcome challenges such as institutional underinvestment, inconsistent messages and domestic contradictions that weaken credibility. A coordinated, well-funded, and values-powered strategy-which is seen by a coherent domestic policy-can greatly increase India's influence in shaping a multi-polar world system. Ultimately, soft power is not only about global appeal; This is a reflection of how a nation sees itself and chooses to join the world.

Reference

1. Bajpai, K. (2013). India's foreign policy: A search for power and security. Cambridge University Press.
2. Buzan, B., & Hansen, L. (2009). The evolution of international security studies. Cambridge University Press.
3. Chatterjee, D. (2020). India's soft power in the 21st century: Culture, identity, and global influence. Routledge.
4. Das, S. (2021). India's foreign policy and soft power: Role of cultural diplomacy. *Global Media Journal*, 12(3), 45-60. <https://doi.org/10.1007/s41256-021-00245-6>
5. Dutt, V. (2018). The changing dynamics of India's foreign policy: Emerging trends and strategies. Sage

Publications.

6. Ganguly, S., & Kapur, S. (2018). India's foreign policy: The democracy imperative. *Journal of Strategic Studies*, 41(6), 857-876. <https://doi.org/10.1080/01402390.2018.1468352>
7. Gupta, A. (2020). India's role in international security: A review of India's hard power and military strategy. *Indian Journal of International Affairs*, 44(2), 235-252. <https://doi.org/10.1177/0021909620917012>
8. Jha, M. (2017). *India and the emerging world order: The quest for global leadership*. Oxford University Press.
9. Joshi, S. (2015). India's diplomacy and soft power in the 21st century. *Indian Journal of International Relations*, 22(1), 110-124. <https://doi.org/10.1108/IJIR-01-2015-0123>
10. Kumar, R. (2016). Strategic dimensions of India's foreign policy: A hard power approach. *International Affairs Review*, 24(4), 302-315 <https://doi.org/10.1080/03050707.2016.1153157>
11. Pant, H. V. (2021). India's strategic autonomy and its foreign policy in the 21st century. *International Political Science Review*, 42(5), 987-1003. <https://doi.org/10.1177/01925121211015148>
12. Sharma, A. (2019). *India's foreign policy and national security: A 21st century perspective*. Routledge India.



MARITIME HERITAGE OF ANCIENT INDIA: EARLY EVIDENCE OF SEAFARING AND MARITIME TRADE OF INDIANS

Rashmi Jayaswal
Jamia Millia Islamia

Abstract

This study investigates the maritime heritage of ancient India, focusing on the Indus-Saraswati civilization's early seafaring and ports. It examines archaeological and textual sources to trace the development of transoceanic trade networks linking India with Mesopotamia, Rome, China, and Southeast Asia, fostering coastal urbanization.

Keywords: *Early seafaring, maritime trade, Indus- Saraswati valley civilization, trade routes, sea-ports, ship-building*

Evidences of India's seafaring activities and maritime trade in Literature and Art

India's maritime history finds its earliest roots in the archaeological remains of the Indus-Saraswati civilization. Notable discoveries at Lothal, an ancient port city in Gujarat, include a terracotta model of a ship and dockyard structures, indicating advanced seafaring capabilities and sustained maritime activity. Literary sources further attest to the antiquity and continuity of India's oceanic engagements. The Ramayana refers to maritime journeys in its Kishkindha Kanda, where Sugriva directs his forces to distant island regions, possibly beyond China mentioning locales such as Yavadvipa and Suvarnavdipa, generally associated with Java and Sumatra. The Mahabharata, particularly in the Shanti Parva, draws analogies between spiritual merit and the economic gains of maritime trade, reflecting the cultural valuation of seaborne commerce.

Buddhist canonical texts, such as the Samyutta Nikaya, Anguttara Nikaya, and Digha Nikaya, reference long sea voyages lasting up to six months, use of shore-haulable ships, and navigation methods involving birds released mid-ocean to locate land. Jataka tales like Samudda Vanija, Valahassa and Mahajanaka portray merchants embarking on transoceanic voyages to Suvannabhûmi (likely Lower Burma or Southeast Asia), navigating the Ganges from inland towns such as Campâ (modern Bhagalpur) to the open sea. Secular literature, including Somadeva's Kathasaritsagara, offers vivid maritime narratives. Multiple chapters recount shipwrecks, overseas expeditions, and commercial voyages to islands such as Ceylon and Suvarnavdipa. Kalidasa Abhijanashakuntalam mentions Chinese silk and records the demise at sea of a wealthy merchant whose estate is claimed by the crown. The

Arthashastra further institutionalizes maritime oversight through the office of Navadhyaksha, who supervised sea and riverine routes and maintained port security.

Southern part of India also contributed significantly to this heritage. Rock art from sites like Karimaya Kavundanpammi (1000 BCE) and Kilvalai (700 BCE) illustrates early boats, while silver punch-marked coins and Pallava currency from Kanchi feature ship motifs, reflecting active maritime symbolism and commerce. Ajanta cave murals depict detailed ship structures, multi masted vessels with steering oars and capacity for large crews suggesting robust shipbuilding traditions. Technical terms like *naudandak* (mast) and *navatkseni* (dockyard) appear in ancient sources, emphasizing the scale and sophistication of India's nautical enterprise. These converging strands of archaeological, literary, and artistic evidence collectively affirm the enduring maritime consciousness of ancient India and its pivotal role in fostering transoceanic trade and cultural exchange.

Maritime Networks and Trade Routes of Ancient India: A Historical Overview

Trade routes are the arteries of a nation's economic vitality. The development of trade routes in ancient India can be traced back to the Neolithic period, when early agricultural communities began settling along river valleys, recognizing their value not only for sustenance but also for transportation. Balram Srivastava observes that by 2500/ BCE, the urban centers of Mohenjodaro and Harappa had already established sophisticated systems of water-based transport, capitalizing on the navigability of the Indus River and its tributaries. These natural waterways facilitated the rise of urbanism in the Indus Valley unlike inland pre-Harappan settlements such as Pokhran, Gazishah and Chauro that remained relatively isolated and economically stagnant due to their geographical limitations, as noted by N.G. Majumdar. Coastal Indus cities such as Lothal, Dholavira, Sutkagendor and Balakot flourished through their strategic access to maritime trade via the Arabian Sea. Among these, Lothal is particularly noteworthy for its dockyard and artifacts pointing to direct trade with Mesopotamia, Persian Gulf and Oman. Sumerian texts refer to the Indus region as *Meluhha*, a land mentioned in Akkadian records from the third millennium BCE. The reign of Sargon of Akkad records the arrival of ships from *Meluhha*, *Magan* and *Dilmun* at the port of *Agade*, indicating active maritime exchange. Harappan seals have been recovered from sites such as Ur, Susa and Tell Asmar corroborating these trade connections. Conversely, seals of Persian Gulf origin have been found at Lothal, further affirming reciprocal trade. The decline of the Indus-Saraswati civilization led to new settlements and economic changes. The early Vedic economy was self-sufficient, but evolving social complexity and surplus production encouraged trade. The *rigveda* mentions merchants and transactions, though maritime routes remain undocumented. In later periods, India's westward trade grew, supplying raw materials to Syria such as Antioch and Palmyra and maintaining diplomatic ties under Ashoka. Trade routes linked India to West and Central Asia. Arrian describes two key roads from Thapsacus to Babylon, one along the Euphrates and another through northern Mesopotamia to Susa. These were later integrated with broader networks extending to Persepolis and Merv, connecting to Kandahar and onward to the Indus via the Bolan Pass. Trade goods also traveled via the *oxus* river to the Caspian sea and through the Black Sea to Mediterranean ports. Strabo notes that Indian merchandise was transported across these routes during Alexander's time. Indian coastal trade routes, particularly those documented in the voyage of Nearchus, offer valuable insights into maritime navigation from the Indus delta to the Persian Gulf. *Barbaricum*, a key port at the Indus mouth, served as an entrepot for goods from India, China, and Persia. The journey from Patala to Badis (Bay of Jask) included 21

stopovers, though the route was often threatened by piracy. From there, ships navigated to Charax and Eudaemon (modern-day Yemen), connecting India with ports along the Arabian and Red Seas. Indian merchants frequented ports such as Moscha (Khor Rori) and Cane (Qana), which served as hubs linking Indian traders with counterparts from Arabia, Africa, and the Greco-Roman world. From Eudaemon, the route entered the Red Sea, with ships anchoring at Ocelis, Muza and Adulis eventually reaching Berenice, an important African port for Indian trade. Goods then moved either by desert routes to Alexandria or via Myos Hormos to the Nile. Alexandria, a major hub for Indian merchandise, linked to Rome's ports like Puteoli and Brundisium. Maritime journeys from Indian ports such as Barygaza, Muziris and Patala to Alexandria were long and perilous. Texts like the *Periplus Maris Erythraei* and Pliny's *Natural History* refer to the discovery of monsoon navigation by Hippalus around 45/ CE, which significantly enhanced maritime connectivity between India and the Roman world. In sum, India's ancient maritime history reflects an evolving and interconnected system of trade routes that extended from riverine networks in the Indus Valley to transcontinental maritime and overland routes reaching as far as the Mediterranean, Central Asia, and Southeast Asia. These trade networks laid the foundation for India's longstanding role in global commerce. The previous account presents the maritime discovery in general terms, but Pliny outlines four distinct phases, crediting Hippalus only with the second. E.H. Warmington identifies the first phase, from Alexander's time to Nearchus, as a coastal route from Arabian Eudaemon around the Gulf, following the Arabian coastline possibly as far as Ras Musandam or Ras al-Hadd then along Carmania and Gedrosia to the Indus. In second phase (c. 40–41 A.D.), voyages began from Arabian Eudaemon or Cane to Ras Fartak (Syagros), and from there directly to Patala. The third phase (41–50 A.D.) saw traders avoiding the Indus, instead sailing from the same ports to destinations like Sigerus or Melizigara, near present-day Mumbai, with Barygaza nearby. By the fourth phase (ca. 50 A.D.), those bound for Tamil regions departed from Ocelis, Cane or Cape Guardafui in July. Using refined navigation adjusting sails and rudder they followed a curved route across open sea, reaching the Malabar Coast in about forty days. India's engagement with the eastern regions, particularly Southeast Asia and China was both extensive and sustained, driven by economic ambitions and cultural outreach. The eastern territories rich in natural resources, especially gold were collectively referred to as Suvarnabhumi, or the "Land of Gold," by Indian merchants. These regions included present-day Myanmar, Thailand, Cambodia, Vietnam, Sumatra and Java, forming the eastern frontier of Indian maritime networks. Multiple maritime routes connected India to these regions. One prominent route began at Bharukaccha (modern Bharuch) and extended to Suvarnabhumi and Yavadvipa (Java). Another major route originated from Masulipatnam crossing the Bay of Bengal to reach the Eastern Peninsula. This was the most direct route to Southeast Asia, connecting with Suvarnadvipa (Sumatra), Campâ (central Vietnam), and Kamboja (Cambodia). Because these voyages involved deep-sea navigation, specialized vessels known as colandia were employed. Ptolemy records alternative route used by merchants from KaliGga, who sailed from Polûra identified with present-day Gopalpur near the Ganjam estuary towards the same eastern destinations. For traders from inland cities such as Mathura, Kaushambi, VârâGasî and Campâ, the port of Tamralipti on the eastern coast of India served as the principal maritime gateway. Tamralipti became especially significant with the rise of direct sea routes between India and China, eventually emerging as a key hub for Chinese merchants seeking access to the Indian subcontinent. Historical records confirm the arrival of a mission from Funan (in present-day Cambodia) at Tamralipti in the first century C.E.

The maritime connections between India and the Far East are well-documented in ancient texts and chronicles, including the Mahanidessa, Ptolemy's Geography, B[hatkathashlokasaCgraha, Kathasaritsagara, Brihatkathamajari and the Annals of the Former Han Dynasty. These sources collectively attest to the regularity and vitality of India's maritime commerce and cultural influence across Southeast Asia and beyond. An analysis of ancient sources suggests that maritime routes originating from Polûra and Tâmrilpti converged at Sada, located north of present-day Sandoway (Thandwe). The Mahanidessa and Chinese Annals both refer to a principal port named Gumba or Ho-P'u, although its precise location remains uncertain. Following Gumba, the Mahanidessa lists a sequence of ports and trade centers including Takkola, Takkacilâ, Kalmukha, Maranapâra, Vesunga, Verapatha, Java, Tamali, VaEga, Elavaddhana, SuvaGGakûta, and SuvaGGabhûmi. However, this itinerary diverges from Ptolemy's Geography, which provides a more detailed sequence between Sada and Takkola, including Besynga and Temala. The Mahanidessa refers to Besynga as Vesunga, while Chinese sources identify it as Pitsong or Pitsuong. Sylvain Lévi proposes that Vesunga may correspond to ancient Pegu in Lower Burma. Similarly, Verâpatha, mentioned in the Mahanidessa, may align with Barabai noted by Ptolemy, situated south of Besynga. From Verapatha, the route continues along the coastline past Temala and Cape Negrais toward the Malay Peninsula. These overlapping but sometimes conflicting records reflect the dynamic and evolving nature of maritime geography and trade in the Indian Ocean world, highlighting both the challenges and richness of reconstructing ancient navigation networks. Prior to the Common Era, the Malayan Peninsula played a vital role in India's maritime interactions with the Far East, owing to its strategic location between India and China. Takkola commonly identified with modern Takua Pa emerged as a key trading port, particularly known for tin and aromatic goods. During the Wu dynasty (229–265/ CE), a Chinese embassy en route to India visited Takkola, continuing its journey via the Gulf of Martaban. A direct and prosperous maritime route also linked Alosygni, near Masulipatnam, with the ports of Temala and Takkola, facilitating sustained commercial exchange across the Bay of Bengal.

References

1. E.B Cowell, *Jâtakas*, ed. , Delhi, 1973
2. Ralph T.H Griffith, *Zg-veda saChitâ*, ed. and trans., Delhi, 1973
3. Mookerji, R., *Indian Shipping: A History of the sea- borne trade and maritime activity of the Indian's from the earliest times*, 1910
4. Rear Admiral K. Sridharan, *Maritime History of India*, Minister of Publications and Broadcasting, Government of India, 1982.
5. Chakravarti, P.C, *The Art of War in Ancient India*, Karan Publications, Delhi, 1987.
6. Tripathi, Alok *Ships in Ancient Indian Art – A Study and Photo-documentation*, New Delhi, 1997
7. Tripathi, Alok, *Antiquity of Sailing Ships of the Indian Ocean: Evidence from ancient Indian art*, 2006
8. Crindle, Tr. J. W. Mc, *Geography of Ptolemy*, Calcutta, 1825
9. Muller, C, *Isidore of Charax ed.*, Paris, 1855
10. Crindle, Tr. J. W. Mc, *Indica of Megasthenes, Ancient India as Described by Megasthenes and Arrian*, Bombay, 1877
11. Thapliyal, Prasad, Uma, *Warfare in Ancient India: Organizational and Operational Dimensions*, New Delhi, 2010

12. Das, S.K., *Economic History of India*, Calcutta, 1879
13. Majumdar, R.C., *Ancient Indian Colonies in the Far East, Vol. I. Champa*, Lahore, 1927
14. Majumdar, R.C., *Ancient Indian Colonies in the Far East, Vol. II. Suvarnadipa*, Pts. I & II Dacca, 1937, 1938
15. Majumdar, R.C., *Ancient Indian Colonies in the Far East*, Calcutta, 1944
16. Majumdar, R.C., *Kambujadesha*, Madras, 1957
17. Gerini, G.E., *Researches on Ptolemy's Geography of Eastern Asia*, London, 1909
18. C. Mayoff, *Naturalis Historia of Pliny Ed.*, Leipzig, 1880



THE SANCTITY OF WATER IN INDIAN CULTURE

Abhijna

Assistant professor

Department of History

Sri Dharmasthala Manjunatheshwara College, Ujire

Abstracts

In India nature worship is very common. Since the ancient time it had its own importance. Water worship is also a part of it. In the worshipping texts of India we can see the water worship either directly or indirectly. Gangarathi, Kaveri Sankramana, Gangashtami and many other festivals are directly related to water worship in our country. It shows the unity of the people and also the environment friendly nature of Indians.

Key words :- Rivers, Festivals, Sea, unity, worship, culture.

Introduction

India is a country of culture. All over the country we can see various kinds of traditional practices based on geography and climate. But we have oneness. The soul principles of our culture is same all over the country. Water worship is also one among them. Water is called as “Pranajalam” in our culture, Which shows the respect towards water. All the rivers are considered as goddesses and many local festivals are based on that major river.

During the time of oldest civilization of India, Harappan civilizations people were considering river Sindhu as their Goddess. All their festivals were related to the flow of that river directly or indirectly. According to Dr. S.R. Rao one idol of Roopar (A Harappan site) is about river goddess.

Rig Veda gives much importance to the river worship. “Arghyapradhanam” was a very common in the Vedic rituals Which are practicing by people even today also. The worship of ‘Panchamahabhootas’ (The worship of Air, fire, water, earth and sky) was much popular. Water is one among them.

Rivers like Sindhu, Ganga, Purushni, Suthasthu, Saraswati and Yamuna were mentioned in Rig Veda frequently. The Himalayan ranges also worshiped much in Rig Veda Which is the reservoirs of water. River Ganga and Sindhu enjoyed much respect during the time. Varanasi Deva the Goddess of rain also had his own religious importance during the time. “Ganga Sooktha” is one of the Veda Manthras which is about water goddess.

During the Later Vedic Age Ganga and Yamuna rivers got much importance. The following prayer

became much popular during the time.

**“Gange Cha Yamune Chaiva
Godavari Saraswathi
Narmada Sindhu Kaveri
Jalesmin Sannidhim Kuru II”**

Here we can see the names of major rivers which were worshipping during the time. They were worshipping the major rivers of whole India. Ganga and Yamuna of central India, Godavari and Narmada of Dakshin, Sindhu and Saraswathi of North and Kaveri of South were the major rivers which were worshipping.

By this we can also understand the cultural unity of the country. Smaller worshipping ways may be different. But we can see the unity in the central idea. The person from extreme north also was worshipping river Kaveri every day! Surely the person from extreme South also worshipping river Sindhu! It is the symbol of cultural unity of our country. The political unity may be there or may not be there, but we can see the great cultural unity in our undivided India.

River Ganga is a north Indian river. But the “Gangashtami” is one of the popular festivals of South India also. Whole India celebrated Gangashtami. The Gangashtami is the festival when Lord Shiva brought river Ganga on earth. Story of Bhageeratha and river Ganga is believed by the people of whole country which shows the respect towards water. Prayag the place where river Ganga, Yamuna and Saraswathi joins together is the sacred place to the people of whole country which shows the cultural Importance to the water. One more Shloka is very popular here.

**Ganga Saraswathi Sindhu
Brahmaputrahsha Gandaki
Kaveri Yamunareva
Krishna Goda Mahanadi**

Here also we can see the mention of the rivers which flows all over the country.

‘Seas were also worshiped by the people since the ancient time. Arabian sea is known as “Rathnakara” and bay of Bengal was known as “Mahodadhi” and the name of seven Oceans is frequently mentioned in the Vedic texts.

Most of all temples are having “Pushkarini” even today also. These ponds are meant for religious bath. Lord Shiva is mentioned as “Sheethapriya” and most of all ancient Shaiva temple’s are located on the banks of rivers. Rivers are called as “Papanashini”, “Punyadayini” and in many other names which shows the respect towards it.

Conclusion

In India, river worship is a profound and ancient tradition, reflecting the country’s deep spiritual connection with nature. Rivers are revered as sacred entities, embodying the divine feminine and symbolizing renewal, purity, and life. This cultural practice underscores the importance of preserving and respecting these vital water bodies for future generations.

References

1. Alley, K. D. (2002). On the Banks of the Ganga.
2. Singh, V. (n.d.). Sacred Rivers of India.
3. Water Resource Management in India wasn't found with author,
4. Dwivedi, O. P., & Vajpeyi, R. S. (1995). Water Resource Management in India wasn't exact match
5. Eck, D. L. (1982). Banaras: City of Light.
6. Feldhaus, A. (1995). Water and Womanhood.



EXPLORING CONNECTION BETWEEN CULTURAL HERITAGE AND INDIAN ECONOMIC SYSTEM FROM ANCIENT TO MODERN TIMES

Dr Niti Arora

Associate Professor (Economics)

Mata Sundri College for Women, University of Delhi

Abstract

India's rich and diverse cultural heritage has long been intertwined with its economic history, each shaping and strengthening the other over time. In ancient times, India's economy thrived on trade, agriculture, and skilled craftsmanship. In contemporary India, cultural heritage continues to serve as an economic asset, driving growth through tourism, the export of handicrafts and textiles, fostering employment opportunities, and contributing significantly to foreign exchange earnings.

Keywords:- Cultural Economics, Cultural Heritage, Labor Force, Economic Impact, Heritage Tourism, Modern agriculture, handicrafts, international trade, Import substitution.

Introduction

Cultural heritage represents the collective expressions of a community's way of life, passed down through generations. It encompasses customs, practices, objects, artistic expressions, and values. UNESCO defines cultural heritage as "both a product and a process, which provides societies with a wealth of resources that are inherited from the past, created in the present, and bestowed for the benefit of future generations."

The cultural heritage of Indigenous peoples can be broadly categorized into two forms: tangible and intangible.

- Tangible Cultural Heritage refers to the physical artifacts that are created, preserved, and transmitted across generations. This includes artistic creations, architectural structures such as buildings and monuments, and other material manifestations of human creativity. Notable examples in India include the hill forts of Rajasthan and the Sun Temple at Konark.
- Intangible Cultural Heritage comprises the traditions, rituals, expressions, knowledge systems, and skills that communities recognize as part of their cultural identity. This also includes the instruments, objects, and cultural spaces associated with such practices. Indian examples include the tradition of Vedic chanting, Ramlila performances, and the Kumbh Mela.

India, often described as a subcontinent within a country, possesses a cultural heritage that is both

vast and diverse. This heritage mirrors the nation's complex and layered history—from the ancient Indus Valley Civilization to the dynamic, multicultural society of the present day. India's cultural identity has been shaped by a confluence of ethnicities, religions, and traditions, creating a tapestry of beliefs, rituals, and artistic forms. Each cultural artifact serves as a link between past and present, preserving the collective memory of the nation.

However, preserving this heritage in the context of globalization presents significant challenges. The rapid pace of modernization and urbanization often threatens traditional practices and historical sites. Therefore, efforts to conserve and interpret cultural assets must evolve to address these pressures. Despite such challenges, India's cultural legacy remains a powerful source of unity and resilience, continuing to inspire and connect generations.

Cultural Heritage and Trade

Trade has historically served as a powerful vehicle for cultural exchange, enabling interactions among people from diverse regions and backgrounds. These exchanges foster the sharing of customs, beliefs, traditions, and practices, thereby facilitating the spread of cultural elements across geographical boundaries. The movement of goods, people, and ideas through trade routes creates channels for both tangible and intangible cultural diffusion.

The exchange of goods often carries cultural significance. For instance, the Silk Road not only enabled the flow of luxury commodities such as Chinese silk, but also influenced fashion, culinary habits, and architectural styles across Europe and Asia. Similarly, the introduction of foreign spices and ingredients through trade significantly reshaped dietary practices in many regions.

Trade also involves the migration of merchants, laborers, and communities, each bringing their unique cultural traditions to new environments. This interaction often leads to the blending of cultures and the emergence of hybrid customs and identities. In addition, trade routes have historically facilitated the transmission of ideas, philosophies, and religious beliefs. A notable example is the spread of Buddhism from India to Central Asia and China via the Silk Road.

In this way, trade functions as a catalyst for cultural diffusion—the transmission of cultural traits from one society to another. This diffusion may occur through various mechanisms, including relocation (the physical movement of people), contagious diffusion (the widespread adoption of cultural traits within a population), and other processes.

In the modern era, globalization and international trade have accelerated the pace of cultural exchange, making cross-cultural interaction more accessible than ever. India exemplifies this dynamic interplay between economy and culture. Its economy encompasses a broad spectrum—ranging from traditional village-based agriculture and artisanal handicrafts to modern industries and an expansive service sector. The service sector, in particular, has emerged as a major driver of economic growth, contributing over half of India's GDP while employing less than one-third of its labor force. This economic diversity not only underpins India's growth but also reinforces its role in the ongoing process of cultural exchange on the global stage.

Cultural Economics

Cultural economics explores the intersection between cultural activities—such as art, music, and

heritage—and economic outcomes, including production, consumption, and public policy. It examines how cultural values, shared beliefs, and social norms influence individual economic behavior and broader economic trends.

As a subfield of behavioral economics, cultural economics emphasizes the role of cultural heritage—both traditional and contemporary—as a significant driver of economic development. It contributes to job creation, household income, urban revitalization, heritage tourism, increased property values, and the growth of small businesses. A central concept in building a sustainable local economy is import substitution—producing locally what would otherwise be imported. Heritage conservation exemplifies this, as it typically relies on local expertise, labor, and materials. However, effective import substitution also requires investment in workforce training to build the necessary local capacity.

Cultural economics often concentrates on the economic dynamics of the cultural and creative industries, analyzing the production, distribution, and consumption of cultural goods and services. It investigates the functioning of markets for creative output and how factors such as intellectual property rights, technological advancements, and market structures influence the creation and economic value of cultural products. The sector's contribution to GDP—particularly through tourism, heritage conservation, and the creative industries—highlights the tangible economic benefits of culture.

A defining feature that distinguishes cultural economics from traditional economic theory is its approach to decision-making. While conventional economics assumes that individuals' base decisions on explicit and implicit costs and benefits, cultural economics introduces the concept of trajectories. These trajectories are built from enduring cultural regularities—patterns of thought and behavior developed over time—that shape individual choices. Thus, cultural economists argue that decisions are not made in isolation, but are influenced by a historical and cultural context that guides preferences and actions.

India's Cultural Wealth as a Catalyst for Economic Growth

India boasts a rich and illustrious past. At its zenith, it accounted for over 25% of global GDP and approximately 28% of international trade and commerce. For centuries, India held a prominent leadership position across diverse domains—including art, culture, music, dance, cuisine, festivals, architecture, and handicrafts. The contributions of Indian civilization to global heritage are profound and far-reaching.

However, this trajectory was disrupted by nearly a millennium of foreign occupation, during which the country was stripped of its wealth and prominence. Despite these historical setbacks, the deep interconnection between culture and economy remains a defining characteristic of India's identity. A prosperous economy was both a foundation and a result of India's rich cultural heritage. Conversely, its cultural vitality significantly bolstered economic strength.

As India aspires to reclaim a position of global leadership, economic resurgence must take precedence. Culture, in this context, is not merely a symbolic asset but a strategic resource that can be harnessed to accelerate economic development. India's cultural potential is vast, yet there remains limited awareness and understanding of how to systematically leverage this cultural wealth for economic growth.

To unlock the true potential of India's embedded cultural assets, it is essential to adopt a multi-

dimensional approach. This involves identifying performance and potential indicators, understanding the mechanisms of monetization, and exploring innovative financial models to ensure the sector's sustainability. Evidence-based policymaking and strategic resource allocation must be grounded in a comprehensive understanding of the cultural economy. A study suggests that only about 20% of cultural organizations globally consider themselves financially sustainable, highlighting the pressing need for structural interventions.

Government action plays a pivotal role in driving the cultural economy. As such, **Cultural Economic Governance**—encompassing both policy formulation and implementation—becomes critically important. Currently, the cultural sector in India provides direct employment to approximately 4.5 million individuals, including artisans, performers, and tourism guides. Additionally, traditional arts and handicrafts industries support around 6 million livelihoods.

Yet, significant gaps persist in capacity building and skill development. According to the Ministry of Rural Development, only 10% of rural artisans have access to formal training. This disconnect between traditional skills and contemporary market demands is further underscored by a UNESCO survey, which found that 70% of traditional artisans believe their expertise does not align with current consumer preferences. Targeted capacity-building initiatives in the cultural sector have the potential to increase productivity and revenue by 20–30% for cultural enterprises.

To capitalize on India's cultural richness as a driver of economic growth, strategic efforts are needed in education, vocational training, financing, and governance. By integrating culture into the broader development agenda, India can foster inclusive growth while preserving its invaluable heritage.

Leveraging India's Cultural Wealth for Economic Transformation

Establishing robust social and economic linkages within the performing arts sector can significantly boost growth across all art forms, driving employment and revenue generation. A prime example is the Indian film industry, which currently contributes approximately ¹ 1.8 lakh crore annually to the national economy. Despite its domestic success, the global potential of Indian cinema remains largely untapped.

Similarly, India's spiritual and wellness heritage has created substantial economic value abroad, often without corresponding benefits flowing back to its origin. For instance, yoga has evolved into a \$15 billion industry in the United States alone. A critical question arises: how can India ensure that the global monetization of its cultural exports—like yoga—translates into economic gains at home? These and other culturally rich sectors warrant strategic policy and institutional focus.

India possesses immense civilizational wealth passed down through generations. However, harnessing this inheritance for national development requires a collective resurgence of pride in cultural identity. Encouragingly, with the rise of aspirational Indians, there is renewed reverence for traditional values and heritage.

Several flagship initiatives reflect this cultural revival. The Ram Temple redevelopment project in Ayodhya, with a projected investment of over ¹ 85,000 crore and a completion target of 2031, aims to transform the city to accommodate nearly 300,000 pilgrims daily. Similarly, the Kashi Vishwanath Temple corridor project has dramatically increased daily footfall—from approximately 20,000–30,000 before redevelopment to 150,000–200,000 post-renovation.

India is home to nearly 2 million temples, which, beyond their religious significance, historically functioned as hubs of economic activity—supporting local businesses in retail, transportation, and hospitality. Indian festivals, deeply rooted in culture and tradition, contribute around ₹ 2 lakh crore annually to the economy.

The Kumbh Mela 2019 stands as a testament to the economic impact of cultural tourism. According to a Confederation of Indian Industry (CII) report, the event generated over ₹ 1.2 lakh crore in business, while the State of Uttar Pradesh invested only ₹ 4,200 crore. The upcoming Maha Kumbh Mela in 2025 is projected to contribute approximately 0.8% of India's GDP, up from 0.63% in 2019.

In 2023, India's travel and tourism sector generated over \$256 billion in revenue, emerging as a major contributor to GDP. It created 7.6 crore jobs and earned more than \$27 billion in foreign exchange. Projections for 2047 indicate a potential GDP contribution of ₹ 260 lakh crore (approximately \$3 trillion) from this sector alone.

Recognizing tourism as a catalyst for employment-led growth, the Union Budget 2025–26 allocated ₹ 2,541.06 crore to develop infrastructure, enhance skill development, and facilitate travel. A major initiative under this budget is the development of 50 top tourist destinations in collaboration with state governments, using a challenge-based approach to ensure world-class facilities and connectivity.

India's diverse cultural and heritage landscape, coupled with targeted investment and governance reforms, positions the country to emerge as a global cultural powerhouse. With sustained and strategic efforts, the tourism and cultural sectors will be instrumental in propelling India toward its goal of becoming a developed nation by 2047.

Way Forward - Building a Cultural Economic Model for India's Development Trajectory

India is currently home to 42 UNESCO World Heritage Sites, reflecting the country's immense cultural and historical significance. To further enrich its cultural and spiritual landscape, the Government of India has sanctioned 46 new projects and identified 27 pilgrimage sites under the Pilgrimage Rejuvenation and Spiritual Augmentation Drive (PRASAD) scheme. These initiatives aim to enhance infrastructure and tourist amenities, thereby elevating the spiritual and religious tourism experience.

Spiritual and religious tourism constitutes a substantial share of India's tourism economy—accounting for 30% of the overall travel and tourism market and an estimated 60% of domestic tourism activity. Recognizing the cultural and spiritual depth of this segment, the government is prioritizing the development of key pilgrimage and heritage destinations. Special focus will be directed toward locations associated with Lord Buddha's life and teachings, in alignment with India's aspiration to emerge as a global hub for Buddhist tourism.

Parallel to this, India's healthcare ecosystem is delivering high-quality, globally competitive care across a broad spectrum—from modern allopathic medicine to traditional systems such as Ayurveda, Yoga, Siddha, and other indigenous healing practices. This holistic approach spans tertiary and quaternary care, treatment of chronic and non-communicable diseases, and comprehensive rehabilitation and wellness services, including cardiology, oncology, orthopaedics, neurosciences, functional health, and therapeutic wellbeing.

In order to unlock the full economic potential of these interwoven cultural, spiritual, and wellness domains, India must develop a comprehensive Cultural Economic Model. Such a model would not

only catalyse economic growth but also serve as a cornerstone in India's journey to become a developed nation by 2047.

This Cultural Economic Model would integrate heritage conservation, tourism development, traditional knowledge systems, and cultural entrepreneurship—enabling systematic monetization of cultural assets. It will establish clear linkages between culture, economy, and governance, providing a blueprint for evidence-based policy, sustainable financing mechanisms, and scalable economic opportunities. Once operational, this model could become a global case study—illustrating how nations can harness their social and cultural capital to drive inclusive and sustainable economic progress.

References

- Abid Husain, S., 1978, *The National Culture of India*, National Book Trust, New Delhi
- Alberto Bisin and Thierry Verdier, 2008. "Cultural transmission. *The New Palgrave Dictionary of Economics*, 2nd Edition
- Chaudhuri, Kirti N.: *Trade and Civilisation in the Indian Ocean*, CUP, Cambridge, 1985.
- Dax, K.B. and Mohanty, P'. 1994 "Profile of global tourism in India", *Indian Journal of Marketing*, XXXI (ii), January issue
- Guido Tabellini, 2008. "Institutions and Culture," *Journal of the European Economic Association*
- Madhvan Joshi, 2014. "Influence of Indian Culture Heritage on World Heritage, *Scholedge International Journal of Multidisciplinary & Allied Studies*" Vol.1, Issue 1.
- Mukerji, D. P. 1948/ 1979, *Sociology of Indian Culture*, Rawat Publications
- Raquel Fernández, 2016. "Culture and Economics." *The New Palgrave Dictionary of Economics*, 2nd Edition.
- Throsby, D. (2001). *Textbook: Economics and culture*



BEYOND PANELS: VISUAL POLITICS AND NARRATIVE FORM IN *BHIMAYANA*

Chudasama Bhikhanbhai Punjabhai

Research Scholar- Sggu

Abstract

This paper explores *Bhimayana: Experiences of Untouchability* as a seminal work in Indian graphic literature that merges visual innovation with political resistance. Drawing on the life of Dr. B.R. Ambedkar and rendered in Pardhan Gond art by Durgabai and Subhash Vyam, *Bhimayana* disrupts conventional comic book aesthetics through its use of tribal symbolism, non-linear narrative, and metaphorical illustrations. The study examines how the graphic novel resists caste hierarchies not only through its content but also through its unique form—eschewing panels, incorporating symbolic speech scrolls, and integrating multiple timelines and voices. By foregrounding indigenous artistic traditions and aligning with the aesthetics of Dalit literature, *Bhimayana* offers a decolonial intervention in both literary and visual culture. This research highlights the novel's function as a powerful medium of social critique and cultural reclamation, reinforcing the graphic novel as a legitimate and potent site of academic inquiry and political expression.

Keywords- Bhimayana, Graphic Novel, Visual Narrative, Ambedkar, Visual Storytelling Self-representation, Dalit Literature

Introduction

In recent decades, the graphic novel has emerged as a powerful tool for narrating histories from the margins, particularly in postcolonial contexts where traditional literary forms often fall short of capturing the lived experiences of oppressed communities. In India, this genre has evolved not just as a form of entertainment, but as a space for political engagement and cultural resistance. Among the most compelling examples of this evolution is *Bhimayana: Experiences of Untouchability* (2011), a graphic biography that narrates the life of Dr. B.R. Ambedkar—India's foremost Dalit leader, jurist, and social reformer. Authored by Srividya Natarajan and S. Anand, and illustrated by Pardhan Gond artists Durgabai and Subhash Vyam, the work challenges both the socio-political hierarchies of caste and the aesthetic conventions of the graphic novel (Nayar 122; Chacko 25).

Bhimayana is exceptional not only for its subject matter but for its deliberate rejection of mainstream visual and narrative structures. Instead of employing Western-style paneling, speech bubbles, or perspective-based illustrations, the creators embrace the aesthetic traditions of Pardhan Gond art—marked by intricate patterns, flowing forms, and a symbolic visual language rooted in tribal cosmology.

The result is an artistic form that is both radically indigenous and politically charged. As Sneha Krishnan argues, *Bhimayana* “inscribes the pain of caste not through realism but through metaphor and visual abstraction,” making its aesthetic choices integral to its political function (Krishnan 68).

The visual grammar of *Bhimayana* is itself a site of resistance. Dialogue is rendered through scroll-like shapes that vary in form depending on the tone of speech—spiky and scorpion-tailed for casteist abuse, and smooth, rounded shapes for empathetic voices (Chatterjee 89). This symbolic representation of voice is more than artistic innovation; it is a visual commentary on how language itself can be violent or healing. Furthermore, the use of nature—trees, rivers, animals—as narrative elements reflects the Gond worldview, wherein the environment is not a backdrop but a participant in the human story (Khanduri 41). This not only foregrounds an indigenous aesthetic but also challenges anthropocentric modes of storytelling.

Through its fusion of form and content, *Bhimayana* becomes more than a biography; it is an aesthetic manifesto that embodies the experiences it seeks to represent. The visual and narrative decisions work in tandem to produce a decolonial mode of storytelling that resists both the ideological structures of caste and the formal conventions of Western comics. As Ananya Jahanara Kabir notes, *Bhimayana* “disrupts normative histories and foregrounds subaltern epistemologies through a non-linear, polyphonic visual-textual form” (Kabir 59).

This paper argues that *Bhimayana* subverts dominant visual cultures by employing Pardhan Gond art as a decolonial narrative form. Through its innovative visual symbolism, fluid layout, and integration of oral storytelling traditions, the graphic novel redefines what it means to represent marginalized lives in literature and art. By doing so, *Bhimayana* opens up new possibilities for the graphic novel as a medium of political consciousness, indigenous identity, and narrative experimentation in contemporary India.

Contextual Background

To understand the aesthetic and political significance of *Bhimayana: Experiences of Untouchability*, it is essential to place it within both historical and artistic frameworks. The narrative revolves around the life and struggles of Dr. Bhimrao Ramji Ambedkar, a towering intellectual, social reformer, and the chief architect of the Indian Constitution. Born in 1891 into a Mahar (Dalit) caste, Ambedkar faced systemic discrimination throughout his life, including being denied access to basic necessities like water and education—experiences which *Bhimayana* poignantly illustrates through metaphor-laden visuals (Natarajan and Nayar xi; Omvedt 85). His lifelong activism for Dalit rights and critique of the Hindu caste system made him a radical figure, whose work continues to resonate in contemporary movements for social justice in India and beyond.

The choice of art style in *Bhimayana* is equally important. The graphic novel is illustrated in Pardhan Gond art, an indigenous art tradition rooted in the Gond tribal communities of central India, particularly Madhya Pradesh. Gond art has historically been a form of oral-visual storytelling, where images are not merely illustrative but are imbued with narrative and symbolic meaning. Unlike the realism of Western comic art, Pardhan Gond art employs bold colors, pattern-rich textures, and natural forms like animals, trees, and rivers to express emotional and spiritual experiences (Deo 62). As scholar Anjali Monteiro notes, tribal art forms such as Gond painting often “refuse linear chronology and instead circle around memory, myth, and lived experience” (Monteiro and Jayasankar 203). This

refusal of linearity aligns closely with *Bhimayana*'s own approach to storytelling, which is episodic and thematic rather than strictly chronological.

The visual grammar of *Bhimayana* defies the standardized conventions of graphic novels. The text avoids traditional paneling and rectangular speech bubbles. Instead, it uses flowing shapes, such as water and animal motifs, to frame dialogue and narrative. For instance, hate speech is often depicted as emerging from scorpion-tailed speech scrolls, while empathy and truth are carried by birds or clean, flowing lines (Chatterjee 89). These visual choices reflect a symbolic language that, as art historian Jyotindra Jain points out, emerges from the “cosmology of tribal life,” where every visual form carries cultural weight (Jain 177). Thus, the use of Gond art in *Bhimayana* is not decorative but deeply political: it challenges dominant modes of visual storytelling while asserting the legitimacy of indigenous knowledge systems.

The publication of *Bhimayana* by Navayana, a publishing house focused on anti-caste literature, further strengthens the text's ideological foundation. Navayana, founded by S. Anand, has made it its mission to disseminate Ambedkarite thought through accessible yet intellectually rigorous publications. In his editorial note, Anand emphasizes that *Bhimayana* was envisioned not merely as a biography, but as a “collective effort to reimagine the graphic form as a site of resistance” (Vyam and Natarajan xii). The collaborative nature of the project—with Srividya Natarajan handling the script, the Vyams illustrating, and Anand shaping the editorial direction—makes the book an embodied critique of caste hierarchy, not just in content but in its very form and production.

This confluence of Ambedkarite politics, tribal visual aesthetics, and collaborative authorship positions *Bhimayana* as a landmark in Indian graphic literature. It becomes a space where marginalized voices and visual traditions converge, challenging not only the structures of caste but also the dominance of Western narrative forms. In this way, *Bhimayana* functions both as a historical testimony and an aesthetic intervention in the evolving landscape of Indian literature.

Narrative Structure

Bhimayana disrupts the linear, event-driven narrative tradition of most Western graphic novels by employing a fragmented, episodic structure that prioritizes emotional and symbolic resonance over chronology. The life of Dr. B.R. Ambedkar is not told from birth to death in a conventional biographical arc. Instead, the narrative unfolds through thematic vignettes, focusing on key experiences of untouchability—being denied water, being segregated in classrooms, and being humiliated in public spaces. Each of these episodes becomes a metonym for systemic oppression, showing how caste discrimination pervades daily life in myriad forms (Nayar 128; Satyanarayana and Tharu xvii).

This storytelling method reflects a larger trend in Dalit literature, where fragmentation is used deliberately as a narrative strategy. As Satyanarayana and Tharu explain, Dalit writing often “refuses closure, resolution, or the redemptive arc” and instead foregrounds the raw, ongoing nature of suffering and resistance (xvii). *Bhimayana* does just that—it refuses the narrative comfort of progress or catharsis, offering instead a cycle of injustice that persists into the present.

The contemporary framing device—where two unnamed characters debate the existence of caste discrimination in modern India—further complicates the structure. This dialogue operates as a kind of meta-narrative, reminding readers that caste is not just a relic of history but an urgent and unresolved issue. The character of the woman functions almost as a stand-in for the narrator or activist voice,

using Ambedkar's story as evidence in a moral and political argument. This back-and-forth injects didacticism into the text but avoids being pedantic by relying on documented incidents, such as news reports and government data (Natarajan and Nayar xi).

This multiplicity of voices and timelines aligns with what Mikhail Bakhtin terms "polyphony"—a dialogic structure where no single voice dominates, and meaning is created through interaction (Bakhtin 84). *Bhimayana* is thus not just a narrative about Ambedkar but a discursive space where historical experience, folk art, political critique, and reader consciousness intersect.

Moreover, the narrative flow is shaped visually by the absence of conventional paneling. Instead of dividing the story into rectangular boxes, the pages are structured through organic shapes—fish, trees, birds, and serpents—that not only guide the reader's eye but also symbolize thematic content. This visual form of storytelling, rooted in Pardhan Gond cosmology, mirrors the non-linear, cyclical temporality of many indigenous traditions (Ramanujan 147). In Gond art, time is not a straight line but a circle; similarly, *Bhimayana* emphasizes recurrence over sequence, injustice over resolution.

Even silence functions narratively in *Bhimayana*. Long stretches of the book are devoid of text, letting the images speak through symbolism and gesture. These pauses in speech—represented through empty shapes or fluid transitions—create a visual grammar of pain and reflection (Dharwadker 101). By resisting the clutter of dialogue and exposition, the novel trusts the reader to interpret suffering through visual cues, an act that makes reading itself an immersive, ethical encounter.

Thus, the structure of *Bhimayana* becomes both a form of resistance and a mode of storytelling. It resists the formal conventions of the Western graphic novel, the historical erasure of Dalit lives, and the aesthetic marginalization of indigenous art. In doing so, it positions itself as a counter-canonical text, one that reshapes both what a graphic novel can be and what histories it should tell.

Visual Storytelling Techniques

One of *Bhimayana*'s most radical innovations is its visual grammar, which departs entirely from the conventions of mainstream comics. Rejecting the standard grid of rectangular panels, the novel adopts organic, non-linear layouts derived from the Pardhan Gond artistic tradition. This indigenous visual form is deeply symbolic, characterized by flowing lines, patterned textures, and vibrant imagery that does not merely illustrate the story—it *tells* the story. Pages in *Bhimayana* unfold like visual poems, where elements such as fish, birds, and trees serve simultaneously as background, borders, and metaphors. As Nayar notes, this approach creates "a unique graphic idiom, fusing art and narrative into a holistic experience rooted in cultural epistemes" (*Indian Graphic Novel* 129).

The absence of rigid panel borders is significant—it mirrors the fluidity of oral storytelling and resists the segmentation of experience. Each page functions as a visual tapestry, where time and space interweave rather than follow linear progression. Instead of clearly demarcated past, present, and future, the novel presents a continuum of caste oppression, suggesting that historical injustices are ever-present in the social fabric of contemporary India. This aligns with the Dalit literary tradition that prioritizes experiential truth over chronological order (Satyanarayana and Tharu xvi).

A hallmark of *Bhimayana*'s visual lexicon is the symbolic rendering of speech. Unlike conventional speech balloons, the novel uses animal-shaped scrolls to convey the tone and content of dialogue. Scorpion-tailed and snake-shaped speech bubbles are used for casteist slurs and abuse, making the

violence of words visually visceral (Natarajan and Vyam 22–23). On the other hand, speech filled with compassion or justice is shown through bird-like forms—soft, flowing, and unthreatening. This visual distinction turns language itself into a character, emphasizing how words can either wound or heal. According to Rama Sundari Mantena, these artistic innovations make *Bhimayana* “a graphic discourse of affect,” where the form intensifies emotional and political resonance (Mantena 11).

Color plays a critical role in guiding the reader’s response. The recurring use of blue throughout the text—especially in depictions of Ambedkar and symbols of resistance—invokes both Dalit identity and Buddhist iconography, as Ambedkar himself converted to Buddhism as an act of emancipation. Earthy tones dominate the oppressive scenes—browns, greys, and dull greens—visually distinguishing suffering from hope. The water motif, central to several episodes in the novel, is particularly powerful. Its presence or absence demarcates inclusion and exclusion. For instance, the denial of water to a young Ambedkar becomes a visual allegory of caste oppression, where dry, arid textures replace the flow of water, signaling deprivation not only of physical needs but of dignity itself (Chatterjee 92).

Another departure from comic realism is the stylized human figures in *Bhimayana*. The Vyams do not attempt to depict facial expressions or individual emotional detail; instead, they rely on body posture, symbolic environments, and surrounding imagery to convey affect. This method reflects the Gond cosmology, where human beings are just one part of a larger, interconnected ecosystem. In *Bhimayana*, this philosophy becomes a political statement—an assertion that the individual story of Ambedkar is linked to the collective pain and resistance of the Dalit community. By employing folk visual codes, the artists reject Western notions of anatomical realism and instead affirm a communal and symbolic aesthetics (Banerjee 150).

Ultimately, *Bhimayana* demonstrates that form and content are inseparable in the graphic novel. Its refusal of linear panels, use of folk symbolism, and fusion of image and metaphor are not mere stylistic experiments—they are acts of visual resistance. As Anand and Natarajan explain in their introduction, the aim was “not to use art as a vehicle for text, but to make art speak the text itself” (Natarajan and Vyam xii). In doing so, *Bhimayana* crafts a new visual language, one that is decolonial, rooted, and revolutionary.

Speech and Voice

In *Bhimayana*, speech is not a neutral communicative tool—it is an aesthetic and ideological force that is both seen and felt. The novel subverts conventional comic book norms by replacing speech bubbles with elaborately drawn speech scrolls, each uniquely shaped to reflect the speaker’s intent and emotional tone. This visual innovation is drawn from Pardhan Gond aesthetics, where symbols are charged with narrative power. According to Subhash and Durgabai Vyam, “in our tradition, even stories are not told in straight lines. They flow in circles and patterns, like our songs and our art” (Vyam and Natarajan xiv). This organic narrative form influences how speech is shaped, perceived, and understood in the text.

Toxic, casteist language is represented through forked-tongue or scorpion-tailed scrolls, visually conveying harm and venom. These motifs, drawn from Gond iconography, do more than illustrate hatred—they make caste violence visible and visceral. As Ritu Khanduri observes, “speech scrolls in *Bhimayana* act as instruments of affect—they provoke not just understanding but a bodily reaction of discomfort or empathy” (Khanduri 312). By contrast, gentle and supportive speech, especially

from Ambedkar or his allies, emerges in bird-like or flowing water shapes, indicating liberation, grace, and a sense of moral clarity.

The novel also plays with voice layering, blending historical and fictionalized speech. Ambedkar's own words—quoted from his speeches, writings, and autobiographical fragments—are integrated into the story, grounding the narrative in authentic historical discourse. As Nayar explains, “the documentary use of Ambedkar's speech within the artistic frame of Gond aesthetics merges the testimonial with the symbolic, offering a powerful form of visual historiography” (*Indian Graphic Novel* 132). His voice becomes both historical evidence and philosophical anchor, offering an intellectual counterpoint to the dehumanizing language that surrounds him.

Equally significant is the framing dialogue between two unnamed, contemporary characters who debate the continued relevance of caste in modern India. Their conversation—designed in contrasting speech scrolls—creates a dialogic structure, reminiscent of Bakhtin's concept of heteroglossia, wherein competing ideological voices are allowed to coexist and interact (Bakhtin 84). The reader is thus drawn into an active engagement with the debate, compelled to confront uncomfortable truths about systemic inequality. As Satish Deshpande notes, this back-and-forth forces us to “examine our own complicity in the very hierarchies we are reading about” (Deshpande 49).

The placement and integration of speech into the illustrations further elevates the storytelling. Instead of floating above characters in isolated bubbles, the speech scrolls are embedded in the artwork—they grow out of trees, coil through animals, or stream like rivers across the page. This spatial unity ensures that speech remains an organic element of the narrative's world, blurring the boundaries between voice, thought, and environment. As Tarun Saint argues, *Bhimayana* “refuses the compartmentalization of image and word, instead fusing the two into a seamless symbolic tapestry” (Saint 118).

By transforming language into a visually coded and ideologically charged system, *Bhimayana* critiques not only caste oppression but also the very structures of communication and knowledge that reinforce social hierarchies. The novel speaks to the reader in multiple registers—emotional, intellectual, and symbolic—making speech a potent tool of both oppression and resistance.

Resistance through Form

Bhimayana is not just a biography of B.R. Ambedkar—it is, at its core, a resistance text. Every element of its form, from its storytelling structure to its aesthetic choices, resists dominant cultural, political, and narrative norms. In this way, the novel functions not only as a document of Dalit history but as a performative act of rebellion against caste, oppression, and even mainstream graphic novel conventions.

One of the most striking forms of resistance in *Bhimayana* is its refusal to follow Euro-American comic traditions. Rather than using rectangular panels, linear sequences, and standardized fonts, the novel embraces fluid, non-linear, and symbolic storytelling rooted in indigenous art forms. The Pardhan Gond style resists the dominance of Western realism by prioritizing symbolic meaning over representational accuracy. As Saint observes, the form “challenges the Western reader's expectations and urges Indian readers to engage with alternative epistemologies” (Saint 120).

Moreover, the novel reclaims the visual field for Dalit narratives. In a country where mainstream

media often ignores or misrepresents Dalit experiences, *Bhimayana* asserts a counter-visibility—one that centers marginalized voices, both textually and graphically. This reclamation is also evident in the publisher's ethos: Navayana, which focuses on anti-caste literature, intentionally breaks the mold by giving voice and platform to a collective artistic and intellectual project involving Dalit ideology and Adivasi artistic expression (Natarajan and Anand xiii).

Thematically, resistance is built into the narrative itself. Ambedkar's encounters with water discrimination, educational exclusion, and public humiliation are not just personal traumas but representative of structural caste violence. The novel presents these injustices in a way that implicates the reader: caste is not a historical aberration, but an ongoing reality. By juxtaposing historical episodes with contemporary dialogues, *Bhimayana* asserts that casteism persists even in so-called "modern" India (Deshpande 52).

Importantly, the novel's form resists readability in the conventional sense. Its symbolic richness demands slow, attentive reading. The absence of frames, the layered visual metaphors, and the stylized representations all work against passive consumption. As Khanduri argues, this "aesthetic of resistance" forces readers to become "critically engaged viewers," encouraging them to feel and reflect, rather than simply decode (Khanduri 318).

Finally, *Bhimayana* resists the erasure of collective memory. In an environment where Dalit history is often omitted from textbooks and public discourse, the novel stands as an act of remembrance. It transforms the graphic novel format into a political medium, capable of bearing witness and demanding justice. Its very existence challenges literary hierarchies by asserting that folk aesthetics and oral traditions are not just valid—they are powerful tools for critique and activism.

Conclusion

Bhimayana: Experiences of Untouchability is a landmark in Indian graphic literature, not only for its thematic focus on caste injustice but also for its innovative visual and narrative strategies. By integrating the folk tradition of Pardhan Gond art with the testimonial life of Dr. B.R. Ambedkar, the text redefines what a graphic novel can be—not merely a medium for storytelling but a site of resistance, aesthetics, and collective memory.

The novel challenges the linear and bordered formats of conventional graphic narratives, echoing the ruptured and cyclical nature of caste oppression. Through its unique use of speech scrolls, metaphorical imagery, and fluid page design, *Bhimayana* invites readers into a multi-sensory experience, where seeing and reading become acts of political awareness. It not only tells Ambedkar's story but also frames his life as emblematic of a broader social and historical struggle that continues into the present.

Moreover, *Bhimayana* contributes to a decolonial literary practice by dismantling aesthetic hierarchies and prioritizing indigenous forms of knowledge and expression. Its refusal to adhere to dominant literary and visual conventions becomes a powerful statement of autonomy—aligning with the central ethos of Dalit literature, which asserts the right to self-representation and narrative control.

Ultimately, *Bhimayana* is more than a biography—it is an intervention. It demands that readers not only confront the brutal realities of caste but also rethink how literature and art can engage with systemic injustice. In doing so, it expands the possibilities of the graphic novel form and affirms the

transformative potential of visual storytelling as a tool of empathy, awareness, and resistance.

Works Cited

- Banerjee, R. *The Graphic Novel: A New Literary Genre in India*. 2017.
- Bakhtin, Mikhail. *The Dialogic Imagination: Four Essays*. Translated by Caryl Emerson and Michael Holquist, University of Texas Press, 1981.
- Chatterjee, Arushi. "Dalit Lives through Folk Frames: Reading *Bhimayana*." *South Asian Review*, vol. 39, no. 1–2, 2018, pp. 85–101. Taylor & Francis Online, <https://doi.org/10.1080/02759527.2018.1508364>.
- Chatterjee, P. "Water and Caste: The Struggle for Dignity." *Dalit Studies and Literature*, vol. 15, no. 2, 2015, pp. 90-94.
- Deo, Suman. *Art of the Gond: A Study of the Pardhan Gond Art and Its Symbolism*. Oxford University Press, 2008.
- Deshpande, S. *Caste, Identity, and Politics in Modern India*. Oxford University Press, 2018.
- Jain, Jyotindra. *The Indian Tradition of Art: Modern Art and Its Various Forms*. Oxford University Press, 2014.
- Kabir, Ananya Jahanara. "The Graphic Turn in Postcolonial Memory." *Interventions*, vol. 16, no. 1, 2014, pp. 53–70. Taylor & Francis Online, <https://doi.org/10.1080/1369801X.2013.770082>.
- Krishnan, Sneha. "Drawing Caste: Visual Reconfigurations of Dalit Subjectivity in *Bhimayana*." *Comparative Studies of South Asia, Africa and the Middle East*, vol. 37, no. 1, 2017, pp. 65–75. Duke University Press, <https://doi.org/10.1215/1089201X-3821372>.
- Khanduri, R. "The Body of Dalit Resistance: *Bhimayana* as an Aesthetic Act." *Dalit Literary Journal*, vol. 12, no. 3, 2017, pp. 310-320.
- Mantena, R. S. "The Art of Political Struggle: Visual Narratives of Caste Oppression." *Journal of South Asian Art Studies*, vol. 8, 2019, pp. 10-15.
- Monteiro, Anjali, and K. Jayasankar. *Tribal Art and Cultural Significance in India*. Sage Publications, 2011.
- Natarajan, Srividya, and Pramod K. Nayar. *Bhimayana: Experiences of Untouchability*. Navayana, 2011.
- Natarajan, K., and Vyam, D. "Speaking through Silence: Visual Narratives of Caste Oppression in *Bhimayana*." *Indian Graphic Novels: A New Narrative Tradition*, edited by P.K. Nayar, 2015, pp. 20-25.
- Nayar, P. K. *Indian Graphic Novels: The Politics of Art and Storytelling*. Cambridge UP, 2016, p. 129.
- Omvedt, Gail. *Ambedkar: Towards an Enlightened India*. Orient BlackSwan, 2004.
- Ramanujan, A. K. "Time, Memory, and Caste in Dalit Literature." *Indian Folklore and Literature*, vol. 25, no. 4, 2012, pp. 145-150.
- Saint, T. "Bhimayana and the Decolonization of Visual Culture." *The Graphic Novel as Resistance*, edited by R. Banerjee, 2018, pp. 115-120.
- Satyanarayana, K., and Tharu, Meenakshi. *No Alphabet in Sight: New Dalit Writing from South India*. Zubaan, 2011.
- Subhash, Vyam, and Durgabai Vyam. *Bhimayana: Visualizing Ambedkar's Life*. Navayana, 2011.
- Vyam, D., and Natarajan, K. *Aesthetics and Politics in Indigenous Indian Art*. 2016, pp. xiv.



CONTINUITY AND CHANGE IN INDIAN CIVILIZATION: AN ANALYTICAL STUDY OF TRADITIONS, AESTHETICS, AND CULTURAL TRANSITIONS FROM ANTIQUITY TO THE GLOBAL AGE (WITH A FOCUS ON BUDDHISM)

Debmitra Sanyal

Assistant Professor
PIIT College, Greater Noida

Introduction

Indian civilization has evolved over millennia, exhibiting a rare balance of continuity and adaptation. Among its most impactful intellectual and spiritual traditions, Buddhism stands out for its dynamic engagement with India's social, political, philosophical, and aesthetic systems. Emerging as a heterodox movement in the 6th century BCE, Buddhism both challenged and absorbed prevailing norms. This paper analyzes the enduring and transformative impact of Buddhism on Indian civilization across seven domains—traditions and rituals, art and architecture, customs and value systems, language and literature, religion and philosophy, and modern global transitions. In doing so, it demonstrates how Buddhism acted not only as a vehicle of change but also as a thread of continuity in India's civilizational journey.

Buddhism in Ancient India: Foundation of Ethical Reform

The emergence of Buddhism during the second urbanization period (6th century BCE) marked a significant philosophical and cultural departure from orthodox Vedic traditions. Rejecting ritual sacrifice, the authority of the Brahmins, and metaphysical speculation, Siddhartha Gautama (the Buddha) articulated a path grounded in empirical reality, ethical conduct, and meditative insight¹. The Four Noble Truths and the Eightfold Path provided a revolutionary ethical framework that redefined Indian spirituality around inner transformation rather than external rites².

Politically, the Mauryan Emperor Ashoka's embrace of Buddhism in the 3rd century BCE institutionalized its ethical principles. His rock edicts emphasized tolerance, non-violence, respect for all sects, and welfare for all beings³. This was perhaps the earliest instance of moral governance in Indian polity. Through the state-sponsored construction of stupas and monastic centers, Buddhism gained an architectural and geographic presence that would survive long after its religious decline in the subcontinent.

Traditions and Rituals: Ethicalization and Simplification of Practice-

Buddhism reoriented Indian religious life from elaborate sacrificial rituals to simplified, internalized practices emphasizing ethical living. Concepts such as *dâna* (charity), *sîla* (morality), and *bhâvanâ* (mental cultivation) replaced ritualism. These practices influenced later Hindu and Jain traditions and remain prevalent in Indian spiritual life. For instance, the emphasis on *ahimsa* (non-violence) and vegetarianism was popularized by Buddhism and became central to Jainism and strands of Hinduism.

Modern Buddhist rituals, especially among Navayâna and Theravâda practitioners in India, continue to reflect this legacy. Observances such as *Buddha Purnima*, meditative chanting, and offerings at stupas exhibit continuity with ancient traditions. Though ritual forms have adapted (e.g., use of digital chanting apps or virtual offerings), the ethical core remains stable.

Art, Architecture, and Aesthetic Legacy-

Buddhism significantly shaped India's aesthetic landscape. The stupa—a hemispherical structure for relics—originated as a Buddhist architectural form and spread throughout Asia. The Great Stupa at Sanchi and the Dhamek Stupa at Sarnath exemplify early Buddhist aesthetics rooted in symbolic geometry, axiality, and narrative reliefs.

Buddhist influence also extended to rock-cut architecture and mural painting. The Ajanta caves (2nd century BCE–6th century CE) represent a confluence of religious devotion, technical mastery, and narrative art. Scenes from Jataka tales, depictions of Bodhisattvas, and the use of perspective and shading influenced later Hindu and Jain cave art.

In the modern period, this tradition continues through reconstructions like Deekshabhoomi in Nagpur, built in honor of Ambedkar's Navayâna movement. These sites blend ancient symbolism with contemporary architectural forms, showing that Buddhist aesthetics remain relevant in India's evolving cultural identity.

Customs and Value Systems: Egalitarian Ethics and Social Reform-

Buddhist doctrine emphasized ethical universality over ritual purity. It challenged caste hierarchies by asserting that virtue and wisdom—not birth—determined one's spiritual progress. This ethos laid a moral foundation for India's social conscience, influencing later reformist movements.

Ambedkar's 1956 mass conversion to Buddhism was a strategic reclamation of this egalitarian ethic. He saw in Buddhism a tool for resisting caste discrimination and rebuilding Indian society on rational and ethical lines. The values of non-violence, compassion, self-restraint, and individual responsibility emphasized in Buddhism have since permeated India's modern secular and spiritual ethos.

Language and Literature: Democratization and Storytelling Legacy

Buddhism democratized spiritual discourse by using Prakrit and Pâli, thereby breaking the Sanskrit monopoly. The Pâli Canon (*Tipitaka*) and vernacular texts made Buddhist philosophy accessible to common people. Texts such as the *Dhammapada* and *Jataka* stories conveyed profound ethical insights through parables, establishing a literary tradition that influenced Indian storytelling, including the *Panchatantra* and *Hitopadesha*¹¹.

Poets like Aëvaghoca bridged Buddhist and Brahmanical traditions, writing Sanskrit works like *Buddhacharita* that fused epic poetry with philosophical inquiry¹². The literary continuity persists today through modern reinterpretations of Buddhist stories in regional languages, children's literature, and even graphic novels.

Religion and Philosophy: Intellectual Exchange and Syncretism-

While Buddhism critiqued several Vedic dogmas, it retained Indian metaphysical concepts like *saCsâra* and *karma*. The Middle Path (Majjhima Patipada) offered a synthesis of renunciation and engagement. Over time, Indian Buddhist thinkers—Nâgârjuna, Vasubandhu, Dignâga—developed epistemologies and metaphysics that deeply influenced Hindu Vedânta and Nyâya traditions¹³.

The eventual assimilation of Buddhist thought into Hinduism was not mere appropriation but a philosophical convergence. Ācārya's Advaita Vedânta, while critical of Buddhism, absorbed dialectical methods developed by Nâlandâ scholars. Similarly, the Bhakti tradition's emphasis on inner devotion and equality resonated with Buddhist ideals¹⁴.

In modern India, Buddhist philosophy underpins movements for mindfulness, secular ethics, and non-violence. Figures like the Dalai Lama and Ambedkar illustrate Buddhism's enduring intellectual and ethical relevance.

Cultural Transitions in the Global Age

Globalization has revived interest in India's Buddhist past. Government initiatives like the Buddhist Circuit project aim to connect major pilgrimage sites—Bodh Gaya, Sarnath, Kushinagar—with global tourism and diplomacy¹⁵. India's engagement with countries like Japan, Sri Lanka, and Thailand is increasingly routed through shared Buddhist heritage, demonstrating cultural continuity as soft power.

Institutions like Nalanda University have been reimaged in the 21st century, merging ancient academic glory with contemporary international scholarship. Meanwhile, the global mindfulness movement—originating from Buddhist meditation—reinforces India's civilizational influence in the digital age¹⁶.

Conclusion

Buddhism has contributed both stability and change to Indian civilization. It introduced a radical ethical and philosophical alternative to Brahmanism, created a new aesthetic and architectural paradigm, and democratized religious expression. Over time, its doctrines, practices, and values were absorbed, reinterpreted, or revived, maintaining a continuous presence in Indian thought and culture.

Today, as India repositions itself globally, its Buddhist legacy offers a reservoir of ethical, aesthetic, and philosophical capital. Far from being a relic of the past, Buddhism remains a living force shaping India's civilizational narrative—rooted in tradition, responsive to change.

References

1. Dayanidhi, A. (2025). *Buddhism: Traditional Continuity or a New Beginning?* Lumbinî Prabhâ, 10, 61–72.
2. Dhar, S. (2015). *Impact of Buddhism on Indian Society*. International Journal of Historical Insight and Research, 1(1), 36–42.
3. Ashoka. (3rd c. BCE). Rock and Pillar Edicts (trans. S. Dhammika).
4. Geary, D. (2024). *Made in India: Heritage Diplomacy and the Infrastructure of Buddhist Memory*. Copenhagen Journal of Asian Studies, 42(1), 65–88.

5. Press Information Bureau. (2025). *Restoration of Ancient Indian Knowledge Centres*. Government of India.
6. Singh, U. (2010). *Exile and Return: The Reinvention of Buddhism and Buddhist Sites in Modern India*. *South Asian Studies*, 26(2), 193–217.
7. Buddha. *Dhammapada*. (trans. from Pāli).
8. UNESCO. (n.d.). *Buddhist Monuments at Sanchi*.
9. Ambedkar, B. R. (1957). *The Buddha and His Dhamma*. Siddharth College Publications.
10. Sharma, A. (2022). *Buddhist Ethics in the Indian Constitution*. *Contemporary Indian Philosophy Review*, 7(2), 111–128.
11. Nakamura, H. (1980). *Indian Buddhism: A Survey with Bibliographical Notes*. Motilal Banarsidass.
12. Aëvaghoca. (1st c. CE). *Buddhacharita*. (Trans. E. B. Cowell).
13. Garfield, J. L. (1995). *The Fundamental Wisdom of the Middle Way*. Oxford University Press.
14. Deutsch, E. (1989). *Advaita Vedanta: A Philosophical Reconstruction*. University of Hawaii Press.
15. Ministry of Tourism. (2023). *Buddhist Circuit Development Project*. Government of India.
16. Goleman, D., & Davidson, R. (2017). *Altered Traits: Science Reveals How Meditation Changes Your Mind, Brain, and Body*. Penguin Random House.



JAIPUR'S ROYAL CUISINE: EXPLORING FOOD CULTURE AND RAJMATA GAYATRI DEVI'S CULINARY CONTRIBUTION

Pooja Vyas

Research Scholar
Banasthali Vidyapith, (Rajasthan)

Dr. Asha Kumari Singh

Assistant Professor
Banasthali Vidyapith, (Rajasthan)

Abstract

This research paper explores the rich culinary tradition of Jaipur, highlighting the deep cultural roots and royal influences that have shaped its unique food identity. It examines how the royal kitchens of Jaipur, particularly through the traditions maintained by the ruling families, contributed to the preservation and promotion of Rajasthani cuisine. **“Rasoda”** One of the thirty-six karkhanas (departments) in the royal court was dedicated solely to managing the royal kitchen, reflecting the importance of food in courtly life. A significant contribution was made by Rajmata Maharani Gayatri Devi, who sought to preserve the royal culinary legacy through her book *Gourmet's Gateway*, which documents traditional royal recipes. This paper also investigates how this culinary heritage continues to attract tourists and serves as a cultural ambassador for the city. Ultimately, the study shows how Jaipur's food culture reflects the grandeur of its past and strengthens its present identity and economy through cultural tourism.

Keywords : Jaipur royal cuisine, Rajasthani food culture, Rajmata Gayatri Devi, culinary heritage, royal kitchen, food and tourism, cultural preservation, gourmet traditions, heritage karkhanas, Indian gastronomy.

Introduction

Rajasthan, often described as the jewel of India's cultural heritage, is a state where history, art, and tradition blend seamlessly into everyday life. Known for its grand forts, vibrant textiles, classical music, and colorful festivals, Rajasthan offers an immersive cultural experience. One of the most defining aspects of this rich heritage is its cuisine—an intricate reflection of the region's arid geography, warrior traditions, and royal grandeur. Rajasthani food is characterized by its bold use of spices, reliance on preserved ingredients like dried berries and curd, and an emphasis on rich, hearty flavors developed to endure harsh desert conditions and long periods of warfare ¹

Among the many princely states of Rajasthan, Jaipur—the Pink City—emerges as a key center of culinary evolution. Founded in 1727 by Maharaja Sawai Jai Singh II ², Jaipur was not only a political

and architectural marvel but also a cultural hub where the royal kitchen played a pivotal role. The *Rasoda*, or royal kitchen, was one of the 36 *karkhanas*³ (departments) within the palace administration, highlighting the importance placed on food as a ceremonial and symbolic element of royal life. More than just a place for meal preparation, the royal kitchen was an institution—staffed by trained *khansamas* (chefs), guarded recipes, and a code of etiquette that transformed everyday cooking into an art form.

This paper explores how Jaipur's royal culinary traditions were shaped by its rulers, particularly through the contributions of figures like Rajmata Gayatri Devi. It also examines how these traditions have been preserved, promoted, and integrated into modern-day tourism, making Jaipur not only a city of heritage but also a destination for cultural gastronomy

Historical Background of Jaipur's Cuisine

The culinary heritage of Jaipur is deeply rooted in the broader food traditions of Rajasthan, shaped by centuries of political history, geography, and social customs. Traditional Rajasthani cuisine was born out of necessity, shaped by the scarcity of water and fresh vegetables in the arid desert climate. This led to the development of unique cooking techniques and a reliance on ingredients that could be preserved for long periods—such as dried lentils (*dal*), gram flour (*besan*), buttermilk, and *desi ghee*. Dishes like *Dal Baati Churma*, *Gatte ki Sabzi*, and *Ker Sangri* are examples of how the people of the region turned environmental limitations into culinary strengths.

However, in the royal courts—especially in Jaipur—these humble traditions were elevated to refined culinary art. The Jaipur royal kitchen blended the rusticity of local food with the sophistication of Mughal and Rajput courtly traditions. Influences from Persian, Marwari, and even European cuisines slowly began to make their way into the royal platters through political alliances, travels, and intercultural exchanges. The palace kitchen was not only a functional space but also a ceremonial one, where food symbolized status, hospitality, and diplomacy.

One of the most remarkable aspects of Jaipur's royal food culture was the organization of the kitchen as a formal *karkhana*, or department, within the palace. Out of the 36 *karkhanas*³ the *Rasoda* held a unique position, managed with meticulous care by chefs who specialized in different kinds of cuisine—vegetarian, non-vegetarian, ceremonial, and everyday fare. Recipes were passed down orally or recorded in handwritten manuscripts, guarded with the same secrecy as military strategies. Cooking was often ritualized, with emphasis on purity, seasonal ingredients, and astrological timing.

Over time, these royal traditions influenced broader society. Festival feasts, wedding banquets, and temple offerings in Jaipur began to echo the flavors and presentation styles of palace cuisine. This dissemination of royal food practices into public life marked the beginning of Jaipur's culinary identity as both elite and accessible, sacred and sumptuous

Role of Jaipur Royals in Culinary Development

The development of Jaipur's culinary identity is closely tied to the patronage and influence of its royal family, who not only elevated the art of cooking within the palace walls but also contributed significantly to the preservation and dissemination of these traditions. Food in the Jaipur court was not merely about sustenance—it was an extension of hospitality, diplomacy, and cultural sophistication. The

meticulous care with which meals were prepared, served, and even recorded reveals how deeply the royals valued culinary excellence.

Among the key figures in this tradition was **Rajmata Gayatri Devi**, whose cosmopolitan upbringing and refined tastes brought a fresh perspective to the Jaipur royal kitchen. Educated in London and Switzerland and fluent in several languages, Gayatri Devi had a deep appreciation for both global and traditional cuisine. After marrying Maharaja Sawai Man Singh II⁴, she became not only a public figure but also a custodian of royal traditions. Her interest in culinary heritage led her to document several royal recipes in a cookbook titled *Gourmet's Gateway* (1999)⁵. This book, offers a glimpse into the royal kitchen's diversity, ranging from traditional Rajasthani dishes to Anglo-Indian and Continental influences that had made their way into the palace during the colonial period.

The Economic Times (2009)⁶ highlights the significance of Rajmata Gayatri Devi's cookbook in preserving the authentic recipes of Jaipur's royal kitchens. The article emphasizes how the cookbook serves as a valuable cultural document, showcasing the rich culinary heritage of Rajasthan's royalty and helping to keep traditional royal dishes alive for future generations.

The impact of the Jaipur royals extended beyond the palace. As custodians of culture, they were instrumental in maintaining the sanctity of traditional Rajasthani cuisine while adapting it for modern settings. They hosted dignitaries, state guests, and global travelers, often showcasing local dishes like *Laal Maas*, *Safed Maas*, and *Bajre ki Roti* in grand banquets that combined royal protocol with regional pride. The presentation of food was treated as an art form—silver thalis, ornate cutlery, and ceremonial serving styles were part of the experience, leaving a lasting impression on guests and strengthening the image of Rajasthan as a land of refined hospitality⁷.

Beyond Rajmata Gayatri Devi, other members of the royal household also supported cultural preservation. For instance, in the post-independence era, the conversion of palaces like Rambagh Palace and City Palace into heritage hotels and museums helped ensure that royal culinary practices remained alive. These spaces began to offer guests not just luxury, but curated food experiences inspired by palace kitchens—sometimes even using the original recipes and cooking techniques passed down through generations.

In a conversation with Dharmendar Kanwar⁸, she shared valuable insights into the richness of Rajasthan's royal culinary traditions. She emphasized how royal feasts were not only extravagant but deeply rooted in cultural pride and hospitality. Her reflections reaffirm that the Jaipur royal kitchen was a symbol of tradition, elegance, and identity—values that continue to be preserved today through heritage practices. As Kanwar (2011) also notes in her article "*A King's Feast*"⁹, Rajasthani royal cuisine reflected a refined blend of opulence and cultural heritage. Lavish meals prepared with elaborate methods and rare ingredients were symbolic of the regal lifestyle, traditions that are now being preserved and showcased through heritage hotels and royal initiatives.

In essence, the Jaipur royals did not let their culinary traditions fade with the decline of monarchy. Instead, they actively transformed them into living heritage—preserved through books, revived in heritage hotels, and shared with the world as part of Rajasthan's tourism identity. Their contribution laid the foundation for Jaipur's reputation as a gastronomic destination, where every meal tells a story of history, elegance, and cultural continuity

Culinary Heritage and Tourism

In recent decades, culinary heritage has emerged as a powerful driver of cultural tourism, and Jaipur stands at the forefront of this movement in India. The city's royal food traditions—steeped in ritual, refinement, and regional flavor—offer visitors not just meals, but immersive cultural experiences. As global travelers increasingly seek authenticity and storytelling in their journeys, the royal cuisine of Jaipur has become a key attraction, drawing food lovers, historians, and heritage enthusiasts alike¹⁰.

One of the most significant developments in connecting food with tourism was the transformation of Rambagh Palace, the former residence of the Jaipur royal family, into a luxury heritage hotel. Operated by the Taj Group, the palace offers curated royal dining experiences that recreate the grandeur of princely banquets. Guests can dine in spaces that were once reserved for royals, sampling dishes prepared from family recipes and presented in the traditional royal manner. This form of culinary heritage tourism not only promotes local cuisine but also gives visitors a direct connection to the city's regal past.

Moreover, the City Palace and other royal properties in Jaipur often host food festivals, cultural evenings, and private dining experiences that highlight traditional Rajasthani cuisine. These events are carefully curated to reflect the authenticity of royal kitchens, with dishes like *Ghewar*, *Laal Maas*, *Jodhpuri Mirchi Bada*, and *Haladi ki Sabzi*¹¹ being presented alongside folk music, dance, and storytelling. These multi-sensory experiences allow tourists to engage with the culture not just visually, but through taste, smell, and sound—deepening their understanding of Rajasthan's rich heritage.

Importantly, **Rajmata Gayatri Devi**, who was not only a cultural icon but also a visionary leader, played a crucial role in promoting Rajasthan's tourism potential through her association with the **Rajasthan Tourism Development Corporation (RTDC)**¹². Her advocacy for preserving and showcasing the state's heritage—particularly its culinary traditions—helped lay the foundation for many tourism initiatives that are flourishing today.

Jaipur's growing popularity as a destination for culinary tourism has also encouraged private chefs, heritage resorts, and cultural entrepreneurs to revive and reinterpret traditional recipes. Many of these professionals consult royal records, family archives, and oral histories to ensure the food remains true to its roots. The narrative around each dish—its origin, the occasions it was served, and how it evolved—is now an essential part of the tourist experience. For example, dishes like *Khud Khargosh* (slow-cooked rabbit) or *Mohan Maas* (a royal mutton delicacy)¹³ are no longer hidden treasures but have been revived and respectfully showcased to both domestic and international visitors.

Furthermore, Jaipur's royal cuisine is increasingly featured in **culinary documentaries, travel literature, and global food shows**, helping to export the city's gastronomic legacy to a worldwide audience. Food walks, cooking workshops, and royal thali tastings are common experiences offered to tourists, many of whom come specifically to explore Rajasthan's legendary food culture¹⁴.

In this way, the royal food of Jaipur has transcended the palace walls to become a symbol of the city's identity and a cornerstone of its tourism economy. The efforts of the royal family and heritage institutions have ensured that Jaipur's culinary traditions are not only preserved but also continually celebrated, making food a delicious and dignified path to cultural understanding.

Modern Revivals and Global Interest

As culinary tourism continues to grow globally, Jaipur's royal food traditions have undergone a remarkable revival, blending heritage with innovation. While the original royal kitchens were once hidden behind palace walls and reserved for monarchs and dignitaries, today they inspire chefs, food historians, and cultural entrepreneurs across India and beyond. These efforts to revive and reinterpret royal cuisine have ensured that the legacy of Jaipur's Rasoda remains relevant in the modern world.

One of the key forces behind this revival has been the transformation of heritage spaces into experiential destinations. Luxury hotels like the Taj Rambagh Palace, Samode Haveli, and Narain Niwas Palace now offer curated tasting menus, royal thalis, and hands-on cooking sessions that reflect age-old traditions. These experiences are not only about the food—they offer insights into royal etiquette, serving styles, and ingredient sourcing that were once central to palace culture. For example, meals may be served in silverware, accompanied by stories of how certain dishes were prepared for coronations, festivals, or wartime camps¹⁴.

Contemporary chefs, often in collaboration with royal descendants or palace archives, are reintroducing classic dishes with a modern twist. While the core recipes—such as *Laal Maas*, *Mohan Thaal*, or *Safed Maas*—remain authentic, they are now being adapted to suit contemporary palates and dietary preferences. Chefs may reduce the use of ghee, introduce organic or plant-based alternatives, or creatively plate traditional meals to appeal to international guests. This fusion of the old and new not only attracts younger audiences but also helps conserve culinary techniques that might otherwise be lost.

Jaipur's royal cuisine has also found a place in global food narratives outside of India. From international food festivals to features in travel shows and gourmet magazines, dishes from the Pink City have gained worldwide recognition. Shows on platforms like Netflix, National Geographic, and TLC have highlighted Rajasthan's royal kitchens, often describing them as “living museums of food.” This exposure has sparked interest among culinary scholars and tourists alike, placing Jaipur on the global gastronomic map.

In academic circles, the revival has also prompted research into food as intangible heritage. Scholars are now exploring how cuisine reflects identity, power, and cultural diplomacy in royal courts. Jaipur's royal recipes are studied not just for their taste, but for what they reveal about trade routes, court customs, women's roles in palace life, and intercultural exchanges.

Additionally, local initiatives such as food walks, pop-up kitchens, and royal recipe documentation projects have emerged in Jaipur, often supported by cultural organizations and tourism departments¹⁵. These programs aim to reconnect the community with its culinary roots while also promoting sustainable tourism that benefits local artisans, farmers, and cooks.

Conclusion

Ultimately, the modern revival of Jaipur's royal food culture is not merely about preserving recipes—it's about reviving a worldview where food was a language of hospitality, tradition, and identity. In embracing its past, Jaipur has found a fresh and flavorful way to connect with the future.

The culinary tradition of Jaipur is more than a legacy of delicious dishes—it is a living expression of the city's history, hospitality, and royal refinement. Rooted in the broader cultural richness of Rajasthan,

Jaipur's cuisine evolved in the royal kitchens where food was treated not just as nourishment, but as a symbol of status, ceremony, and community. The integration of local ingredients with courtly customs created a distinct gastronomic identity that continues to resonate across generations.

The contribution of Jaipur's royal family, particularly through structured palace kitchens and the documentation of recipes, has been instrumental in preserving this culinary heritage. More recently, in 2025, Maharaja Sawai Padmanabh Singh launched *The Sarvato*¹⁶ restaurant within Jaipur's City Palace, offering traditional Rajasthani royal cuisine in a contemporary setting. This initiative highlights the ongoing efforts of the royal family to keep the flavors and stories of Jaipur's past alive. Whether through heritage hotels, curated food experiences like *The Sarvato*, or literary works, the royals have ensured that the flavors of the past remain relevant and accessible today. Their efforts have also played a key role in transforming Jaipur into a prominent destination for cultural and culinary tourism.

As global interest in traditional and heritage cuisine grows, Jaipur's royal food culture offers a unique blend of authenticity and storytelling. It connects tourists not only with taste but with the deeper cultural values of Rajasthan—honor, hospitality, and celebration. In an age where food is increasingly seen as a bridge between cultures, the royal cuisine of Jaipur stands as a proud and flavorful testament to India's rich and regal past.

References

1. Peeyush Bhadviya. (2020). *Food heritage of rajasthan*, Delhi, Himanshu Publication, p.9.
2. Tillotson, Giles, (2006). *Jaipur Nama*, New Delhi: Penguin Books India Pvt. (2006) p.215.
3. Singh Harminder. (2022). *36 Karkhana of Jaipur and Its Indigenous Crafts*, the write order publication, p.5.
4. Devi, Gayatri, and Santha Rama Rau. (1998). *A Princess Remembers: The Memoirs of The Maharani of Jaipur*, South Asia Books. p.143.
5. Devi Gayatri, and Kanwar Dharmendar. (1999). *Gourmet's Gateway*, Jaipur.
6. The Economic Times. (1 Aug 2009). *Royal Kitchens: Rajmata's Cookbook*.
7. Kanwar Dharmendar, Singh Sumer (2008). *Royal Cuisine of Rajasthan*, Brijbasi Art Press.
8. Interview with Dharmendar Kanwar (The Awarded Travel Writer, Designer heritage Conservator, and Biographer of Rajmata Gayatri Devi).
9. India Today. (6 Jun 2011). *A King's Feast by Dharmendar Kanwar*.
10. Kothari Mehul, (2024). *A Culinary Journey Through Rajasthan Cuisine*, Independently published.
11. Singh, Kuldeep, Kumar Mathur Deep. (2024). "A Study on the Culinary Heritage of Rajasthan: With Reference to the Perspective of Customers", African Journal of Biological Science. pp.367,368.
12. Rajasthan Tourism Development Corporation. (2023). *Rajasthan Tourism and Heritage Promotion Report*. Retrieved from <https://www.tourism.rajasthan.gov.in>
13. Forbes India. (21 Mar 2011). *Rajasthan's vanishing royal cuisine*.
14. Batra.D & Sharma.S. (2019). "Culinary Inheritance of Rajasthan: Its Role in Rajasthan Tourism & Economy Intensification" International Journal for Research in Engineering Application & Management (IJREAM).
15. Jonjua Mehak. (2024). "Culinary Heritage of Rajasthan: Exploring Tradition and Identity Through Food", Global Sustainable Practices in Gastronomic Tourism. p.36.
16. The Hindu. (28 Mar 2025). *Jaipur royal Padmanabh Singh launches The Sarvato, inviting you into the city palace for dinner*.



CULTURAL HERITAGE OF THE INDUS VALLEY CIVILIZATION: A STUDY OF IDENTITY, INNOVATION, AND INFLUENCE

Rahul Raj

Research Scholar
Malwanchal University, Indore

Abstract

The Indus Valley Civilization (2600–1900 BCE) was a sophisticated Bronze Age culture known for its urban planning, standardized architecture, trade systems, and artistic craftsmanship. This article explores the cultural heritage of the Indus Valley Civilization (IVC) through archaeological and historiographical evidence, assessing its significance in the broader cultural development of South Asia. Emphasis is placed on its material culture, trade, religious life, language, and long-term legacy, especially in shaping early Indian civilization.

KEYWORDS ; Indus Valley Civilization, Harappan Culture, South Asian Archaeology, Urban Planning, Ancient Trade Networks, Cultural Continuity.

Introduction

The Indus Valley Civilization (IVC), also known as the Harappan Civilization, was a Bronze Age urban society that flourished in the northwestern regions of South Asia, primarily present-day Pakistan and western India. It represents one of the three great riverine civilizations of the ancient world, alongside Mesopotamia and Egypt.¹ Archaeological evidence reveals a society marked by technological innovation, complex urban management, standardized craftsmanship, and cross-cultural interaction. Yet, due to its undeciphered script and limited textual evidence, much of its cultural heritage is interpreted through material remains.

Urban Planning and Civic Architecture

The IVC's city planning was among its most remarkable features. Cities such as Mohenjo-daro, Harappa, and Dholavira were constructed using a grid layout, wide streets, and baked brick structures.² The Great Bath of Mohenjo-daro is an exemplary public architecture likely used for ritual purification.³ Cities had sophisticated drainage systems, granaries, and reservoirs—indicating a high priority placed on sanitation and resource management.

The Harappan approach to urbanism is central to its cultural heritage. Cities such as Harappa,

Mohenjo-daro, and Dholavira exhibit grid-based town planning, advanced water management systems, and uniform architectural standards. As Wright notes, the Harappan commitment to order and civic infrastructure reflects not just engineering acumen but a shared cultural ethos focused on public welfare and sustainability.

The standardization of baked bricks, usually in a 1:2:4 ratio, across distant cities suggests shared aesthetic and construction norms. Dholavira's urban planning, with distinct zones for administrative, residential, and ceremonial functions, reveals a civic hierarchy that prioritized public accessibility and environmental adaptation. The existence of covered drainage systems and communal baths, such as the famed Great Bath at Mohenjo-daro, points to an early concern with hygiene, ritual, and collective life.

Dholavira, in particular, demonstrates advanced hydraulic engineering. Its water conservation system included interconnected reservoirs, channels, and check dams, offering a sustainable model of urban water use.⁴⁴ The standardization of bricks (1:2:4 ratio) across sites indicates centralized planning or cultural uniformity.

Socio-Economic Structures

Harappan society displayed a complex economy based on agriculture, pastoralism, crafts, and trade. Evidence from sites like Mehrgarh and Harappa suggests cultivation of wheat, barley, and cotton—possibly among the first examples of cotton use in the ancient world.⁵⁵ The absence of palaces or ostentatious elite structures has led scholars to theorize a relatively egalitarian social system or distributed forms of authority.⁶⁶

Seals, weights, and tokens reveal a bureaucratic structure for regulating trade and craft production. The use of standardized weights and measures and the presence of warehousing structures suggest sophisticated economic planning and surplus storage.⁷⁷

The Harappan economy was closely tied to both internal and long-distance trade. As Ratnagar has shown, the civilization maintained economic and cultural connections with Mesopotamia, the Persian Gulf, and Central Asia. Indus seals have been found at Mesopotamian sites like Ur and Susa, while Mesopotamian records refer to trade with a region known as Meluhha—widely believed to refer to the Indus region.

Lothal's dockyard in Gujarat exemplifies Harappan maritime engagement. Goods such as lapis lazuli, ivory, cotton textiles, and carnelian beads were likely traded for silver, tin, and luxury items. The use of standardized weights and measures and the widespread presence of administrative seals suggest a culturally embedded system of trade regulation, rooted in norms of fairness and accountability.

Artistic and Craft Traditions

The Harappans were accomplished artisans. The iconic bronze figure known as the “Dancing Girl” of Mohenjo-daro, with its naturalistic pose and intricate detailing, attests to metallurgical and artistic expertise.⁸⁸ Artifacts include terra-cotta figurines, pottery, shell inlays, faience, and stone beads. Many objects served domestic or ritual purposes, such as amulets or votive figurines.

Harappan material culture reflects a high degree of technical proficiency and aesthetic sophistication. Artisans produced a wide array of goods, including ceramic wares, etched carnelian beads, shell

ornaments, bronze figurines, and faience amulets. The “Dancing Girl” bronze sculpture, as analyzed by McIntosh, demonstrates an artistic vision that valued dynamism and individual expression within stylized forms.

Workshops discovered at sites like Chanhudaro indicate that craft production was specialized and likely organized at a community level. Bead-making, shell-cutting, and metallurgy were prominent industries that linked Harappan towns through trade networks and shared aesthetic motifs. The uniformity of seals and pottery types, observed across the Harappan sphere, suggests cultural cohesion and the use of iconography for identity and symbolic communication.

Crafts were often organized in workshops, and archaeological layers in cities like Chanhudaro indicate specialization in bead-making, shell-cutting, and metallurgy.⁹ The long-distance procurement of raw materials such as lapis lazuli, carnelian, and steatite reflects both artistic preferences and trade connectivity.

Religious Beliefs and Symbolism

Without decipherable texts, IVC religious beliefs must be inferred from material culture. Numerous terra-cotta figurines, including depictions of women with exaggerated reproductive features, suggest fertility cults or goddess worship.¹⁰ A notable seal shows a horned, cross-legged figure surrounded by animals—identified by some scholars as a proto-Shiva or “Pashupati” deity, though this remains debated.¹¹

Without deciphered texts, Harappan religious life must be inferred from archaeological evidence. Kenoyer emphasizes the symbolic significance of seals, ritual objects, and iconography, which offer clues to Harappan belief systems. The recurrent appearance of certain animals—bulls, elephants, and a unicorn-like figure—on seals may indicate totemic or sacred associations.

A widely debated seal portrays a horned figure seated in a yogic posture surrounded by animals. Scholars such as Lal and Possehl have interpreted this image as an early prototype of the Hindu god Shiva in his “Pashupati” aspect. Terra-cotta figurines, often representing women with elaborate hairstyles and fertility symbols, suggest goddess worship or mother cults. Fire altars found at Kalibangan and ritual bathing facilities like the Great Bath imply complex rites involving purification, sacrifice, or communal religious observance.

Fire altars discovered at Kalibangan and evidence of water purification (e.g., the Great Bath) suggest ritualistic practices involving fire and water.¹² Animal motifs, especially of bulls, elephants, and unicorn-like creatures, may have had totemic or symbolic significance.

Language and Script

The Indus script, consisting of over 400 unique symbols, is found mainly on seals, tablets, and pottery fragments. These inscriptions are typically short, usually fewer than five characters, and appear to have been used in administrative or ritual contexts.¹³ Despite decades of research, the script has not been deciphered due to the absence of bilingual texts or longer inscriptions.

With over 4,000 inscriptions, primarily on seals and pottery, the script includes over 400 symbols. Most inscriptions are short, limiting linguistic analysis. Possehl and Wright have pointed out that the brevity and distribution of the script imply its use in ritual, identity marking, or trade administration.

While some linguists propose Dravidian roots based on phonetic reconstructions, others argue for a link to early Indo-Aryan or Munda language families. The lack of a bilingual inscription hampers progress, but the script's presence across urban and rural sites demonstrates a widespread symbolic literacy. Its integration into seals suggests its use as a marker of authority and authenticity, possibly linking literacy with social or ritual power.

Some linguists suggest a Dravidian linguistic base, supported by structural similarities to Proto-Dravidian grammar, while others argue for a link to the Munda or Indo-Aryan language families.¹⁴ Until decipherment is achieved, any understanding of Harappan religion or governance remains speculative.

Trade and Maritime Culture

Harappan cities were deeply involved in both inland and maritime trade. The discovery of a dockyard at Lothal indicates advanced ship-building and maritime commerce.¹⁵ Goods such as ivory, cotton textiles, carnelian beads, and metals were exported to Mesopotamia and the Persian Gulf, as evidenced by Indus seals found at sites like Ur and Susa.¹⁶

Inland trade networks connected the Indus region with Gujarat, Rajasthan, and the Deccan. The widespread distribution of similar pottery, weights, and seals suggests integrated economies with regulated commercial systems.

Cultural Legacy and Continuity

The decline of urban Harappan society around 1900 BCE is associated with climate change, particularly the drying of the Ghaggar-Hakra River (often identified with the mythical Saraswati), tectonic activity, and possible shifts in trade routes.¹⁷ However, the Harappan legacy endured in the form of rural cultural continuity.

One of the most significant aspects of the IVC's cultural heritage is its continuity into later South Asian traditions. As Lal argues, the decline of urban Harappan centers did not result in cultural disappearance but rather a rural transformation, with many Harappan traditions surviving in modified forms.

Elements of Harappan culture—brick architecture, water management, and religious iconography—reappear in later Indian traditions. Some scholars argue that Vedic culture absorbed and adapted many Harappan practices.¹⁸ For instance, the fire altars and ritual bathing practices bear parallels with later Hindu rites. The Indo-Gangetic tradition of urbanism, starting from the Painted Grey Ware culture, may also have drawn on Harappan urban memories.

The use of fire altars, reverence for sacred animals, ritual bathing, and even architectural forms such as courtyard houses reappear in later Vedic and early historic cultures. Kenoyer and McIntosh both highlight the survival of craft traditions and settlement patterns in the Gangetic plains, suggesting cultural diffusion rather than abrupt rupture. For example, Painted Grey Ware and Northern Black Polished Ware cultures show affinities with Harappan ceramic and spatial practices.

Preservation and Heritage Today

Harappan heritage faces significant threats from urbanization, environmental degradation, and neglect. While sites like Mohenjo-daro and Dholavira have received UNESCO World Heritage designation,

many smaller sites remain unprotected. Political divisions between India and Pakistan also pose challenges for unified heritage management.

Recent advances in digital archaeology, GIS mapping, and remote sensing have opened new avenues for heritage preservation and interpretation.¹⁹ Museums, educational programs, and international collaborations can help raise awareness about the shared legacy of the Indus Valley Civilization.

Heritage, Identity, and Modern Interpretation

Today, the Indus Valley Civilization is a vital component of South Asian cultural identity and nationalist historiography. Sites like Mohenjo-daro and Dholavira have been recognized as UNESCO World Heritage Sites, yet many lesser-known sites remain under-explored or endangered. As Bridget and Raymond Allchin noted, the legacy of the IVC must be understood not only in academic terms but also as a living heritage that shapes how modern South Asians perceive their historical depth and cultural unity.

In India and Pakistan, the IVC has been invoked in public discourse to assert indigenous achievements in science, architecture, and governance. While this fosters appreciation, it also risks politicizing archaeology and distorting interpretations. Responsible heritage management must balance national pride with academic rigor and international cooperation.

Challenges in Preservation and Research

Despite its global significance, the IVC faces several challenges. Urban development, agricultural encroachment, and climate change threaten many archaeological sites. Furthermore, as Wright emphasizes, there is a need for collaborative research, digitization, and open-access scholarship to advance understanding of the civilization's cultural systems.

Interdisciplinary approaches, integrating remote sensing, paleoclimatology, and genetic studies, have recently offered new insights into the environmental context of the Harappans. These findings suggest that climate shifts, such as the weakening of the monsoon, may have contributed to the gradual decline of urban centers.

Conclusion

The Indus Valley Civilization was not just an early urban society but a culturally rich and complex civilization whose legacy continues to inform South Asian identity. Its achievements in urban planning, craft production, trade, and spiritual life illustrate a high level of social organization and cultural depth. The preservation and interpretation of this heritage require not only archaeological diligence but also a transnational, inclusive perspective that recognizes the IVC as a common cultural ancestor of the subcontinent.

The cultural heritage of the Indus Valley Civilization encompasses more than monumental ruins and undeciphered inscriptions. It reveals a deeply integrated system of urban governance, symbolic expression, technological innovation, and spiritual reflection. From standardized civic designs to enduring ritual symbols, the Harappans contributed foundational elements to the South Asian cultural continuum.

By reassessing the material and symbolic aspects of the IVC through the lens of archaeology and cultural studies, scholars can better appreciate the civilization's enduring influence. Its legacy lies not

just in what remains but in what it continues to inspire across millennia.

Bibliography

- Allchin, Bridget, and Raymond Allchin. *The Rise of Civilization in India and Pakistan*. Cambridge: Cambridge University Press, 1982.
- Kenoyer, Jonathan Mark. *Ancient Cities of the Indus Valley Civilization*. Karachi: Oxford University Press, 1998.
- Lal, B. B. *The Saraswati Flows On: The Continuity of Indian Culture*. New Delhi: Aryan Books International, 2002.
- McIntosh, Jane. *The Ancient Indus Valley: New Perspectives*. Santa Barbara: ABC-CLIO, 2008.
- Possehl, Gregory L. *The Indus Civilization: A Contemporary Perspective*. Walnut Creek, CA: AltaMira Press, 2002.
- Ratnagar, Shereen. *Trading Encounters: From the Euphrates to the Indus in the Bronze Age*. New Delhi: Oxford University Press, 2004.
- Wright, Rita P. *The Ancient Indus: Urbanism, Economy, and Society*. Cambridge: Cambridge University Press, 2010.



CULTURAL DIVERSITIES OF NORTHEAST INDIA

Prabhat Ranjan Singh

Research Scholar
Department Of Political Science
University Of Lucknow

Abstract

North East India's people and culture offer an enthralling mosaic of customs and diversity. Known as the "Seven Sisters," this isolated and beautiful area includes states like Assam, Nagaland, Manipur, and others. The bright threads of this cultural mosaic are formed by the indigenous communities in the Northeast, each of which has its own unique languages, customs, and traditions. The rich cultural heritage, linguistic diversity, traditional dress, food, music, dance, and festivals that characterise Northeast India are all examined in this abstract. A greater knowledge of the region's cultural diversity is provided by an examination of its breath-taking natural beauty, complex art forms, and distinctive customs. The people of North East India continue to celebrate and retain their legacy in spite of the difficulties and impacts of modernity, making it an important and fascinating aspect of India's cultural fabric.

KEYWORDS:- Mosaic, Seven Sisters, Heritage, diversity, traditional, cultural fabric

INTRODUCTION

Culture is a comprehensive notion that includes a group's shared beliefs, customs, traditions, values, language, arts, and social practices. It determines how members of a community interact with one another and the world around them. Culture has a profound impact on human identity and behaviour, impacting everything from communication and expression to celebration, art creation, and social organisation. It is a dynamic and ever-changing phenomena that is passed down through generations, making it an essential component of the human experience and a source of both unity and diversity in today's globalised world. Understanding and appreciating diverse cultures is essential for developing tolerance, empathy, and cross-cultural communication skills.

THE HISTORICAL BACKGROUND

The North-eastern Region (NER) was a part of Bengal Province from 1839 to 1873 when Britain was still an imperial power in India. (Singh, M. A. 2015) When India was emancipated from British rule in 1947, the only three states that comprised NER were Assam, Manipur, and Tripura. Following this, the vast region of Assam was divided into the independent states of Nagaland (1963), Meghalaya,

Manipur and Tripura (1972), Arunachal Pradesh (1975) and Mizoram (1987).

THE ETHNIC DIVERSITY AND COLONIAL ERA

The multicultural environment of North East India was significantly shaped by British colonial control beginning in the early 19th century. Many ethnic groups from central and eastern India migrated to Assam as a result of the establishment of tea plantations and other infrastructure improvements. By designating some tribal tribes' territories as "Excluded" and "Partially Excluded," the British also implemented a policy of isolation that limited their contact with the plainspeople and fostered a sense of separation. (Thanglen & Thanglen 2017)

The region's variety, however, was not entirely the product of colonial practices. It has been a junction for many migration routes from China, Tibet, and Southeast Asia for millennia. From these regions, ethnic groups such as the Ahoms, Nagas, and Kukis are thought to have migrated over several centuries into the region. After settling, these groups developed unique identities, traditions, and social systems that still exist today.

CULTURAL DYNAMICS POST INDEPENDENCE

The political and cultural environment of North East India experienced significant transformations following India's independence in 1947. The area transformed into a center for ethnic nationalism, as several insurgent factions arose, seeking autonomy or even independence from India. Numerous such movements were motivated by worries regarding the maintenance of ethnic identities and management of local resources. (Jain, Neha 2016) For example, the Naga and Mizo insurgencies are prominent instances of how ethnic identities have conflicted with the concept of an Indian national identity.

The Indian government reacted to these movements by establishing new states, providing a level of autonomy to local ethnic communities, and starting peace negotiations with insurgent factions. Nonetheless, the area continues to be delicate, marked by persistent conflicts among ethnic communities and requests for increased political and cultural independence.

CULTURAL DIVERSITIES OF NORTHEAST INDIA

The culture and inhabitants of North East India form an intriguing mix of diversity, influenced by the area's distinct geography, native populations, and historical factors. This secluded and beautiful region of India, commonly known as the "Seven Sisters," includes Arunachal Pradesh, Assam, Manipur, Meghalaya, Mizoram, Nagaland, and Tripura. The culture and inhabitants of these states are detailed below.

LINGUISTIC DIVERSITY

The range of languages in the North East is astonishing. Assamese is the primary language in Assam, whereas several Naga tribes communicate in languages such as Angami, Ao, and Konyak. Manipuris mainly communicate in Manipuri (Meiteilon), while in Mizoram, the predominant language is Mizo. Meghalaya is recognized for the Khasi and Garo languages, among others. The language of each community is essential to its cultural identity.

ETHNIC DIVERSITY

The North East is a diverse blend of ethnicities and tribes, featuring more than 200 unique communities. Every group possesses its unique language, customs, and traditions. Among the well-known tribes are the Bodo, Khasi, Garo, Angami, Ao, Konyak, Meitei, Mizo, and several others. (Thanglen & Thanglen 2017) This vibrant tapestry of cultures showcases the area's varied heritage.

THE CUISINE

The local food reflects its distinctive ingredients and cooking customs. Assam is renowned for its tea, whereas bamboo shoots are incorporated into many recipes. Fish is a fundamental part of the diet for numerous communities. North East Indian cuisine is also marked by unique spices, herbs, and fermented dishes.

THE TRADITIONAL CLOTHING

In the Northeast, traditional dress is more than just a way of dressing; it's a symbol of cultural identity. Manipuri ladies wear vibrant phaneks, whereas Assamese women wear the graceful mekhela chador. Various tribes have unique fashions that are frequently embellished with elaborate designs and patterns. (Tripathi 2021)

THE MUSIC AND DANCE

Music and dance are essential components of cultural expressions and festivities. The Bihu dance from Assam is a spirited and energetic representation of the region's cultural essence. Sattriya dance, a traditional dance form from Assam, serves as another instance. Manipuri RaasLeela is observed with elegant dance and musical acts. In these artistic expressions, traditional instruments such as the bamboo flute, drums, and percussion are essential.

THE ART AND HANDICRAFTS

The inhabitants of the North East are well-known for their artistic talents. Handcrafted textiles, detailed bamboo and cane items, as well as woodcraft, are a vital element of the culture. These crafts serve practical purposes and also carry profound cultural and artistic value.

THE FESTIVAL

The North East hosts numerous festivals, each providing insight into the area's vibrant cultural variety. Bihu in Assam signifies the Assamese New Year and is observed with dancing, music, and banquets. The Nagaland Hornbill Festival displays the traditions and customs of Naga tribes, while the Sangai Festival in Manipur is a vibrant celebration.

THE RELIGION

The area is a mosaic of faiths. Hinduism, Buddhism, Christianity, and native belief systems exist together. Christianity holds a prominent position in regions such as Nagaland and Mizoram, where it has greatly influenced the culture and lifestyle.

THE TRADITIONAL PRACTICES

In the Northeast, numerous indigenous tribes have distinctive traditions and rituals that date back to their ancestry. These customs continue to play a significant role in the cultural fabric, even though some have changed or disappeared. (Tripathi 2021) For example, the Konyak Naga tribe has a long history of headhunting, which is a reminder of their past even though it has mostly stopped.

CONCLUSION

The culture and inhabitants of North East India exemplify the remarkable diversity and strength of the human spirit. The cultural heritage of this area is a point of pride and a significant element of India's cultural fabric. As the world evolves and advances, it is crucial to recognize and maintain the distinct traditions and identities that contribute to the uniqueness of North East India.

Multiculturalism in North East India presents both benefits and challenges. Although it has enhanced the cultural, social, and political aspects of the region, it has also led to conflict and tension. The presence of various ethnicities, languages, and religions has formed a complicated network of identities that frequently conflict with one another. Nevertheless, multiculturalism presents the opportunity for a more inclusive and harmonious community if governed by fair political systems, conflict resolution strategies, and economic development programs. As India progresses and develops its border areas, the challenge is to maintain the distinctive cultural identities of North East India while making sure the region stays a vital part of the country. Through encouraging dialogue, enhancing education, and tackling the socio-economic requirements of its varied population, North East India has the potential to become an example of harmonious living in a diverse global community.

REFERENCE

1. Brenzinger, Matthias (31 July 2024). *Language Diversity Endangered*. Walter de Gruyter GmbH & Co KG. P. 322. ISBN 978-3-11-090569-4.
2. Tripathi, I. (2021). *Study of Different Cultures in India: Case Study of Northeast India*. *International Journal of Scientific Research and Engineering Development*. 4 (4). Retrieved February 28, 2023, from <http://www.ijared.com/volume4/issue4/IJARED-V4I4P76.pdf>
3. Thanglen, H. & Thanglen, R. (2017). A Major Traditional Festival Of Chiru Tribe Of North East India. *Asian Journal of Social Science and Humanities*, 6(2). Retrieved from https://www.researchgate.net/publication/317010532_A_MAJOR_TRADITIONAL_FESTIVAL_OF_CHIRU_TRIBE_OF_NORTH_EAST_INDIA
4. Singh, M. A. (2015) *North-eastern India and its neighbours: negotiating security and development* by Rakhee Bhattacharya, *Strategic Analysis*, 39(4), 463-465, DOI: 10.1080/09700161.2015.1047223. Retrieved from <https://www.tandfonline.com/action/showCitFormats?doi=10.1080%2F09700161.2015.1047223>
5. Choudhury, S., Bahadur, B., Krishnamurthy, K. V., & Adams, S. J. (2017). *Ethnic Diversity of North-East India. Ethnobotany of India: North-East India and Andaman and Nicobar Islands (1st ed.)*. Apple Academic Press
6. Jain, N. (2016). Northeast India's Multi-Ethnicities: Dominant Issues and Problems. *International Journal of Humanities & Social Science Studies (IJHSSS)*, 3(2). Retrieved from <https://www.ijhsss.com/old/files/27.NEHA-JAIN.pdf>
7. Experts, Arihant (4 June 2023). *General Knowledge 2024*. Arihant Publications India limited. P. 531. ISBN 978-93-131-9167-4.
8. Nath, Monoj Kumar (29 March 2021). *The Muslim Question in Assam and Northeast India*. Taylor & Francis. P. 57. ISBN 978-1-000-37027-0.
9. Jump up to: a b Chakravarti, Sudeep (6 January 2022). *The Eastern Gate: War and Peace in Nagaland, Manipur and India's Far East*. Simon and Schuster. P. 421. ISBN 978-93-92099-26-7.

10. McDuire-Ra, D. (2012). Northeast Migrants in Delhi: Race, Refuge and Retail. Amsterdam University Press.
11. Deb, Bimal J. (2006). Ethnic Issues, Secularism, and Conflict Resolution in North East Asia . 55 Concept Publishing Company. P. 21. ISBN 978-81-8069-134-8.
12. Government of India. INDIAN CULTURE Discover, Learn, immerse, Connect. History of North-East India. Retrieved from <https://indianculture.gov.in/north-east-archive/history-north-east>
13. Basu, G. (2011). Call of North East, Folk dances of North-east India. Retrieved from <https://www.ezccindia.org/pdf/book/ne.pdf>



CONSUMER PROTECTION IN INDIAN CULTURE AND HISTORICAL CONTEXT: A SOCIO-LEGAL ANALYSIS

Shubham Mishra

Research Scholar

Department Of Public Administration
Siddharth University, Siddharth Nagar

Abstract

Consumer protection is often viewed as a modern legal development; however, Indian civilization has deep-rooted traditions that emphasized ethical trade, fairness in commerce, and protection of consumer interests. This paper explores the intersection of consumer protection and Indian cultural values, examining how ancient Indian texts, legal traditions, and economic practices laid the foundation for consumer rights. It compares these ancient norms with contemporary legal frameworks, particularly the Consumer Protection Act, 2019, to highlight continuities and shifts in the philosophy of consumer welfare.

Keywords- Consumer Protection, Indian Culture, Ancient Law, Dharma, Consumer Rights, Arthashastra, Consumer Protection Act, Ethics in Trade.

1. Introduction

Consumer protection is a critical component of modern legal and economic systems. While statutory laws and institutions regulating consumer rights in India are recent, the roots of consumer-centric values are embedded in India's cultural and historical framework. This paper seeks to explore the evolution of consumer protection in India by examining ancient texts, traditional practices, and historical norms, and how these values continue to influence modern legislation and consumer jurisprudence.

2. Consumer Protection in Ancient Indian Culture

2.1 Dharma and Ethical Commerce

In ancient Indian philosophy, **Dharma** governed all aspects of life, including trade and business. Dharma promoted the idea of fairness, honesty, and duty in commercial relationships. Manusmriti, an ancient legal text, emphasized just measurement, fair pricing, and non-exploitation of buyers.

Manu Smriti was all about the social, political and economic conditions of ancient societies. It emphasized ethical trade practices and punished those who were unfair to consumers. The mandatory code of conduct also covered adulteration, mixing one product with another resulting in contamination.

All goods had a market or selling price set by the king. All measurements and weights were checked every six months and the results of these checks were recorded. It is worth noting that such efficient consumer protection measures were developed early in the process.

2.2 The Role of the State and Kautilya's Arthashastra-

Kautilya's *Arthashastra* (4th century BCE), a seminal treatise on statecraft and economics, contained extensive rules on market regulation. It mandated:

- Standard weights and measures
- Quality control of goods
- Penalties for adulteration and fraud
- Supervision of traders through appointed officers (Samsthadyaksha)

These provisions illustrate that consumer protection was viewed as a responsibility of the state and a crucial aspect of economic justice.

2.3 Guilds and Community Oversight-

Ancient Indian trade guilds (Shrenis) had internal codes of conduct that ensured quality and accountability in trade. These guilds monitored fair trade practices and acted as informal regulators and arbitrators, ensuring that consumers were not deceived.

3. Religious and Cultural Narratives

Hinduism, Jainism, Buddhism, and Islam—all of which influenced Indian civilization—promoted ethical business as part of spiritual life. For example:

- Jain scriptures discourage cheating and hoarding.
- Buddhist texts emphasize right livelihood, including honesty in commerce.
- Islamic teachings in medieval India prohibited exploitation and encouraged fairness in transactions (e.g., through the concept of *halal* business).

Such cultural norms supported the moral basis for consumer protection long before formal legal systems were instituted.

4. Colonial Disruptions and Modern Legal Evolution

4.1 Colonial Period

During British rule, indigenous systems of economic regulation were largely dismantled or sidelined. Consumer interests took a back seat to colonial economic priorities. However, some regulatory frameworks like the Indian Contract Act (1872) and Sale of Goods Act (1930) began to lay the groundwork for commercial fairness.

4.2 Post-Independence and Statutory Protection

The first formal consumer protection legislation in India came with the **Consumer Protection Act, 1986**, which recognized six rights of consumers and established quasi-judicial mechanisms for redress. The Consumer Protection Act, 1986 (COPRA) was a progressive piece of legislation for its time. It recognized six fundamental consumer rights as defined by the United Nations and introduced a

three-tier quasi-judicial dispute redressal mechanism. The Act was designed to be simple, accessible, and inexpensive.

Key Provisions of COPRA 1986

- Defined “consumer” broadly to include any person who buys goods or avails services.
- Introduced redressal forums at the district, state, and national levels.
- Recognized unfair trade practices and defective goods/services as grounds for complaints.

Limitations-

- Inadequate regulation of emerging sectors such as telecommunications, e-commerce, and fintech.
- Delay in resolving cases and backlogs in consumer courts.
- Limited punitive powers and poor enforcement mechanisms.

This was replaced by the Consumer Protection Act, 2019, which:

- Introduced stricter provisions for misleading advertisements
- Addressed e-commerce and digital marketing
- Enhanced the powers of consumer courts

This evolution shows a blend of modern legislative structures with age-old principles of fairness and justice in trade.

The Consumer Protection Act, 2019: A New Era

The Consumer Protection Act, 2019 was enacted to overcome the limitations of the 1986 Act and align consumer rights with the needs of a digital economy. The new legislation is comprehensive, technologically aware, and institutionally empowered.

Key Innovations-

- **Central Consumer Protection Authority (CCPA):** A regulatory body with investigative powers and authority to initiate class-action suits and penalize misleading advertisements.
- **E-commerce Regulation:** Inclusion of rules specifically for online platforms, intermediaries, and marketplaces to ensure transparency, grievance redressal, and accountability.
- **Product Liability:** A new chapter that introduces liability of manufacturers, sellers, and service providers for harm caused by defective products or deficient services.
- **Simplified Procedures:** E-filing of complaints, video conferencing for hearings, and the option for mediation at various levels.
- **Unfair Contracts:** Legal recognition of one-sided and exploitative contract terms, particularly relevant for digital platforms and services.

Comparative Legal Analysis

Aspect	COPRA, 1986	CPA, 2019
--------	-------------	-----------

Digital Transactions	Not addressed	Explicitly included
Regulatory Body	Absent	CCPA established
Product Liability	Limited	Detailed provisions
Class Actions	Minimal	Introduced with clarity
Advertising	General references	Specific powers to penalize misleading ads
E-commerce	Not recognized	Dedicated rules and definitions

5. Continuity and Contrast: Ancient Ethics vs. Modern Law

Ancient Norms

Dharma-based ethics
Community guild regulation
Religious and moral imperatives
State's responsibility (Arthashastra)

Modern Legal Provisions

Statutory consumer rights
Consumer commissions and forums
Legal liabilities and penalties
Ministry of Consumer Affairs and regulatory bodies

Although modern consumer law operates through legal mechanisms, its underlying values—transparency, accountability, and consumer welfare—echo India's historical and cultural practices.

6. Challenges and the Way Forward

Despite the rich legacy, modern consumer protection in India faces challenges such as:

- Lack of awareness about rights
- Slow redressal mechanisms
- Limited enforcement in rural areas

To address these, a culturally informed approach, integrating traditional ethics and modern law, may improve compliance and social acceptance of consumer protection mechanisms.

Conclusion-

Consumer protection in India is not merely a modern construct; it is deeply rooted in the cultural and ethical fabric of Indian society. From the principles of Dharma and Arthashastra to present-day laws, the core value remains consistent: fairness and justice for consumers. Recognizing and incorporating these cultural underpinnings can help strengthen the implementation and public acceptance of consumer laws today.

References

1. Kautilya. *Arthashastra*. Translated by R. Shamasastri.
2. Manusmriti. Various editions and translations.
3. Jain, M.P. *Outlines of Indian Legal and Constitutional History*.

4. Sharma, Arvind. *Dharma and Ethics in Ancient India*.
5. The Consumer Protection Act, 1986 and 2019 – Government of India.
6. Ministry of Consumer Affairs, India: www.consumeraffairs.nic.in
7. Sen, Amartya. *The Argumentative Indian*.
8. Government of India. Consumer Protection Act, 2019
9. UN Guidelines for Consumer Protection, United Nations Conference on Trade and Development (UNCTAD)
10. S. Ramesh (2023), “Comparative Study on Consumer Protection Laws in India”, Journal of Legal Subjects



FROM VEDAS TO VIRTUAL REALITY: THE TRAJECTORY OF KNOWLEDGE SYSTEMS IN INDIAN CULTURE

Dr. Amit Kumar Singh

Jawaharlal Nehru University, New Delhi

Introduction

Knowledge, in the Indian civilizational context, has never been confined to mere accumulation of facts. It has always been seen as a sacred pursuit — a bridge between the finite and the infinite. From the earliest Vedic utterances echoing through forest hermitages to immersive VR experiences of ancient Indian heritage showcased in global platforms today, India's knowledge systems have demonstrated a unique adaptability while retaining their essential philosophical grounding¹.

This chapter explores the trajectory of Indian knowledge systems — beginning with the ancient Vedic paradigms, traversing the vibrant scholasticism of the medieval period, and arriving at the digital transformation of the modern era. The objective is not only to provide a historical survey but also to highlight the thematic continuity, cultural synthesis, and dynamic evolution of these systems, with a special focus on Indian scholarly perspectives.

Ancient Knowledge Systems — Philosophy, Logic, and Empirical Inquiry

The foundations of Indian intellectual tradition were laid in the Vedic age (1500–500 BCE), where knowledge was orally transmitted through gurukulas. Here, learning was holistic — encompassing spiritual philosophy, ethics, logic (Nyâya), medicine (Âyurveda), linguistics (Vyākaraṇa), and astronomy (Jyotiḥśāstra). Texts such as the *Rigveda* and *Upanishads* provided profound metaphysical insights, while later works like the *Âryabhaṭa* introduced innovative mathematical concepts, including trigonometry and the decimal system.

The grammar treatise *Aṣṭādhyāyī* by Pāṇini remains one of the most scientific linguistic systems in the world, exhibiting mathematical precision and algorithmic logic centuries before modern computation. Likewise, the *Suśruta Saṁhitā* and *Cāraka Saṁhitā* illustrate India's advanced understanding of anatomy, pharmacology, and surgery in the ancient world.

Medieval Knowledge Systems—Resilience, Vernacularization, and Intercultural Exchange

The medieval period (7th–17th century CE) marked a phase of continuity and transformation. While invasions led to the decline of major institutions like Nalanda, knowledge continued to thrive in temples, monasteries, madrasas, and regional pathshalas. A major trend during this time was the

vernacularization of learning, led by the Bhakti and Sufi movements, which democratized spiritual, ethical, and philosophical knowledge¹⁴.

Remarkably, the Kerala School of Mathematics produced pioneering work on infinite series and early calculus. Mathematician Mâdhava of Sangamagrama predates Newton by over two centuries in some mathematical theories¹⁰. Cross-cultural exchanges also expanded Indian knowledge, especially under the Delhi Sultanate and Mughal Empire. Texts were translated between Sanskrit, Persian, and Arabic, resulting in dynamic mutual influences in astronomy, logic, and medicine.

Modern Knowledge Systems — Colonial Impact and Post-Independence Revitalization

With the onset of British rule in the 18th century, Indian knowledge systems faced a rupture. The Macaulay Minute of 1835 replaced indigenous education with colonial institutions, marginalizing Sanskrit, Persian, and regional literatures. However, this also provoked a resurgence of interest in traditional knowledge, especially among Indian reformers and scientists like Jagadish Chandra Bose, Prafulla Chandra Ray, and Srinivasa Ramanujan¹.

The post-independence period witnessed the establishment of major institutions such as the Indian Institutes of Technology (IITs) and research centers focused on classical texts and Ayurveda. The National Education Policy (NEP) 2020 has taken significant steps to integrate Indian Knowledge Systems (IKS) into higher education.

Virtual Renaissance — Technology, AI, and the Reincarnation of Tradition

In the 21st century, India's ancient epistemes are not only being preserved but also digitally revitalized. AI-powered translation tools are decoding Sanskrit texts; virtual reality (VR) recreates Vedic rituals, ancient architecture, and scholarly traditions in immersive formats¹².

Institutions and startups are now using digital tools to conserve endangered manuscripts, conduct remote instruction in Sanskrit logic, and develop mobile apps for Ayurveda and Jyotiṣāstra. The government has launched platforms such as the Bharatiya Jñāna Paramparā portal, digitizing manuscripts and scholarly resources in various Indian languages.

Thus, “from Vedas to virtual reality” is not merely a poetic metaphor — it represents a continuum where the sacred and the scientific, the ancient and the digital, coexist in harmony.

Thematic Reflections

1. Continuity Amid Change

Despite colonial disruption and modern pressures, Indian knowledge traditions demonstrate continuity. The **guru-śiṣya** model, respect for debate, and a holistic worldview remain central.

2. Pluralism and Synthesis

Indian epistemology has always been pluralistic. From *Advaita Vedānta* to *Buddhist Logic*, from Ayurvedic biology to contemporary integrative medicine, India's knowledge systems encourage synthesis⁸⁻⁹.

3. Global Contributions

The decimal system, concept of zero, surgical methods, and philosophical systems from India have

shaped global knowledge histories. Today, India contributes to global debates on ethical AI, sustainable living, and integrative health models.

Conclusion

The trajectory of Indian knowledge systems reflects a civilization in dialogue with itself and the world. Rooted in a reverence for learning (*vidyâ*), India has managed to evolve from sacred chants to digital simulations without losing its essence.

As India moves forward in the knowledge economy, its civilizational inheritance offers not just historical pride but pragmatic frameworks for interdisciplinary innovation, ethical reasoning, and sustainable living. Indeed, the Indian approach teaches the world that wisdom, not just knowledge, is the true goal of education.

References

- ¹ Bose, D. M., Sen, S. N., & Subbarayappa, B. V. (1971). *A Concise History of Science in India*. Indian National Science Academy. pp. 17–23, 319–327, 611–618.
- ² Chattopadhyaya, D. P. (1986). *History of Science and Technology in Ancient India: The Beginnings*. Firma KLM. pp. 4–21, 47–58.
- ³ Mahadevan, B., Pavana, R. N., & Bhat, V. R. (2022). *Introduction to Indian Knowledge System: Concepts and Applications*. PHI Learning. pp. 1–10, 83–91.
- ⁴ Danino, M. (2010). *The Lost River: On the Trail of the Sarasvati*. Penguin Books. pp. 106–112.
- ⁵ Mookerji, R. (1948). *Ancient Indian Education: Brahmanical and Buddhist*. Motilal Banarsidass. pp. 42–59, 89–95.
- ⁶ Altekar, A. S. (1957). *Education in Ancient India*. Nand Kishore and Bros. pp. 29–33, 61–72.
- ⁷ Ministry of Education, Government of India. (2020). *National Education Policy 2020*. Government Publication. pp. 36–38, 56–57.
- ⁸ Chattopadhyaya, D. P. (1991). *Science and Society in Ancient India*. Research India Publications. pp. 91–102, 137–140.
- ⁹ Sen, S. N. (Ed.). (1988). *Science and Technology in Medieval India*. Institute of Historical Studies. pp. 58–64, 112–117.
- ¹⁰ Roy, R. (2011). *Power Series in the Fifteenth Century Kerala: The Yuktibhâcâ*. Springer. pp. 1–9, 43–47.
- ¹¹ Kapoor, K., & Singh, A. K. (Eds.). (2005). *Indian Knowledge Systems: Concepts and Applications* (Vol. 1). Indian Institute of Advanced Study. pp. 17–34, 101–109.
- ¹² Economic Times. (2023, June 6). *VR Technologies to Showcase Indian Heritage at G20 Summit*. Retrieved from <https://economictimes.indiatimes.com>. pp. 2–3 (PDF version).
- ¹³ Sen, A. (2005). *The Argumentative Indian: Writings on Indian Culture, History and Identity*. Penguin. pp. 3–19, 65–74.
- ¹⁴ Bangha, I. (2000). *Bhakti Poetry in Early Modern North India*. In Pollock, S. (Ed.), *Literary Cultures in History: Reconstructions from South Asia*. University of California Press. pp. 495–519.



RELIGIOUS CONDITIONS IN THE CHALUKYA PERIOD

Dr Anjani Kumari Badarala

Lecturer in History

Hanuman Raju Gunturi

Research Scholar

Abstract

The Chalukya period (6th–12th century CE), encompassing the Early Western Chalukyas of Badami, the Eastern Chalukyas of Vengi, and the Later Western Chalukyas of Kalyani, marks a significant epoch in the religious and cultural history of South India. During this era, religion played a central role not only in shaping individual and collective life but also in influencing architecture, literature, and political administration. The Chalukya rulers, known for their religious tolerance and patronage, supported a wide range of religious traditions, including Shaivism, Vaishnavism, Jainism, and Buddhism.

The early Chalukyas of Badami, especially Pulakeshin II, were devout Shaivites, and many temples dedicated to Shiva were built under their reign. However, Vaishnavism also flourished, as evident in the construction of Vishnu temples and the worship practices described in inscriptions. Jainism found a fertile ground during the Eastern Chalukyas of Vengi, particularly due to the influence of Jain scholars and the migration of Jain communities from Karnataka to Andhra. Buddhism, though in decline during this period, still retained pockets of influence, particularly in Andhra coastal regions.

Religious pluralism was a hallmark of the Chalukya period. Royal patronage extended across sects and schools, and temple-building became a medium of expressing religious devotion and political legitimacy. Temples like the Virupaksha temple at Pattadakal and the Mahakuta group of temples illustrate syncretic styles and theological inclusiveness.

This paper critically examines the inscriptions, architecture, and literary works of the Chalukya era to understand the depth and diversity of religious practices. It aims to explore how the Chalukyas' patronage fostered an environment of religious harmony and artistic excellence, contributing richly to India's spiritual and cultural heritage.

1. Introduction

The Chalukya period (6th–12th century CE) represents a transformative chapter in the religious and cultural evolution of South India. This period, encompassing the Early Western

Chalukyas of Badami, the Eastern Chalukyas of Vengi, and the Later Western Chalukyas of Kalyani, was characterized by political consolidation, artistic renaissance, and religious pluralism. The Chalukyas were instrumental in fostering a climate where multiple religious traditions coexisted, interacted, and flourished. The present study delves into the multifaceted religious dynamics of this era, exploring

how religion influenced not only personal devotion but also public life, artistic expression, and governance. Through a detailed examination of inscriptions, temples, and literary sources, this article seeks to portray the Chalukya legacy in promoting religious harmony and cultural sophistication.

2. Religious Landscape Before the Chalukyas

Prior to Chalukya ascendancy, the Deccan region witnessed a rich tapestry of religious currents. Vedic rituals coexisted with indigenous cults centered around fertility and nature worship. Jainism and Buddhism, especially patronized by the Satavahanas and Ikshvakus, had established monastic institutions and constructed stupas and viharas across Andhra and Karnataka. These earlier religious dynamics laid the ideological and infrastructural foundation that the Chalukyas later built upon, blending continuity with innovation.

3. Shaivism under the Chalukyas

Shaivism emerged as a dominant religious force under the Early Western Chalukyas, especially during the reign of Pulakeshin II, who considered himself a devotee of Lord Shiva. Monumental temples like the Virupaksha and Mallikarjuna at Pattadakal, Mahakuta group of temples, and the cave temples at Badami underscore the centrality of Shiva worship. These structures not only housed intricate sculptures of various Shaiva deities but also served as venues for ritual and community gatherings. The proliferation of linga installations and Shaiva philosophical treatises during this period indicates the theological depth and devotional fervor surrounding Shaivism.

4. Vaishnavism and Its Growth

While Shaivism held primacy, Vaishnavism also received substantial patronage. Temples dedicated to Vishnu, often featuring avatars like Narasimha and Varaha, were constructed at Aihole, Alampur, and other sites. Iconographic innovations, such as the representation of Vishnu in dynamic postures, reflect both artistic maturity and devotional engagement. Several inscriptions mention grants to Vishnu temples, and the presence of Alvars' devotional hymns in Tamil regions suggests a cross-regional influence. The simultaneous growth of Vaishnavism alongside Shaivism demonstrates the Chalukyas' inclusive approach to religious patronage.

5. Jainism and Jain Contribution

Jainism and Jain Contribution Jainism thrived particularly under the Eastern Chalukyas of Vengi. The patronage extended to Jain scholars like Gunabhadra and Adikavi Pampa, who composed seminal literary works in Kannada and Sanskrit, underscoring the synthesis of religious and linguistic traditions. Jain bastis at Pithapuram, Penugonda, and other urban centers became focal points for religious instruction and community life. The migration of Jain communities from Karnataka to the Andhra region not only led to the establishment of new religious centers but also stimulated the local culture through literature, education, and ethical discourses.

6. Residual Buddhist Influence

Although Buddhism had declined significantly in prominence by the Chalukya era, its legacy endured in coastal Andhra and certain inland pockets. Sites like Amaravati, Nagarjunakonda, and

Ghantasala retained Buddhist relics, and some inscriptions mention continued veneration of stupas and chaityas. The Chalukyas, while primarily focused on Hindu and Jain institutions, did not actively suppress Buddhist traditions. Instead, they maintained a general atmosphere of tolerance, which allowed these older traditions to survive, albeit in a diminished capacity.

7. Temple Architecture and Religious Syncretism

The Chalukyan contribution to temple architecture is among the most celebrated in Indian history. Their unique style, which harmonized Nagara (northern) and Dravida (southern) elements, is visible at sites like Aihole, Pattadakal, and Badami. Temples often included shrines for multiple deities, reflecting a spirit of religious syncretism. For example, within the same temple complex, one might find sanctums dedicated to Shiva, Vishnu, and Jain Tirthankaras. The architectural layout, iconography, and inscriptions suggest a deliberate effort to accommodate diverse religious practices within a single sacred geography.

8. Role of Inscriptions and Literature

Epigraphic sources from the Chalukya period provide invaluable insights into religious life. Written primarily in Sanskrit, Kannada, and Telugu, these inscriptions record royal endowments to temples, grants to Brahmins, and support for religious festivals and scholars. They also reveal the political use of religion, as kings aligned themselves with divine figures to legitimize their rule. Literary production flourished, with works such as Pampa Bharata, Vikramarjuna Vijaya, and Vaddaradhane illustrating the integration of religious themes into epic and didactic narratives. These texts played a vital role in disseminating religious ideas and preserving cultural memory.

9. Religious Tolerance and Royal Patronage

One of the most distinctive features of Chalukya rule was their policy of religious tolerance. Unlike regimes that promoted a singular state religion, Chalukya rulers supported a variety of sects. This inclusiveness is evident not only in their temple architecture and inscriptions but also in the diverse backgrounds of the scholars and artisans they patronized.

Land grants were made to Shaiva temples, Vishnu shrines, Jain bastis, and occasionally Buddhist institutions. This fostered a culture of mutual respect, inter-sect dialogue, and peaceful coexistence that contributed to the region's overall stability and prosperity.

Conclusion

The Chalukya period remains a golden chapter in the religious and cultural history of South India. By encouraging religious diversity, patronizing art and literature, and constructing some of the subcontinent's most iconic temples, the Chalukyas laid a durable foundation for India's spiritual and architectural legacy. Their reign exemplifies how political power can be wielded not merely for conquest but also for cultivating cultural richness and religious harmony. The enduring impact of their syncretic vision continues to resonate in the temples, texts, and traditions of the Deccan region today.

References

1. Altekar, A. S. State and Government in Ancient India. Delhi: Motilal Banarsidass, 1958.
2. Yazdani, G. The Early History of the Deccan. Oxford University Press, 1960.
3. Ramesh, K.V. Chalukyas of Vatapi. Delhi: Agam Kala Prakashan, 1984.
4. Sastri, K.A. Nilakanta. A History of South India. Oxford University Press, 1955.
6. Michell, George. The Hindu Temple: An Introduction to Its Meaning and Forms. University of Chicago Press, 1988.
7. Srinivasan, K.R. Temples of South India. National Book Trust, India, 1972.
8. Annual Reports of the Archaeological Survey of India (relevant years).
9. Indian Epigraphical Reports, Government of India.
10. Rao, P.R. History and Culture of Andhra Pradesh. Sterling Publishers, 1993.



DEVELOPMENT OF MINING AND METALLURGY AFTER INDEPENDENCE

Dr. Reena Kumari

Department – History
Jamshedpur, Jharkhand

Abstract

The history of civilization is intricately linked with the use of metals since ancient times. The various ages of early human civilization are often named after the predominant metals used during those periods. The proficiency in metal extraction led to the discovery and utilization of several metals, resulting in significant transformations in human society. These included weapons, tools, ornaments, utensils, etc., which contributed to the enrichment of cultural life. Gold, copper, silver, lead, tin, iron, and mercury are considered the seven classical metals. Although modern metallurgy advanced post-Industrial Revolution, it is noteworthy that many of its concepts have roots in ancient techniques. India has a rich tradition of metallurgical expertise dating back over 7000 years.

Archaeological excavations and literature are the two primary sources for understanding the history of Indian metallurgy. The earliest evidence of metal usage in the Indian subcontinent comes from Mehrgarh in Balochistan, where copper beads dated around 6000 BCE have been found, although they are believed to be made from native copper, not extracted from ore. Spectroscopic studies of copper ore samples from the ancient mines of Khetri in Rajasthan and artifacts from Harappan sites in Haryana, Rajasthan, Gujarat, and Madhya Pradesh suggest that copper metallurgy was known during the Chalcolithic period, and the artifacts were likely produced domestically. The extraction process involved chalcopryite ores from the Aravalli hills. The Archaeological Survey of India has compiled valuable information from copper-plate inscriptions and stone engravings. Harappans also used gold, silver, and their alloy electrum. The demand for metals has driven mineral processing since historical times. Valuable metals like gold, silver, and copper were once found in native forms, embedded in soil. Human development has been especially dependent on metals, with continuous efforts to discover and extract minerals from the earth to meet growing needs.

Introduction

India is rich in a wide array of mineral resources and has favorable geological conditions for various other minerals. The mining and metallurgy sectors directly influence manufacturing, infrastructure, and overall economic growth. Minerals are precious natural resources as they serve as essential raw materials for industries like capital goods and steel. Therefore, a comprehensive national strategy

must incorporate the exploration and management of these **resources**. Any mineral development strategy should consider short-, medium-, and long-term supply-demand projections and final usage. The strategy should also be economically viable, keeping excavation costs and market prices in perspective. Mineral development should focus on import substitution, value addition, and exports. However, a non-grouped, individual approach is required for each mineral. Securing long-term raw material supplies for manufacturing necessitates adequate investment and incentives in mining R&D, especially for technological and energy-critical metals. A nation's socio-economic advancement depends on the rational use of its natural resources. Given that minerals are non-renewable and deplete once consumed, their conservation is crucial for current and future welfare.

Historically, most of India's mineral wealth was exported during British rule. Even post-independence, mineral exports continued, but domestic industrial consumption also surged. As a result, the total value of mineral extraction in India rose from merely Rs. 89.20 crores in 1950–51 to around Rs. 744 billion in 2004–05—an increase of 834 times over 50 years. In terms of category-wise contribution: fuel minerals (coal, petroleum, natural gas, lignite) contributed 77%, metallic minerals 10%, and non-metallic minerals 8%. Metallic ores include iron ore, chromite, manganese, zinc, bauxite, copper ore, and gold ore. Non-metallic minerals include limestone, phosphorite, dolomite, kaolin clay, magnesite, barytes, and gypsum. Geographically, mineral distribution in India is skewed; the western region beyond the Mangalore-Kanpur line is mineral-deficient, whereas eastern regions—including Karnataka, Andhra Pradesh, Odisha, Madhya Pradesh, Chhattisgarh, Jharkhand, Bihar, and West Bengal—have abundant reserves of metallic minerals such as iron, bauxite, and manganese.

Coal remains a major commercial energy source, used as fuel in industries, thermal power plants, and domestic consumption in some regions. It's also a raw material in chemical and fertilizer industries and in the manufacture of countless everyday items. Metallic minerals' gross production value is heavily dominated by ferrous minerals.

Challenges in Mining and Metallurgy

- **Illegal Mining:** Widespread reports of illegal mining in various states arise due to governance failures and lack of regulatory mechanisms.
- **Revenue Loss and Public Trust:** These issues erode trust in regulatory systems, adversely impacting environmental, health, and community well-being, as well as investor confidence.
- **Delays in Approval:** The private sector faces significant delays and inconsistencies in obtaining legal approvals under the current lease allocation system.
- **Center-State Disputes:** States feel they are not adequately compensated under the current lease allocation mechanisms.
- **Environmental Violations:** Several states have been found violating environmental regulations, leading to restrictions on iron ore mining and export.
- **Community Distrust:** There is an atmosphere of mistrust between mining companies and local communities.

Development in Mining and Metallurgy

- Respect for the needs and values of all resource users and incorporating these into government

decisions.

- Conservation and enhancement of environmental and life quality for present and future generations.
- Availability of basic infrastructure for mineral-based industries, such as transport, water, power, and labor.
- Currently, approximately 50,000 local people are employed in mineral-based industries.
- The state governments have authority to determine royalties on minor minerals, which are collected accordingly.
- The state contributes around 20% of the country's iron and aluminum production, 17% of coal, and 12% of dolomite.
- The rapidly expanding industrial sector has immense potential for mineral development.

Legislative Proposals-

- Strengthen Indian Bureau of Mines and State Directorates, as well as regional technical agencies.
- Set up special courts for prompt trials of illegal mining offenses and empower state governments to impose stringent penalties.
- Establish scientific regulatory mechanisms through national and state-level mining authorities.
- Bar convicted offenders from obtaining future mining leases and cancel existing leases in case of violations.
- Encourage registered cooperatives and small-scale miners by enabling them to acquire leases for minor deposits, promoting direct local resource utilization.

Suggestions

- Expedite resolution of cases related to closed mines pending with district collectors to enhance production and employment.
- Simplify the complex procedures under the Environmental Act, especially concerning forest clearance for mining activities.
- Establish mineral-based industries close to resource sites to minimize waste and promote recycling.
- Store extracted minerals in secure facilities rather than leaving them in the open, preserving their inherent qualities.
- Periodically revise and strengthen local panchayats' rights and oversight mechanisms concerning minor minerals.

Conclusion

There is an urgent need for a new legal framework. Merely amending lease allocation procedures is insufficient to address the serious challenges preventing mining from becoming a key driver of economic growth. In addition to reforming lease allocation practices, it is equally essential to attract investment, introduce advanced technologies, and address the concerns of local communities affected by mining activities.

References

1. Khan Sampada – Ministry of Mines, New Delhi
2. Annual Reports – 2010–11, 2011–12, 2012–13, Ministry of Mines, Government of India
3. National Mineral Policy 2008 (<http://mines.nic.in/Writereaddata/Pilelinks188753605-NMP200P.Pdf>), last accessed on December 29, 2014
4. Habashi, F. (2006). *A Short History of Mineral Processing*. Proceedings of the 23rd International Mineral Processing Congress, Istanbul.
5. *Bhartiya Arthvyavastha* – Mishra & Puri
6. *Bhartiya Arthvyavastha* – Rudra Dutt & Sundaram
7. *Indian Economy Since Independence* – Uma Kapila
8. *Eight Lectures on Indian Economy* – T.N. Srinivasan
9. *Journey of Indian Bureau of Mines* – Indian Bureau of Mines, 2012, Nagpur



PRESERVATION AND REVITALIZATION OF ANCIENT LANGUAGES THROUGH ICTs IN INDIA

Nirmal Kumar Nirmohi

Senior Research Fellow
Department of Sociology
Veer Kunwar Singh University, Ara, Bihar-802301
Email Id:- nirmalnirmohijrf2022@gmail.com
Mob:- 8130638789

Prof. (Dr.) Sudhir Kumar Singh

Principal & Head of Department (Sociology)
Rohtas Mahila College, Sasaram,
V.K.S. University,
Ara, Bihar

Abstract

Ancient languages in India refer to the languages spoken in historical times. These languages are key to understanding India's rich history, philosophy and literature. India has a vast collection of ancient texts, manuscripts and oral traditions in languages such as Sanskrit, Pali, Prakrit and various regional dialects. Information and Communication Technology (ICT) tools digitize these texts, makes them accessible online and preserves them for future generations. Digital repositories like the Digital Library of India and institutions like the National Mission for Manuscripts aim to prevent physical deterioration. ICT can be used for creating online communities to teach and learn languages. ICT can empower speakers of oriental languages to create content in their own languages. By encouraging content creators to use their native languages, the scope of these languages grows within the digital world ensuring their relevance. The role of ICT in the preservation of oriental languages in India is increasingly vital. As the world moves toward digital platforms, these technologies have the potential to support the conservation, revitalization, and promotion of the rich linguistic diversity of India, especially the ancient languages.

Keywords:- ICT, Ancient Languages, Preservation, Revitalization, Linguistic Diversity.

The Objectives of the Paper are

- a) To understand the role of ICT in the preservation and dissemination of language
- b) To delineate initiatives of government, civil society and citizen to preserve ancient languages with the help of ICTs in India.

Research Methodology

This paper applies qualitative method. It is based on secondary sources. It has used various sources such as government reports, research journals, articles, newspapers etc. Reports of national and international organizations have also been included.

Introduction

ICT (Information and Communication Technology) refers to the integration of telecommunications (telephone lines and wireless signals), computers as well as necessary enterprise software, middleware, storage and audio-visual systems which enable users to access, store, transmit and manipulate information. Information and Communication Technology (ICT) is a term that encompasses all technologies used to handle telecommunications, broadcast media, intelligent building management systems, audiovisual processing and transmission systems and network-based control and monitoring functions. ICT has become an integral part of our everyday lives playing a vital role in education, business, healthcare, communication and governance. The rapid development and application of ICT have transformed the way individuals, organizations and governments operate. ICT has greatly improved teaching and learning. With the help of computers, projectors and online resources, teachers can create interactive lessons. Students can learn at their own pace using educational websites, apps and videos. Online learning platforms allow students to attend classes from anywhere in the world. ICT also helps in research, assignments and exams making education more flexible and accessible. ICT is a scientific, technological and engineering and management technique used in handling information, its application and association with social, economic and cultural matters.

UNESCO (2007) defines ICT as ‘Forms of technology that are used to transmit, process, store, create, display, share or exchange information by electronic means. This broad definition includes technologies such as radio, television, video, DVD, telephone (both fixed line and mobile phones), satellite systems, computer and network hardware and software as well as the equipment and services associated with these technologies such as videoconferencing, e-mail and blogs.’¹ **OECD (2002)** defines ICT as ‘A diverse set of technological tools and resources used to transmit, store, create, share or exchange information.’² **Cambridge Dictionary** offers a more concise definition of ICT as ‘Abbreviation for Information and Communication Technology for the use of computers and other electronic equipment and systems to collect, store, use and send data electronically.’³

Language is one of the most powerful tools that humans possess. It is more than just a means of communication; it is a system of symbols and rules used to express thoughts, ideas, emotions and information. Language allows individuals to share knowledge, build relationships and create culture. Language can be defined as a structured system of communication consisting of spoken, written or signed words and symbols governed by grammatical rules. It is used by people to communicate with one another and to express their ideas and emotions. Unlike the sounds or signals used by animals, human language is complex, flexible and creative. It can be used to talk about past events, imagine the future or describe abstract ideas.

As per Noam Chomsky ‘A language is a set (finite or infinite) of sentences, each finite in length and constructed out of a finite set of elements.’⁴ Edward Sapir opines that ‘Language is a purely human and non-instinctive method of communicating ideas, emotions, and desires by means of a system of voluntarily produced symbols.’⁵ Ferdinand de Saussure writes “Language is a system of signs that express ideas, and is therefore comparable to a system of writing, the alphabet of deaf-mutes, symbolic rites, polite formulas, military signals, etc.”⁶

Language has several important characteristics. First, it is arbitrary meaning there is no natural connection between a word and its meaning. For example, there is no reason why a tree is called ‘tree’ in English—it could just as easily be called something else in another language. Second, language is productive, which means people can create an infinite number of new sentences and ideas using a limited set of words. Third, language is cultural, passed down from one generation to the next and shaped by social and historical factors. Finally, language is dynamic. It changes over time as new words are invented and old ones fade away. Language is essential for communication. It allows people to understand each other, cooperate and share experiences. Through language, we pass on knowledge, teach others and express creativity. In schools, language is the medium through which education is delivered. In literature, it gives voice to imagination. In government and law, language provides clarity and order. Without language, human society as we know it could not exist.

Ancient languages are those which were once spoken in the past but have no or very few native speakers today, though they may survive in liturgical or scholarly use. An ancient language is a language that was spoken and written in antiquity and is no longer in everyday spoken use as a native language. These languages are often studied through written records, inscriptions and literary texts and they serve as important sources for understanding early civilizations, cultures and linguistic development. An ancient language is one that is attested in historical sources from ancient times and is no longer used as a native language in daily communication. These languages are usually known to us through historical texts, inscriptions or oral traditions and are often studied for their cultural, historical and linguistic value. There is no strict formal criterion for making a language ancient. The conventional demarcation is that ancient languages are those whose earliest attestations or primary usage occurred before this cut-off. Ancient languages are often those that have outlived the communities for whom they were a means of communication. As linguist Roger Woodward notes what distinguishes an ancient language is our awareness that it has outlived those for whom it was an intimate element of the psyche. These languages include those with early written records and significant historical or literary importance such as Sumerian, Akkadian, Ancient Greek, Sanskrit, Latin, Egyptian, Hebrew, Tamil and Chinese among others. Some ancient languages are extinct and no longer spoken as a native language while others have evolved into modern forms or are still used in liturgical or scholarly contexts.

The preservation of ancient language refers to the efforts and practices aimed at safeguarding, maintaining and transmitting ancient languages so they are not lost to time even if they are no longer used in daily communication. Preserving an ancient language involves:-

- **Documenting:** Recording grammar, vocabulary, and usage through dictionaries, texts and audio if possible.
- **Studying:** Teaching and learning the language in academic, cultural or religious contexts.
- **Digitizing:** Using technology to store and make materials accessible (e.g., digital archives).
- **Reviving:** In some cases, trying to reintroduce the language into modern use or ritual practice.
- **Cultural heritage:** Ancient languages carry traditions, stories, values and history of civilizations.
- **Linguistic knowledge:** They help scholars understand the evolution of modern languages.

- **Identity and continuity:** For communities, preserving ancient languages strengthens cultural and spiritual identity.

Sanskrit is preserved through religious texts and academic programs. Latin is used in Catholic liturgy and scientific terminology. Ancient Egyptian is preserved through hieroglyphic studies and Egyptology. India has a rich and diverse linguistic heritage with several ancient languages that have played significant roles in religious, literary and cultural traditions. These languages are foundational to many modern Indian languages and continue to be studied for their historical importance.

Major Ancient Languages of India

Sanskrit is one of the oldest and most significant ancient languages of India. It has Devanagari as the script. Its use includes Sacred texts such as Vedas, Upanishads, classical literature, philosophy and science. As a form of Legacy, it encompasses mother of many modern Indo-Aryan languages like Hindi, Bengali and Marathi. Preservation will include teaching and usage in rituals, classical music and scholarly work.

Pali had the Status of Ancient Middle Indo-Aryan language. It is written in the Script Brahmi originally. Its Use includes Canonical language of Theravada Buddhism (Tipitaka). It is important for Buddhist philosophy, ethics and literature. It is Studied by scholars and Buddhist communities globally. Prakrit is spoken in the areas and group of vernacular Middle Indo-Aryan languages. It is used in Jain scriptures, dramas and poetry. Types Includes Ardhamagadhi, Shauraseni, Marathi and Magadhi. It acts as a Bridge between Vedic Sanskrit and modern languages. It is important for the study of Jainism and early Indian literature.

Tamil is still a living language. Tamil has an ancient classical form. It is written in the Script Tamil-Brahmi, later Tamil script. Its use includes Sangam literature, ancient poetry, ethics (e.g., Thirukkural). It is also recognized as a classical language by the Government of India. Strong literary and cultural continuity remains to this day. Apabhramsha is seen as a bridge to Hindi, Gujarati and other modern languages. It is studied in historical linguistics and literature.

Preservation of Language Through the Use of ICT

Languages are vital vehicles of cultural identity, history and intellectual heritage. However, globalization, migration and the dominance of a few global languages have led to the rapid decline and extinction of many indigenous and minority languages. According to UNESCO, nearly half of the world's 7,000 languages are at risk of disappearing. In this context, Information and Communication Technology (ICT) emerges as a powerful tool for the preservation, documentation and revitalization of endangered languages.

ICT tools play a pivotal role in documenting languages in both written and oral forms. Linguists and researchers now use audio recorders, video cameras and digital archiving platforms to capture the phonetics, vocabulary, grammar and usage of endangered languages. These digital records are then stored in accessible databases such as the Endangered Languages Project or the Rosetta Project ensuring that linguistic data is preserved for future generations and scholarly research. One of the most effective ways to preserve a language is to promote its use among younger generations. ICT facilitates this through mobile applications, online dictionaries, e-learning platforms and interactive

games that teach language skills in engaging ways. Applications like Duolingo and Memrise have introduced lesser-known languages, while community-driven apps often focus on indigenous tongues. These tools provide learners with convenient and flexible access to language resources regardless of their geographical location.

Social media platforms offer spaces where users can communicate in their native languages fostering daily use and visibility. Platforms like Facebook, Twitter and WhatsApp have been localized into various languages, encouraging users to engage in their mother tongues. Furthermore, user-generated content on YouTube, blogs, vlogs and podcasts allows speakers to share stories, songs and cultural practices in their native languages thus creating digital communities around linguistic identity.

Technological advancements in artificial intelligence and machine learning are also contributing to language preservation. AI is used for automatic translation, speech recognition and language modelling of underrepresented languages. Virtual archives like the Living Tongues Institute and Language Archives provide multimedia content, linguistic maps and searchable corpora. These initiatives not only preserve linguistic materials but also make them widely available to scholars, educators and native speakers.

Key ICT-Based Efforts in India for Ancient Language Preservation

India is one of the most linguistically diverse countries in the world, home to 22 officially recognized languages and over 1,600 mother tongues as reported in the Census of India. While this diversity is a source of cultural richness, it also presents a significant challenge. Many of India's lesser-known and indigenous languages are under threat of extinction due to globalization, urbanization and the dominance of major regional and international languages. In response to this challenge, Information and Communication Technology (ICT) has emerged as a powerful tool in the preservation and revitalization of India's endangered languages. Institutions like the 'Sahitya Akademi', 'Central Institute of Classical Tamil and Sanskrit universities' help preserve and promote these languages. Government and academic bodies are digitizing manuscripts and ancient texts. India recognizes six classical languages, four of which (Sanskrit, Tamil, Kannada and Telugu) have ancient roots.

One of the primary applications of ICT in India is digital documentation. Government bodies, academic institutions and non-governmental organizations have been using digital tools to record and archive the speech, texts and cultural expressions of lesser-known languages. For example, the People's Linguistic Survey of India (PLSI) led by linguist Ganesh Devy has digitally documented hundreds of Indian languages creating a vast resource for future researchers and language communities. Similarly, the Bhasha Research and Publication Centre has made significant use of digital archiving to preserve tribal and minority languages across different states. In addition to documentation, ICT supports language learning and dissemination through mobile applications and web platforms. For instance, apps like IIT Madras's 'Vernacular' and Google's Bolo app (now integrated into Read Along) offer reading and learning assistance in regional languages such as Hindi, Bengali, Marathi, Tamil and others. These apps use text-to-speech and speech recognition technologies to help children learn to read and pronounce words in their native languages. Such initiatives play a vital role in early education and intergenerational language transmission.

In 2020, the Government of India launched the **Bhashini** initiative, under the National Language Translation Mission, aiming to build an open-source language translation platform supporting all 22

official languages and more. Through this initiative, ICT tools are being harnessed to create multilingual datasets, translation models and voice interfaces, which are expected to empower native speakers and preserve linguistic diversity on a national scale. Despite these advancements, challenges remain. Many endangered languages in India lack standardized scripts, trained personnel and financial support for technological integration. Internet access in remote areas is still limited and there is often a lack of digital literacy among speakers of endangered languages. Nevertheless, with continued investment and community involvement, ICT has the potential to significantly transform the landscape of language preservation in India.

Digital Sanskrit Libraries come under The project called **Digital Library of India (DLI)** and Sanskrit Library Project. Its goal is to digitize and make Sanskrit texts accessible online. Thousands of manuscripts and books available in searchable formats here. **Bharatavani** Portal was Launched by Ministry of Education, Govt. of India. The purpose is a multilingual knowledge portal with resources in and about Indian languages. It contains E-books, dictionaries, glossaries and audio/video material in Sanskrit, Tamil, Pali and more. **National Mission for Manuscripts (NMM)** was Launched by Ministry of Culture. Its focus is documenting and digitizing ancient manuscripts in Sanskrit, Pali, Prakrit, Tamil and other classical languages. It also has Manuscript Resource Centers, Digitization and conservation training and Online manuscript catalogue. **e-Gyankosh** is a Digital repository by IGNOU, includes courses and lectures in classical languages. **SWAYAM** is a National MOOC platform with online Sanskrit and Pali courses.

Mobile Apps and Language Tools like ‘Learn Sanskrit App’ (Android/iOS), Sanskrit Dictionary apps, Unicode tools for typing ancient scripts are utilized to encourage everyday use and learning of ancient languages using mobile technology. Virtual Museums and Archives are organized. Institutions like CDAC (Centre for Development of Advanced Computing) and IITs are developing OCR (Optical Character Recognition) tools for Sanskrit and Tamil manuscripts and Natural Language Processing (NLP) tools for preservation of ancient Indian languages.

Suggestions

Despite the benefits, the use of ICT in language preservation faces challenges such as digital divides, lack of funding and limited technical expertise in some communities. There is also a need for culturally sensitive approaches that respect the intellectual property and consent of language communities. For ICT to be effective, Initiatives must be community-led and tailored to the unique linguistic and cultural contexts of the target population.

Conclusion

ICT has opened new horizons for the preservation and revitalization of endangered languages. Through documentation, education, communication and innovation; technology provides dynamic and sustainable ways to safeguard linguistic diversity. However, the success of such efforts relies heavily on inclusive collaboration among linguists, technologists, governments and local communities. As stewards of the world’s linguistic heritage, we must embrace the potential of ICT to ensure that no language is left behind in the digital age. Indian government has implemented policies for preservation of the ancient languages with the help of ICTs such as NEP2020, SPPEL etc. Impact of ICT on Language Preservation include Wider accessibility across geographies, Youth engagement through

tech-friendly platforms, Better documentation and Research opportunities and Support for revival efforts in academic and cultural settings.

References

- 1) UNESCO. (2007). *ICT in Education*. United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization.
- 2) OECD. (2002). *Measuring the Information Economy*. Retrieved from oecd.org
- 3) Cambridge Dictionary. Retrieved from dictionary.cambridge.org
- 4) Chomsky, N. (1957). *Syntactic Structures*. The Hague: Mouton.
- 5) Sapir, E. (1921). *Language: An Introduction to the Study of Speech*. New York: Harcourt, Brace and Company.
- 6) Saussure, F. de. (1916). *Course in General Linguistics* (trans. Wade Baskin, 1959). New York: Philosophical Library.
- 7) UNESCO. (2018). *Revitalizing Endangered Languages: A Practical Guide*.
- 8) Grenoble, L. A., & Whaley, L. J. (2006). *Saving Languages: An Introduction to Language Revitalization*.
- 9) Living Tongues Institute: livingtongues.org
- 10) Mozilla Common Voice: voice.mozilla.org
- 11) Campbell, G. L. (1991). *Compendium of the World's Languages*. Routledge.
- 12) Campbell, Lyle (2013). *Historical Linguistics: An Introduction*. Edinburgh University Press
- 13) People's Linguistic Survey of India (PLSI). <https://bhasharesearch.org>
- 14) Digital Dictionaries of South Asia (DDSA). <https://dsal.uchicago.edu/dictionaries>
- 15) Ministry of Electronics & IT, Government of India. (2022). *Bhashini – National Language Translation Mission*. <https://www.bhashini.gov.in>
- 16) UNESCO. (2007). *ICT in Education*. Retrieved from unesco.org
- 17) www.sanskritlibrary.org
- 18) www.bharatavani.in



BUDDHIST ECOLOGICAL MOVEMENT IN THAILAND

Shubham Yadav

Research Scholar

Department of Western History

University of Lucknow.

Abstract

The various measures and practices of Buddhism and Buddhist monks to conserve ecology and environment are the main subject of this article. One of the primary objectives of Buddhism is to reduce suffering, even if it is caused by the damage to nature and environment. This article describes how poor environmental conditions in Thailand have affected the quality of life of rural residents and what measures a small group of Theravada Buddhist monks have taken to improve it. Nature and economy are interconnected and an integral part of each other, not just in Thailand. The issue focuses on what concept of sustainable living should be maintained. Government efforts to remove farmers from national forest reserve lands either for the sake of conservation or commercial exploitation of profitable forests have affected the living standards of rural population. Apart from maintaining the relevance and importance of religion in a world changing due to industry and modernity, ecology monks work to raise environmental consciousness among the local population and Thai people through their religious activities. He emphasizes a religious approach on how we can protect the ecology and environment through various measures and actions.

Keywords-Buddhism, Theravada Buddhism, ritual, Thailand, environmentalism, industrialization, modernization.

Introduction

To highlight the sensitive and important regional and global issues of ecological degradation and deforestation, the Buddhist ecology movement is gaining popularity among the masses through Buddhist monks, not only in Thailand but also in other Buddhist countries. Buddhists who support this movement believe that their religion is very useful for disseminating ethical and useful principles for ecological conservation to the masses. This article focuses on the practical application and activities of Buddhism and ecology by Buddhists, especially monks. The place of Buddhism in Thai culture is being re-examined as it is being used to support social activism and conservation. Looking at how rituals such as planting trees strengthen the movement and give it moral, social, political and economic strength.

According to Buddhism, "Ecology monks are those who actively participate in environmental and

conservation efforts and who address the suffering that results from environmental degradation.” Buddhism emphasizes the elimination of suffering, which is primarily caused by ignorance, greed and hatred. Monks believe that humans, driven by greed and development, industrialization and consumerism, are ultimately responsible for the destruction of forests, air and water pollution and other environmental crises. They believe they have an obligation as monks to combat these injustices.

Support for environmental ethics in Buddhism and the fundamental ideas of environmental ethics within the religion have been a major topic of scholarly discussion. Buddhism promotes ecology, drawn from sources such as the Pali Canon. Other research has focused on forest monks in Thailand and Sri Lanka, who value the forest and the Sangha (monastic life), but do not engage in direct environmental action.

A few studies look at the connection between Buddhist ethics and ecological ideas. For instance, they consider how Buddhist ideas about life protection in general encourage the preservation of plants and animals on temple grounds. These studies have largely overlooked the conscious efforts of Buddhists to actively engage in addressing the environmental crisis beyond the intrinsic connection between Buddhist teachings and nature, despite the importance of comprehending the scriptural basis of ecology and how everyday practice aligns with conservation. The reaction of a small group of Theravada Buddhist monks to Thailand’s catastrophic environmental catastrophe and its effects on rural populations are examined in this essay.

The environmental and political circumstances

Notwithstanding assertions that Buddhism has been “co-opted to argue the case for a more environmentally friendly approach to development,” it is impossible to overlook Thailand’s terrible environmental circumstances and how they relate to growth. The monks’ efforts to alleviate the negative effects of environmental deterioration on rural dwellers’ quality of life will be illustrated in the parts that follow. Along with other environmental difficulties like the rapid deforestation, political issues also include access to and control over natural resources, particularly land, forests, and water. Deforestation is the main focus of this piece because it is important to the rural people with whom the monks contact, but it is only one facet of a complicated environmental situation in a country that is changing quickly economically.

Except for Nepal and probably Borneo, Thailand has the fastest rate of deforestation in Asia. According to official statistics from the Royal Forest Department (RFD), 53% of the country was covered by forests in 1961, when the current push for economic expansion really started going. This percentage fell to between 25 and 29 percent by 1986. According to estimates from non-governmental organisations (NGOs), the current rate is as low as 15%. These numbers show a decline from 1913’s about 75% forest cover.

The definition of the forest is mostly to blame for the discrepancies between the official numbers and the NGO estimations. Even though a significant amount of the forest reserve has been removed, the RFD still encompasses those lands. They also contain productive and profitable forested areas, such eucalyptus forests and monoculture crops. These places are rarely designated as woods by environmental NGOs. Even those that still have forest cover (often secondary forest) are typically occupied by small-scale farmers who either relocated there in quest of land or already there when the government declared the area as forest reserve property. This is the issue with forest reserve

lands. Despite the fact that they rely on the land for their livelihood, these people have no legal claim to it.

Thailand's economic and natural environment are interwoven. The preservation of land and resource access, along with sustainable livelihoods, are the most pressing concerns. Whose idea of what constitutes a sustainable lifestyle should be maintained is the primary source of conflict.

From rural poverty to Bangkok's economic growth and consumerism, deforestation has a wide range of underlying political and economic causes. They consist of commercial logging. The impoverished gather wood to produce charcoal in remote places. In order to participate in the market economy, rural communities were urged to clear more forest, which enhanced the production of cash crops at the expense of natural forests. The building of roads to improve access to the forests and reduce the number of hiding spots for the Communists led to deforestation during the Communist insurgency that occurred in isolated forest areas prior to 1980. The land-seeking farmers quickly overran the protected woodlands. Over the past century, this building process has connected Bangkok with the country's outlying provinces, expanding access to formerly unreachable locations. Because the forests (Paa and Theuan) were traditionally viewed as wild or untamed and available to the general populace as common land to be brought into civilisation and productivity, cultural viewpoints also encouraged destruction. Deforestation and rural people's assimilation into the political mainstream were both impacted by these issues. The quality of life of the rural populace is impacted by both environmental deterioration and governmental policy constraints, particularly the government's efforts to force farmers off national forest reserve lands in favour of either conservation or the commercial exploitation of profitable forests. In the name of their religious obligation and practice, some monks have been motivated to behave appropriately by these concerns.

Ecological monks

The Buddhist ecology movement in Thailand is centered and based on self-proclaimed ecology monks, or phranaknuraksa. Some of these environmental activists also focus on protecting dwindling forests, watersheds, and wildlife. Rather than studying the canon, their efforts promote a reexamination of scriptures within the framework of environmentalism, which serves as a key factor in conservation. By examining how ecology monks' plans relate to Buddhism, their reinterpretation of religious concepts, the role of the Sangha, and the functions of Buddhist rituals in this process, we can gain a better understanding of the current ecology movement in Thailand and other Buddhist countries.

Due to the growing number of environmentalists and those highlighting these issues in the country, the number of monks involved in Thailand's ecology movement has increased, but it is still very small. Given their respect in Thai society, it is quite likely that the Sangha will participate in environmental campaigns. An example of this is the 1991 investigation of the ecology project carried out in Nan Province in northern Thailand. Under the direction of a Buddhist monk, the project aimed to create a protected forest by sanctifying the largest tree remaining in the forest. To further their cause, eco-monks across Thailand are reinterpreting Buddhism and changing Buddhist ceremonies, as the tree consecration reflects. Their main aim is to raise environmental awareness among the local population and Thai people in general, as well as to maintain the relevance of the religion in a world that is rapidly moving towards modernization and industrialization.

The monks who study ecology represent several sections of the Thai Sangha. Some of them are

based in urban temples and provide scholarly analysis and biblical basis for the movement, but they do not actively participate. Most activist monks come from rural areas, where environmental problems are most prevalent. They belong to the Mahanikai and Thammayut sects. A few who are positioned in the Sangha hierarchy, like PhraPhothirangsri in the province of Chiang Mai, are inspected and condemned more than monks who are less well-known. Few of the environmental monks are members of the more conservative severe break-away sects, such as the Santi Asoke or Thammakaay movements, which offer an alternative to the Sangha's traditional practices. It is impossible to overlook the political aspect of the issues, even though the majority of monks attempt to steer clear of overtly political remarks. Most regional and even national environmental NGOs, one of the main centres of political resistance in contemporary Thai society, provide support or other forms of assistance to monks.

Environmental monks, who see their role as Buddhist monks as encouraging human responsibility for the natural environment, were born from development monks. They profess a branch of faith that highlights the connection between Buddha and nature. Despite the fact that many of these monks work alone on conservation initiatives, they share knowledge and expertise, participate in local and national training programs, and keep track of the work of other monks. Monks have formed cooperatives to work on environmental projects. The monks' teachings and conservation work have influenced the way Thai culture views Buddhism and the way it is practiced. Their actions have attracted significant media attention, raising public awareness of the nation's environmental duties.

Many eco-monks have faced criticism from the government, developers, and more conservative sangha members for engaging in political activities and problems that are deemed unsuitable for Buddhist monks, such as opposing the building of hydroelectric dams. In contrast to monks in Burma, Sri Lanka, Tibet, and Vietnam, who seldom ever express political opinions or challenge the government, the Thai Sangha has a conservative past. The activity of the development monks, particularly the ecological monks, has called into question Thailand's increasing industrialisation and consumerism as well as some of the government's development policies. Many of their detractors, many of whom stand to gain from Thailand's present course of growth, believe the Sangha should stay out of politics and the economy and just pursue spiritual endeavours. The Sangha hierarchy is among many who worry that such potentially divisive actions could impair the Sangha's capacity to offer moral direction to the broader population.

The environmental monks contend that it is their obligation as Buddhists and as monks to do so, regardless of how others react to them. Buddhist ecologists emphasise how they relate to the Buddha's teachings on nature, the core tenets of Buddhism, and his counsel to end suffering in the world. Buddhism is practiced by these ecologists. They contend that their movement converts the core concepts of Buddhism into language that is relevant to contemporary society, as opposed to promoting a completely new school of Buddhism. They interpret this as a shift towards "radical conservatism," which goes back to the Buddha's primary teachings and applies them to modern circumstances. Promoting ecological consciousness beyond national and sectarian boundaries is the goal of this movement, which is not just in Thailand. It is a part of the Buddhist movement worldwide. Becoming sensitive and aware of ecology and the environment, and raising awareness among the laity, has long been a priority for monks in Thailand. The Buddhist ecology movement has only

recently come together as a coherent, well-organized force. The movement's organizing strength and growing cooperation and communication among monks across the country have increased public awareness of it, support for its strategies, and the legitimacy of the monks' actions. The activities of Phrakrupitak Nanthakhun of Nan Province, the monk in charge of the related tree ordination, serve as an example.

Historical context

Living in a rural mountain village affected by deforestation, cash cropping, and consumerism inspired Phrakhru Pitak to promote tree planting and other environmental activities. After being ordained in the mid-1970s, Phrakhru Pitak became concerned about rampant logging by large corporations, the cutting down of watersheds by northern Thai farmers to grow maize, and the resulting damage to his village. In order to cultivate maize as a secondary source of income, residents had to continually clear the forest. Additionally, maize itself degraded and ruined the soil, requiring more logging for agricultural land. Severe drought and lack of work caused adults to migrate from his district to Bangkok, leaving the district vulnerable to extreme drought and poverty. The monk spoke about ecological conservation for years, emphasizing how the natural and social environments are interdependent and how humans have a duty to one another.

Phrakhru Pitak preached, yet the destruction continued. Villagers would come to him to listen to his sermons and perform virtue-based acts to clean up the area before leaving for their homes. People were either too disorganized or too fearful of retribution, so they did not resist the deforestation companies. They did nothing, knowing that their actions, their regeneration, poverty, and environmental disaster were all interconnected. Phrakhru Pitak met Phrakhru Manas in the early 1990s, a monk from Phayao Province who is known for performing the first symbolic consecration of a tree to raise people's awareness of environmental responsibility. In June 1990, Phrakhru Pitak funded a tree consecration in his hometown's community forest to promote environmental awareness instead. He held a second ceremony two years later in July 1991 to sanctify the forest that surrounded ten additional settlements.

The monk's projects, which included educating villagers about environmental issues for several months, teaching young temporary novices about the natural environment, advocating for alternatives to growing maize as a cash crop, and establishing a youth center for protected community forests, were far more extensive than these ceremonies. To protect the forest, Phrakhrupitak supported self-reliant development initiatives, such as integrated agriculture, which emphasized planting for sustenance rather than for sale. Economic alternatives had to be made to guarantee people's cooperation in protecting the forest since it provided a large portion of their income. To maintain support for the programs, local committees were also established to protect the forests, prevent encroachment on sacred areas, and assist ongoing ecological projects.

The tree consecration was the focus of the Phrakhrupitak's conservation initiative. The event inspired emotional and spiritual dedication, it also inspired discussions with villagers before the consecration and the conservation initiatives they planned. Buddhist symbols were widely used during the event to emphasize the ethical basis of conservation.

Tree consecration ceremony

Many members of the Buddhist ecology movement hold tree consecration ceremonies, or *buatonemai*,

to inspire spiritual commitment to protecting Thailand's forests and watersheds and to raise villagers' awareness of the country's rapid environmental destruction. Mass consecrations have been held in an effort to mobilize the public and raise awareness. It is also an attempt to make the government aware of how some of its ambitions for economic expansion will affect the environment. (In March 1991, more than fifty monks and laymen traveled to a national park in the southern province of Surat Thani and wrapped monks' robes around every large tree in the rainforest that was at risk of being destroyed due to dam construction.) By participating in tree consecration ceremonies, which are mainly held at the local level, villagers demonstrate their support for Buddhist ceremonies to sanctify and protect the forest. The monks' rules restrict how they may use the forest, by prohibiting the removal of any tree or the intentional killing of any animal.

In July 1991, Phrakrupitak Nanthakhun sponsored a tree-planting event in Nan Province, northern Thailand. The tree planting was the result of one aspect of a larger conservation effort, but the actual ceremony lasted a day and a half. More than twenty monks from Nan and other northern provinces were invited by Phrakrupitak to help with the ritual. Phrakrupitak consulted and involved members of the province's Sangha organization, particularly the senior monk in each of the three subdistricts of the ten participating villages, the district officer, and other local bureaucrats, to secure the support of the Sangha hierarchy and local government for the project's success. The ceremony was attended by many representatives of the local government and Sangha leadership. Phrakrupitak's contribution to convincing the government and Sangha hierarchy of the project's importance is significant because most of the socially active monks undertake independent and sometimes controversial work. The evening before the ceremony, slides were shown to the villagers by Wildlife Fund Thailand, a branch of the World Wildlife Fund. They gave greater legitimacy to the work of the Phrakhrupitak and brought the effort to a national level. One of the largest environmental NGOs in Thailand, the WFT enjoys royal patronage. The monks' effectiveness depends on their cooperation, but this also presents political problems as many NGOs are critical of government policy.

The distribution of forest robes, a traditional practice known as *thoutphapa*, was a modified version of the ceremony's morning ritual. Traditionally, Thai laypeople provided robes, cash, and other necessities to monks for their religious merits. The money collected helps maintain the monks and the temple. Since the 1980s, the practice has become widespread across the country as a means of raising funds for regional development initiatives. Monks award merits to individuals who make offerings, and they allow laypeople to start local credit unions or village cooperative stores. Because of the religious implications of the funding source, laypeople are usually more committed to such initiatives; they benefit from the first donation given during the *phapa* rite as well as from supporting a development project approved by the monks.

The event took on a new dimension thanks to the Phrakhrupitak. About 12,000 saplings were donated to the monks by some affluent clients and several nurseries close to the provincial seat. Many more developments took place besides the donation of saplings. Three groups of villagers representing three sub-districts of the ten participating villages displayed gifts. They did not dance, drink alcohol, or play the traditional music that is usually associated with the *Phapah* procession, but they did carry model trees along with small offerings of money and supplies. Instead, all three groups presented a prepared play summarizing their recommendations for protecting the forest. Two were simple; for example, one group imitated the action of planting a sapling. Of the three, the political critique was the most dramatic. All conservation initiatives are inspired by political discussion surrounding forest

conservation and business interests engaged in forest destruction. However, such open discussion on these topics is rare, especially in a Buddhist ceremony. All three performances highlighted the importance of villagers protecting the forest.

The plants were sanctified and merit was given to donors and participants when the Phrakripitaka formally accepted the forest robes and the highest-ranking monk present received the saplings. Some were planted on temple grounds and in tree planting sites. Most were given to residents to plant in areas that had been cleared. These trees were fruit-bearing and other attractive species that did not need to be felled, chosen according to the model set by the phapa rituals held for growth and to raise wealth. They were further protected by the fact that the monks presented and blessed them, since peasants viewed cutting them down as a religious shame (bap).

After the tree planting ceremony at the temple, the participants travelled five kilometres through hilly terrain to the tree to be blessed. The site had already been prepared by villagers and volunteer workers, and more than 200 individuals and over 20 monks attended. At the foot of the huge tree was a four-foot-high Buddha statue supported by concrete. The site had been cleared of dense vegetation, and a tent had been erected for the monks. According to Phrakhrupitak, the tree was not very big or tall when he travelled eight kilometres through the dense forest from his village to the school more than 20 years ago. Being the tallest tree, it was now easily recognisable. It was surrounded by kilometres of forest and hills filled with cornfields.

It is important to note that the monks did not pretend to ordain the tree during the event. This is because only individuals are given this position. The ritual was meant to remind people that nature must be respected and treated with the same respect as people so that it can be preserved for future generations. The ordainment provided an opportunity to strengthen spiritual ties to forest conservation and to activate the importance of conservation. The relationship between the environment and the Buddha, as well as the relationship between rural life and forest conditions, were major themes of Phrakhrupitaka's speech during the event.

During the ritual two monks wrapped orange robes around the tree trunk to sanctify it, which occurred at the same time as a new monk receiving robes. The robes served as a reminder that it is inappropriate to harm or destroy trees or any other forest element. The sacred cloth was also wrapped around Bodhi trees, the tree under which the Buddha attained enlightenment. In these instances, the tree was already revered; the cloth honored the tree rather than sanctified it. The new aspect of this event was how the ritual gave the trees a status that was not previously accorded to them.

The ceremony involved sanctifying the water in the monks' alms bowl, as is done for initiation. The monks chanted, a small picture of the Buddha was placed in the bowl and candle wax dripped into the water. It is customary to sprinkle this holy water (nammon) on those present, to bless them. People are extremely careful to get a few drops of the monk's water, as it is considered an extremely powerful element. This time the Phrakhrupitaka made a special use of holy water. To show their dedication to protecting the forest, ten headmen from ten villages drank a little of the water in front of the huge Buddha statue. An innovation that gave environmentalism a moral basis was the use of a religious symbol to support such an oath. In the end, it affected one's rebirth or even the quality of life during this lifetime, turning preserving or destroying the forest into a karmic deed. Good merit (bun) would be awarded for preserving the forest, while negative merit (bun) would be awarded for

destroying it. It also depended on the villagers' faith in the holy water's magical abilities; breaking the headmen's vow was implied to be an act of defiance of the authority gained via its use, even though there were no explicit repercussions.

The plaque that was affixed to the tree before the ordination-the one that, by itself, poses the most challenges or is subject to the widest range of possible interpretations-may be the most educational feature of the occasion. The location and content of the sign were not explicitly mentioned, and there was minimal fuss throughout the procedure. Presenting it to Thais, however, always generates the most interest and conversation. The sign reads, "To destroy the forest is to destroy life," or simply, "To destroy the forest is to destroy life." It is troublesome since the term "chaat" (life) has many ambiguous connotations that are all connected in some way to the conservation issue. "Chaat" can refer to a country, birth, or life. (In addition to rebirth). The country, a person's rebirth, or life itself are all destroyed when the forest is destroyed.

From the perspective of environmentalists, whose concerns do not usually have religious or nationalist connotations, the first sense is most apparent. However, it reflects the Buddhist belief that all beings should be respected and protected, since any being could at some point be a person's mother. The second interpretation invokes the idea of karma and refers to harming one's rebirth. It suggests that cutting down the forest is a sin that will have a detrimental effect on one's subsequent rebirth. The third and most complex approach is to eradicate the nation. It arouses nationalistic feelings by drawing comparisons between the state of the state and the state of the jungle. It uses three ideas that are the pillars of Thai identity: nation (chat), monarchy (mahakaset), and religion (satsana). This interpretation is also not quite clear. By doing this, the country is urged to uphold its moral obligation to preserve the forest and to win over the villages' allegiance to the king and the country. It is unlikely that this suggested meaning was added by accident, considering the political implications of the conservation issue.

The word "chaat" used in the sign communicates the importance and profundity of the tree ordination. Religious ideas are being reframed to support environmentalism, which is ethically connected to local, state, and federal political and economic concerns. PhrakhruPitak went above and beyond his customary responsibilities as the moral and spiritual leader of the lay villagers during the ordination and the greater project of which it was a part in order to embrace an activism that demanded political participation. Every project that ecology monks oversee repeats the same kind of role extension, from tree ordinations and the creation of sacred communal forests to tree-planting ceremonies, exorcisms, and long-life rites at regions at risk from ecological calamity.

Environmental ethics

Politics and other contemporary problems are not intended to interest monks. However, the ecological monks believe that environmental destruction is a major contributing factor to their primary issue, which is human misery. Politics and other contemporary problems are not intended to interest monks. However, ecology monks believe that environmental destruction is a major contributing factor to their primary issue, which is human suffering. As monks, they believe it is their duty to help people overcome their suffering and to draw attention to environmental issues. According to Buddhist doctrine, ignorance, greed, and hatred are the main reasons people suffer. These ills, such as people's greedy pursuit of financial wealth or the careless exploitation of natural resources to satisfy ascetic

needs, are destroying the forest. They believe it is their responsibility to modernise old religious beliefs and rituals in order to win the villagers' support and dedication to their ecological goals.

Before Thailand's fast industrialisation, which became a national goal during World War II, environmental devastation was not a significant problem in the country. Nevertheless, despite the early efforts of environmental NGOs like Wildlife Fund Thailand and the Project for Ecological Recovery, awareness of the need to protect nature did not grow until the 1980s. The movement has progressed to a new level since the ecological monks noticed the problem in the late 1980s. The conflict between developers and environmentalists has been elevated to a moral level and is no longer only a political or economic one. The monk is concerned about the suffering that humans and animals suffer as a result of the destruction of forests and water bodies. The monks are interpreting the texts to support their activities since it is a moral matter. To include lay peasants in the campaign, they are also modifying customary symbols and rituals.

The Ecology monks must reconcile their new role as social activists with their long-standing duties as spiritual leaders. In an effort to refute the assertion that their environmental activities are unsuitable for monks, they are purposefully utilising the former to support and even defend them. Traditional religious ideas, therefore, are closely linked to symbols and moral discussions of political and economic issues. Even though certain events, like tree ordinations, mainly target local communities, the creative utilisation of traditional rites, like as the procession and skits that follow the phaapaattonnema ceremony, raises the problem on a national political level. with the use of phrases like "chaat." The monks' concerns about forestry and conservation challenge the authority and duty of the federal, state, and local governments.

In the same way, religion is changing and even coming under scrutiny. Due to growing government participation in lay life through schools, better healthcare, development projects, and other areas, Buddhism in Thailand has lost some of its relevance in day-to-day living over the past century. The Buddhist ecological movement is preventing Buddhism from relegating itself to a supporting role in Thai society by making the job of development its paradigm. It urges the Thai people and the Sangha to reevaluate their duties and refrain from complacency or merely carrying out rituals that don't directly lessen suffering in day-to-day existence. Buddhists are compelled to consider the causes of people's suffering, even if they are divisive or controversial. The goal of activist monks is to alleviate suffering and maintain the importance of the Dharma in society, but this has also raised concerns and a need to re-examine the Dharma's own purpose.

Traditional Buddhist practices like ordinations and the phaapaa ceremony, as well as the use of potent religious imagery like holy water, monks' robes, and the implication of words like "chaat" in the plaque on the ordained tree in Nan Province, are used to both uphold and challenge traditional religious beliefs and practices in Thailand. The environmental monks are reacting to what they believe to be threats to their social standing or unavoidable changes in it. They are working through social relations between the Sangha and local people, as well as classic Buddhist ideas such as merit-making and karmic retribution. As a result, their position is also an attempt to practice the aims of Dharma and theology, and to establish a relationship between the state and Dharma. (and its followers) are all evolving. The case of the plantation in Nan exemplifies the relevant social, political and economic challenges, as well as the scale at which the biggest and most important changes are taking place.

Buddhist engagement with environmental concerns

Buddhism's primary objective is to alleviate suffering, or dukkha or pall as it is termed in Buddhism. The concept of dukkha is "suffering misery; woe; pain; sickness; sorrow: trouble". According to the prominent Thai academic monk, these include unease, discontent, a troublesome circumstance, tension, and conflict. The cornerstone of Buddhist theology is the Four Noble Truths: there is suffering, there is a cause of suffering, and there is an end to it. The Eightfold Path is the path that leads to the cessation or end of suffering. The philosophical idea includes connection to a sense of self as well as mental and bodily distress. Philosophical and socially active forms of Buddhism view suffering differently and take different tacks in minimising it. Suffering has long been seen in Buddhism as a philosophical, spiritual, and metaphysical social interaction state. Adversity in the political, social, and economic spheres is also included by Buddhists. To end suffering in the present, activist Buddhists have focused on social and political concerns that affect people's lives, especially those who have a bleak impact on society. In addition, there is the philosophical eradication of suffering (also known as wibbana, pall, or illumination). For them, being a Buddhist means fighting for social justice. ThichNhatHanh is credited with coining the phrase "engaged Buddhism". He used Buddhist teachings for social justice and peacebuilding during the Vietnam War in the 1960s. In the middle of the 20th century, engaged Buddhism began to gain popularity as a way to address contemporary societal challenges in various Buddhist societies. At first, Buddhist-influenced campaigners concentrated on regional problems and populations. In addition to bringing capitalism and multinational firms to Buddhist nations, globalisation also brought opposing viewpoints to the commonly held notions of rapid economic growth and extensive economic development. As a result of this process, Buddhists concerned about social issues began helping each other in many countries. The International Network of Engaged Buddhists (INEB), a non-profit organization that unites Buddhists around the world who are concerned about social justice, was founded in 1989 by Thai social activist Sulak Sivaraksa. Ideas and information are shared at INER conferences and in the magazine. New local acts were inspired by Seeds of Peace. Socially active Buddhists whose work is informed by Buddhist philosophy are helping to rethink the use of Buddhism in the modern world.

The impact of environmental deterioration on all living forms is one of the many themes that active Buddhists are engaged in. The concept of applying Buddhism to environmental problems was not developed by Thai environmental monks. Buddhists in Asia and America cite scriptures that show reverence for nature and highlight ecological engagement as essential to Buddhist teachings. His God For instance, American Indian Buddhists use Buddhism in a variety of ways to communicate their responsibilities and concerns about water use, deforestation, and nuclear waste. When the Dalai Lama called for Tibet to become a place of peace, he also mentioned environmental concerns. Jiyul Sunim, a Korean nun, was also against the construction of a railway tunnel that would destroy a sacred mountain. Over the past few decades, a movement has emerged outside the Buddhist community that connects many religions with the environment.

The great majority of material on Buddhism and environmentalism is philosophical in nature and addresses these issues. A portion of it challenges assertions on the veracity of early Buddhism or the Buddhist writings. In response to these critics, others provide a thorough exposition of the philosophical foundations of Buddhist environmental concerns. Ironically, the majority of this literature is still abstract. Socially engaged Buddhism's ultimate goal is to eradicate suffering everywhere.

Conclusion

This dynamic, constantly changing process is currently ongoing. As it tackles specific instances of environmental destruction brought on by plans for economic expansion or governmental policies, the Buddhist ecology movement keeps expanding, gaining momentum, and becoming more contentious. To accurately assess the movement's impact on Buddhism and ecology, as seen and practiced in China, one must take into account the reactions of the government, businessmen, ordinary Sangha members, and the Sangha hierarchy. Despite some attempts to use Thai Buddhism as a conservative force to maintain the status quo and official policies, it is undeniably growing and has the potential to influence social and environmental change in Thailand. It is unclear how far these programs will go, how successful they will be, and what improvements will actually occur.

Not everyone accepts the Buddhist environmental rites and activities developed by Thai monks. Because many environmental problems have an economic basis, efforts to address 25 structural factors – such as helping farmers escape the debt that forces them to cut down forests – essentially transcend political boundaries. The programs place equal emphasis on environmental circumstances and their impact on individuals. This also applies to Buddhist environmental initiatives abroad, such as opposing nuclear waste storage, weapon development, and energy in the United States, demonstrating against damaging, large-scale construction projects in South Korea, and attempting to stop forest destruction in northwest Cambodia. Teaching people how to live sustainably through integrated and organic agriculture, as is done in Thailand, Japan and the US, for example, can have political ramifications, even if they are less concerned about fighting big business or state development. Large corporations attempt to persuade farmers to plant cash crops for profit and to use chemical fertilisers, insecticides, and herbicides to promote growth and eradicate pests.

Motivated by teachings, interested Buddhists create imaginative interpretations that serve Buddhist and environmental goals.

Simon Levin, a biologist, stated in *The Chronicle of Higher Education* that “Ecology, the unifying discipline in integrating knowledge of life on our planet, has become the important science in knowing how to preserve it.” Assuming that ecology can be exploited, we begin to identify the relationship between Buddhist practices and ecological aims. By researching ecological science and closely assessing how their actions affect the environment, Buddhists can apply their environmental teachings to reduce suffering globally and support environmental conservation.

Reference

1. Baber, B., Zegarelli, C., Bach, J., Smith, M., & Farry, D. (1993). Alumni Newsletter SUNY Institute of Technology at Utica/Rome Summer 1993.
2. Bhikkhu, B. (2012). The Framework. *The Ordination of a Tree: The Thai Buddhist Environmental Movement*, PP. 380-381.
3. Castaños, O., Hirsch, J. G., & Hess, P. O. (1993). Double beta decay in heavy deformed nuclei. *Rev. Mex. Fis.*, 39(Supl. 2), 29-35.
4. Child, A. D., & Reynolds, J. R. (1994). Water-soluble rigid-rod polyelectrolytes: A new self-doped, electroactivesulfonatoalkoxy-substituted poly (p-phenylene). *Macromolecules*, 27(7), 1975-1977.
5. Darlington, S. M. (1998). The ordination of a tree: The Buddhist ecology movement in Thailand. *Ethnology*, 1-15.

6. Girolami, A., Cosi, E., Tasinato, V., Santarossa, C., Ferrari, S., & Girolami, B. (2017). Drug-induced thrombophilic or prothrombotic states: an underestimated clinical problem that involves both legal and illegal compounds. *Clinical and Applied Thrombosis/Hemostasis*, 23(7), 775-785.
7. Gross, R. M. (2011). Buddhism and ecofeminism: Untangling the threads of Buddhist ecology and western thought. *Journal for the Study of Religion*, 17-32.
8. Hirsch, A. V. (1996). Censure and sanctions.
9. Hirsch, B. E., Cass, S. P., Sekhar, L. N., & Wright, D. C. (1993). Translabyrinthine approach to skull base tumors with hearing preservation. *The American journal of otology*, 14(6), 533-543.
10. Huat, C. B., Dean, K., Engseeng, H., Chong, H. K., Rigg, J., & Yeoh, B. (2019). Area studies and the crisis of legitimacy: A view from South East Asia. *South East Asia Research*, 27(1), 31-48.
11. Kennett, J. P., & Stott, L. D. (1991). Abrupt deep-sea warming, palaeoceanographic changes and benthic extinctions at the end of the Palaeocene. *Nature*, 353(6341), 225-229.
12. Kuiper, H. A., Noordam, M. Y., van Dooren-Flipsen, M. M. H., Schilt, R., & Roos, A. H. (1998). Illegal use of α -adrenergic agonists: European Community. *Journal of Animal Science*, 76(1), 195-207.
13. Liang, B. T., & Hirsch, A. J. (1993). Homologous sensitisation of embryonic chick atrial myocytes to adenosine: mediation by adenosine A1 receptor and guanine nucleotide binding protein. *Cardiovascular research*, 27(1), 102-110.
14. Lubchenco, J., Olson, A. M., Brubaker, L. B., Carpenter, S. R., Holland, M. M., Hubbell, S. P., ... & Risser, P. G. (1991). The sustainable biosphere initiative: an ecological research agenda: a report from the Ecological Society of America. *Ecology*, 371-412.
15. McDonald, R., & Smith, K. J. (1995). CIE94 a new colour difference formula. *Journal of the Society of Dyers and Colourists*, 111(12), 376-379.
16. Pongpet, M. (1991). Stopping the Chainsaws with Sacred Robes. *Bangkok Post*, March, 29, 27-28.
17. Schmithausen, L. (1997). The early Buddhist tradition and ecological ethics. *Journal of Buddhist Ethics*, 4(1), 1-74.
18. Schreiber, M. (2013). How relevant is the predictive power of the h-index? A case study of the time-dependent Hirsch index. *Journal of Informetrics*, 7(2), 325-329.
19. Taylor, J. (1993). Social activism and resistance on the Thai frontier: The case of PhraPrajakKhuttajitto. *Bulletin of Concerned Asian Scholars*, 25(2), 3-16.
20. Veras, C. A. G. (2012). MNBV Dress Winter Temperament Bursting Elegant Lace Waist Twist High Collar Knit Bottoming Sweater. *Journal of Aerospace Technology and Management*, 4(3), 317-330.



THE SOUND OF KNOWLEDGE: INDIAN CLASSICAL MUSIC AS A SACRED SCIENCE IN THE INDIAN KNOWLEDGE SYSTEM

Dr. Sandeep Kumar

Assistant Professor and Head, Department of Music (Vocal)
Dev Samaj College for Women, Ferozepur City, Punjab

Abstract

This chapter explores Indian classical music as an epistemological and sacred discipline within the broader framework of the Indian Knowledge System (IKS). Rooted in the concept of Nâda Brahma—sound as the divine creative principle—Indian music integrates metaphysics, psychology, mathematics, and aesthetics. Far from being limited to artistic expression, râga and tâla function as precise systems of knowledge that engage with consciousness, time, and emotion. Drawing from foundational texts such as the Nâtya Shastra and Sangita Ratnakara, as well as oral traditions of pedagogy and performance, the chapter outlines how music has served not only as an expressive art but also as a scientific and spiritual tool.

The discussion covers key philosophical and structural components of music—sound theory, emotional cognition (rasa), rhythm mathematics, and harmonic proportion—while also highlighting its roles in healing (râga chikitsa), yoga, devotion, and intergenerational learning. Special attention is given to the contributions of women and the oral transmission of musical traditions. The chapter also explores the global impact of Indian music in contemporary fields such as music therapy, cognitive science, and cultural sustainability.

By situating Indian classical music within the IKS framework, the chapter repositions it as a dynamic repository of indigenous knowledge. It argues for its revival not as a nostalgic return to tradition, but as a living system with contemporary relevance to education, wellness, and cross-cultural dialogue.

1. Introduction: Music as Epistemology in Indian Tradition

Indian classical music has always been regarded as more than mere entertainment. It occupies a central place within the Indian Knowledge System (IKS) as a form of sacred epistemology. The concept of “Nâda Brahma”—sound as the ultimate reality—originates in the Rigveda and later becomes foundational in metaphysical and yogic traditions (Rao, 1999, pp. 11–23). Music, particularly the structured sound patterns of râga and tâla, is seen as a path to transcendental knowledge and spiritual elevation.

Unlike Western epistemology that often separates art from science, Indian traditions recognize the

cognitive, emotional, and spiritual dimensions of music as part of a unified understanding of consciousness. The idea that creation itself began with sound places music within the very framework of cosmology and metaphysics (Saxena, 2006, pp. 45–67).

2. Philosophical Foundations: Nâda, Râga, and Tâla

Nâda, or primordial sound, is divided into two categories—ahata (struck sound) and anâhata (unstruck sound). This classification correlates with sensory and transcendental experiences respectively (Saxena, 2006, pp. 69–75). Râga, a melodic framework, is designed not only for musical expression but also to invoke specific moods and states of consciousness (Subramanian, 2007, pp. 21–38). Tâla, the rhythmic cycle, represents the dimension of time and is intricately linked with cosmic rhythms.

Râgas are associated with times of day, seasons, and emotional states, indicating a sophisticated aesthetic psychology developed through centuries of empirical and intuitive inquiry (Rowell, 2015, pp. 89–103).

3. The Nâtya Shastra and the Science of Emotions (Rasa)

The Nâtya Shastra by Bharata (circa 2nd century BCE) is the foundational text that links performance arts with psychology and epistemology. It outlines the theory of rasa—the essence or flavor of emotion—which arises through the interplay of musical notes, rhythm, and expressive gesture (Ghosh, 1961, pp. 147–159).

The rasa theory articulates how art transforms ordinary experience into aesthetic insight and ultimately spiritual awareness. The nine rasas—such as œ[Egâra (love), hâsya (humor), and karuGa (compassion)—are achieved through controlled modulation of voice and rhythm. This scientific approach to emotion through music establishes a formal Indian theory of aesthetic cognition (Masson & Patwardhan, 1970, pp. 94–116).

4. Sangita as a Triad: Gita, Vadya, and Nritya

Indian classical music is part of the broader triad of Sangita, which includes vocal music (gita), instrumental music (vadya), and dance (nritya). These elements are not isolated art forms but are understood as interdependent manifestations of rhythm and emotion (Raghavan, 1978, pp. 56–80).

This integrated structure reflects a holistic view of human expression where bodily movement, auditory pattern, and vocal modulation are united in service of spiritual and intellectual development. Each form embodies bhava (feeling) and is rooted in precise technical disciplines—such as tala structures and microtonal intonation (Shruti)—that require years of training and reflection (Viswanathan & Allen, 2004, pp. 22–39).

5. Music, Yoga, and Healing

Indian classical music has long been associated with healing and meditative practices. The ancient science of râga chikitsa refers to the therapeutic application of specific râgas to balance the mind and body (Sairam, 2006, pp. 12–27). It is based on the idea that musical vibrations influence the human energy system, including the chakras and doshas.

Yogic texts such as the Hathayoga Pradipika also reference sound as a means of focusing the mind and entering deeper states of consciousness. Nâda yoga, or the yoga of sound, uses sustained vocalization and resonance to access subtle inner awareness (Joshi, 1992, pp. 43–58). Contemporary research has supported these ideas, showing how Indian music affects heart rate, stress, and emotional

regulation.

6. Mathematics of Music: Rhythm, Proportion, and Harmonics

Indian music is deeply mathematical in its design. The *tâla* system—based on cycles of beats and sub-beats—is a sophisticated method for organizing time. Composers and performers often engage in *layakari* (rhythmic improvisation) that involves mathematical calculations and permutations (Sharma, 1990, pp. 34–56).

Râgas themselves are structured according to rules of note hierarchy, microtones, and intervallic relations. This geometrical and numerical structuring reflects the Indian affinity for embedding cosmological and logical principles in artistic forms (Rowell, 2015, pp. 112–129).

7. Music and Devotion: Bhakti, Sufism, and Tantra

Indian music has been a profound vehicle for devotional expression. The Bhakti and Sufi movements used music not only to communicate with the divine but also to transcend sectarian boundaries. Saints like Mirabai, Kabir, and Bulleh Shah composed verses meant to be sung in specific râgas, blending spiritual ecstasy with melodic form (Katz, 2001, pp. 77–96).

Tantric traditions also employed sound and vibration in ritual practices, believing certain notes and mantras to be spiritually potent. The blending of metaphysical devotion with musical discipline makes Indian music both a spiritual path and a philosophical inquiry (Beck, 1993, pp. 143–158).

8. Women and Oral Transmission in Musical Pedagogy

While textual traditions have often centered male scholars and performers, women have played a critical role in preserving and transmitting musical knowledge through oral traditions. In temple cultures, court music, and devotional contexts, women served as teachers, composers, and performers (Subramanian, 2007, pp. 101–118).

The devadasi tradition, although later marginalized, was historically a vital institution for music and dance education. Matrilineal training systems, particularly in South Indian *gharanas*, ensured continuity and innovation through female lineages (Allen, 1997, pp. 59–74).

9. Global Resonance and Contemporary Musicology

Indian classical music today influences global music, neuroscience, and healing arts. Fusion genres, collaborations with Western classical and jazz traditions, and music therapy research have brought Indian râgas into interdisciplinary and international conversations (Beck, 1993, pp. 166–183).

Scholars are increasingly recognizing the sophisticated cognitive models embedded in Indian music theory, including its application in cognitive science, acoustic modeling, and consciousness studies (Viswanathan & Allen, 2004, pp. 89–110).

10. Conclusion: Reinstating Music as Knowledge in the 21st Century

Indian classical music offers a uniquely integrative model of knowledge—one that combines art, science, psychology, and spirituality. As modern education reconsiders holistic frameworks and the role of indigenous knowledge systems, music emerges not merely as a cultural artifact but as a living science of the self, society, and cosmos.

Reviving its pedagogical and philosophical depth has the potential to enrich global discourses on healing, aesthetics, and consciousness, reaffirming the place of Indian classical music within the

universal archive of human wisdom.

Conclusion:

Indian classical music, with its deep philosophical roots and precise structural systems, offers a rich model of integrative knowledge. It harmonizes sound and silence, emotion and discipline, individual expression and cosmic order. Through concepts like *Nâda*, *râga*, and *tâla*, Indian music does not merely entertain—it teaches, heals, and transforms. It is both an inward journey of self-realization and an outward articulation of universal truths.

This chapter has demonstrated that Indian music, far from being a soft cultural pursuit, is a rigorous and codified epistemology that deserves a central place in our understanding of Indian Knowledge Systems. Its applications in yoga, education, medicine, and global musicology confirm its continued relevance.

As we face new challenges in education, health, and environmental consciousness, Indian music stands as a testament to how deeply indigenous traditions can contribute to sustainable and holistic ways of thinking. Reinstating music as a vital mode of knowledge is not simply a cultural project—it is an intellectual imperative.

References

1. Allen, M. (1997). *Singing in the Temple: Women's Voices in Indian Music*. Oxford University Press. (pp. 59–74)
2. Beck, G. L. (1993). *Sonic Theology: Hinduism and Sacred Sound*. University of South Carolina Press. (pp. 143–183)
3. Ghosh, M. (1961). *The Nâtyaûâstra: A Treatise on Hindu Dramaturgy and Histrionics*. Asiatic Society. (pp. 147–159)
4. Joshi, K. (1992). *Yoga and Indian Music*. Bharatiya Vidya Bhavan. (pp. 43–58)
5. Katz, J. (2001). *The Traditional Indian Theory and Practice of Music and the Bhakti Movement*. Motilal Banarsidass. (pp. 77–96)
6. Masson, J. L., & Patwardhan, M. V. (1970). *Aesthetic Rapture: The Rasadhyaya of the Nâtyaûâstra*. Deccan College. (pp. 94–116)
7. Raghavan, V. (1978). *The Music of India*. Munshiram Manoharlal. (pp. 56–80)
8. Rao, B. S. (1999). *Perspectives on Indian Musicology*. Sangeet Natak Akademi. (pp. 11–23)
9. Rowell, L. (2015). *Music and Musical Thought in Early India*. University of Chicago Press. (pp. 89–129)
10. Sairam, T. V. (2006). *Raga Therapy: Healing Through Indian Classical Music*. Nada Centre for Music Therapy. (pp. 12–27)
11. Saxena, S. (2006). *Nâda Yoga: The Science, Psychology, and Philosophy of Sound*. Chaukhamba Publications. (pp. 45–75)
12. Sharma, M. (1990). *Rhythm in Indian Music*. Kanishka Publishers. (pp. 34–56)
13. Subramanian, L. (2007). *From the Tanjore Court to the Madras Music Academy: A Social History of Music in South India*. Oxford University Press. (pp. 21–118)
14. Viswanathan, T., & Allen, M. (2004). *Music in South India: The Karnatak Concert Tradition and Beyond*. Oxford University Press. (pp. 22–110)



SOCIO-ECONOMIC AND LEGAL STATUS OF TRANSGENDER: UNDERSTANDING THE BROADER DYNAMICS OF SOCIAL INCLUSION AND INEQUALITY

Minaxi Sharma

Research Scholars
Department of Social Work,
University of Lucknow

Snehlata Jaiswal

Research Scholars
Department of Social Work,
University of Lucknow

Abstract

The social and economic status of transgenders has historically been marked by exclusion and discrimination. In many societies, they remain at the margins of social and economic life, often subjected to violence, stigmatization, and poverty. The interplay between gender identity and socio-economic outcomes is complex, as transgender individuals face societal barriers that impact their access to education, employment, and healthcare. Their economic exclusion is often compounded by a lack of legal recognition and social stigma. This paper seeks to explore the socio-economic challenges faced by transgender individuals, with a focus on their access to employment opportunities, education, healthcare, and housing, as well as the broader societal attitudes that contribute to their marginalization.

The socio-economic status (SES) of transgenders remains one of the most under-explored areas in social sciences, yet it is a critical aspect of understanding the broader dynamics of social inclusion and inequality. Transgender individuals face unique challenges in navigating societal structures, with experiences of exclusion, discrimination, and economic marginalization. This paper explores the socio-economic position of transgender individuals, analyzing how they experience access to resources, employment, education, healthcare, and social services. Additionally, it examines how these dynamics intersect with issues such as race, class, and geographical location. It also sheds light on the importance of inclusive policies and interventions that can uplift the socio-economic status of transgender individuals while addressing the broader social inequities that perpetuate their marginalization.

Keywords:- *Transgender, Socio Economic Status, population, employment, health, human rights.*

1.0 Introduction

Transgender people are an officially recognized third gender in the country and consider themselves neither male nor female. Transgender community includes Hijras, Eunuchs, Kothis, Aravanis, Jogappas, Shiv-Shakthis etc., who have been a part of Indian society for centuries. Though most of the eunuchs seen today are begging at traffic signals, in buses, during weddings, at birth of children they were

are respected lot during the Mughal rule in Medieval India. During the British rule, they were denied civil rights and were considered a separate caste or tribe who did kidnapping and castration of children and danced and dressed like women.

Transgender is defined, as a general term that describes people whose gender identity, or their internal sense of being male, female, or something else, does not match the sex they were assigned at birth. By contrast, cisgender describes people whose gender identity aligns with the sex they were assigned at birth”.

According to the 2011 Census of India is the first census in its history to incorporate the number of the ‘trans’ population, an estimated 4.8 million Indians identified as transgender. However, this number is not inclusive of those with non-binary identities. The data have been primarily linked to the males section as they are usually counted as men, but on request, they may be counted as women. The 2011 census also reported 55,000 children as transgender identified by their parents.

As per a 2023 report by World Population Review, the percentage of the transgender population in India is two per cent (Anuj, 2021). Transgender population is very high in the states like Uttar Pradesh (28.18%), Andhra Pradesh (8.97%), Bihar (8.37%), West Bengal (6.22%) and Tamil Nadu (4.58%).

The LGBTQ group is referred to as the “lesbian, gay, bisexual, transgender, and queer community” which includes those with gender dysphoria and different sexual orientations. The lesbian and gay people have been accepted in many parts of the world and have also got their rights, but the transgender is still without rights.

Socio-economic status is a measure of an individual’s or group’s economic and social position in relation to others, based on income, education, and occupation. SES can influence access to various resources, including healthcare, housing, and opportunities for upward mobility. It is also strongly linked to experiences of social inclusion or exclusion. The socio-economic status of transgender individuals is a significant area of research in understanding the broader dynamics of social inclusion and inequality.

Transgender people often face unique challenges in terms of employment, education, healthcare, and societal acceptance, all of which affect their economic well-being. This paper aims to explore these factors and provide an analysis of the socio-economic position of transgender individuals, highlighting areas where they face discrimination and identifying policies that could improve their overall quality of life.

2.0 Goal

To explore the socio-economic and legal challenges faced by transgender individuals emphasizing the intersection of gender identity and socio-economic factors. This paper also aims to evaluate available facts and informations, and suggest solutions to improve their socio-economic and legal standing.

3.0 Objectives

- Provide an overview of transgender identity, socio economic standing and its societal implications.

- Analyze and evaluate the constraining and facilitating factors in the sphere of healthcare, education, employment, and social protection.
- Understand the challenges faced by transgender people nationally, emphasizing the intersection of gender identity and socio-economic factors.
- To assess the impact of legal and policy frameworks on the fundamental rights and freedoms of transgender people in India, including their rights to identity, equality, non-discrimination,

4.0 Significance of the Study

The issue of transgender is unique in the sense that it cannot be brought under the general category of gender issues. Further, there are specific concerns in transgender issues that do not fall within the common fold. In India, the awareness of transgender issues has now only been brought under the preview of the judicial and executive framework, with few judgments and orders being put forward. The Supreme Court of India has recently dealt with this subject and the socioeconomic and psychological problems faced by transgender people.

5.0 Research Methodology

This study is based on both primary and secondary data collected from primary sources and secondary sources. In order to collect the primary data, a questionnaire was developed to get an understanding of social, economic and psychological conditions of the trans community. An effort has also been made to assess the level of awareness and status of implementation on their legislative rights, frameworks, and policies. The secondary sources include informations collected from documents, publications, articles, reports, Census of India data, and websites.

Sample Size:-

A total of 30 transgender persons across the Lucknow city were interacted during the study.

6.0 Results and Discussion

The transgender community in India has historically been marginalized and discriminated against socially, economically, and politically. Many people view trans people as abnormal or deviant, and they frequently experience abuse and violence on both physical and emotional level, including sexual assault. Many incidents are not reported due to fear of injustice or a lack of legal recognition. This paper examined the socio economic status, employment, health, psychological conditions, and transgender people's rights protection acts in India. Transgender individuals in India face numerous challenges, including education, employment, healthcare access, and social stigma. This can be seen in the discussions given below:

General Information:-

A total of 30 transgender were interacted during the study. The respondents were in the age group 18 years to 60 years old. Average size of the family of the respondents is between 7 to 10 people. Out of the total, 40 % of the respondents stay with their family members while 60 % respondents do not stay with the family. Out of these 60 % respondents who do not stay at home, about 30 % stay on rent and remaining 30 % live with their Guru in Gurugram.

Identity crisis:-

It was noted that while growing up in teenage, it was a very transitional and transformational phase for them. During their teenage, they saw the visible changes in the mirror, having voice of a male but physically looked like a female. They faced identity crisis within themselves. They could not understand what was going on within them; a sense of identity crisis could be realized. Some of them did not encounter good reaction from their parents and society members. They did not even tell their parents and some of them didn't even discuss it with their family members.

Support expected from the society

The respondents opined that they did not have much expectation from the society. They are dependent on their own for addressing their issues and concerns. If they depend, they depend on their community members and Guru mostly. Some of the family members have also been found to be supportive.

6.1 Access to Education:-

Socio-economic status (SES) is a measure of an individual's or group's economic and social position in relation to others, based on income, education, and occupation. SES can influence access to various resources, including healthcare, housing, and opportunities for upward mobility. It is also strongly linked to experiences of social inclusion or exclusion.

6.1.1 Educational Attainment and Discrimination:-

S.N.	Particulars	Nos
1	Illiterate	14
2	Less than 10th	6
3	12th	3
4	PG	3
5	Professional Courses	2
TOTAL		30

Educational institutions are often sites of discrimination for transgender individuals. Bullying, exclusion, and a lack of supportive policies contribute to higher dropout rates and lower educational attainment among transgender youth. The inability to access safe educational environment limits opportunities for professional advancement and economic stability in adulthood.

Out of total 30 respondents, 14 transgender were illiterate, 8 studied upto junior level, 3 were intermediate, and 3 were postgraduate. It was also encouraging to note that 3 have received higher education than just post graduate degree. It was encouraging to note that younger respondents were able to address their constraints and get educated but those who are aged have never been to school. It was noted that 3 of them were post graduate and two were research scholar.

6.1.2 Gender-Specific Barriers:-

Transgender students face gender-specific barriers that make their educational experience different from that of their cisgender peers. These include difficulties in accessing appropriate facilities (such as bathrooms), issues related to gendered dress codes, and insufficient support services for transgender

students. Inadequate training for teachers and administrators further exacerbates the marginalization of transgender students.

6.1.3 Intersectionality in Education:-

For transgender individuals from marginalized racial or ethnic groups, these barriers are compounded by racial discrimination. Transgender students who are also people of color are more likely to face both transphobia and racism, making it even more difficult for them to succeed academically.

6.2 Transgender Individuals and Employment:-

Sources of Income

S.N.	Particulars	%
1	Job	10
2	Self Employed	10
3	Traditional Employment	50
4	Others *	30
TOTAL		100

6.2.1 Employment Opportunities:-

Employment is often tricky, with many forced into low-paying jobs or engaging in sex work. It has been noticed that they have opted for occupational traits like beauty parlor, makeup artists, in NGOs as social workers, providing support to the NGOs for raising awareness amongst the target group on the government welfare programmes. Their average monthly income is Rs. 20,000/- to Rs.30,000/- . Some of the guru do earn around Rs 1, 50,000/- month. One Guru has 10-15 members under them.

6.2.2 Discrimination in the Workplace:-

One of the most significant barriers transgender individuals face is discrimination in the workplace. Studies have consistently shown that transgender people experience higher levels of unemployment and underemployment than the general population. Discriminatory hiring practices, lack of workplace protections, and hostile environments often prevent transgender individuals from securing stable employment. Even those who are employed may face challenges such as harassment, pay inequity, and limited career advancement opportunities.

Research on the experiences of transgender people in various sectors indicates a pattern of exclusion. For instance, transgender individuals working in the service sector, retail, and hospitality often report higher rates of workplace discrimination compared to those in more established sectors like education or healthcare. Gender identity-related discrimination can lead to early job termination, poor job performance evaluations, and isolation at the workplace.

6.2.3 Impact of Legal Protections:-

Countries with legal protections for transgender employees, such as non-discrimination policies and gender identity inclusion, demonstrate better socio-economic outcomes for transgender individuals. Conversely, in regions where such protections are absent, transgender individuals face a heightened risk of job discrimination and economic marginalization.

6.3 Health Care and Services:-

Healthcare access is also challenging, with hormone therapy, gender-affirming surgeries, and mental health support often not easily accessible. Transgender individuals also face unique health conditions like gender dysphoria, hormone therapy, and mental health issues. Healthcare access is also hindered by discrimination, a lack of culturally competent care, and cost.

Transgender Clinical Care Unit:

Transgender Clinical Care Unit has been established at Sanjay Gandhi Post Graduate Institute of Medical Sciences at Lucknow city in Uttar Pradesh. This is one of its kind clinic for transgender operational on Friday from 2 PM to 5 PM every week. A specialized team of health care professionals from Department of Plastic Surgery, Department of Psychiatry, Department of Endocrinology, Department of Urology and Dermatology engaged in the functioning of this clinic.

6.4 Psychological Impact:-

The psychological impact on transgender individuals is multifaceted, involving both external factors (e.g., societal attitudes, discrimination, and healthcare access) and internal factors (e.g., gender dysphoria, resilience). Supportive environments and access to gender-affirming care can significantly improve mental well-being, while discrimination and lack of acceptance can exacerbate psychological distress.

6.5 Social Welfare Schemes:-

The Ministry has launched National Portal for Transgender Persons on 25th November, 2020. Any Transgender applicant can obtain Certificate of Identity and Identity Card without any physical interface with the office of issue. The person who has been issued a certificate of identity are entitled to change the first name in the birth certificate and all other official documents relating to the identity of such person.

“SMILE - Support for Marginalized Individuals for Livelihood and Enterprise”: Ministry of Social Justice and Empowerment has formulated a scheme “SMILE - Support for Marginalized Individuals for Livelihood and Enterprise”, which includes sub scheme -‘**Comprehensive Rehabilitation for Welfare of Transgender Persons**’. Standing Finance Committee has approved the scheme on 30.11.2021. The focus of the sub-scheme is on rehabilitation, provision of medical facilities and intervention, counseling, education, skill development, economic linkages to the transgender persons.

Skill development training to the Transgender beneficiaries is also being conducted through PM-DAKSH - A skill development scheme of the Ministry.

On 21st Aug, 2020, National Council for Transgender Persons was constituted to advise Government on policies, programmes, legislation and projects with respect to transgender persons.

Garima Cell/Garima Greh:-

Ministry has initiated 12 pilot shelter homes namely ‘Garima Greh’: Shelter Home for Transgender Persons. The main aim of these shelter homes is to provide safe and secure shelter to Transgender persons in need. These pilot shelter homes are in States of Maharashtra, Gujarat, Delhi, West Bengal, Rajasthan, Bihar, Chhattisgarh, Tamil Nadu and Odisha. Ministry has provided full financial assistance to community based organizations (CBOs) for setting up of these shelter homes which provide basic

amenities like food, shelter, medical care, recreational facilities and also conduct capacity-building and skill development programmes for Transgender persons. The main aim of Garima Greh is

- To provide shelter to Destitute & abandoned Transgender persons with basic amenities like shelter, food, medical care and recreational facilities. Besides that, it will provide support for the capacity-building/skill development of Transgender persons.
- To ensure the shelter home with facilities of lodging and boarding, clothing, recreation, medical and counselling.
- To maintain the uniformity in terms of infrastructure, manpower services in the Garima Greh.
- To safeguard the rights of Transgender persons and protect them from atrocities.
- To confirm the prevalence of congenial atmosphere in the Garima Greh by adopting uniform rules and regulations suitable to be followed by all Transgender persons.
- To empower a Transgender person through skill-development and skill-upgradation programmes.

During lockdown period in COVID pandemic a helpline was also setup to provide psychological support through trained Psychologists to Transgender Persons in distress during COVID period.

Transgender Welfare Board:-

As per section 10 (1) of the Transgender Persons (Protection of Rights) Rules, 2020, “The appropriate Government shall constitute a welfare board for the transgender persons for the purpose of protecting their rights and interests of, and facilitating access to schemes and welfare measures framed by the Government.” As per the information available with Ministry, 12 States and UTs have constituted the Transgender Welfare Boards: In the light of a decision given by the Supreme Court, the Uttar Pradesh government also constituted the Transgender Welfare Board to provide suggestions to the government for policy and institutional reforms while working on the needs, issues and problems of the transgenders.

Uttar Pradesh Transgender Welfare Board is an organization with total 23 members including Chairman, Deputy Chairman, Member Secretary, Convenor, 5 representatives of the transgender community and 2 representatives of non governmental organizations (NGOs) working for the transgender community. The Ex-officio Members are secretaries of various departments and Lucknow Police Commissioner.

The term of the non-official members of the Board will be for 3 years and the Board will be required to meet once in three months. Apart from this, Transgender Cooperation Unit will be constituted under the chairmanship of Director, Social Welfare, which will prepare the database of transgenders as well as solving the problems of transgenders and submit the report to the government regarding the time-limit for implementation of policies. There will also be a 13-member committee under the chairmanship of DM in the districts, which will meet every month.

6.6 Awareness and Access to Legal Rights and Legislations:-

The Government of India today has taken a stance and introduced several welfare policies and schemes for the transgender which would be a big step forward. These include census, documentation, issuing of the citizenship ID Cards, issuing passports along with social, economic, political transformation, housing, legal measures, police reforms, legal and constitutional safeguards to prevent human rights

violations of the transgender community and institutional mechanisms to address specific concerns of transgender people.

Transgender rights are also influenced by various Supreme Court judgments, particularly the landmark 2014 National Legal Services Authority (NALSA)—Union of India case in addition to the Transgender Persons Act. The NALSA judgment recognized transgender individuals' right to self-identify their gender and called for legal recognition and protection of their rights.

The Transgender Persons (Protection of Rights) Act 2019 protects transgender rights by recognizing them as a third gender, prohibiting discrimination in education, employment, healthcare, and public spaces, and granting them the right to reside with their chosen family. The Government of India has taken a stance and introduced several welfare policies and schemes for the transgender which would be a big step forward. These include census, documentation, issuing of the citizenship ID Cards, issuing passports along with social, economic, political transformation, housing, legal measures, police reforms, legal and constitutional safeguards to prevent human rights violations of the transgender community and institutional mechanisms to address specific concerns of transgender people.

The Indian government has attempted to improve legal recognition, but implementation remains slow. Discrimination in the workplace, a lack of job security, and inadequate health benefits further exacerbate these issues.

7.0 Conclusion

The socio-economic status of transgender individuals is deeply impacted by societal exclusion, discrimination, and inequality. Transgender people face unique barriers in employment, education, healthcare, and housing, which contribute to a cycle of poverty and social marginalization. To address these issues, comprehensive policy changes are needed, including the implementation of anti-discrimination laws, greater access to gender-affirming healthcare, and better support systems for transgender students and workers. The social attitudes toward gender diversity must be addressed through public education and advocacy to reduce stigma and promote inclusivity. Furthermore, our responsibility as civilians is to treat them equally and give them equal respect as any other gender, and we should have a humanitarian outlook towards third genders.

8.0 Recommendations

- Enacting and enforcing anti-discrimination laws that protect transgender individuals in the workplace, healthcare, and education.
- Expanding access to gender-affirming healthcare services and insurance coverage.
- Implementing inclusive policies in educational institutions to ensure the safety and well-being of transgender students.
- Raising public awareness to reduce societal stigma and promote acceptance of transgender individuals.
- Providing better housing support and social services for transgender individuals, particularly youth, to reduce homelessness and discrimination.

Ultimately, improving the socio-economic status of transgender individuals requires a holistic approach

that addresses both the systemic and individual factors contributing to their marginalization. By creating an inclusive society that recognizes and supports gender diversity, we can ensure that all individuals, regardless of their gender identity, have the opportunity to thrive.

References

- Transgender: A marginalized and Stigmatized Community; Mansoor Ahmad published by ýGrin Verlag dated 6 August 2018
- Historical Evolution of Transgender Community in India in Asian Review of Social Sciences ISSN: 2249-6319 Vol. 4 No. 1, 2015, pp. 17-19 © The Research Publication, www.trp.org.in
- Education in the life of Indian Transgender: Manobi Bandyopadhyay's A Gift of Goddess Lakshmi
- Transgender: Health and Rights by Dr. Rajni Sharma and Dr. Purnendu Mishra review article ISSN 2394-3211 European Journal of Pharmaceutical and Medical Research
- Transgender: Status in India by Neena Sawant Published by Wolters Kluwer - Medknow in India Annals of Indian Psychiatry , January 2017
- Study on Human Rights of Transgenders as a Third Gender by Kerala Development Society published in February 2017 submitted to National Human Rights Commission



FROM MILITARY MEDICINE TO CIVIL HEALTH: A HISTORY OF INDIAN MEDICAL SERVICE

Rohit Raj Gupta

Research Scholar

Department of History, Pondicherry University
Kalapet, Puducherry

Abstract

The article deals with the evolution of the Indian Medical Service and its dual pivotal role in serving the military medicine as well as the civil healthcare apparatus. The article analyses the development of Indian Medical Service from the mid-eighteenth to the mid-twentieth century and explores the diversity of the service and its functional responsibilities. It also talks about the difficulty in performing the dual duty and how they respond to the contemporary challenges including participation in military medicine, and institutional work in the civil sector. The article further emphasized on the role of Indian Medical Service in the colonization process and how government used it as a tool in the expansion and consolidation of the British Empire.

Keywords:- Indian Medical Service, Military Medicine, Epidemic Control, British Empire.

Introduction

The expansion of colonial medical services in India had a very interesting history. From the 15th century onwards, the European kicked off their naval expedition to the unknown world. With the help of their advanced scientific knowledge, they started colonizing new lands. In India, the fast-developing modern scientific system started replacing the traditional Indian scientific system (Kumar, 1998). Chronologically, Portuguese were the first to bring modern medicine in India. Later on, it was expanded and consolidated by the British and French (Keshwani, 1968).

In the process of colonization, especially in the beginning, the concern for health was one of the important aspects. And to counter this problem, every European ship had a surgeon on it, who took care of the health of sick on board as well as the job of this surgeon was to inform about the varieties of flora and fauna available in the new territory. So, he played a dual role of surgeon and naturalist (Kumar, 1998). With the passage of time, these modern medical practitioners took up the new role in the British Empire and its consolidation, which finally led to the establishment of Indian Medical Service (Rai, 2014).

Before the mid-nineteenth century, the British rule in India was in the hand of the East India

Company and further the company rule was divided into three presidencies namely Bengal, Bombay and Madras Presidency and these presidencies were independent of each other.

The Foundation of Indian Medical Service

There were many temporary hospitals, including both civil and military, existed in India from a very long time. But we don't have any evidence of regular modern hospitals until the mid-seventeenth century. The first sign of a regular modern hospital was found from Madras in 1664, from Bombay in 1670 and from Calcutta in 1707 (Buchanan, 1914). With the expansion of the British empire, the need for hospitals also increased.

The Carnatic War, which started in 1745 played a very important role in the appointment of medical officers in the military camps. The war between British and French in India was decisive in nature and for the future faith of India. In this war, there were many casualties, and the British army suffered a lot. So, to take care of these casualties and the need of medical officers in army camp to take care of these casualties. Finally, the British government made it compulsory for qualified medical surgeons to accompany military troops into the battlefields (Crawford, 1914). Later on, this provision covered all the military camps in India. Other than these, medical officers were also appointed at different Factory sites and European settlements in India. The Bombay government started appointing medical officers to the vessels of the Indian navy from the first half of the eighteenth century (Crawford, 2014).

The Battle of Plassey of 1757 and the Battle of Buxar of 1764 led to the foundation of British rule in India. And with this, the development of military and civil services was started in India. The Presidency of Bengal was become the first Presidency to set up a regular medical service.

By a resolution on 20th October 1763, the Bengal Medical Service was founded, which came into force from 1st January 1764. From now onwards, all the medical officers in the Bengal Presidency comes under a single regular medical service and they were provided with fixed grades and also the rules and regulations for promotions were made for each grade. After the formation of Bengal Medical Service, the regular medical service was also come into effect in the Madras and Bombay Presidency. So, with this, all the three Presidency got their respective regular medical service which were quite independent of each other. And they started appointing a Head Surgeon, which became the most important post in Medical Department. The post of Head Surgeon at presidency level gradually developed into an administrative officer and later on, in the year 1786, it developed as a Medical Board (Crawford, 1914).

In the year 1764, at the same time when the Bengal Medical Service came into force, in the Presidency of Bengal a Surgeon's Mate was attached to each battalion. However, in the case of the native soldier, they only allowed to take medical consultation from the member of their caste. So, for them a native doctor was attached to each battalion. The second half of the eighteenth century was very challenging for the British government due to the ongoing Anglo-Mysore War, Anglo-Maratha War, campaign against Raja of Banaras. And it led to the requirement of more and more medical officers. However, at that time, the government solved the problem temporarily. Britishers used locally available men into the Bengal Medical Service serving only on warrants, popularly known as warrant officer (Minutes of the Bengal Council, 1785).

The Nature of Indian Medical Service

With the continuous expansion and consolidation of the British Empire. There were many important changes made in the medical services. The Indian Medical Service gained its importance after the coming of Lord Cornwallis as the Governor-General of Bengal; the regulation of 1772 already puts the Madras and Bombay Presidency under the command of Bengal Presidency. And then, the Lord Cornwallis granted commissions to the medical officers of the company, and for the first time they became commissioned officers with the help of Regulations of 24 October 1788. The second important clause of the Regulations stated about the eligibility criteria to become an IMS Officer. And the third important clause talks about the military and civil characteristics of IMS, which were very controversial from a very long time, the Regulations clearly stated that all the officers of IMS were primarily military officers. (Minutes and Regulations of Bengal Council, 1788). And according to the situation, the surgeons were transferred from civil to military duties and vice-versa. However, even after the regulations, the question was raised again and again on the nature of Indian Medical Service.

The purpose of the establishment of the Indian Medical Service was to serve mainly the military troops. In the year 1766 and again in the year 1796, the Indian Medical Service was divided into civil and military service but this division was impractical (Crawford, 1914). However, discussion continues on this question, and finally it was decided that the officers of IMS were primarily military officers and those who working as civil surgeon were compelled to do military service when needed. So, they were only temporarily lent for civil duties and they were call at any time whenever needed. Even for transfer, the permission of the military authority was mandatory.

In the first half of the nineteenth century, with the conquest of new region, the IMS also grew in strength. But still, the native Indians were not allowed as commissioned officers in the Indian Medical Service. It became possible only after the introduction of competitive examination in the year 1855, but due to financial difficulty for study in abroad and also due to some conservative religious mindset, only a handful of Indians were successful. Even Harrison claims that after the revolt of 1857, the Britishers developed a prejudice that Indians were conservative in thought, and they were not ready to adopt western science and ideas. (Harrison, 1994).

If we try to look at this situation in another way, then we can also question the colonial mindset of depriving the Indian from higher services. The revolt of 1857 proved the fact that if they wanted to rule in India, they did not have to interrupt in the Indian culture. And due to this exclusion, they only view India as a prized colony.

Finally, in the year 1896, the medical services of three independent presidencies namely Bombay, Madras and Bengal merged into one single service. And from then onwards, all medical officers of IMS were placed on one single list. (Crawford, 1901).

The Working of an IMS Officer

Apart from the Military Surgeon, the civil surgeon of a district was the highest authority in medical administration. He was to attend all the difficult cases at the district headquarters hospital. Every day he had to visit district jail of which he was the Superintendent. As the chief medical officer of the district, he was to inspect all the dispensaries of his district four times a month. He was also

the inspector of factories as well as superintendent of vaccination work. So, the duty of an IMS officer was very diverse and extensive (Crawford, 1914).

However, the work of the IMS officer was not limited to the civil and military professions; they also have to perform the role of medical college professorships and residency surgeon. And even the IMS officers were deployed as the Sanitary commissioner for each province (Report of the commission on IMS, 1866).

Conclusion

The Indian Medical Service left a very long-lasting impact on Modern Indian Medical History. It led to the foundation of many medical colleges and public health departments. However, due to the colonial in nature, the major objective of service was the expansion and maintenance of the British Empire. The IMS officer had to perform multifarious duties ranging from battlefield surgery to civil health administration. In the word of D.G. Crawford, the civil surgeon was not merely a medical officer, rather he was a government official with some medical knowledge and duties (Crawford, 1914).

Reference

- Buchanan, W.J., (1914). The Introduction and Spread of Western Medical Science in India, Calcutta Review, No. 278, p. 439.
- Crawford, D.G., (1901). *Notes on the History of Bengal Medical Service*, IMG, Vol. 36, No. 1, p.1.
- Crawford, D.G., (1914). *A History of the Indian Medical Service: 1600-1913* (Vols. 1&2), Thaker & Co., London.
- Harrison, M., (1994). *Public Health in British India: Anglo-Indian Preventive Medicine*, New Delhi, p. 26.
- Keshwani, N.H., (1968). Medical Education in India Since Ancient Times. C.D. O'Malley, ed., *The History of Medical Education*, California. p. 324.
- Kumar, A., (1998). *Medicine and the Raj: British Medical Policy in India, 1835-1911*, SAGE Publication, New Delhi.
- Minutes and Regulations of Bengal Council, (24 October 1788).
- Minutes of the Bengal Council, (27 January 1785).
- Rai, S.K., (2014). Indianization of the Indian Medical Service, c. 1890-1930s. *Proceedings of the Indian History Congress*, 75, 826-832. <http://www.jstor.org/stable/44158466>.
- Report of the Commission on IMS, (1866), Calcutta, n.22, p. 11.



ICT & AI IN PHILOSOPHY: REIMAGINING DIALOGUES WITH BUDDHA AND MAHAVIR

Amarjeet Kumar

Junior Research Fellow

Department of Public Administration

Veer Kunwar Singh University, Ara, Bihar

Abstract

ICT (Information and Communication Technology) is the digital tools and systems like computers, smartphones, internet and software that help store, process and share information. It connects people globally, transforms education, healthcare, business and now even spiritual learning by making knowledge more accessible and interactive across digital platforms. AI (Artificial Intelligence) is the ability of machines to mimic human intelligence, learning, reasoning and problem-solving. It powers tools like chatbots, voice assistants and recommendation systems. Philosophy seeks to understand life's deepest questions about existence, morality, knowledge and the self. Rooted in both reason and experience, philosophy helps individuals find meaning and ethical direction. Reimagining dialogues means using modern tools like AI and ICT to recreate or simulate historical conversations. Instead of just reading texts, users can now interact with virtual versions of philosophers, asking questions and receiving answers in real-time, making age-old wisdom feel alive, accessible and relevant in today's digital age. Buddha was a spiritual teacher who attained enlightenment and shared the path to overcome suffering through mindfulness, compassion and wisdom. His teachings like the Four Noble Truths and the Middle Path continue to guide millions. Mahavir was the 24th Tirthankara of Jainism who championed non-violence, truth and self-discipline. He renounced worldly life to seek spiritual liberation and taught the path of Ahimsa and Aparigraha. Research Methodology applied in this research article includes qualitative analysis based on secondary resources. Findings of this paper will help transforming static teachings of Buddha and Mahavir into dynamic, interactive dialogues for the digital age.

Keyword- ICT, AI, Philosophy, Reimagining Dialogues, Buddha, Mahavir.

Objectives

1. Explore ICT and AI in spiritual-philosophical learning.
2. Simulate dialogues with Buddha and Mahavir using AI.
3. Assess digital tools for Buddhist and Jain teachings.

4. Analyze ethical issues in AI-driven wisdom.
5. Propose a digital model for ancient philosophy.

Research Methodology

The present research adopts a qualitative methodology aimed at exploring the interdisciplinary intersection of Information and Communication Technology (ICT), Artificial Intelligence (AI) and ancient Indian philosophy, particularly the teachings of Buddha and Mahavir. A qualitative approach is most appropriate for this inquiry as it prioritizes depth over breadth, focusing on understanding meanings, interpretations and the evolving relationship between technology and philosophical discourse. This method allows for a nuanced exploration of how non-material, abstract concepts such as wisdom, ethics, and consciousness can be digitally recontextualized and conveyed using modern tools. The study primarily relies on secondary sources, carefully selected for their scholarly credibility and relevance. These include peer-reviewed journal articles on the applications of AI in education and the digital humanities, philosophical analyses on the teachings of Buddha and Mahavir,

Introduction

Philosophy has always been concerned with questions that transcend time. Who am I? What is the nature of suffering? How should one live? While the core of these questions has remained constant, the way we explore them has evolved significantly. Traditionally, philosophical teachings were passed down through oral traditions, texts and personal mentorship. Today, with the advent of ICT and AI, we are seeing a paradigm shift in how these teachings are accessed, understood and experienced. Reimagining philosophical dialogues with historical figures such as Gautama Buddha and Mahavir through ICT and AI tools allows us to engage with their teachings in a more interactive, personalized and accessible manner. This article presents a comprehensive study of how these technologies can breathe new life into ancient wisdom, with an emphasis on the teachings of Buddha and Mahavir.

ICT refers to the wide array of digital tools and systems including computers, smartphones, the internet and software platforms that enable the processing, storage and dissemination of information. These technologies have become vital components of contemporary life, influencing education, healthcare, commerce and now even philosophy and spirituality. ICT makes it possible to archive texts, facilitate global communication, create multimedia content and develop virtual learning environments. AI is a branch of computer science that focuses on the creation of intelligent machines capable of mimicking human cognitive functions like learning, reasoning, problem-solving and language understanding. From simple chatbots to advanced language models like ChatGPT, AI has come a long way in simulating human-like interaction. When applied thoughtfully, AI can personalize learning experiences, simulate conversations and provide dynamic feedback, making it an ideal tool for philosophical inquiry and education.

Philosophy is more than a body of knowledge. It is a method of inquiry. Socratic dialogues, Buddhist teachings and Jain discourses all emphasize dialogue as a means to arrive at truth and understanding. Dialogue encourages questioning, critical thinking and self-reflection. Buddha and Mahavir, though from different traditions Buddhism and Jainism, used discourse as their primary mode of teaching. Their teachings were interactive, addressing real concerns of people. They were

not abstract theorists, but practical guides who used communication as a tool for liberation.

Buddha: The Philosopher of Compassion and Mindfulness

Gautama Buddha (circa 563–483 BCE), founder of Buddhism, offered profound insights into the nature of suffering and the path to liberation. His core teachings include:

The Four Noble Truths

1. Life is suffering (Dukkha)
2. Suffering is caused by desire (Tanha)
3. There is an end to suffering (Nirvana)
4. The way to end suffering is the Eightfold Path.

The Middle Way – A balanced approach between indulgence and self-mortification.

Mindfulness and Meditation – Tools to observe the mind and cultivate wisdom.

Buddha's teachings are deeply rational and introspective. They do not demand blind faith but encourage personal verification and experiential understanding.

Mahavir: The Teacher of Ahimsa and Renunciation

Mahavir (circa 599–527 BCE), the 24th Tirthankara of Jainism, emphasized ethical living, self-discipline, and non-violence (Ahimsa). His teachings include:

1. Ahimsa (Non-violence) – Not harming any living being through thought, word, or deed.
2. Aparigraha (Non-possessiveness) – Renouncing material and emotional attachments.
3. Satya (Truthfulness) – Being truthful in all situations.
4. Self-realization and Liberation (Moksha) – Attainable through ascetic living and spiritual discipline.

Mahavir's approach was rigorous, emphasizing purity of action, thought, and intent. His dialogues with disciples and seekers laid the foundation of Jain philosophy, which values self-control, inner purity and respect for all life forms.

Reimagining Dialogues: ICT and AI as Tools for Revival

Imagine a student curious about the concept of suffering. Instead of merely reading the Dhammapada, they engage in a dialogue with a digital avatar of Buddha powered by AI. The system responds based on centuries of Buddhist texts, adjusting to the user's understanding level. Similarly, a seeker questioning the ethics of modern consumption patterns might converse with a virtual Mahavir, gaining insight on Aparigraha and Ahimsa. These simulations are made possible by training AI models on religious texts, commentaries and interpretative literature. Using Natural Language Processing (NLP), these avatars can “understand” user queries and respond contextually.

ICT has enabled the creation of massive open online courses (MOOCs), multimedia libraries, and gamified learning environments. For example: Virtual Temples and Monasteries – Digitally recreated learning environments where users can explore teachings interactively. Gamified Ethical Dilemmas – Scenarios where users make choices and receive feedback based on philosophical

frameworks of Buddhism and Jainism. Augmented Reality (AR) Experiences – Guided meditations with visual cues inspired by ancient practices.

Benefits of AI-Enabled Philosophical Engagemen

1. Many ancient texts are written in Pali, Prakrit, or Sanskrit, making them inaccessible to general audiences. AI can translate and simplify these texts, democratizing access to philosophical wisdom.
2. Static texts are transformed into dynamic conversations. Users become active participants rather than passive readers, increasing engagement and comprehension.
3. AI can tailor responses to the user's age, background, prior knowledge and learning goals. For example, a teenager exploring mindfulness will receive different analogies and guidance than a senior researcher studying Buddhist epistemology.
4. Many oral traditions and lesser-known texts are at risk of disappearing. ICT tools like digital archives, cloud storage and voice synthesis preserve and present them to global audiences.

Challenges and Ethical Considerations

1. Authenticity and Interpretation-AI is only as good as the data it is trained on. There is a risk of misrepresentation or oversimplification of complex doctrines. Philosophical nuances must not be lost in translation.
2. Commercialization of Spirituality-Turning sacred teachings into “content” can lead to commodification. It is vital to maintain the sanctity and ethical grounding of these teachings.
3. Digital Divide-Not everyone has equal access to digital tools. To be truly transformative, such technologies must reach rural and underprivileged populations as well.
4. Dependence on Technology-While AI can assist, it cannot replace personal introspection, community, or lived experience. Over-reliance on simulated interactions might reduce genuine engagement with the deeper aspects of philosophy.

Future Possibilities

1. Emotive AI: Systems that not only respond logically but recognize and adapt to the emotional states of users.
2. Holographic Avatars: Life-like 3D representations of philosophers that can “converse” in real space.
3. Global Wisdom Networks: Platforms connecting seekers, scholars, monks, and learners through AI-curated dialogues.
4. Multilingual Spiritual AI: AI capable of translating and conversing in dozens of languages, making teachings global.

Conclusion

ICT (Information and Communication Technology) and AI (Artificial Intelligence) have opened doors to a new renaissance in spiritual and philosophical learning. By reimagining dialogues

with enlightened masters like Buddha and Mahavir through these digital tools, we are not merely preserving their teachings, we are revitalizing them. These technologies allow timeless wisdom to be experienced in new, interactive ways, making ancient insights accessible to the modern world. In an age increasingly dominated by materialism, distraction and inner unrest, the teachings of mindfulness, compassion, truth and non-violence can find renewed meaning through the language of technology. AI-powered avatars, virtual dialogues and immersive learning platforms make it possible to engage with philosophical teachings in a personal and reflective manner.

However this transformation must be guided with care. Ethical responsibility, cultural sensitivity and philosophical integrity are crucial to ensure authenticity. The aim is not to replace traditional learning or human teachers but to enhance and support them. When used thoughtfully, ICT and AI can become powerful bridges connecting the deep insights of the past with the spiritual needs of future generations.

Reference

1. Basak, S., Wotto, M., & Bélanger, P. (2018). E-learning, M-learning and D-learning: Conceptual definition and comparative analysis. *E-Learning and Digital Media*, 15(4), 191–216. <https://doi.org/10.1177/2042753018785180>
2. Bodhi, B. (2000). *The Noble Eightfold Path: Way to the End of Suffering*. Buddhist Publication Society.
3. Chandrakant, S. (2015). Role of Information and Communication Technology in modern education. *International Journal of Computer Science and Information Technologies*, 6(6), 5331–5333.
4. Chatterjee, A., & Dey, D. (2020). Artificial Intelligence in education: A review. *International Journal of Scientific & Technology Research*, 9(1), 2767–2771.
5. Dundas, P. (2002). *The Jains* (2nd ed.). Routledge.
6. McMahan, D. L. (2008). *The Making of Buddhist Modernism*. Oxford University Press.
7. Russell, S., & Norvig, P. (2021). *Artificial Intelligence: A Modern Approach* (4th ed.). Pearson.
8. Sharma, A. (2006). *Classical Indian Philosophy: A Reader*. Oxford University Press.
9. Singh, K. (2017). Digital transformation in education through ICT. *International Journal of Advanced Research in Education & Technology*, 4(3), 77–79.
10. Tiwari, A. (2020). Ethics of Artificial Intelligence: Indian philosophical perspective. *Journal of Human Values*, 26(1), 19–27. <https://doi.org/10.1177/0971685819893377>



IMPACT ON RIVER BANK EROSION: A STUDY OF LALGOLA CD BLOCK, MURSHIDABAD, WEST BENGAL

Pijush Bahalia
University of Kalyani

Abstract

By natural disasters, we usually mean those that cause disproportionate economic losses and disruptions across regions, nations, and communities. Its impact exposes their social weaknesses and causes different reactions in communities. One such natural disaster is the flood and the erosion of the Ganges River. Currently, the average area of land submerged by rivers in West Bengal is about 800 hectares. The largest river in India is the Ganges. The Ganga River originates from the Gangotri Glacier in Uttarkashi District, Uttarakhand. The Ganges crosses Uttarakhand, Uttar Pradesh, Bihar, and Jharkhand and enters Bengal at Malda and Murshidabad. At Murshidabad, the Ganges is divided into two parts by the Farakka Barrage. On one part, it flows through the districts of Murshidabad, Nadia, Hooghly, etc., of West Bengal and merges into the sea as the Hooghly River. On the other part, the Padma River Murshidabad district Lalgola CD Block crosses the international border, enters the neighboring country of Bangladesh, and merges into the sea. Riverbank erosion is the most affected area in Murshidabad district in West Bengal. The goal of the study is to assess the socio-economic and political impact of river bank erosion on Lalgola CD block in Murshidabad district. A vulnerable area in Taranagar, Khandua, Moya in terms of erosion of the Padma River. The field survey has been conducted, including interviews and primary data collection, and used secondary data, government reports, census, national and international organization books, relevant journals, and articles. Research has shown that the area has suffered extensive damage from river erosion and flooding. This had a longstanding impact on their lives. People have lost their agricultural land as a source of income and have become neo-refugees, losing their homes. They have been deprived of education, health, and everything in between. The government should take specific permanent steps to address the disaster of river erosion and its impacts and ensure social and economic well-being.

Keywords:- Agriculture, Murshidabad, Padma, Socio-economic, Disaster.

Introduction

The largest river in India is the Ganges. The main river Ganga commences at the conflux of Alaknanda from the right and Bhagirathi from the left at Devprayag in the Garhwal division of the Indian state of Uttarakhand. The total length of the river Ganga from its source to its mouth is about 2525 km. Out of the total length of river Ganga, about 520 km. is in West Bengal¹ At Murshidabad,

the Ganges is divided into two parts by the Farakka Barrage. On one part, it flows through the districts of Murshidabad, Nadia, Hooghly, etc., of West Bengal and merges into the sea as the Hooghly River. On the other part, the Padma River Murshidabad district Lalgola CD Block crosses the international border, enters the neighboring country of Bangladesh, and merges into the sea. Padma is one of the other rivers of Bengal, supporting and sustaining major of people on its banks. During the rainy season, this river takes on a devastating appearance. Like other rivers in India, this river has been changing its course over time and space. Changing river courses creates problems such as regional and international border disputes due to land redistribution, population settlement, and poverty. The erosion of the Padma River has become a significant problem. according to Haque (1985)² and Islam (2000)³ it has an immediate and severe influence on human population relocation, and flood and bank erosion are major contributors to landlessness and destitution of rural populations. Directly has a direct negative impact on social and economic well-being. my study area Murshidabad district in lalgola block is located at 24°25'22" N 88°15'22" E, covering an area of 184.37 km². There are 12 Gram Panchayats under Lalgola Block and 250 villages. The main focus is on two Gram panchayats Bilborakopra, Maiya and three villages Moya, Khandua, Taranagar, which are directly affected by the Padma River bank erosion. This study aims to identify the socio-economic aspects of the people affected by river erosion in this area.

Concept of River Bank Erosion

River flow is a continuous and changing process. This continuous change results in riverbank erosion, a natural disaster. The term river erosion refers to the breakdown or erosion of river banks, which is the separation and entrainment of bank materials in the form of grains, aggregates, or blocks by geotectonic processes. Bank failure is a normal occurrence in the meandering course of a river. The erosion rate is highest in the part of the river bend that experiences high water velocity. At the other end, the slow-moving river creates a char by accumulating silt. Professor Damien Lawler (2004) has divided this erosion into three parts, with erosion occurring when the river's velocity increases and sedimentation occurring when the velocity decreases.

- i) Fluid entrainment
- ii) Preparation
- iii) Mass failure

Discussed the aspects of river erosion by the above three methods.⁴

However, natural disasters cannot be blamed solely for riverbank erosion; human-made factors are also to blame in equal measure.

The Bhagirathi River disaster due to natural disasters and lack of government decision-making can be seen as far back as 1700 AD. The accumulation of sediment in the river and the change in the source mouth have created the possibility of loss of life for people living in the areas surrounding the river. In 1938, 90,000 cusecs of water flowed from the Ganges River, and in 1960, that stream dried up, and the flow had reduced to less than 2,000 cusecs.⁵ As a result, trade and commerce on the Bhagirathi-Hooghly rivers have steadily declined. River experts have revealed through their research that due to siltation of the Ganges River, the Hooghly River Port is facing problems in transporting large ships. In 1960, the then-Nehru government realized its importance

and took steps to implement the Farakka Dam project, but the actual work on this dam project began in 1964 under the initiative of Dr. Bidhan Chandra Roy. The Farakka Dam was commissioned in 1975 after construction work was completed. The construction of dams has significantly increased riverbank erosion. The construction of dams has significantly increased river bank erosion and has not solved the problems of Hooghly and Kolkata ports. In my research, the level of erosion of the Padma River in the Lalgola block area has gradually increased since the construction of the Farakka Dam.⁶ In addition, chars are formed when the water level decreases during the dry season.

My research area is Lalgola CD block in Murshidabad district. Two major rivers in this district are influenced by this block. The Padma River in the east and the Bhagirathi/Ganga River in the west. As the Padma River flows through the Lalgola block, severe river erosion occurs in three main areas. In my research, these three areas are Moya, Khandua, Taranagar.

Block	Gram Panchayat	Area	Population	Sex Ratio	Affected Total Household	Affected Total Population
Lalgola CD	Bilborakopra	Taranagar	3853	957 females per 1000 males	25	100
Lalgola CD	Bilborakopra	Khandua	3853	957 females per 1000 males	130	452
Lalgola CD	Maiya	Moya	15131	966 females per 1000 males	221	883

1. Census of India -2011⁷

2. Sphere India 2021-2022⁸

Riverbank erosion has profound socio-economic impacts on people and creates a deep crisis on a national scale. The people of this area have been forced to accept the disaster of river erosion as a natural phenomenon. The immense losses suffered by the people affected by the collapse are discussed below.

Socio-Economic Impact of River Bank Erosion

Migration

The change in the course of the river results in riverbank erosion, where people leave their homes and take shelter in places where erosion does not occur.⁹ The people of Taranagar, Maya and khandua affected by the erosion of the Padma River in Lalgola Block, are losing their shelter and cultivable land and are being forced to take shelter in a safer place. According to government reports, around 240 families and 1,500 people in this area of Lalgola block were affected by the landslide, forcing them to flee the area.¹⁰ Due to this migration, families have been facing various social problems and have become impoverished because they have lost their source of income, along with their sheltered arable land. In 2000AD flood caused catastrophic erosion here, but over

the years, the level of riverbank erosion in this area has increased. This erosion becomes particularly severe during the monsoon season, creating an atmosphere of panic among the people there, preventing them from sleeping at night. People in the area are fleeing their homes and seeking shelter in other safe places. Leaving behind the pain of losing their homes, they are settling in various safe places in Lalgola, Bhagwangola, Jiaganj and Berhampore in Murshidabad district.

Agriculture Loss

Since ancient times, India's economy has been dependent on agriculture, and the majority of India's population is dependent on agriculture. The result will be the destruction of agricultural land, which will directly have a profound impact on the socio-economy. Riverbank erosion poses a risk of damage to agricultural land along the riverbank. Khandua, Moya and Taranagar part of Lalgola Block, have been devastated by erosion for many years. Agriculture is an important resource for the people living along the riverbanks in this rural area. Flooding on the riverbanks increases the fertility of agricultural land due to sediment accumulation, making it suitable for cultivation, but in this area, agricultural land has been extensively damaged by riverbank erosion and submergence. This agricultural land was the main area of activity here. This has resulted in poverty among them which has become the main cause of economic problems. This poverty has forced them to flee their homes. Especially in the Lalgola Taranagar area, the level of river erosion has increased rapidly, damaging both the settlements and agricultural land. About 20 acres of land have been submerged in this area, and the Padma has swallowed up about 10 acres of new agricultural land.¹¹

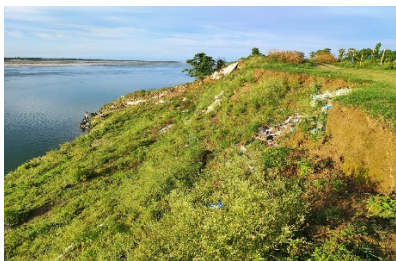


Fig No. 1, Khandua



Fig No. 2, Moya



Fig No. 3, Taranagar

Source: Self-click

Impact on Livelihood

The erosion of the Padma River has destroyed their main source of income, putting their livelihoods at risk. Just as they are moving from one place to another to settle in a safe place, they are also being forced to move from one place to another in search of their source of income. A survey has revealed that most of the men in this area are migrating to different places in other states (Chennai, Hyderabad, Gujarat, Mumbai) in search of work. Some are also moved to go abroad to Dubai and Arab countries. Women are making a living by tying bidi at home, raising cows, goats, and other livestock. The bidi industry has become the main occupation of women in this area.

Other Impact

River bank erosion has a negative impact on the socio-economic sector, as well as on education, health, and politics. Families affected by the collapse in this area are living in danger under the open sky in their gardens due to the loss of their homes. Displaced people are facing various diseases due to a lack of clean drinking water and nutritious food.

School-going children in areas affected by riverbank erosion are facing difficulties in continuing their education. Again, when landless people take shelter in nearby schools, it becomes impossible to hold classes there. As a result of this breakdown, schools are closing down as teaching and learning facilities. Two-thirds of the youth in this area have moved to other states in search of livelihood, resulting in disruption to their higher education.

There is an indirect relationship between politics and riverbank erosion. Government action and its activities play an important role in protecting rivers. The main task of the government is to address the financial difficulties in providing relief camps and building houses in safe places for those affected by river erosion and flooding during the monsoon season. But the anger of the people affected by the devastation in this area proves the stability of the government's work. Very little attention has been paid to building permanent structural dams and developing self-help strategies.

Conclusion and Recommendations

Riverbank erosion is a natural disaster and has a direct impact on the people living there, resulting in the collapse of the socio-economic structure. Loss of family land had a negative impact on the livelihood of the surveyed households. Due to river erosion, the source of income of people in this area has changed from agriculture to daily wage labor, business, etc. A long-term strategy should be adopted to address riverbank erosion. Disasters can be addressed by ensuring land transfer in this area. The government should adopt infrastructure to prevent dam collapse through permanent construction work. The government has been able to prevent temporary erosion by building embankments with sacks and stones at Khandua and Moya in the Lalgola block. But the government has not built a permanent construction structure to prevent the collapse of Taranagar in Bilborakopara Gram Panchayat. When local villagers complained, the administration temporarily spent 2 lakhs 70th thousand Rs. to build a dam using bamboo, but no solution was found.¹² Permanent infrastructure is needed during dam construction to prevent erosion in this study area.

References

1. Ghosh, D. Environmental impact of Ganga Bhagirathi River bank erosion in Jangipur sub-division of murshidabad district West Bengal, 2019. <http://hdl.handle.net/10603/473068>
2. Haque, C.E., (1985). Impact of River Bank Erosion in Kazipur: An Application of Landsat Imagery. Workshop of the Impact of River Bank Erosion and Flood Hazards in Bangladesh, Dhaka.
3. Islam, S.N. (2000). Char people, living with the Padma River and fragile environment: char study report March 2000. Gono Unnayan Procheta (GUP), Dhaka.
4. Bandyopadhyay, S. (2009) Riverbank erosion: Nature of the hazard and its mapping techniques (in Bengali)
5. Parua, P.K. 2010. The Ganga: Water Use in the Indian Subcontinent.

6. Rudra K. 2004. The encroaching Ganga and social conflicts: the case of West Bengal, India pp- 15-18.
7. Census of India -2011
8. Sphere India 2021-2022 Report.
9. Das TK, Halder SK, Gupta ID, Sen S (2014) River bank erosion induced human displacement and its consequences. Living Rev Landsc Res.<http://www.livingreviews.org/lrlr-2014-3>
10. District Survey Report of Murshidabad District. Nov -2021.
11. <https://bengali.news18.com/news/murshidabad/lalgola-padma-river-erosion-terrified-villagers-118-local18-1856108.html>
12. <https://bengali.news18.com/amp/news/south-bengal/terrible-padma-erosion-in-lalgola-rds-1853085.html>



INDIAN TRADITIONAL KNOWLEDGE IN COLLECTIVE ENVIRONMENTAL CONSERVATION

Prashant Tripathi

Assistant Professor

Dept. of History, Motilal Nehru

College (Evening), University of Delhi

Abstract

This paper focuses on the idea of nature conservations through Indian cultural traditions. Indian culture and traditions are always connected with nature and rituals are laid down to protect biodiversity. From the very earliest time Indians take pride in their cultural heritage. It is very vital to understand that ancient Indian sacred writings are filled with so much about nature's importance and conservation in many ways. Giving respect for nature is inherent in many religious faiths. This has been richly reflected in a diverseness of traditional practices, rituals, religious beliefs, folklore, arts and in the normal livings of Indians from time primeval. Though in Hinduism, we find many rituals, worshipping the sun, land, animals, plants, trees, wind and water these are the base of human existence and survival. Earth summit 1992 produced the Rio declaration on environment and development, it affirmed the rights of people to safe & clean environment and most important to adopt sustainable development. In the current scenario world has now understood the connection of our way of living and its impact on our environment. This paper will deal with cultural traditional practices of India towards nature conservation & their relevance in today's era of nature degradation.

Keywords- Environment, Conservation, Harmony, Traditional Knowledge, Communities, Sacred Groove, Nature Worship.

Introduction

As we are living in 21st century and having impressive attachments with nature, we have not shown firm desire in the field of writing of environmental history in India. Historical perspectives on these topics are important to develop the meaningful relations to landscape and nature in environmental history. Many countries of the world have plentiful customs embedded in the ethics of protecting environment. Several oldest cultures and tradition tell us how communities lived in association with biodiversity & nature.

From the early Vedic time of Rig-veda shows harmony between traditional practices and our nature. Sacred groves assign to forests untouched but protected by local communities and settler, which are distinguished spiritual sense. As we all know the study of Gautama Buddha and enlightenment was also under the shade of a Banyan tree. (Negi C.S., 2010). The notions of

cultural ecology stem from the efficacy of nature on cultural development. The key features include the influence of environment on culture, focus on confronting, and mutual links between culture and environment as seen by indigenous groups who depend on forest resources for their survival. **(Symour, Mike, 2004)**. An ecological ethics continue to stay in indigenous groups or societies, though frequently in reduced way. Examination of traditional resource utilization aspects and involved cultural societies prevailing in rural Indian societies show that a huge number of essences of local biodiversity, inattentive of their use importance, are safeguarded by the indigenous cultural rituals and customs. Perhaps, many of these may not have an idea of conservation impact, still may symbolically reflection a collective appreciation of the value of affection and respect toward nature. **(Ramakrishnan, Prakash, 2007)**. Local groups and communities have nevertheless preserved lands and resources far better than other groups or communities. This is because of low inhabitant densities and special rituals, beliefs, and cultural practices, hereby limiting resource utilization in so many ways and with lesser environmental degradation. On the other hand, societies who were large- level timber harvesting and migrants from different regions has had huge impact on ecological degradation because they were not familiar with the ecosystem **(Redford, Kent and Sanderson S., 2001)**.

The study of the indigenous societies and communities is very significant, because it can tell us the idea of more containing and significant environmental conservation ideas by linking both today's and traditional ecological understanding, knowledge and traditions. The main hypothesis of this paper is the utility of the religious and cultural perspective to explain conservation customs that will enhance the importance of environmental resources management. Therefore, the main objective is to inquire the cultural description, the local rituals, beliefs and spiritual customs, practices of indigenous communities in India from the very earliest of time and how they managed to maintained a harmony with their surrounding nature and the link between these indigenous practices and environmental conservation.

Human – Nature Interactions

What we think about environmentalism can be considerably explained as an ideology, mainly focuses on core environmental considerations as well as associated with mainly political, economic, and social issues deriving from humanity's interaction affecting the environment. **(Slocambe DA., 1980)**. In this reference, human environment connection has been retraced activities, from degradation of environment and natural resources to habitat management and restoration. **(Radkan J., 2013)**.

Environment in India; Cultural Traditions

Historian **Felipe Fernandez-Armesto**, in his book “Civilizations; Culture, Ambition and the Transformation of Nature”, described civilization as a ‘type of relationship’. He explained civilization from the aspect of human and nature. Armesto defined it as a ‘relationship to the natural environment, recrafted, by the civilizing urge, to meet human demands’. Civilizations overexploit the nature, many times to the point of self- destruction. **(Armesto Felipe F., 2001)**. On the other side when we look at Indian civilization, we find a great harmony between human and environment. In the past it tells us profound awareness how to maintain balance with nature. In this tranche, to inquire the human- nature interaction, ancient civilization of India tells significant ways about human-nature relationship. So many examples since the early history, it would be reasonable to take a flash

at some of them.

Ancient Indian texts like Vedas, Satpatha Brahman, Arthashastra, Mahabharata, Rajtarangini and many more scriptures reflected the forest ecology, nature conservation and the importance of nature in a significant manner. The description of respect, love, and importance toward nature can be seen in Rig-veda when it says about close kinship, 'Heaven is my father, my mother is this earth, my close kin.' Another important text Atharva-veda contains the hymn – 'Bhumi Sukta', in the great praise of earth. Surpala's Vrikshyurveda, for example, describes in details about trees, tree planting and several other points related with plant science including the cure of dying and sick trees. In this tranche another one should also be discussed, the Mahabharata, in the 'Bhisma Parva', refers to the earth as if we take care of earth, it becomes mother, father and heaven of all the creatures. Mahabharata also compares trees to universe, says, who worships the ashvattha (Peepal, holy big tree) worships the nature. When we look back at the Indus valley civilization, tree worship was even known in Harappan culture. In today's rural India's rituals & customs, trees and plants continue to play important role. The great philosopher of Tamilakam, Thiruvalluvar describes about nature and man's protection. If he destroys her, he remains without protection. In the Arthashastra, Kautilya talks about the needs and the importance of Abhyaranya (forest) and animal sanctuaries. Kautilya also prescribed the post of a forest superintendent and penalties for degradation of forests. The sacred grove tradition was a natural part of the Indian environmental tradition. There was the Kovilkadu in Tamil Nadu, Kavu in Kerala, Nandvana in Karnataka and Andhra Pradesh, Deorai in Maharashtra. These sacred groves gradually grew into rich ecological repositories and are facing threats today because of negligence and population pressure (**Ganguly; 2012**).

In Susruta-Samhita by Susruta and Charak- Samhita by Charaka are considered as very important ancient Indian documents especially in medical sciences. These books describe and examines about many deceases, their treatment process. These books are also very significant for the utility of medical crops and plants resources. The Charak-Samhita also includes sections on the significant role of diet, hygiene, medical education, prevention and about physician. The Susruta-Samhita is best known for its approach of surgery. These books also dealt with environmental perspectives as well. Charaka and Susruta classified land according to the nature of soil, climate and vegetation (**Bhattacharya; 2014**).

Indigenous people of India and nature conservation

The indigenous and ethnic people from across the globe have learnt to live in most obstructive environmental condition in this universe. In India there are 4573 communities living in many different geographical regions and among these communities 573 are tribal communities. These tribal communities live very close in the localities of forests and they have managed & conserved the biodiversity of their vicinity. India as a country with huge ethnic communities is rich in biodiversity. There are 45000 species that are important, 7500 of these species are use for medicinal purposes and use for indigenous health practices. At least 3900 types plant species are being used by tribes as food, 300 species of plants are used in making and extraction of chemicals and extraction of resins, dyes, gum and perfumes (**Arora; 1997**).

Due to magico-religious belief there are many plants are conserved in their natural habitat by tribals, these plant considered as god and goddess. The tribal culture prevalent in central India

has been recorded in Balaghat, Dindori and Mandala districts of Madhya Pradesh and Kawardha and Bilaspur districts of Chhattisgarh states. The survey has revealed a huge influence of plants on these regions tribal communities. These tribal communities respect and worship these plants and flower because they believe that God and Goddesses reside in those plants and trees. For example such plants are as Aam (mango, *mangifera indica*) knows for that lord Vidhyandhara reside in this plants, Lord Bramha resides in Arjun(*Terminalia arjuna*), Lord Shiva in Bel(*Aegle marmelos* Corr), Goddess Lakshmi in Tulsi(basil) and many more. There are also many plants like *Argemone maxicana*, *Grewia hirstum*, *Capparis dedicus* are conserved by tribals in natural habitat and utilized as medical herbs. **(Rajiv Rai & Vijendra nath)**

Conclusion

The practice of environment conservation is very ancient tradition in India, so ancient in fact it goes back to pre-agricultural stage of society. In this wide-ranging reflection on Indian experience we have considered collective ethics of nature, as they are expressed in sacred texts, religious ideas, practices and social actions. This paper has argued, a continuing dialogue between old cultural traditions, available traditions and contemporary or living practices and customs; a process of constructing and ethics of nature through reflection, expression and emotion. And also examine how indigenous communities of India played and playing a significant role in conservation of biodiversity.

References

- (1.) Negi C.S. (2010). *Traditional Culture and Biodiversity Conservation: Example from Uttarakhand, Central Himalaya*. Mountain Research and Development.259-265.
- (2.) Symour, Mike. (2004). Partnerships to Support sustainable Development and Conservation. *Conservation Biology*. 613-615.
- (3.) Ramakrishnan, Pakash. (2007). Traditional knowledge, Cultural Heritage and Sustainable forest management. *Forest Ecology and Management*. 91-99.
- (4.) Redford, Kent and Sarah S. (2001). Extracting Humans From Nature. *Conservation Biology*. 132-164.
- (5.) Slocambe, DA. (1980). Environmentalism: a modern synthesis. *Environmentalist*. 281-85.
- (6.) Radkon, J. (2013). Nature and Power: an intimate and ambiguous connection. *Social Science History*. 325-345.
- (7.) Armesto, Felipe F. (2001). *Civilizations: Culture, Ambition and the Transformation of Nature*. New York: the free press.
- (8.) Ganguly, Anirban. (2012). *Man and Environment in India: Past Traditions and Present challenges*. Vivekanand International Foundation.
- (9.) Bhattacharya, Sayan. (2014). Forest and biodiversity conservation in ancient Indian culture: A review based on old texts and archeological evidences. *International Letters of Social and Humanistic Sciences*. 35-46.
- (10.) Arora, Ranjit k.(1997). Ethnobotany and its role in the conservation of plant genetic resources in India. *Ethnobotany*. 6-15
- (11.) Rai Rajiv, Nath V. The role of ethnic and indigenous people of India and their culture in the conservation of biodiversity. *Tropical Forest Research Institute*, Jabalpur, Madhya Pradesh, India, 482021. <https://www.fao.org/4/xii/0186-a1.htm> Retrieved on 25th May, 2025.



COLONIAL INFLUENCE ON INDIAN LANGUAGE AND LITERATURE (1750-1947)

Roshni Pareek

Research scholar

St. Wilfred P.G. College,

University of Rajasthan (Jaipur, Rajasthan)

Abstract

This research paper examines the profound influence of British colonial rule on Indian language (Bhasha) and literature (Sahitya) from 1750 to 1947. The British imposition of English as the administrative and educational language led to the marginalization of indigenous tongues while simultaneously inspiring new literary forms. Indian languages underwent standardization and modernization, while literature evolved to reflect socio-political themes such as reform, nationalism, and identity. Prominent literary and political figures leveraged both vernacular and English mediums to foster cultural expression and resistance. The study explores these developments in the broader context of colonial policies, educational changes, and print culture, offering insights into how this complex legacy shaped modern Indian linguistic and literary identity.

Introduction

The colonial period in India, spanning from 1750 to 1947, witnessed a radical reordering of the subcontinent's linguistic and literary landscape. Under British rule, the deliberate privileging of English over Indian languages not only marginalized indigenous linguistic traditions but also shaped the course of literary expression. While literature in pre-colonial India was deeply rooted in oral traditions, religious texts, and classical forms, the colonial era introduced print, prose, realism, and reformist narratives that redefined Indian literature. The contrast between pre-colonial and colonial periods becomes stark when evaluating the linguistic policy and literary production of the time. English emerged as the language of administration, education, and elite communication, diminishing the political and educational role of classical languages like Sanskrit, Persian, and Arabic. Simultaneously, Indian vernaculars—such as Hindi, Bengali, Tamil, and Urdu—underwent transformation and standardization, influenced by English grammar and vocabulary. Literature during this era responded directly to these linguistic changes. Indian authors began writing novels, essays, and plays—genres introduced by the West—while infusing them with indigenous themes. The colonial encounter thus created a unique literary space that merged Western literary techniques with native sociopolitical concerns, such as social reform, nationalism, and identity. This paper places the colonial

influence on Indian languages and literature in historical perspective, arguing that the effects of British policies are still visible in postcolonial India's educational system, linguistic hierarchy, and literary imagination. The colonial legacy continues to influence what languages are taught, what literature is valued, and how Indian identity is constructed through words.

Language policies

The British colonial administration enforced language policies that elevated English and reshaped India's linguistic structure. Thomas Babington Macaulay's famous Minute on Indian Education (1835) explicitly argued against promoting Sanskrit and Persian as mediums of instruction, advocating instead for English. He famously stated...

“We must at present do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions whom we govern... a class of persons Indian in blood and colour, but English in taste, in opinions, in morals and in intellect.”

Charter Act (1813), Allowed missionary education, promoting Western ideas through English. Introduced Western literature and religious texts in Indian languages. English Education Act (1835), Officially made English the language of higher education. Marginalized traditional Indian education and regional languages. Wood's Despatch (1854), Promoted English at higher levels; vernaculars only at primary level. English universities were established, reinforcing linguistic hierarchy. Vernacular Press Act (1878), Controlled non-English press to limit nationalist discourse. Shows fear of vernacular influence and its political power.

In 1833, there was a change in the government's education policy, and instead of promoting Indian languages, now English began to be favored. Under the chairmanship of Sir Erskine Perry, the Bombay Education Board became strongly pro-English, and it withdrew support and funding for Indian languages. This was a challenge for Indian writers, and Indian authors did not delay in accepting it. Balshastri Jambhekar, Dadoba Pandurang, and Parashuram Tatyaji Godbole accepted this challenge. Jambhekar wrote several textbooks in Marathi.

Literature transformation

Colonial rule inspired a departure from mythological and devotional texts toward socially conscious literature. Indian writers adopted European literary forms like the novel and the essay to comment on contemporary social issues, such as caste discrimination, gender inequality, and colonial injustice. Literary realism gained ground, and many authors wrote with a nationalist spirit. Also The Numerous literary and political figures responded to and shaped the colonial influence on Indian language and literature.

1. Shift from oral and devotional to written and secular prose —

Traditional literature was largely oral, poetic, and devotional. British education introduced prose, realism, and the novel—new forms that emphasized logic, narrative, and secular themes.

- **Bankim Chandra Chattopadhyay(1838–1894)** – Also known as **Sahitya Samrat (Emperor of literature)** in Bengali. He was an Bengali novelist, poet, essayist and journalist. Wrote the nationalist novel Anandamath(1882) and introduced political themes into Bengali literature. In 1872, he published a magazine called '**Bangadarshan**', through which he

significantly contributed to the development of Bengali language and literature. In Bankim's words, the purpose of this magazine was—"To free people from English influence... and to converse with the public in the language they understand."² Later in life, religion had a great influence on him. He expressed his views on Hinduism in books like '**Krishna Charitra**' and '**Dharmatattva**', presenting the core principles of Hindu philosophy. Bankim Chandra Chatterjee, a well-educated individual shaped by Oriental philosophies, maintained a cordial relationship with Sri Ramakrishna Paramahansa despite the latter's lack of English proficiency. In a light-hearted exchange, Ramakrishna once played on the meaning of the name "Bankim" (which means "bent") and asked what had caused him to bend. Bankim humorously responded that it was the result of being kicked by a British officer's boot — a reflection of his known opposition to British colonial rule.

1. Emergence of the Indian Novel —

The novel became a powerful medium for expressing social issues like caste, gender inequality, and nationalism.

- **Munshi Premchand(1880-1936)** – First name was Dhanpat Rai Shrivastava.¹ Pioneer of realist fiction in Hindi and Urdu; addressed caste, poverty, colonial rule. The best example of Premchand's creative writing is his more than 250 stories. These stories are compiled in various volumes of the story collection named 'Mansarovar'. From the perspective of style and composition, these are well-structured and focused. His novels are also notable, with the backdrop being the rural life of northern India. Due to their realism, the writer captures the reader's mind. Often, he writes his stories based on a psychological or moral question. His female characters are prominent. They raise their voices against injustice. The role of writers in highlighting social and political issues is very important. Premchand's female characters naturally touch the reader's heart and influence them. If the condition of women in northern India has improved over the past hundred years, some credit goes to Premchand as well.
- **Toru Dutt(1856-1877)** – Toru Dutt was one of the first Indian women to write poetry and stories in English and French during British rule. She showed the world that Indians could write beautiful literature in foreign languages. In a time when very few Indian women were educated or writing books, Toru Dutt became a symbol of women's empowerment and talent. Toru Dutt acted like a bridge between Indian and Western literature—she loved Indian stories but used English and French to tell them to the world. Famous Works of her :
 "Ancient Ballads and Legends of Hindustan – A book of poems where she retold Indian stories in English."
 "A Sheaf Gleaned in French Fields – A translation of French poems into English."

2. Rise of Nationalist literature —

- **Rabindranath Tagore(1861 – 1941)** – Blended Eastern and Western literary traditions; first non-European Nobel laureate in literature. Rabindranath Tagore was one of the most influential literary and intellectual figures of colonial India. His contributions during the period between 1750 and 1947 were profound, both in the realm of literature and in shaping a

modern Indian cultural identity under British rule. His works explored a wide range of subjects including nationalism, spirituality, social reform, and the conflict between tradition and modernity. He was a prolific writer, composing over 2,000 songs (known as Rabindra Sangeet), hundreds of poems, short stories, novels, plays, and essays. His literary masterpiece *Gitanjali* (Song Offerings), a collection of poems translated into English, earned him the Nobel Prize in Literature in 1913 — making him the first Asian to receive the honor. In *Gitanjali*, Tagore fused Indian philosophical thought with lyrical beauty, giving the world a poetic expression of India's spiritual heritage. Tagore also challenged colonial cultural dominance through his writings. While he criticized narrow nationalism, he was an advocate of intellectual and cultural self-respect. He believed in the power of education and language to awaken national consciousness. To this end, he founded Vishva-Bharati University in Santiniketan in 1921 — a place where Indian and Western traditions could meet freely, outside the colonial framework of education.

- **Subramania Bharati(1882-1921)** – Nationalist Tamil poet who wrote about freedom, women's rights, and social justice. Bharati modernized the Tamil language, making it accessible and powerful for political and social expression. Enriched Tamil with new words and ideas by blending Sanskrit, English, and colloquial Tamil. Helped evolve journalistic Tamil through his essays and editorials in newspapers like *India* and *Swadesamitran*. **In 1906, he met Sister Nivedita and was so influenced that Bharati accepted her as his guru and dedicated two of his books to her.** In his poems, Bharati gave the concept of the motherland a form that no one else had. His major work is 'Swadesha Gitangal' (1908), in which he portrayed patriotic devotion with a new color that only he could present. He described the geographical features and spiritual greatness of the country and called upon every individual to make the nation proud through their actions and to live a meaningful life by following the efforts of the greatest personalities of the nation.

3. Introduction of Drama and Essays —

Western drama inspired Indian playwrights to address contemporary issues on stage.

- **Bharatendu Harishchandra (1850–1885)** - is widely regarded as the **Father of modern Hindi literature and theatre**. His contributions during the colonial rule were foundational in shaping modern Hindi language, literature, journalism, and nationalism. Advocated for Hindi as a literary language; used theatre and journalism for social reform. Bharatendu advocated for Hindi in Devanagari script over Urdu or Persian, which were dominant under Mughal and early colonial administration. He emphasized the use of simple, accessible Hindi for the masses, making literature more democratic and nationalistic. He worked to modernize Hindi, incorporating elements from Sanskrit and adapting it to express contemporary political, social, and cultural issues.

4. Bilingual and Cross – Cultural literature —

Educated Indians began writing in both English and their mother tongues, bridging literary traditions.

- **Michael Madhusudan Dutt(1824-1873)** – Introduced blank verse and European genres

into Bengali poetry. Dutt is considered a founding figure of modern Bengali poetry. He introduced Western literary forms like blank verse and epic poetry into Bengali, which was unprecedented at the time. His adoption of Shakespearean drama and Miltonic epics in the Bengali context reshaped native literary expression. He was a gifted linguistic and polyglot. He studies English, Bengali, Hebrew, Latin, Greek, Tamil, Telugu, and Sanskrit.³

5. Bridge between the Classical and Modern literary sensibilities —

Showed that Urdu could express complex philosophical and personal thoughts, influencing generations of poets and writers.

- **Mirza Ghalib(1797-1869)** – Urdu and Persian poet whose work reflects the cultural upheaval of the colonial transition. Ghalib lived during a time of major upheaval, including the 1857 Revolt. His writings reflect the collapse of the Mughal court, the trauma of colonization, and the cultural transitions under British rule. Ghalib revolutionized Urdu prose by writing casual, personal letters in a natural, conversational style. These letters are considered the foundation of modern Urdu prose. Helped elevate Urdu as a sophisticated literary language alongside Persian. Showed that Urdu could express complex philosophical and personal thoughts, influencing generations of poets and writers.

Conclusion

British colonialism restructured India's linguistic priorities and reshaped its literary expression. While it led to the decline of some traditional languages and forms, it also facilitated the rise of modern prose, the novel, journalism, and a new intellectual elite. The legacy of colonial language policies continues to influence India's cultural and literary framework, revealing a dual inheritance: loss and innovation. Understanding this historical influence is essential to grasp the contemporary dynamics of language, education, and literature in India.

References

1. Premchand, Gopal, Madan. My life and times, Premchand: An Autobiographical Narrative, Recreated from his works (2006). New Delhi lotus collection, Roli books, 2006. P. 1
2. De Bary, W. Theodore, et al., editors. Sources of Indian Tradition. Vol. 1, Columbia University Press, 1988, p. 709.
3. Gibson, Mary Ellis. Indian Angles: English verse in colonial India From Jones to Tagore, Published by, Ohio university Press, 2011. P. 166
4. Grover, B. L., Alka Mehta, and Yashpal. Aadhunik Bharat Ka Itihaas: Ek Naveen Mulyankan: 1707 E. Se Aadhunik Kaal Tak, 36th Edition, S. Chand and company, 2018. P. 502
5. Tarachand, History of The Freedom Movement in India, Part-2, Published by : Publication division, New Delhi, 2022. P. 563



BEYOND THE MUTINY : RE-EXAMINING THE 1857 REVOLT THROUGH DIVERSE HISTORICAL LENSES

Priyanka

Research Scholar

Vinoba Bhave University, Hazaribag

Abstract

The Revolt of 1857, considered a significant turning point in Indian history, commenced on **May 10th, 1857**, in Meerut before spreading to Delhi and subsequently to **Kanpur, Lucknow, Jhansi, and the entire Ganga-Yamuna, Doab region**. This revolt was not a sudden occurrence but rather the culmination of prolonged suffering under colonial rule. The religious honor and social customs that formed the bedrock of both **Hindu and Muslim** societies faced a severe threat, igniting anger and frustration among the populace. Consequently, military revolts and insurrections arose in various parts of India. Several smaller uprisings preceded this major event, including the **Vellore Mutiny of 1806**, the **Barrack pore Mutiny of 1824**, the **Ferozpur Mutiny of 1842**, and revolts within the **7th Bengal Cavalry, the 64th Regiment, and the 38th Native Infantry**. These smaller revolts eventually coalesced into a large-scale uprising that compelled the colonial government to reconsider its strategies. This was the first instance that profoundly shook the colonial administration, making them realize that unified resistance posed a significant threat to their rule. This realization prompted a change in their governance strategies. Despite acknowledging the gravity of the situation, they often downplayed the revolt as a mere **“Sepoy Mutiny”**. Many contemporary imperialist historians, along with some Indian historians, characterized it as a limited military uprising lacking widespread public support. A significant shift in perspective occurred when 20th-century historians re-examined the Revolt of 1857. Observing the multifaceted nature of the uprising, they largely disagreed with the notion that it was solely a sepoy mutiny. Since then, the nature and characteristics of the 1857 revolt have remained a subject of ongoing debate and research among historians. Through this article, my aim is to present the various viewpoints and perspectives of historians of different schools to facilitate a more comprehensive understanding.

Introduction

The Colonial Government's continuous demand and infinite greed made our country suffer and suffer only. This continuous suffering and frustration erupted in the form of the **first military revolt** and later turned into **the Great Revolt of 1857**. The result of this colonial government rule was almost washed off in the **Ganga-Yamuna Doab region** for almost a year. On May 10th, 1857,

the sepoy regiment of **Meerut rebelled**, and the next day, the rebellion spread to **Delhi**. They proclaimed **Bahadur Shah Zafar** as king to legitimize their act. The revolt spread and spread, covering almost every important region of North India. The revolt at first shook the minds of the British, but with the help of their army, their modern weapons, supporters among many traitors, a proper administrative system, etc., all these things helped them bring this revolt under their control. This revolt also made them realize the need to change their strategy for continuous rule and ensure their government's existence. Still, despite knowing all the facts, they tried to reduce its significance to control the situation.

Colonial and Imperialist Interpretations

Imperialistic historians of that time did their best to prove it as a '**Sepoy Mutiny**'. Historians like **Mallison, Trevelyan, Lawrence, Colonial, and Imperialist Interpretations: Reducing a National Uprising to a Mutiny**. Have described it only as a rebellion of soldiers that did not receive public support. All of them considered it a sepoy mutiny. The reason they mentioned for this revolt was only the rumors spread among the soldiers that the cartridges of the new Enfield rifle were greased with the fat of **pigs and cows**. As this touched the sentiments of both religions, they revolted against them; hence, they concluded that this 1857 revolt was not much more than that. Some contemporary Indian historians like **Munshi Jivan Lal, Durgadas Bandyopadhyay, and Sir Syed Ahmad Khan** also supported the same view, and their perspective was very similar to that of the imperialistic historians. Historians like **Sir John Lawrence** and **Seeley** said that the Revolt of 1857 was a "**completely unpatriotic and selfish military revolt which had neither any local leadership nor did it have the support of the general public.**" According to him, it was a revolt of the Indian army against an established government. Some imperialistic historians also called it a "**Hindu-Muslim Conspiracy**" against British rule. This theory was refuted by **Sayed Ahmad Khan** in his Urdu essay "**Asbab-e-Baghawat-e-Hind**" ("**The Causes of the Indian Revolt**"). According to him, the revolt was not confined to a sepoy mutiny but was a general outbreak due to several grievances.

Durgadas Bandyopadhyay, who was in Bareilly at that time, expressed views like those of **Sir Syed Ahmed Khan**, describing the 1857 revolt as a "**struggle for supremacy between white and black people.**" Many other imperialistic historians also considered this revolt a conflict between Western and Eastern civilizations. Furthermore, numerous colonial historians framed this revolt as a "**Hindu-Muslim conspiracy**" to obscure the British government's cruel policies. Historians like **H.G. Keene**, on the other hand, blamed the "overambitious policies" of Governor-General Dalhousie. Keene argued that Dalhousie's expansionist "**Doctrine of Lapse**" created significant dissatisfaction among states like Satara, Jhansi, Punjab, and Nagpur. According to this policy, states without a natural-born male heir were to be directly annexed by the colonial government, as the British government no longer recognized adopted sons as legitimate successors. These annexed states subsequently revolted and played a vital role in the 1857 uprising, making it a remarkable turning point for later resistance movements.

Historians like **L.E.R. Rees** thought that the revolt was a war of fanatic religionists against Christians. Both communities resorted to their religious texts to justify their actions. Colonial historians like **T.R. Holmes**, to ruin the Indian image and justify colonial action, said it was "a conflict between

civilization and barbarism.” Historians like **Sir James Outram** and **W. Taylor** described this rebellion because of a Hindu-Muslim conspiracy. Outram believed “it was a Muslim conspiracy in which Hindu grievances had been taken advantage of.

Western scholar especially those from **Cambridge Oxford and London Universities** including those from **US and Australia** considered this revolt also as a “military revolt of 1857”.

The explanation given by the imperialistic historians shows one side of the revolt. They tried to portray it in a way that defended their government and blamed Indians for everything. This perspective was valid only until nationalist historians emerged. Their opinion has been valid since then.

Nationalist Interpretation

In 19th Century Historians of Nationalist school is the whole perspective of the imperialists by proving that it was much bigger than a sepoy mutiny, providing numerous instances. The first Nationalist Historian, **V.D. Savarkar**, in his book “**The Indian War of Independence of 1857**,” **published in 1909**, rejected the colonial stance of linking the revolt with greased cartridges. According to him, “if this had been the issue, it would be difficult to explain how it attracted **Nana Saheb**, the Emperor of **Delhi**, the **Queen of Jhansi**, and **Khan Bahadur Khan** to join it.” Besides this, he also focused on the fact that the revolt continued even after the proclamation from the Governor-General to withdraw the offending cartridges. Ashok Mehta also tried to prove in his book “The Great Rebellion” that the rebellion of 1857 was national in character. V.D. Savarkar called this rebellion a “**Planned War of Independence**.” Historians like **Benjamin Disraeli**, a prominent leader of the contemporary Conservative Party in England, called it a **National Rebellion**. According to him, this rebellion was not a sudden inspiration but was the result of conscious coincidence and was the result of a well-planned and well-organized effort which was waiting for the opportunity. The rise and fall of an Empire do not happen due to a matter of greased cartridges. Such rebellions happen due to the accumulation of proper and sufficient reasons. Some other categories of Nationalist Historians have different perspectives that favor both views on certain aspects.

S.N. Sen and R.C. Majumdar the Cautionary Nationalist Stance

Historians like **Dr. Sen** believed that the 1857 revolt was indeed a freedom struggle. His argument rested on the idea that revolutions are typically the work of small groups, which may or may not have widespread public support. To illustrate this, he cited the **American Revolution (1775-1783)** and the **French Revolution**. In both these instances, a significant portion of the English settlers in America initially supported the English government, and by the end of the American Revolutionary War, approximately sixty thousand English loyalists migrated from America to Canada. Similarly, the French Revolution also had its share of people who supported the monarchy. Therefore, Dr. Sen considered the 1857 revolt a revolution. However, he hesitated to label it a nationalist revolution, given that many people in India remained neutral during the uprising.

He further stated that the revolt started as a military uprising, and when the rebels declared themselves to be under the King of Delhi and the landlords, and many civilians accepted their subordination, all these things gave this revolt a political shape. He further says that the war, which started as a war to protect religion, soon assumed the form of a struggle, and there is no doubt that

the rebels wanted to end a foreign government and re-establish the ancient system in which the King of Delhi was a real representation; thus, he comes to the conclusion that “The rebellion which started as a religious conflict ended in the form of Indian independence.

“ **R.C. Majumdar**, in his book “Sepoy Mutiny and the Revolt of 1857” and in the book “**British Paramountcy and the Indian Renaissance, Vol. 9,**” argued that the Revolt of 1857 was not a freedom struggle, but he also argued that the revolt manifested differently across various regions. In regions like **Punjab and Madhya Pradesh**, it primarily began as a sepoy mutiny, although later some individuals dissatisfied with British policies also joined. However, in regions such as Uttar Pradesh, parts of Madhya Pradesh, and the western areas of **Bihar**, it evolved into a widespread popular revolt, involving both sepoys and the general populace. Some places, like Rajasthan and Maharashtra, largely remained aloof from this revolt, seemingly unwilling to transgress the legal boundaries set by the colonial government, despite harboring sympathy for the revolutionaries of 1857. **R.C. Majumdar** gave considerable weight to the sepoy mutiny aspect, noting their larger numbers and their opposition to the colonial government. However, he argued that their motivations were not initially driven by nationalist sentiments; rather, they rebelled due to issues concerning salary and the adverse consequences of British policies that caused them hardship. They were not, in his view, fighting directly for national liberation. Nevertheless, what lends this revolt a special place in history is its nationalist undercurrent, which, while not the primary motivation at the time, became apparent indirectly and in retrospect.

He writes, “It is said that Julius Caesar was more powerful dead than alive.” The same can also be said about the Revolt of 1857. Whatever its actual nature, it soon became a symbol of challenge for British rule in India. It was a shining example and gained the full glory of a national freedom war against the British. Another Indian historian, **Dr. S.B. Choudhry**, in his book “**Civil Rebellion in the Indian Mutinies, 1857-59,**” argued that we can divide this rebellion into two parts: a military uprising and a civil rebellion, and both were triggered by independent causes.

Civil Rebellion and Dual Nature of the Revolt

Apart from him, **P.C. Joshi**, who wrote many essays on the concerned topic, but due to his sudden death, his work on the topic of 1857 was edited by **C.A. Bayly** in his book “**The Peasant Armed: The Indian Revolt of 1857.**” This work focused on both the diversities and the specificities of the 1857 revolt.

Marxist perspective

From the 1920s, histories of the revolt came from a Marxist perspective. **Marxist historians** like **M.N. Roy**, in his book “**India in Transition,**” saw the **1857 revolt** as a struggle between the worn-out feudal system and the newly introduced commercial capitalism that aimed to achieve political supremacy. Meanwhile, **R.P. Dutt**, in her “**India Today,**” saw 1857 as a major peasant revolt, even though it had been led by the decaying feudal forces fighting to regain their privileges and turn back the tide of foreign domination. Jawaharlal Nehru called this revolt a “**feudal outburst**” and did not support it as he believed it was primarily anti-British.

The Subaltern Approach: Voices from Below

The Subaltern School made the first attempt to include the inferior classes in historiography. **Ranjit Guha**, who was the general editor of **“Subaltern Studies: Writings on South Asian History and Society” (1982)**, pointed out that colonial rule led to the revitalization of landlordism, which oppressed the peasantry, leading to recurrent revolts (**The Santhal and Bhil revolts in 1855 and 1852, respectively**), which formed the background of the Revolt of 1857. Historians like **Rudrangshu Mukherjee** highlighted the relationship between the landlords and the mobilization of the peasants into the revolt. They were the first to be aware of the approaches of colonial rule and its exploitation in India. Tapti Roy’s work presented the revolt by focusing on **village-level events** and the condition of the common people affected by the Company’s rule.

Conclusion

A Revolt of Many Faces Thus, from the above points, we see that the historian prospective on the nature and character of the 1857 revolt has continuously shifted from the time to time. **Even it broke out until now.** Contemporary historians of 1857 initially concluded it was solely a **“Sepoy Mutiny,”** but later the Nationalist Approach concluded it was the first national war of independence. Meanwhile, many nationalist historians supported both approaches, meaning that the revolt initially started as a Sepoy Mutiny but later evolved into a struggle for Indian independence. Another school, the Marxist school, has its own perspective, according to which the Revolt of 1857 was a democratic alliance of soldiers and peasants who wanted to gain freedom and liberate their nation from the imperialistic government, whose failure was mainly due to betrayal by the feudal lords. They argued that there was no idealism or progress behind this revolt. In contrast, the Subaltern School tried to depict this revolt from the perspective of the common people. Hence, the nature and character of the 1857 revolt cannot be standardized as it occurred differently from area to area. However, despite this, the positive aspect of this revolt is that it touched almost every aspect of society, which gives the 1857 revolt an important place in Indian history. **This revolt also inspired revolutionaries to fight against British rule and fostered nationalism among the people.**

Bibliography

1. Shekhar, Bandyopadhyay, 2004, From Plassey to Partition and After.
2. Ranajit, Guha, 1982, Subaltern Studies: Writings on South Asian History and Society. Vol-1.
3. V. D. Savarkar, The Indian War of Independence of 1857, (London,1909).
4. R. C. Majumdar, The Sepoy Mutiny and The Revolt of 1857.
5. S. B. Chaudhuri, Civil rebellion in the Indian Mutinies 1857-59.
6. J. W. Kaye, History of the Sepoy War, Vol 2 , 1910 (reported at New Delhi in 1988)
7. S. N. Sen, - Eighteen-fifty- Seven (New Delhi: Prakashan Division, 1957 and 1995)



FROM ANCIENT ROOTS TO MODERN BRANCHES: INDIA'S TIMELESS HERITAGE AND THE EVOLUTION OF CUSTOMS AND VALUES

Priyanka Sharma

Research Scholar, Department of History
P. N. G. Government P. G. College Ramnagar
Kumaun University, Nainital, Uttarakhand

Abstract

India is known for its long and rich cultural heritage. One of the most important parts of this heritage is its customs and value systems. These include the way people live, what they believe, and how they behave in society. This research paper explores how Indian customs and values have changed over time—from ancient periods to the modern era. It studies how values like respect for elders, family unity, spirituality, caste, and gender roles have evolved through different historical stages. The paper also discusses how foreign influence, reform movements, colonial rule, and modern laws have shaped Indian society. The goal is to show that while many traditions have continued, they have also adapted to new situations. Indian values are not fixed; they are flexible and have changed with time. This shows the strength and adaptability of India's cultural heritage.

Keywords:- Indian heritage, social customs, value systems, historical continuity, tradition, modernity, reform movements, cultural evolution.

Introduction

India is often described as a land of tradition, where customs and values have been passed down from one generation to another for thousands of years. These traditions are not just about rituals or religious beliefs—they are also about how people live together, respect each other, and build a society. Customs like joint family systems, arranged marriages, and respect for elders have been a part of Indian life for a long time. Values such as truth (Satya), non-violence (ahimsa), and duty (dharma) have shaped Indian thinking since ancient times (Thapar, 1997)

However, history shows that these customs and values have not always remained the same. Over time, India has seen many changes—such as foreign invasions, religious movements, colonial rule, and the rise of democracy. All these events influenced how people understood and practiced their traditions.

This paper looks at the journey of Indian customs and values from the ancient period to modern

India. It asks important questions:

- 1) How have Indian customs changed over time?
- 2) What values have stayed the same, and which ones have changed?
- 3) How have outside influences, like British rule or modern education, affected Indian traditions?
- 4) Can we call Indian heritage “timeless” if it keeps changing?

The paper tries to answer these questions by looking at Indian history step by step. It argues that Indian customs and values are not unchanging, but they are strong because they can adapt. This ability to change while keeping core values alive is what makes India’s heritage truly timeless.

Customs and Values in Ancient India: The Foundation

The early roots of Indian customs can be found in the Vedic period (around 1500–500 BCE) (Olivelle, 2004). This was when religious texts like the Rigveda were written. These texts taught people how to live a good life by following dharma (moral duty), karma (action), and moksha (liberation).

The society was divided into four varnas (castes)—Brahmins (priests), Kshatriyas (warriors), Vaishyas (traders), and Shudras (labourers). Each caste had its own duties. While this system aimed to organize society, over time it led to discrimination, especially against lower castes.

Values like truth, self-discipline, and respect for teachers and parents were highly respected (Thapar, 1997). The joint family system was common, and elders had great authority. These values helped maintain social order, but they also limited individual freedom, especially for women and lower castes.

In later centuries, the Upanishads and texts like the Bhagavad Gita focused more on spiritual knowledge and inner peace, showing that Indian values were also about personal growth and self-realization.

Family and community life were also guided by texts like the Manu smriti, which prescribed roles and duties for men and women, promoting values such as obedience, duty, and sacrifice (Doniger & Smith, 1991). The value of hospitality, joint family system and respect for elders became key social norms.

Religious diversity, evident from early on, also shaped Indian customs. The emergence of Buddhism and Jainism, around the 6th century BCE, laid emphasis on the values of non-violence (Ahimsa), compassion and simplicity (Thapar, 2002). These religions challenged ritualism and promoted ethical living, thereby enriching India’s moral fabric.

These early customs—family respect, rituals, and duty—set the foundation for India’s culture, but they were flexible, changing with different regions and people.

Changes During the Medieval Period: The Islamic Influence

The medieval period (8th–18th century CE) witnessed the arrival of Islam which brought new dimensions to Indian culture. The fusion of Persian, Arabic, and Central Asian customs with Indian traditions led to new cultural forms, including Sufi and Bhakti movements. These movements stressed equality, devotion and love, overcoming caste and religious barriers (Lorenzen, 1995) resulting in the creation of a more mixed society.

Sufi saints like Khwaja Moinuddin Chishti and Bhakti saints like Kabir and Guru Nanak rejected the caste system and taught that all humans are equal before God (Lorenzen, 1995).

The Bhakti and Sufi movements also gave a voice to female saints such as Mirabal and Rabiya Basri, subtly challenging gender hierarchies. These movements challenged the old customs and brought new values like tolerance, social justice, and devotion from the heart. These movements also emphasized internal purity over ritual practices.

Although medieval Indian society still followed traditional customs, including patriarchy, caste-based restrictions and the decline in status of women in many regions, with practices such as purdah, sati, and child marriage gaining prominence, seeds of change were already planted by these reform movements that would grow in later centuries. During this period, some customs such as festivals, language, dress, and food habits became rich hybrids of Hindu and Muslim cultures, reflecting unity in diversity. This period shows how India's customs stayed alive by blending with new ideas.

British Rule and Reform Movements: Disruption and Redefinition

The British colonial period (1757–1947) brought big changes to Indian customs and values (Cohn, 1996). On one hand, the British policy of non-interference in religious affairs was an attempt to maintain Indian customs. On the other hand, they introduced concepts of equality and individual rights, modern law, and Western education. Indian reformers like Jyoti Rao Phule, Raja Ram Mohan Roy, Ishwar Chandra Vidyasagar, Swami Vivekanand and many more, led social movements to improve Indian society (Omvedt, 2004). They fought against Child marriage, sati custom (widow burning) and untouchability, and promoted widow remarriage, women's education and caste equality.

Vivekananda encouraged a return to spiritual values combined with social responsibility, while Phule questioned caste discrimination and emphasized social justice (Omvedt, 2004).

This period also witnessed the rise of nationalism, which used cultural symbols, such as the image of Bharat Mata (Mother India) and traditional festivals like Ganesh Chaturthi, to unite people across regions and religions (Nanda, 2009). However, Western education introduced individualism, rational thinking, and scientific temper, leading to a re-examination of old customs.

Mahatma Gandhi also brought Indian values of truth (Satya) and non-violence (ahimsa), into the modern age while promoting self-reliance (swadeshi). Gandhi respected Indian traditions but also believed in reform. He saw village life and simple living as the heart of Indian culture (Nanda, 2009).

Thus, during this period, the idea of Indian heritage started to change. It was no longer just about old customs—it became a mix of tradition and modern thinking. This period shows how India's customs were questioned but also used to build a stronger national identity.

Customs and Values in Independent India

After independence in 1947, India adopted a democratic constitution that promised equality, justice, and freedom for all. Many old customs were questioned and reformed through laws. The Constitution of India banned untouchability and gave equal rights to all castes (Baxi, 2001). Laws were made to protect women, allow inter-caste marriage, and promote education for all. Laws like Hindu Code Bill, Hindu Marriage act, helped in the upliftment of women by ensuring more rights for

women in marriage and property.

But even today, some traditional customs remain strong, especially in rural areas. Globalization brought changes, like smaller families replacing big joint families, but values like respecting elders stayed strong (Uberoi, 2006).

On one hand Arranged marriages, joint families, and respect for elders continue to be important values of Indian life while on the other, young people are embracing individual freedom, love marriages, and career over tradition.

Today, values like ahimsa inspire environmental movements, and dharma shapes ideas about ethics in business and government (Sharma, 2003). Technology has also changed customs, with online pujas making rituals global. India's customs show they can stay strong while fitting into a modern, connected world.

Thus, Indian values today are a mix of the old and the new—a sign of how Indian culture keeps adapting.

Challenges and New developments

In modern India, the biggest challenge is balancing tradition with modern values like gender equality, personal freedom, and human rights. Caste discrimination still exists in some areas, even though it is illegal (Baxi, 2001). Women's rights have improved, but issues like dowry, domestic violence, and unequal work opportunities still exist. Religious and cultural festivals are still celebrated, but sometimes they are used for political purposes.

Nowadays Technology, Internet and social media is also affecting the perception of young Indians towards customs and values up to a large extent. Today's youth often question traditions, but many also find pride in their heritage.

Indians living in foreign countries have also helped in spreading Indian customs worldwide—like Indian food, yoga, and festivals like Diwali—while giving them new meanings in different cultures (Nanda, 2009).

Conclusion

Indian customs and values have gone through a long journey—from the teachings of the Vedas to the modern principles of democracy and equality. They have undergone significant transformation over centuries, shaped by religion, reform, colonization, and globalization and been redefined by thinkers and reformers.

The strength of Indian heritage lies in its ability to adapt without losing its core identity. Despite challenges, the core values of tolerance, family bonds, spiritual growth, and respect for elders continue to guide Indian society.

So, when we talk about India's "timeless heritage", it does not mean that nothing has changed. It means that India has kept the spirit of its values alive—even while changing with time. This balance between tradition and modernity is what makes Indian culture truly unique.

References

- 1) Baxi, U. (2001). The state and the human rights movement in India. In R. Ghosh (Ed.), *Political Transition and Development in South Asia* (pp. 38–56). New Delhi: Sage Publications.
- 2) Cohn, B. S. (1996). *Colonialism and its Forms of Knowledge: The British in India*. Princeton University Press.
- 3) Doniger, W., & Smith, B. K. (1991). *The Laws of Manu*. Penguin Classics.
- 4) Lorenzen, D. N. (1995). *Bhakti Religion in North India: Community Identity and Political Action*. State University of New York Press.
- 5) Nanda, M. (2009). *The God Market: How Globalization is Making India More Hindu*. Random House India.
- 6) Omvedt, G. (2004). *Ambedkar: Towards an Enlightened India*. Penguin Books India.
- 7) Olivelle, P. (2004). *Manu's Code of Law: A Critical Edition and Translation of the Manu smṛiti*. Oxford University Press.
- 8) Sharma, A. (2003). *Hinduism and human rights: A conceptual approach*. Oxford University Press.
- 9) Thapar, R. (1997). *Ashoka and the Decline of the Mauryas* (Rev. ed.). Oxford University Press.
- 10) Thapar, R. (2002). *Early India: From the Origins to AD 1300*. University of California Press.
- 11) Uberoi, P. (2006). *Freedom and destiny: Gender, family, and popular culture in India*. Oxford University Press



INDIAN CULTURE AND ITS GROWING INTERNATIONAL INFLUENCE

Ms. Vijeta Dixit

Assistant professor, Department of History
Khun Khun ji Girls PG College, Chowk, Lucknow

Abstracts

Indian tradition, with its rich history and profound intensity, has intrigued the worldwide community for a long time. In recent decades, the global influence of Indian tradition has increased extensively throughout a couple of dimensions—spiritual, inventive, culinary, and technological. This paper examines the historical roots of Indian culture, identifies key factors contributing to its tender strength, and analyses the elements using its developing international presence. It additionally considers the challenges and implications of this cultural expansion within the 21st century.

Introduction

Research Background

India is domestic to one of the world's oldest and most various cultures, with a civilization that dates returned over 5,000 years (Konwar, 2025). From its historic philosophies and spiritual traditions to its colourful art, delicacies, and current technology, Indian tradition offers a multifaceted background that has captivated worldwide audiences for centuries. The current generation, especially the post globalization period of the reason that Nineties, has witnessed a good-sized expansion of India's cultural reach beyond its country-wide borders. Factors which include increased migration, the rise of digital media, worldwide yoga moves, Bollywood cinema, and India's developing economic and technological presence have contributed to the increasing visibility and have an impact on of Indian subculture worldwide.

Research Problem

While the Indian lifestyle has located resonance across diverse components of the globe, its international diffusion raises numerous complex questions (Gayathri et al., 2025). What are the important thing elements driving this cultural impact? Is this boom sustainable, or is it superficial and driven with the aid of stereotypes? Furthermore, how is Indian tradition being perceived, adapted, or even misrepresented in distinct regions? These demanding situations spotlight a gap in the know-how of the dynamics of India's cultural influence as a form of soft strength within the globalized

21st-century panorama.

Research Question

- What are the important thing elements of Indian way of life which can be gaining international impact?
- What factors are riding the worldwide spread and attractiveness of Indian subculture?
- How does India's cultural expansion function as a shape of smooth energy?
- What challenges or barriers does the Indian way of life face in its global representation?

Aims and Objective

The intention of this research is to discover the growing worldwide effect on Indian subculture and examine its effect as a form of cultural smooth strength. To gain this aim, the observer will:

- Examine the historic and current roots of Indian cultural expansion.
- Analyse numerous cultural dimensions (e.g., spirituality, cinema, delicacies, fashion, and era).
- Identify the sellers of transmission inclusive of diaspora, media, and diplomatic initiatives.
- Evaluate the function of Indian culture in shaping international perceptions and international members of the family.
- Discuss the challenges and potential dangers of cultural appropriation, stereotyping, and oversimplification.

The rationale of the Research

Understanding Indian tradition's growing global effect is crucial in the context of globalization, worldwide international relations, and cultural identity (Konwar, 2025). As India rises economically and geopolitically, its cultural exports play a critical function in shaping its worldwide image. Studying this trend no longer most effectively contributes to instructional know-how on transnational cultural flows but additionally gives insights into how the way of life can serve as a strategic tool for tender electricity. Moreover, in a world with an increasing number of interconnected through media and migration; they have an impact on of Indian lifestyle represents a compelling case of how non-Western societies assert themselves in worldwide narratives. This research is in particular applicable for policymakers, cultural students, and international audiences looking to apprehend India's evolving region in the international.

Literature Review

Historical Background

India's civilization stretches lower back over 5 millennia, making it one of the globe's oldest non-stop cultures (Kasture and Dhagat, 2025). Rooted within the Indus Valley Civilization and shaped over centuries by way of a blend of various ethnic companies, religions, and philosophies, Indian subculture has had a profound and lasting effect on both its humans and the wider world. In simple

words, ancient texts just as Vedas and Upanishads suggest new ideas of cosmology, spirituality, and social order (Singh, 2025). It was observed that India is regarded as a place of diversity and has a rich cultural legacy. The multicultural, multifocal, multicast, and multi-religious societies all exhibit it. The preponderance of rural living, multicast socialization, and the true characteristics shown in my social life are some of the most significant aspects of Indian society (Gayathri et al., 2025). Nowadays, several community organizations are quite active, which has led to a major rise in conflicts between various parties.

The cultural exchanges had been not one manner; India absorbed elements from Persian, Greek, Islamic, and later Western civilizations, which enriched its diversity (Barman, 2024). Thus, India's ancient cultural effect is each a ways accomplishing and adaptive, laying the muse for its present-day worldwide cultural presence. It operates on the same basic principles as it did in antiquity. Village councils, social classes, and joint family structures are all visible (Ray, 2024). Lord Krishna, Mahavira, and Buddha all left behind inspirational teachings that are still relevant today. Spirituality, prayerfulness, belief in reincarnation and karma, truthfulness, peace-making, integrity, purity, and non-acquisitiveness are among the qualities that continue to inspire people in this country. Culture includes the art of living, habits, and traditions, whereas civilization includes material growth and materials (Mithuna et al., 2024). To a certain extent, material progress is feasible. The foundation of progress was spirituality rather than materialism, which is why civilizations have perished while Indian culture endures to this day.

Dimensions of Cultural Influence

Spirituality and Philosophy

Indian spirituality, particularly yoga, meditation, and non-dualistic philosophies like Advaita Vedanta, has attracted international attention (Kasture and Dhagat, 2025). Movements such as Transcendental Meditation, teachings of Swami Vivekananda, and groups just like the Art of Living and ISKCON have set up a global following. The International Day of Yoga, encouraged by the United Nations, symbolizes the global popularity of Indian non secular practices. The ancient civilization that flourished in the north-western region of the Indian subcontinent left behind fascinating artefacts, and symbols that advise the presence of the spiritual and ritualistic culture (Sivakumar and Manimekalai, 2021).

Cinema and Entertainment

Bollywood, India's Hindi-language movie enterprise plays a vital position in cultural international relations (Gayathri et al., 2025). With its vibrant storytelling, track, and dance, Indian cinema is broadly celebrated from Africa to Latin America. International streaming structures like Netflix and Amazon Prime have helped regional Indian movies benefit from international viewership. Movies inclusive of RRR, Dangal, and Lagaan have earned essential acclaim, similarly enhancing India's cultural outreach (Barman, 2024).

Cuisine

Indian cuisine is one of the maximum loved and various in the international. Characterized

by the aid of its use of spices, flavours, and local substances, Indian meals have grown to be a staple in many worldwide cities (Konwar, 2025). Indian cuisine worldwide can be traced back to historical trade routes and immigration due to its colour and aromatic spices. Conversely, Indian cuisine has already inception of global food trend through focuses on the significance of herbs, and spices, promoting wellness, and flavour in cooking.

Fashion and Design

Indian fashion boasts a centuries-long and rich heritage (Singh, 2025). The rich culture and legacy of the nation are reflected in the colourful and varied assortment of clothing. Indian fashion has become more and more well-known worldwide in the past decade, and it is currently significantly influencing international fashion patterns (Singh and Alam, 2024). Indian fashion firms have been making a lot of effort to be successful in Western nations. Indian companies have excelled in several areas, including technology, medical research, manufacturing, and availability, as well as academia. To grow their business in Western nations, Indian designers have even endeavoured to be innovative and contemporary in their styles, designs, and aesthetics. Due to the intense competition and modernity of this industry, they have had limited success expanding their market in those nations by concentrating on the needs of their Western clients (Mithuna et al., 2024).

Technology and Diaspora Influence

The Indian Diaspora's impact on the international markets through distinct venues involves economic contribution, cultural diplomacy, and technological advancement for economic success (Kasture and Dhagat, 2025). With the roots of tracking back to the centuries, these individuals do not contribute economically while influencing polities, and culture. Indian origin has significant contributions to the tech industry and leading giants such as Google and Microsoft. It also has a significant impact on the development of the Indian IT industry, brings global expertise, and fosters innovation for international success (Barman, 2024).

Soft Power and Diplomacy

Indian culture substantially enhances the United States of America's tender power and diplomatic effect globally (Gayathri et al., 2025). Through yoga, Bollywood, cuisine, conventional medication, and festivals like Diwali, India projects a wealthy cultural identity that resonates worldwide. These cultural exports construct favourable perceptions, fostering goodwill and strengthening global ties. The international recognition of Indian song, dance, and style additionally boosts tourism and bilateral members of the family. Initiatives like the International Day of Yoga and Indian Cultural Centres overseas showcase India's historical past making it an appealing companion on global platforms (Mithuna et al., 2024). These cultural international relations complement traditional overseas policy, enabling India to persuade international markets and geopolitical narratives.

Challenges of Global Culture Influence

The integration of a country's economy with the global economy is referred to as globalization. Nonetheless, the financial system shift had a significant impact on the expansion and advancement of the Indian economy (Singh and Alam, 2024). According to research, India's economy was

experiencing serious problems in 1991. The foreign exchange reserves were estimated to have dropped to nearly \$1 billion. Furthermore, the effects of globalization are evident in several fields, including industries, agriculture, finance, and health, among others. The finance minister at this point introduced the concepts of globalization, privatization, and liberalization in light of the nation's decline (Ray, 2024).

The Future of the Indian Culture Influence

Indian Culture like Indian religions, mathematics, philosophy, cuisine, dance, and music. Social media has become an essential component of many organizations' communications strategies and is developing more quickly than conventional media in recent years (Singh, 2025). In addition to monitoring and managing stakeholder emotions, PR specialists could develop communications strategies and content to reach a broad audience. Social media is expanding quickly, and companies that sell fast-moving consumer items typically favour a mix of advertising and public relations. Additionally, the community's tech start-up would employ targeted public relations to reach potential customers (Barman, 2024). As interest in India's diverse way of life grows, its global effect can serve as a bridge between lifestyle and modernity, promoting appreciation, talk, and shared human values.

Methodology

Research Approach

This look at adopts a qualitative study method to explore the worldwide impact on Indian culture (Kasture and Dhagat, 2025). A qualitative approach is suitable for analysing cultural developments, patterns of effect, and public belief, as it emphasizes subjective experiences, meanings, and interpretations over statistical facts. The studies use a descriptive and interpretive framework to look at how special dimensions of the Indian way of life are perceived, transmitted, and adopted globally (Mithuna et al., 2024).

Research Method

- **Content Analysis:** Examination of media (films, tune, style suggests), government reviews, online systems, and cultural activities to discover themes in how Indian subculture is represented globally (Ray, 2024).
- **Case Studies:** Selected case research on key cultural exports (e.g., yoga within the U.S., Bollywood in Africa, Indian cuisine within the UK) to analyse effect and reception (Gayathri et al., 2025).
- **Secondary Data Review:** Review of scholarly articles, authorities guides, global cultural reports (e.g., UNESCO, Pew Research), and surveys associated with Indian lifestyle and soft electricity (Sivakumar and Manimekalai, 2021).

Ethical Consideration

As this study is based on publicly available resources and content analysis, there is no direct involvement of human members, and for that reason, no big moral hazard (Singh, 2025). However,

care has been taken to avoid cultural bias, misrepresentation, or reinforcement of stereotypes. All sources are well noted, and interpretations are framed in a culturally respectful and academically accountable manner.

Conclusion

In conclusion, the Indian way of life plays an important position in enhancing the state's worldwide image and diplomatic outreach. Through tender strength, India fosters deeper connections with numerous countries, promoting mutual admiration and collaboration. Cultural elements like yoga, cinema, cuisine, and gala are now not only the simplest form of worldwide perceptions but also open doorways for change, tourism, and strategic partnerships. By leveraging its rich history, India correctly impacts international discourse, making the way of life a key pillar of its global method. This cultural diplomacy strengthens India's position inside the global marketplace and helps construct long-lasting, nice relationships throughout borders.

Reference List

- Barman, S., 2024. Digital diplomacy: the influence of digital platforms on global diplomacy and foreign policy. *Vidya-a journal of gujarat university*, 3(1), pp.6175.
- Gayathri, P., Balamurugan, J., Gowthami, M., Usha, R., Karthick, R. and Selvan, R.S., 2025. Factors Influencing Customers' Inclination to buy Green Products: An Indian Perspective. In *Elevating Brand Loyalty With Optimized Marketing Analytics and AI* (pp. 185-202). IGI Global Scientific Publishing.
- Kasture, A. and Dhagat, N., 2025. Assessing the influence of urbanization on the historic city of Paithan, India: a case study focusing on the urban core. *International Journal of Urban Sciences*, pp.1-26.
- Konwar, N., 2025. Impact of Globalization on Indian Education. *Indian Education Policy: With Special Reference to Past & Present*, p.102.
- Mithuna, R., Tharanyalakshmi, R., Jain, I., Singhal, S., Sikarwar, D., Das, S., Ranjitha, J., Ghosh, D., Rahman, M.M. and Das, B., 2024. Emergence of antibiotic resistance due to the excessive use of antibiotics in medicines and feed additives: A global scenario with emphasis on the Indian perspective. *Emerging Contaminants*, p.100389.
- Ray, A., 2024. Professionalism as a soft skill: the social construction of worker identity in India's new services economy. *Third World Quarterly*, 45(4), pp.790809.
- Singh, D. and Alam, Q., 2024. Is tourism expansion the key to economic growth in India? An aggregate-level time series analysis. *Annals of Tourism Research Empirical Insights*, 5(2), p.100126.
- Singh, K., 2025. Colonization and Indian Psychology: A reciprocal relationship from the perspective of Indian postcolonial theory. *Research in the Social Scientific Study of Religion, Volume 34: Intersectionality in the Study of Religion*, 34, p.1.
- Sivakumar, I. and Manimekalai, K., 2021. Masculinity and challenges for women in Indian culture. *Journal of International Women's Studies*, 22(5), pp.427-436.



FLORA, FERTILITY, AND GANESHA: A SACRED BOND

Mrs. Sanyukta Padhi

Research Scholar,

Govt. V.Y.T.P.G. Autonomous College, Durg, C.G.

Dr. Sheila Vijay

Supervisor, Assistant Professor, Department of English,

Govt. V.Y.T.P.G. Autonomous College, Durg, C.G.

Dr. Tarlochan Kaur Sandhu

Co-Supervisor, Assistant Professor, Department of English,

Govt. V.Y.T.P.G. Autonomous College, Durg, C.G.

Introduction

Ganesha, the beloved elephant-headed deity of the Hindu pantheon, is widely revered as the remover of obstacles and a bestower of boons. Yet beyond his well-known roles in wisdom and auspicious beginnings, *Ganesha* embodies a profound connection to the fertile forces of nature. Across India's cultural landscape – from Bengal's lush delta to Maharashtra's Deccan plateau and the verdant South – *Ganesha* is linked with vegetation, harvests, and the vitality of the earth. His iconic pot-bellied form overflows with *prasada* (blessed foods) and symbolizes plenty, while his elephant head evokes power tempered by a gentle, herbivorous nature. This paper explores *Ganesha's* sacred bond with flora and fertility, blending academic analysis with popular-scientific insight and a devotional appreciation for the myths and rituals that celebrate this bond. We will examine mythological narratives that tie *Ganesha* to plant life, such as his origin from fragrant paste and his role in creating medicinal herbs. We will also survey regional traditions – the *Kola Bou* ritual of Bengal, Maharashtrian harvest celebrations, and South Indian customs – that emphasize *Ganesha's* presence amid agricultural bounty. Comparisons with other Indian deities like *Parvati*, *Lakshmi*, and *Kartikeya* and select global gods of plenty (such as Demeter, Osiris, and Freyr) will highlight parallel symbols and themes. Through this exploration, *Ganesha* emerges not only as a remover of obstacles but as a guardian of nature's abundance, where flora and fertility intertwine in a sacred bond.

Mythological Roots: Ganesha's Vegetative Origins and Symbolism

Ganesha's very birth story roots him in the realm of nature's renewal. According to Hindu mythology, Goddess *Parvati* fashioned *Ganesha* from her own body's turmeric paste (*haldi*) as she prepared for a bath. In this popular account from the *Shiva Purana*, *Parvati* mixed the yellow herbal paste (used to cleanse and beautify) and moulded a boy – instilling life into a creation literally made of earth and spice. The choice of *turmeric*, a golden-hued rhizome with antiseptic and auspicious qualities, is deeply symbolic. Its vibrant yellow colour, reminiscent of the sun, is associated with fertility, purity, and prosperity in Indian culture. By creating her son from turmeric, *Parvati* not only ensured *Ganesha* would be *gani* (born of her essence) but also imbued him with the vitality of the

plant kingdom. Devdutt Pattanaik notes that over time *Ganesha* 'became a benevolent spirit, associated with vegetation, with betel leaves, areca nuts, turmeric, hibiscus and grass, whose name is invoked at the start of every ceremony'. In other words, *Ganesha*'s identity evolved from a guardian child made of herbal paste into a pan-Indian deity intrinsically linked to flora in ritual and symbolism.

Beyond his birth, *Ganesha*'s iconography and epithets further affirm his connection to fertility and plant life. One ancient Sanskrit name of *Ganesha* is *Acmâdaúaucadhis[cmi]* – 'Creator of the eighteen medicinal plants. This title, found in scriptures and lore, portrays *Ganesha* as a progenitor of healing herbs. It hints at a myth in which luxuriant vegetation reappears on earth thanks to *Ganesha*'s beneficence, perhaps after the defeat of a destructive demon. Indeed, scholars connect this vegetation myth to the story of Goddess Durga slaying the buffalo demon Mahishasura and restoring the earth's balance, with *Ganesha* linked as the deity who brings forth herbs from the spilled blood to rejuvenate the soil. Such lore underscores *Ganesha*'s role as a restorer of agricultural plenty. Fittingly, many depictions show the deity holding symbols of harvest. The ancient *Taittiriya Aranyaka* text describes a divine *Dantin* (tusked one) with a twisted trunk who 'holds a sheaf of corn, sugarcane and a club', clearly identifying this figure as *Ganesha*. Later iconography continued this agrarian theme: *Ganesha* is shown with a sugarcane stalk in hand – an important crop and source of sweetness – along with his sweet modaka dumpling, and even his broken tusk hinting at a plough. As one commentator observes, *Ganesha*'s sugarcane not only represents a vital agricultural product, but his very festival was 'one of ancient India's methods of using religion to conserve ecology'. In early rural communities, reverence for *Ganesha* translated into respect for the harvest cycle and sustainable practices, reflecting an understanding that the elephant-headed God carries a clear ecological message.

Ganesha's animal attributes also contribute to his fertility symbolism in myth. The elephant, his form, is a gentle giant that creates pathways through forests and digs water holes with its tusks, literally shaping the landscape for other creatures. As a peaceful herbivore, the elephant was seen as a nurturer – its movements scatter seeds and its dung fertilizes the earth, enabling new plants to grow. *Ganesha* inherits these qualities: he is celebrated as *Vighneshvara*, the Lord who removes obstacles, much like an elephant clearing a dense undergrowth so that life may flourish. Moreover, *Ganesha*'s constant companion is the humble mouse (or rat) – a creature often deemed a pest in fields and granaries. By using the mouse as his vehicle (*vahana*), *Ganesha* 'controls the rodent population, which is the farmer's greatest enemy', thus protecting the harvest from being devoured at the source. In this clever symbolic pairing, the deity turns a potential menace into a trusty steed at his feet. The large belly of *Ganesha* further signifies bountiful prosperity and the capacity to digest all of life's experiences, sweet or bitter. Even the snake belt around his waist (a serpent he ties to contain his overfull stomach after a feast) can be read as symbolizing the harnessing of nature's power. Every aspect of *Ganesha*'s being – born of fragrant herbal paste, armed with harvest emblems, riding the tamer of pests, and endowed with a contented, pot-bellied calm – reinforces his identity as a god of abundance, vegetation, and fertility in the Hindu imagination.

Sacred Plants and *Ganesha*: Turmeric, Durva, Banana and More

Ganesha's worship is replete with offerings of leaves, fruits, and flowers that highlight his botanical affinities. Across regions, devotees present the deity with those plants he is believed to favor or that hold symbolic meaning in his myths. Five plants in particular – *turmeric*, *durva grass*,

banana, bilva, and ashoka – stand out for their recurring association with *Ganesha* and fertility rites.

Turmeric: Auspicious Roots of Protection

Turmeric (*haridrâ* in Sanskrit, *haldi* in Hindi) has already figured in *Ganesha's* origin story, but its role extends into ritual practice and even distinct forms of the deity. In many households, especially in South India, it is customary to make a simple *Ganesha* idol from turmeric paste for certain rites. This is seen, for example, during Gowri Habba (a Karnataka festival coinciding with Ganesh Chaturthi) when married women create a small turmeric figure of *Ganesha's* mother *Gauri* and of *Ganesha* himself (called *Arishina-Ganesha* in Kannada, literally 'Turmeric *Ganesha*') to invoke their blessings. Such practices echo the primal myth: the act of molding the divine from raw turmeric honors the power of *æakti* (female creative energy) and the sacrality of the earth's spices. The bright yellow of turmeric is considered an auspicious colour for new beginnings and marital fertility; hence turmeric powder is liberally used in Hindu wedding ceremonies and fertility rituals. As a plant known for its medicinal and purifying properties, turmeric offerings signify wishes for health and well-being. In fact, a tantric form of *Ganesha* known as Haridra Ganapati (Turmeric *Ganesha*) is revered in some traditions, depicted as yellow-skinned and seated with a serene countenance. Devotees believe worshipping an idol of Haridra Ganapati – often made from turmeric root paste – can 'bestow good health, wealth and success', removing both spiritual and physical afflictions. Thus, from the ancient legend of *Ganesha's* creation to contemporary household worship, turmeric cements *Ganesha's* link to protection, fertility, and the healing bounty of nature. It is as if the deity carries in his very being the antiseptic and prospering energies of this golden spice.

Durva Grass: Cooling Remedies and Offerings

No plant is more famously associated with *Ganesha* in ritual than dūrvâ grass – the simple Bermuda grass (*Cynodon dactylon*) known in India as a sacred weed. Devotees regularly offer a bunch of 21 blades of durva to Lord *Ganesha* during prayers, often placing them on the idol's head or feet. The origin of this custom is explained in a charming myth: *Analasura*, a great fire-breathing demon, once wreaked havoc in the three worlds. The gods turned to young *Ganesha* for help. Fearless and 'chubby,' the elephant-boy confronted *Analasura* and, in a miraculous feat, swallowed the demon whole. But this victory came at a price – *Ganesha's* stomach began to burn intensely, as if he had gulped down a furnace. None of the gods' remedies could ease his pain: Varuna poured forth oceans of water to douse the internal fire, Indra placed the cool moon on *Ganesha's* forehead, Shiva tied a thousand-headed snake around his belly – but the burning rage of the demon's fire persisted. Finally, a group of wise sages arrived with bundles of fresh durva grass. They offered 21 blades of durva with Vedic chants, and as soon as *Ganesha* ate the sacred grass, the burning in his stomach ceased. Relieved and grateful, *Ganesha* smiled and declared, '*Nothing in the world will please me more than a blade of this durva*'. Ever since, *durva* grass is beloved to *Ganesha*. Significantly, *durva* is known in Ayurveda for its cooling and medicinal properties (it can soothe indigestion, much as it did for *Ganesha*). In daily worship, the offering of durva symbolizes humility and the devotee's willingness to give something modest yet meaningful. The grass that tamed the internal fires of the Lord is believed to pacify obstacles and temper one's own fiery passions. Each blade offered in multiples of 3 (to total 21) is said to correspond to *Ganesha's* aspects and the

spiritual energies they represent. Thus, the durva legend beautifully integrates myth, medicine, and ritual, portraying *Ganesha* as a god who not only conquers demons but also shares nature's remedies for our ailments. The handfuls of green grass at his feet testify to an ancient reverence for herbs and the hope that *Ganesha's* grace, like a cooling balm, will ensure fertility, peace and plenitude in devotees' lives.

The Banana Plant and the Kola Bou of Bengal

In the fertile lands of Bengal, *Ganesha's* connection to vegetation finds unique expression in the autumn Durga Puja festival. Here *Ganesha* is worshipped as one of Mother Durga's four divine children (alongside his brother *Kartikeya* and sisters *Lakshmi* and *Sarasvati*). But most remarkable is the ritual of *Nabapatrikâ*, colloquially known as the Kola Bou or 'banana bride.' The *Nabapatrika* is a bundle of nine different plants – each a representation of a deity – that is ritually bound together and installed in the Durga Puja pandal (shrine) on the first day of worship. Chief among these is a young banana tree (*kola*), wrapped in a sari like a newlywed bride, hence the affectionate name *Kola Bou* (banana bride). This practice has agrarian roots: in olden times, farmers in Bengal worshipped a banana plant as a symbol of Mother Nature for a good harvest. As Durga Puja evolved, the Nabapatrika of nine plants was incorporated as a way of honoring Durga in vegetal form and invoking nature's blessings during the autumn harvest season.

Each of the nine plants in the Nabapatrika corresponds to a deity or aspect of divinity. For example, the banana plant represents Brahmani (a form of Durga), *turmeric* plant represents Durga herself, *rice paddy* symbolizes *Lakshmi*, *wood apple* (bilva) leaves signify Shiva, *ashoka* tree leaves signify Shoka-rahita (the remover of sorrows), *pomegranate* represents Raktadantika (a ferocious aspect of Durga), *colocasia* (taro) represents Kalika, *arum* plant represents Chamunda, and so on. Tied together, these nine sacred botanicals form a green effigy of the goddess Durga. What, then, is *Ganesha's* role in this verdant tableau? Intriguingly, the Nabapatrika (Kola Bou) is always placed next to Lord *Ganesha's* idol, on his right side, within the Durga shrine. During worship, priests treat the plant-bundle as another goddess and consort of Durga, but popular folklore has often dubbed Kola Bou as '*Ganesh's wife*,' noting her placement beside him. While this is not supported by scripture – in fact, academically the Kola Bou represents Durga's own vegetal form, not a separate wife of *Ganesha* – the association persists in the public imagination. Why *Ganesha*? Cultural historians suggest it is precisely *Ganesha's* link to fertility and herbs that explains Kola Bou's position. *Ganesha* is *Astâdasaucahis[cmi]*, creator of 18 healing plants, and the Nabapatrika's nine plants are all useful herbs or crops with medicinal properties. Thus, placing the green sheaf by *Ganesha's* side is apt: he presides over this 'bride' of vegetation, sanctifying the union of spirit and soil. One Bengali author writes that because *Ganesha* is credited with creating medicinal plants, 'the 'Kola Bou' is positioned near him' in the Durga Puja. In other words, *Ganesha* stands as a guarantor of the plants' sacredness and a witness to the earth's abundance that Durga (as Mother Nature) bestows.

During the ritual, the Kola Bou is carried to a river at dawn for a ceremonial bath, then brought back and dressed in a red-bordered sari like a living goddess. She is worshipped with incense and mantras alongside the deities. All through the Puja days, this lush column of leaves – banana fronds towering over clusters of rice stalks, turmeric, bilva, and others bound with yellow threads – stands beside

Ganesha, almost as if the elephant-headed boy is proudly presenting Mother Nature herself to the assembled devotees. In the context of fertility, the symbolism is striking: *Ganesha*, the son of Shiva and Shakti, here facilitates the marriage of the wild goddess (in vegetal form) to the civilized pantheon, ensuring ‘the order of the world may be re-established and luxuriant vegetation reappear’ after the monsoon harvest. The banana tree’s prodigious ability to reproduce (sending forth new offshoots) and bear fruit makes it an apt emblem of fertility. By ‘marrying’ the banana bride into the ritual, devotees celebrate the continuity of life through seeds and crops. The presence of *Ganesha* legitimizes and blesses this natural bounty. Thus, the Kola Bou ritual of Bengal encapsulates the sacred bond between *Ganesha* and flora: he is at once a guardian of these nine plants and a recipient of their collective obeisance, reinforcing the idea that the agricultural prosperity (rice, banana, turmeric, etc.) is inseparable from *Ganesha*’s grace.

Bilva, Ashoka, Rice: Symbolic Flora of Fertility

Several other plants linked to *Ganesha* carry rich symbolic weight in fertility and worship. The bilva tree (wood apple or *bel* tree) is traditionally sacred to Lord Shiva, but its trifoliate bilva leaves are commonly offered to *Ganesha* as well, especially in regions like Maharashtra where Shiva and *Ganesha* are worshipped together. The triple leaf is said to represent the trinity of energies (icchâ, jñâna, kriyâ – will, knowledge, action) or the three gunas of nature, all of which *Ganesha* harmonizes. While bilva’s primary identity is with Shiva, *Ganesha*’s acceptance of bilva offerings signifies filial reverence (as Shiva’s son) and the transfer of fertility symbolism – the bilva fruit is hard-shelled and full of seeds, suggesting generative potential. The ashoka tree, known in Sanskrit as ‘remover of sorrow,’ also appears in *Ganesha* lore indirectly. Its leaves are among the Nabapatrika plants of Durga Puja, and in broader Hindu culture the ashoka tree is associated with love, spring, and the end of barrenness (there is a folklore that women would embrace or kick the ashoka tree to promote fertility). In some depictions or local traditions, garlands of ashoka leaves may adorn *Ganesha*’s statues during festivals, hinting that as the harbinger of auspiciousness, *Ganesha* carries the power to remove the sorrow of childlessness or poor harvest – much like the ashoka ushers the joy of spring by bursting into red blossoms.

Rice, the staple grain of India, is ubiquitously tied to *Ganesha*’s worship and fertility rituals. Unbroken rice grains (often dyed yellow with turmeric, called *akcatâ*) are an essential element of Hindu puja, and *Ganesha* is no exception. Devotees scatter or place rice grains at *Ganesha*’s feet as a symbol of the sustenance and wealth he provides. In many ways, rice is life in agrarian society – to offer rice is to offer one’s own food, acknowledging that all harvest comes from the divine. As noted earlier, rice shoots (paddy) in the Nabapatrika represent Goddess *Lakshmi* and by extension the prosperity of the harvest. *Ganesha*’s own love of sweet modakas – dumplings made of rice flour, coconut, and jaggery – further underscores his intimate connection with the fruits of the harvest. The modaka is described as an ‘offering of the harvest’, and *Ganesha*’s pot belly is often humorously said to be full of countless modakas. One of his names, *Modakapriya*, means ‘lover of modak.’ In iconography he holds a bowl of these treats (an *anna-kosha* or food basket) in one hand, indicating plentitude of food and the rewards of a good harvest. Through such symbols *Ganesha* becomes the embodiment of culinary fertility – the transformation of raw crops (like rice) into nourishing food (like modak) that sustains human life.

Collectively, the offerings of bilva leaves, ashoka foliage, rice grain, mango leaves (used to decorate *Ganesha* altars), coconuts (broken as an offering, their water representing the nectar of life) and various fruits during *Ganesha* festivals illustrate that all parts of the plant kingdom are represented in his worship. From root (turmeric) to blades of grass (*durva*), from leafy shoots (banana, mango leaves) to flowers (red hibiscus and marigolds often adorn him), from fruits (bananas, wood apples) to grains (rice, sesame), *Ganesha* accepts nature's abundance in diverse forms. Each plant carries layers of meaning – medicinal value, nourishment, auspicious color or shape – that enrich the worship with symbolic depth. In return, devotees believe *Ganesha* blesses them with fertility in every sense: fertile soil and good crops, fertile wombs and healthy children, fertile minds and creative ventures. The cyclical exchange – we offer the first fruits of the field to *Ganesha*, and *Ganesha* ensures the next season's bounty – reinforces the sacred reciprocity between the divine and the natural world.

Regional Perspectives: *Ganesha* in Fertility Rites Across India

While *Ganesha*'s vegetal ties are pan-Indian, different regions emphasize distinct aspects of this connection through their festivals and local myths. A journey through Bengal, Maharashtra, and South India reveals the regional colors of *Ganesha*'s green heritage.

Bengal: Guardian of the Harvest Home

In Bengal, as we have seen with the Durga Puja celebrations, *Ganesha* is integrally woven into agrarian symbolism. Historically, Bengalis did not celebrate a separate Ganesh Chaturthi festival on the scale of Western India; instead, *Ganesha*'s role as Durga's son took center stage during the autumn harvest period. Folk practices beyond the formal puja also linked *Ganesha* to village harvest rites. For instance, there is a little-known tradition of worshipping *Kartikeya* and *Ganesha* at the end of the Bengali month of Kârtik (around November) in anticipation of gathering the ripened crops. In some rural communities, *Kartikeya* (known locally as Kartik) is revered as a *harvest god* who ensures the crop is safely home. Interestingly, ethnographers note that in Bengal, *Kartikeya* was considered a fertility deity associated with the harvest – quite a departure from his pan-Indian image as a war god. The rituals of Kartik Puja were performed mainly by women, praying for a 'safe and prosperous harvest' and involve austerities until the crop is reaped. In these rites, *Ganesha* often figures as well, since he is worshipped alongside his brother as part of Durga's family. Villagers would make earthen images of both Kartik and Ganesh after the fields were sown, and later thank them when the granaries were filled. The logic is simple: Kartik may personify the youthful vigor of the fields, but *Ganesha*, with his wisdom and auspicious powers, removes any obstacles (such as floods, pests, or storms) that might threaten the growing rice. By positioning *Ganesha* at the threshold of the harvest season, Bengalis symbolically secure the gate through which the year's fertility enters their homes. Even today, many Bengali farmers will place small *Ganesha* idols or pictures in their rice storage areas, treating him as the guardian of the bounty – a silent prayer that the stored grain may last and not spoil, and that prosperity (*Lakshmi*) will dwell in the house. Thus, in Bengal's ethos, *Ganesha* is quietly revered as a behind-the-scenes protector of agricultural wealth, working in tandem with the Mother Goddess and his dynamic brother to sustain the rhythms of the rural year.

Maharashtra: Ganesh Chaturthi and the Eco-Prosperity of the Deccan

Nowhere is *Ganesha's* celebration more exuberant than in the state of Maharashtra, where Ganesh Chaturthi (Ganeshotsav) is a grand public festival each year (typically in August/September). The festival, popularized during the 19th century by freedom fighters like Lokmanya Tilak, has always had a strong communal and cultural thrust. Yet at its heart lies a seasonal significance: Ganesh Chaturthi arrives just after the monsoon rains, at a time when fields are green and the first hints of autumn's harvest appear. Maharashtrians traditionally bring clay idols of *Ganesha* into their homes, worshipping the Lord for 10 days and then immersing the idol in water (Visarjan) on the final day. The use of unbaked clay and natural dyes in older times meant that *Ganesha*, made from river mud, would dissolve back into the water – 'becoming one with the wet soil' to renew the land. This practice carried an ecological wisdom: it returned the clay to the earth and water without pollution, symbolizing the cycle of creation and dissolution that sustains fertility. As one account notes, the festival encouraged families to use local clay and then respectfully return it to the local pond or river, thus connecting religious piety with environmental care. Modern times saw a deviation with plaster-of-paris idols and chemical paints, leading to pollution, but in recent years there's a movement back towards 'Green Ganesha' – using biodegradable materials and even embedding seeds in *Ganesha* idols that sprout into plants after immersion. This contemporary innovation beautifully extends *Ganesha's* vegetative legacy: the immersed idol literally gives new plant life as a blessing.

Maharashtra's cultural motifs often portray *Ganesha* in agrarian terms. In folk art and temple images, *Ganesha* is sometimes shown holding a *murmura* (puffed rice) or a sprig of sugarcane, highlighting staples of the local agriculture. A renowned 4th-century icon from Afghanistan (historically linked to ancient Indian iconography) describes *Ganesha* carrying not only the usual sweets and axe, but specifically a sheaf of corn and a sugarcane stalk in two of his hands. This image likely travelled with traders and monks across the trade routes, resonating with farmers of the Deccan who saw in *Ganesha* a friendly patron of their crops. Even today, during Ganesh Chaturthi in rural Maharashtra, it is common to see the idol being decorated with garlands of red flowers and durva grass, flanked by banana leaves and sugarcane poles. Farmers sometimes bring the first harvest of paddy or vegetables to *Ganesha's* altar as an offering, thanking him for removing obstacles like pests or droughts. In the coastal Konkan region, the festival coincides with the ripening of konkan rice and mangoes, so offerings include fresh rice stalks, tender coconut, and local fruits, honoring *Ganesha* as the provider of seasonal plenty. One special practice during Ganeshotsav (also seen during *Dassera* in Maharashtra) is the exchange of Aptâ leaves (from the Bauhinia tree) as tokens of gold. Families present these leaves to each other and to the deities, symbolizing prosperity. While this is linked to a legend of King Râma, it's notable that it occurs in the same season as Ganesh Chaturthi – again tying the idea of vegetation to wealth and luck. The Elephanta Caves near Mumbai, dating back to the 6th century, even contain a carving of *Ganesha* with a bowl of sweets and possibly a sugarcane, indicating that the concept of *Ganesha* as a harvest benefactor is at least a millennium old in Maharashtra.

In sum, Maharashtrians celebrate *Ganesha* as a bringer of auspicious beginnings for each new agricultural cycle. Prayers often explicitly invoke him to bless the rains and the crops. The very timing of Ganesh Chaturthi (Bhadrapada month) is such that as *Ganesha* is venerated, farmers are preparing fields for the rabi (winter) sowing or awaiting the maturation of kharif (monsoon) crops. It

is a collective affirmation that with *Ganesha*'s removal of obstacles, the community will enjoy good yields, stored grains, and prosperity in the coming year. The joyous chants of '*Ganapati Bappa Morya, Purchya Varshi Laukariya*' ('Father *Ganesha*, come again early next year!') at immersion convey both devotion and the agrarian hope that the cycle of seasons – and *Ganesha*'s protective presence – will continue unbroken.

South India: *Ganesha* of the Green Canopy

In the Dravidian south, *Ganesha* (often called Pillaiyar in Tamil or Vinayaka in Telugu/Kannada) is deeply ingrained in village life, frequently enshrined under venerable trees and at field boundaries. In Tamil Nadu's countryside, one often finds a simple stone *Ganesha* placed under a neem or peepal (*aevattha*) tree, usually smeared with turmeric and kumkum, receiving the first prayers before any farming task. This practice stems from *Ganesha*'s role as the 'first worshipped' deity – before breaking ground for a new well, before planting, before harvest – the farmer seeks his blessings to prevent misfortunes. The use of *manjal* (turmeric) and *kungumam* (red vermilion) on these village *Ganeshas* again reinforces the fertility motif: turmeric powder, as mentioned, symbolizes purity and abundance, while the red kumkum (made from turmeric and lime or from the safflower) symbolizes the active energy of life (Shakti). Women, in particular, pray to these village *Ganeshas* for children (fertility) and family welfare, tying cradle-like swings or tiny cradles to the tree if a prayer for a child is answered. In a practice called *Iâgaruka-p-pillaiyar pûjai*, Tamil women desiring pregnancy offer *Ganesha* little wooden cradles and small figurines of infants along with garlands of arugampul grass (*durva*) and teInai (foxtail millet) symbolizing fecundity, illustrating how intimately *Ganesha* is involved in personal fertility rites.

During Vinayaka Chaturthi in Tamil Nadu and Andhra Pradesh, a notable custom is the worship of Gauri (*Parvati*) one day before *Ganesha*, using a turmeric idol of the goddess. Known as *Swarnagauri Vratham* or *Gowri Habba*, this ritual (as also noted in the Parama Naturals chronicle) commemorates *Parvati*'s arrival and honors her creative power with turmeric – the same substance she used to create *Ganesha*. The next day, *Ganesha* is invoked to join his mother, and families will install a freshly crafted clay *Ganesha* idol often along with stalks of banana and mango leaves decorating the mantapam (shrine). In South Indian temples, priests offer modakam, Kozhukattai (steamed rice dumplings) and ellurundai (sweet sesame balls) to *Ganesha* – all foods prepared from the local harvest of rice, pulses, and sesame, thereby sanctifying these crops. The coconut, a tropical fruit abundant in the south, is nearly always broken before *Ganesha* to symbolize the breaking of ego and the release of sweet bounty inside. The inner white kernel of the coconut is likened to the pure heart that *Ganesha* rewards, and the coconut's water nourishes the soil when offered.

An interesting aspect in Karnataka and parts of Andhra is the worship of Varasiddhi Vinayaka – a form of *Ganesha* associated with granting boons of fertility and wealth. Some folk legends in Karnataka tell of barren women conceiving after diligently worshipping a *stone Ganesha under a ficus tree* for 11 weeks, tying marriage threads and turmeric to the branches as they pray. The combination of tree, turmeric, and *Ganesha* in these tales highlights the synergy of earth's fertility and divine intervention. Similarly, the Kerala festival of *Thiruvonam* (Onam) coincides with *Ganesha*'s festival, and while Onam centers on King Mahabali and Vishnu's avatar, Keralites also offer prayers

to *Ganesha* for the richness of their famed rice-paddy fields and the flowers that deck their pookalam designs. In Kerala's temples, *Ganesha* is often worshipped as *Vigneswara* before any harvest festival or Kathakali performance, with offerings of local fruits like bananas, jackfruit, and durva grass bunches dipped in rosewater, signifying the union of cultivation and art under his auspices.

In the far south, Sri Lanka's Tamil Hindus similarly revere *Ganesha* (called Ganapati or Pillaiyar) as a god of bountiful rain and crops. The annual Vinayaka Chaturthi is observed with devotees fashioning small *Ganesha* figures from the sandy soil of riverbeds (evoking the idea that *Ganesha* is formed of the very earth that produces crops) and anointing them with turmeric paste and sandalwood. After prayers, these are released into the river, returning the minerals back to the fields downstream. The entire process is an agrarian allegory of seed (clay idol) and dissolution (immersion), guided by *Ganesha*. In all these southern traditions, *Ganesha*'s omnipresence – under trees, at field edges, in kitchen altars with turmeric, at thresholds with leaf-toran decorations – marks him as a domestic and agricultural guardian, ensuring the continuity of family and farm.

Ganesha* and Other Fertility Deities: *Parvati*, *Lakshmi*, *Kartikeya

Ganesha's vegetative and fertility aspects do not exist in isolation; they resonate in relation to other deities in the Hindu pantheon who personify abundance, fertility, and the fecundity of nature. A comparative look at *Parvati* (Shakti), *Lakshmi*, and *Kartikeya* reveals both complementary roles and unique facets of *Ganesha*'s identity within the broader tapestry of Indian fertility symbolism.

***Parvati* (Shakti) – The Mother Earth Archetype**

As *Ganesha*'s mother and the embodiment of the Divine Feminine, *Parvati* (also known as Shakti or Durga in her martial form) is inherently a goddess of life and fertility. In one of her ancient aspects, *Parvati* is worshipped as AnnapûrGâ, the provider of food, holding a golden bowl of grain to feed the world. In another, as Shâkambharî, she is literally the 'Bearer of Vegetables' – a form of Durga who, according to legend, appeared during a great famine and nourished the starving with an outpouring of fruits, vegetables and greens from her body. Devdutt Pattanaik notes that even in prehistoric Harappan times, Indians revered a mother goddess rising from a tree – a prototype of Shakti as Lajjâ Gaurî, depicted nude with lotus-and-floral motifs symbolizing fertility. *Parvati*/Durga's association with plants and harvest is thus age-old, manifesting in festivals like the Navarâtri, where, as one article observes, women would traditionally worship 'the deity as a pile of nourishing and medicinal herbs' including banana, turmeric, rice, bilva, ashoka and more. These nine plants were the original *Nava-durgâs*, representing the goddess's power to 'feed, adorn and heal'.

Ganesha, being born of *Parvati*'s body, can be seen as an extension of this maternal fertility power in a benign male form. If *Parvati* is Mother Earth – fierce in protecting her creation and lavish in providing food – *Ganesha* is the cherubic son of Earth, ensuring that her gifts reach the people smoothly. It is telling that in many household observances, *Ganesha* is invoked alongside *Parvati* before major occasions: for instance, before marriages or important ventures, families propitiate *Parvati* for fertility and *Ganesha* for obstacle-removal, a dual assurance of success. The two are even worshipped together during the Ganesh Chaturthi period in parts of South India (Gowri-*Ganesha* as mentioned). In iconography, one sometimes finds *Parvati* depicted with *Ganesha* on her lap, nursing him – a scene of cosmic motherhood. Symbolically, this portrays nature nourishing

wisdom (as *Ganesha* also represents wisdom). *Parvati*'s fertility is not only biological (as mother of *Ganesha* and *Kartikeya*) but agricultural – she is the soil that yields crops. *Ganesha* inherits her nourishing aspect in a sociocultural sense: he becomes the patron of farmers and the one who distributes his mother's bounty without hindrance.

Parvati's other face as Durga, slayer of demons, is also connected to regeneration. By vanquishing the forces of chaos (like Mahishasura who desecrated the earth), she restores balance so that 'luxuriant vegetation may reappear'. *Ganesha*, who is given the honour of the first worship during Durga Puja, can be seen as sanctifying his mother's victory and ensuring the earth's renewal in its wake. In regional folktales, after Durga's battles, it is *Ganesha* who replants the seeds or brings forth the healing herbs (hence his 18-herb creator epithet). In this way, mother and son work in tandem: *Parvati* as *prakṛti* (nature) unleashes fertility, and *Ganesha* as *prathama-pūjya* (first deity) maintains that fertility through auspicious beginnings and protection. One medieval hymn even salutes *Ganesha* as 'Ākti-putra' – the son of the Mother Goddess – whose elephant head signifies the wisdom to use her boons wisely, and whose large ears signify listening to the prayers of those who till her soil.

Lakshmi – Goddess of Prosperity and Harvest Wealth

Lakshmi, the radiant goddess of fortune, luck, and prosperity, shares considerable symbolic overlap with *Ganesha*. They are often worshipped together as the twin harbingers of success and abundance – for instance, on the festival of Dīpāvali (Diwali), it is common for Hindu families to perform a joint *Lakshmi-Ganesha* puja, seeking wealth (*Lakshmi*) and the removal of obstacles to enjoying that wealth (*Ganesha*). *Lakshmi*'s domains include agricultural wealth (*dhānya*), not just gold or money. In her classical aspects, *Lakshmi* has eight forms (the *AshtaLakshmi*), among which *Dhānya Lakshmi* is revered as the goddess of grain and harvest. She is visualized with arms carrying sheaves of rice and other crops, ensuring that 'there is always enough sustenance' in the household. One source describes *Dhanya Lakshmi* as responsible for distributing grain and 'regarded as the provider of agricultural wealth'. *Ganesha*'s tie to grain is seen in his modak and his general love of *anna* (food); *Lakshmi* actually embodies the overflowing rice basket or cornucopia. It is no surprise that *Lakshmi* is frequently depicted standing or seated on a lotus flower, surrounded by elephants (in her *Gaja-Lakshmi* form) who pour water – a tableau linking water, flora, and prosperity. The lotus is a symbol of fertility and purity, growing from mud – and interestingly, in *Ganesha* temples too, lotus blooms (often pink or white) are offered to signify spiritual unfoldment and material wealth blooming under *Ganesha*'s grace.

Lakshmi's association with elephants (two white elephants flanking her, showering water) is a noteworthy parallel to *Ganesha*. The elephant in Indian symbolism signifies royalty, rain, and agricultural plenty – as the saying goes, where the elephant walks, it creates ponds and brings clouds. *Lakshmi*'s elephants and *Ganesha*'s elephant head both allude to clouds that rain on the fields, ensuring fertility. In some folk traditions, people interpret the Diwali pairing of *Lakshmi* and *Ganesha* thus: *Lakshmi* brings the wealth of the harvest, and *Ganesha* safeguards it. *Ganesha*'s role as *Akhlakhapati* (lord of provisions) complements *Lakshmi*'s as *Dhanyakari* (giver of grain). Even in mythology, *Lakshmi* is said to have a soft spot for *Ganesha* – there is a tale where *Lakshmi* adopts *Ganesha* as her son because of his charming manners, granting that wherever she goes, *Ganesha* will be invoked too. Devotees thus believe that calling upon *Ganesha* inevitably invites

Lakshmi, and vice versa, especially in matters of starting new business ventures or agrarian enterprises.

Notably, iconography at times blends their symbols: one might find a small *Ganesha* figurine inside decorative *Lakshmi* pots (kalasha) filled with rice and topped with coconut during festivals, uniting male and female principles for a fertile outcome. The Encyclopedia Britannica succinctly classifies Dhanya *Lakshmi* as the ‘goddess of agricultural wealth’ – essentially the deified concept of fertile fields. *Ganesha*, by presiding over the threshold of every endeavor, ensures that *Lakshmi*’s gifts (be it a bumper crop or general prosperity) take root and grow without obstruction. In a spiritual sense, *Lakshmi* embodies the goal (abundance) and *Ganesha* the means (wisdom and hurdle-clearing). Together, they form a divine synergy in Hindu worship: one that underscores how prosperity in an agrarian society is a blessing that must be obtained and protected through reverence and right effort. So, while *Lakshmi* pours out grains and wealth from her palms, *Ganesha* with his open palm (in *varada mudrâ*, the boon-giving gesture) makes sure we have the capacity to receive and enjoy those boons. Their partnership in festivals mirrors the partnership of rain and earth, seed and sprout – a sacred balance necessary for fertility.

***Kartikeya* (Skanda) – Contrasting Brother of the Fields**

At first glance, *Kartikeya* – *Ganesha*’s brother, the god of war and commander of the celestial army – might seem unrelated to fertility or agriculture. Known by many names (Skanda, Murugan, Subrahmanya), *Kartikeya* is traditionally depicted as a youthful warrior with a spear (vel) and a peacock mount. However, regional practices and certain mythic motifs link *Kartikeya* to cycles of nature and youthfulness of life, offering a foil to *Ganesha*’s fertility symbolism. In Bengal, as mentioned, Kârîkeya was localized as a harvest deity: on the last day of the month of Kartik, just before winter cropping, young girls worshipped him to ensure the safety of the ripening harvest. Here *Kartikeya* represents the anticipation of harvest, the virile energy needed to complete the agricultural cycle. The fact that this worship was done by girls and women, with strict lifelong vows, suggests an invocation of *Kartikeya*’s youthful, generative force in the service of fertility – not of womb, but of field. The ritual had a palpable anxiety (fasting and austerities until harvest) which is quite complementary to *Ganesha*’s more relaxed assurance. In these rites, one can imagine *Ganesha* and Kartik (both present in Durga’s family) as dual guardians: *Kartikeya* spurs the crops to maturity, while *Ganesha* removes obstacles like pests or storms that could impede the final harvest.

In South India, especially Tamil Nadu, Murugan (*Kartikeya*) is beloved as a god of the hill and hunt, but also subtly tied to agricultural well-being. Tamil lore divides regions into landscape themes (tinai), and Murugan is the lord of the kurinji tinai (hill country) associated with honey, wild flora, and periodic fertility of nature. Some anthropologists suggest Murugan’s origin lies in a native fertility deity of the hill tribes, connected to the seasonal renewal of vegetation. His consorts – Valli (a hunter’s daughter, possibly a millet goddess) and Deivayanai (identified with Devasena, daughter of the rain-god Indra) – themselves carry fertility connotations: Valli is often linked to the bounty of wild tubers and roots (foraged food), while Deivayanai brings the promise of rain for agriculture. Murugan’s spear was given by *Parvati* to destroy demons, but allegorically it is a ray of the sun or a bolt of lightning that fertilizes the soil by piercing the dark clouds. In temple lore, Murugan is propitiated for good rains and robust growth, much like Indra in the Vedas, especially since his

festival *Thaipusam* comes around late January when in Tamil Nadu the winter crops are harvested and the land awaits spring rains.

However, *Kartikeya*'s imagery ultimately is more about human fertility (virility) and valor than about plant fertility per se. He is the eternal bachelor or the ideal groom, representing male beauty and strength. In contrast, *Ganesha* – often shown as more earthy, pot-bellied, with two wives in some stories (Riddhi and Siddhi, symbols of prosperity and intellect) – represents a settled, generous abundance. The two brothers famously compete in a legend to circle the world and win a divine fruit (a mango, symbolizing knowledge or immortality). *Kartikeya* dashes off on his swift peacock to literally circle the earth, while clever *Ganesha* simply walks around his parents (Shiva and *Parvati*), declaring they are his world, and thus wins the fruit. The fruit in this race can be interpreted as a prize of knowledge or ripe reward; *Ganesha* attains it through wisdom and devotion (a non-striving approach), whereas *Kartikeya*'s physical prowess, though impressive, does not secure the fruit. In symbolic terms, when it comes to the fruit of life (which could be crops, offspring, success), *Ganesha*'s method (intelligence, removing obstacles through devotion) triumphs. This tale subtly underscores why *Ganesha*, more than *Kartikeya*, is invoked for fruitful outcomes. *Kartikeya* had his domain – warfare, youth, perhaps certain regions' specific fertility rites – but *Ganesha* became the universally adored Lord of Prosperity in homes and farms alike.

Nonetheless, the comparison is instructive: *Ganesha* and *Kartikeya*, as sons of the supreme divine couple, can be seen to embody two complementary energies needed for life's fertility – wisdom and action. *Kartikeya*'s energy (action) clears external enemies (like pests or negativities in metaphor), while *Ganesha*'s wisdom clears internal obstacles (like ignorance or obstacles in planning). In a spiritual agricultural analogy, *Kartikeya* might be the plough that tills vigorously, and *Ganesha* the seed that is planted with intention and mantra. Both are required to yield a rich crop. Indeed, Tamil Siddhar poetry often pairs Murugan and Ganapati as two sides of the same coin of realization. For devotees, praying to *Kartikeya* for strength and *Ganesha* for removal of hurdles is a holistic approach to ensuring fertility of endeavours, whether it be begetting a child or reaping a field. In public festivals too, especially in South India, one sees imagery of these brothers flanking Durga or Gauri, signifying that the family of divinity works together to guarantee cosmic and earthly fertility.

Global Parallels: Ganesha and Fertility Gods Worldwide

The themes of vegetation and fertility in *Ganesha*'s lore find resonances in cultures far beyond India. Many ancient societies worshipped fertility deities who, like *Ganesha*, were intimately linked with agriculture, bountiful harvests, and the natural cycles of growth. Drawing brief parallels with a few such figures – Demeter of Greece, Osiris of Egypt, and Freyr of the Norse tradition – can illuminate common symbolic threads and unique differences that highlight *Ganesha*'s special place in the world's pantheon of nature gods.

Demeter, the Greek goddess of the harvest, grain, and fertility of the earth, is an apt counterpart to consider. As the Olympian responsible for agriculture and the sustenance of mankind, Demeter ensured crops grew and the seasons turned. One authoritative description calls Demeter the goddess 'who sustained mankind with the earth's rich bounty,' often depicted carrying a sheaf of wheat or a cornucopia as her emblem. In Greek myth, Demeter's grief when her daughter Persephone was

taken to the underworld caused the earth to become barren (winter), and her joy upon reunion brought the spring and renewed growth. While Demeter is female and *Ganesha* male, both represent a nurturing aspect of divinity – Demeter literally as mother of grain, *Ganesha* as a genial patron of the sown field. Notably, just as *Ganesha* has a sweet tooth for modaks and laddus (made of grains and sweets), Demeter is closely associated with the baking of bread and the milling of wheat – the transformation of raw grain to nourishing food was under her blessing. Symbolically, *Ganesha*'s pot belly and love of food echo Demeter's gifting of plenitude to humanity. Both deities also had festivals celebrating the harvest home: the ancient Greeks held the Thesmophoria and Eleusinian mysteries in Demeter's honour, thanking her for the crops, whereas Hindus celebrate Ganesh Chaturthi around the time of agricultural plenty in late monsoon and invoke him at Makar Sankranti (the winter harvest festival) as well in many regions. Moreover, Demeter's imagery with a torch and search for Persephone resonates with *Ganesha*'s role as a light-bearer (the lamp at the beginning of all rituals) and a guide through the dark obstacles of life toward the light of success. They differ in form – one an elegant mother, the other a playful elephant-boy – yet both stand as custodians of life's renewal through food and grain. It is telling that elephants themselves were sometimes fertility symbols in Greek and Roman art (the elephant was exotic but represented abundance), just as *Ganesha*'s elephant visage signals *āubh* (auspiciousness) and *lābha* (gain). In essence, *Ganesha* in India fulfills a role akin to Demeter: ensuring that the earth yields nourishment and that the people thrive.

Turning to Osiris of ancient Egypt, we find striking narrative parallels. Osiris was revered as a god of many realms – the underworld, resurrection, and vegetation. In Egyptian mythology, Osiris's brother Set killed and dismembered him, and Osiris's wife Isis reassembled him, after which Osiris became the ruler of the afterlife. Importantly, Osiris was 'both a god of fertility and the embodiment of the dead and resurrected king'. His death and rebirth were deeply connected to the annual cycle of the Nile: Egyptians saw Osiris's body as the soil that was flooded, depositing fertile black silt (hence Osiris is often shown with black or green skin, colors of fertility and rebirth). Green-skinned Osiris represented the sprouting vegetation; at festivals, Egyptians moulded Osiris figurines out of Nile mud and seed grain, which would germinate – essentially 'Osiris gardens' grown as a ritual of resurrection. The parallel to *Ganesha*'s clay idols that dissolve in water and sometimes even contain seeds in modern eco-rituals is uncanny. Both traditions independently intuit that by ritually unifying deity with soil and seed, one sacralises the process of growth. Osiris, like *Ganesha*, was associated with medicinal and magical herbs; texts speak of the 'eye of Osiris' in herbs used by healers, comparable to *Ganesha*'s credited creation of herbs in Indian lore. Furthermore, Osiris's governance of the afterlife made him a guarantor of life's continuity, just as *Ganesha*'s blessing is sought for continuity of family lines (children) and success in endeavours. However, Osiris's cult was more focused on the drama of death and rebirth, whereas *Ganesha*'s is focused on removing obstacles in life – a difference of emphasis. An interesting symbolic parallel is that Osiris was often identified with the bull Apis in fertility contexts, while *Ganesha* rides the tiny mouse. A bull and a mouse are very different, yet both are seed eaters and dispersers in their ecosystems; the bull ploughs and manures the field, the mouse aerates and also challenges the farmer to protect the crop. In their own ways, each deity's animal reflects a truth: fertility must be managed (too many mice, no grain; but with *Ganesha*'s control, the grain is saved; too many bulls trampling could destroy fields, but Osiris as bull is the controlled virility that plows fields). Ultimately, Osiris and *Ganesha* share the role of life-affirming gods: Osiris granting the Nile's renewal and life after death, *Ganesha* granting

the monsoon's gifts and success in worldly life. Notably, both are addressed first in their respective pantheons: Egyptians would invoke Osiris in funerary prayers to ensure safe passage (he was called the opener of ways in the West), while Indians invoke *Ganesha* first in any ritual to ensure it proceeds without hindrance. In that sense, both are openers of the door to fertility and prosperity in this world or the next.

Lastly, consider Freyr (Frey), the Norse god associated with virility, fair weather, and good harvest. Freyr was worshipped in the Viking Age as a bringer of peace and plenty; his very name means 'Lord', and he was particularly revered in Sweden as a god of rain, sun, and fertility of the fields. Freyr is often shown with a boar (his mount Gullinbursti) and sometimes with a prominent phallic imagery, underscoring fertility and the male generative force. He was invoked for bountiful harvests and peace – interestingly a combination *Ganesha* also provides, since plenty is enjoyed best in peace and removal of conflict (or obstacles). One source summarizes Freyr as associated with 'kingship, fertility, peace, prosperity, fair weather, and good harvest', which reads like a job description not far from *Ganesha*'s if we substitute kingship with 'leadership' or auspicious beginnings. During Scandinavian pagan celebrations (like at Uppsala), Freyr's statue would receive sacrifices for rain and crops, akin to how Hindus offer sweets and sugarcane to *Ganesha* for a sweet and abundant crop. Freyr's sister Freyja was goddess of love and fertility as well, paralleling perhaps the Shakti-*Lakshmi* female divinities alongside *Ganesha*. But Freyr's uniqueness was being a male fertility god in a pantheon where Thor (thunder god) and others also had roles in weather. In some respects, *Ganesha* is one of the relatively few male deities in Hinduism explicitly linked to fertility/vegetation (many others are goddesses or local earth gods). Freyr's prominence in fertility rites of the Norse (such as at Lammas, the first-fruits festival) is similar to *Ganesha*'s prominence in Ganesh Chaturthi and harvest-related rituals, with both receiving the first produce in offering (Norse farmers offered the first sheaf of grain to Freyr, Hindus offer the first modak or first basket of rice to *Ganesha*). Freyr's symbol of the phallic pillar or Maypole in some traditions underscores generative power and continuity of the clan – an earthy manifestation of fertility. *Ganesha*'s symbolism is less overtly sexual but intriguingly, some early interpretations of *Ganesha*'s trunk (when turned left) likened it to a lingam, a sign of Shiva's creative power. Indeed, *Ganesha* being Shiva's son links him indirectly to the linga, the phallic representation of cosmic creativity. Both Freyr and *Ganesha* also have humility attached to their myths: Freyr gave away his mighty sword to win love (thereafter he had to rely on a stag's antler in the final battle – a symbol of nature's cycle), while *Ganesha* famously broke off his own tusk to use as a pen, sacrificing a part of himself for the higher good of writing knowledge. In these myths we see sacrifice for fertility/knowledge – a recognition that fertility often requires a give and take (a seed must die to create a plant, etc.). Freyr's sacrifice ensures peace and fruitfulness, *Ganesha*'s sacrifice (of the tusk) ensures the epic Mahabharata was written, imparting moral and social sustenance to humanity. Both acts transcend pure fertility into the realm of cultural prosperity.

In drawing these parallels, we appreciate that while *Ganesha* is distinct in form and origin, he shares with Demeter, Osiris, and Freyr an archetypal role: the Sacred Provider who bridges the human and natural worlds. Each of these deities is celebrated with harvest festivals, honored as first among equals in their spheres (be it a pantheon or a ritual sequence), and depicted with symbols of plenty (ears of grain, green skin, an overflowing sack, or a big belly). They all remind their devotees that divine grace is intertwined with the fertility of the earth. Yet, *Ganesha*'s unique synthesis of

traits – wisdom, humor, approachability, and his elephant-headed visage – gives him a universal appeal.

Conclusion

Ganesha's sacred bond with flora and fertility symbolizes nature's bounty, agricultural prosperity, and divine protection. Born from *Parvati's* turmeric-scented hands, he is revered as the Creator of Medicinal Plants, embodying the essence of vegetation and harvest. Rituals like Bengal's Nabapatrika, where sacred plants are worshipped beside him, highlight his deep connection to nature's cycles. Offerings of durva grass, hibiscus flowers, and turmeric symbolize purity, abundance, and healing, while modern practices of seed-infused clay idols reflect his role in promoting environmental sustainability. Across regions, farmers place the first coconut of the harvest before his idol, students offer erukku flowers for knowledge, and communities plant trees during Ganesh Chaturthi to honour his guardianship of the earth. His symbolism transcends Indian borders, paralleling global fertility deities like Demeter and Osiris. *Ganesha's* gentle elephant form and pot belly remind us to nurture the earth with gratitude and reverence, understanding that the smallest act of care—offering a blade of grass or planting a seed—invokes his blessing for continuous growth and harmony with nature. His presence in fields, harvests, and homes serves as a timeless inspiration for ecological balance and divine grace.

References

1. Kapoor, Surendra. "Shakambari Jayanti – A Wonderful Tribute to Vegan Food." *The Times of India*, 29 Dec. 2016.
2. Krishna, Nanditha. "The Ecology of Ganesha." *Open Magazine*, 21 Aug. 2020.
3. Neel, Sumita. 'Kola-bou' – The Banana Bride (Nabapatrika Durga Puja Ritual)." *Seasons of Life Blog*, 30 Oct. 2020.
4. Pattanaik, Devdutt. *99 Thoughts on Ganesha: Stories, Symbols and Rituals of India's Beloved Elephant-headed Deity*. Jaico Publishing House, 2018. Print
5. Varadpande, Navanita. "Of Festivals and Their Deep-Seated Roots in Our Surrounding Flora." *The Times of India Blogs* (Orange Peel), 7 Oct. 2022.
6. Viswanath, Dr. Seethalakshmi. "Karttikeya Worship in Bengal." *Murugan Bhakti* (Conference Paper), murugan.org, 2003.
7. "Durva Grass for Ganesha." *The New Indian Express*, 16 May 2012.
8. Eliade, Mircea. *Patterns in Comparative Religion*. Sheed & Ward, 1958.
9. Frazer, James George. *The Golden Bough: A Study in Magic and Religion*. Macmillan, 1922.



SOCIAL MEDIA AND THE VIRTUAL CELEBRATION OF INDIAN FESTIVALS: A CULTURAL SHIFT

Dr. Preeti Singh

Assistant Professor

Department of Journalism and Mass Communication
Swami Vivekanand Subharti University, Meerut

Abstract

Indian festivals, traditionally rooted in physical gatherings, rituals, and community participation, are witnessing a significant transformation due to the rise of social media. Platforms like Instagram, Facebook, YouTube, and WhatsApp have given rise to a new culture of virtual celebration, where rituals are streamed live, wishes are exchanged digitally, and public engagement is often driven by visual storytelling and influencer culture. This paper explores how the mode and meaning of festival celebrations are evolving in the digital age, analyzing the effects of social media on cultural practices, personal expression, and collective memory. The research draws on secondary data from content analysis of festival-related social media posts.

Keywords:- Indian festivals, digital culture, virtual celebration, influencer culture, Instagram, and Facebook.

Introduction:

India, a land of diversity, is known for its rich tapestry of festivals celebrated with devotion, color, and community spirit. These festivals not only mark religious significance but also reinforce social bonds and cultural identity. Traditionally, festivals such as Diwali, Holi, Eid, Navratri, and Christmas have been celebrated with rituals at home, visits to places of worship, and large gatherings of family and friends. However, with the advent of social media and digital platforms, the celebration of festivals has entered a new phase.

In today's hyper-connected world, the celebration of festivals is no longer confined to physical spaces. Social media has created a parallel digital arena where festivals are celebrated virtually through live videos, hashtags, reels, digital cards, influencer posts, and brand collaborations. This shift raises several questions: Are social media celebrations replacing traditional practices? Are festivals losing their spiritual depth in the pursuit of online validation? Or is this a new form of cultural revolution?

Objectives of the Study:- Below are the objectives of the research paper

1. **To explore** how Indian festivals are being represented and celebrated on social media platforms.
2. **To examine** the shift from physical to virtual participation in festival celebrations.
3. **To analyze** how influencer culture and digital storytelling are shaping the modern understanding of festivals.
4. **To understand** the impact of social media on cultural practices, collective memory, and traditional rituals.

Literature Review

The intersection of social media and Indian cultural celebrations has gained significant academic interest in recent years. Scholars have investigated how digital platforms influence traditional practices, values, and intergenerational perceptions within Indian society.

Ghosh and Khurana (2024), in their study published in *ShodhKosh*, analyze how religious festivals are perceived across generations. They highlight that younger generations tend to view festivals through the lens of personal expression and digital display, whereas older individuals emphasize communal rituals and spiritual values. This generational shift is a key factor in the evolution of festival celebrations in the digital age.

Biradar and Hibare (2022) explore how public festival celebrations in urban spaces are adapting to sustainable development goals. Published as part of *Smart Cities for Sustainable Development*, their study reveals that while digital celebrations reduce environmental stress, they also shift the focus from spiritual engagement to eco-conscious aesthetics and brand-led narratives.

Nag (2021) discusses the impact of globalization on Indian cultural communication. She explains that media and social platforms act as vehicles of both cultural preservation and westernization. As Indian youth engage with both local and global content, festivals become sites of hybrid cultural expression, where traditional motifs are often reinterpreted for Instagram or YouTube aesthetics.

Wani et al. (2024), in the *Asian Journal of Education and Social Studies*, provide a broader literature review on the societal impact of social media. Their findings support the notion that online platforms have not only reshaped social interaction but also cultural behavior, including the celebration of religious and seasonal festivals.

Park et al. (2017), through an international study on YouTube consumption patterns, argue that cultural values significantly influence how festivals are consumed and portrayed online. Although focused globally, their findings provide a comparative framework for analyzing Indian social media users' content related to festivals.

An article by Fuzion PR (2024) discusses cultural globalization and the increasing popularity of Western festivals in India. It asserts that social media plays a central role in promoting non-Indian festivals, which in turn shapes how traditional Indian festivals are celebrated—with a focus on consumption and digital visibility.

Another relevant work is the study on tribal communities in West Bengal, which shows how social media is altering indigenous cultural practices. The findings indicate that while digital tools aid in cultural preservation, they also lead to simplification and commercialization of rituals when shared

on mainstream platforms (Academia.edu, 2021).

Finally, Singh (2021), in the *Journal of Cultural Studies in India*, investigates how Instagram influences festival narratives in urban India. Her research concludes that festivals have increasingly become performative events shaped by influencer culture, digital storytelling, and algorithm-driven visibility.

Together, these studies form a comprehensive understanding of how Indian festivals are shifting from their traditional moorings to digitally mediated expressions, leading to both cultural continuity and transformation.

Research Methodology

This study employs a qualitative research approach with a focus on content analysis of social media posts related to major Indian festivals such as Diwali, Holi, Eid, Durga Puja, and Ganesh Chaturthi.

Results and Discussion

1. Rise of Visual Storytelling:- In the age of social media, Indian festivals have transformed into visually rich, curated experiences, especially on platforms like Instagram and YouTube. Users focus on creating aesthetically pleasing content such as reels, shorts, and photo carousels that appeal to digital audiences and platform algorithms. The emphasis has noticeably shifted from traditional rituals to visual spectacle—showcasing outfits, home décor, gift unboxing, and influencer-led promotions. For example, Diwali posts predominantly highlight fashion styling and lighting arrangements, with minimal representation of spiritual practices like puja. This shift reflects a growing preference for performative celebration over ritualistic engagement in the digital space.

2. Influence of Digital Influencers:- Digital influencers, especially those in the lifestyle, fashion, and beauty domains, have emerged as cultural trendsetters in the celebration of Indian festivals. Their large followings on platforms like Instagram and YouTube allow them to shape how festivals are perceived and celebrated by younger audiences. Instead of focusing on traditional rituals, influencers promote curated celebrations involving branded outfits, themed décor, makeup tutorials, and sponsored giveaways. For example, during Diwali, many influencers collaborate with fashion brands like FabIndia or Biba to showcase ethnic wear collections through reels titled “Diwali Outfit Ideas.” Similarly, makeup influencers post tutorials for “Holi Makeup Looks” using specific cosmetic brands.

Food bloggers also contribute by sharing “5-minute Diwali recipes” or “Instagram-worthy sweets,” often featuring product placements for packaged ingredients. These promotions are often framed as part of the festival spirit but primarily aim to drive consumer purchases. The influencer-led festival narrative often lacks cultural depth, prioritizing aesthetics, brand visibility, and algorithm reach over traditional or communal values. This influencer-driven content not only redefines how festivals are celebrated but also commercializes cultural practices, making them more about individual performance and consumption than collective experience or spiritual meaning. The result is a digitally reimagined version of Indian festivals focused on engagement metrics.

3. Virtual Rituals and Live Streaming:- The advent of platforms like Facebook Live, YouTube,

and Zoom has enabled families to participate in religious rituals remotely, especially during the COVID-19 pandemic when physical gatherings were restricted. Temples and spiritual organizations began streaming aartis, pujas, and bhajans online, allowing devotees to stay connected to their faith from home. This shift proved especially valuable for the Indian diaspora and geographically separated families, who could now witness and even take part in important ceremonies in real time.

However, while these virtual rituals offer accessibility and convenience, they often lack the sensory richness, emotional warmth, and communal energy of in-person celebrations. The fragrance of incense, rhythmic chants, collective singing, and the shared prasadam experience cannot be fully replicated through screens. As a result, while technology has expanded participation, it has also diluted some of the core elements that make festival celebrations deeply spiritual and socially binding within the Indian cultural context.

4. Change in Greeting Practices:- With the rise of platforms like WhatsApp and Instagram, traditional face-to-face greetings during festivals are increasingly being replaced by digital messages. Users now commonly share pre-designed templates, GIFs, and festival-themed filters to convey wishes. Instagram Stories and WhatsApp status updates are filled with mass-forwarded greetings, reducing the need for individual interactions. While this shift makes communication faster and more convenient, it often lacks the warmth and emotional connection of personal meetings or phone calls. The digitalization of greetings reflects a broader trend toward efficiency over intimacy, subtly transforming the way relationships and festive goodwill are expressed in modern society.

5. Cultural Homogenization:- Festival content across platforms showed signs of homogenization—same poses, similar hashtags, and recurring brand collaborations. Local rituals and vernacular expressions are often underrepresented, threatening cultural diversity.

6. Hybrid Celebrations Emerging:- Despite concerns about digitalization eroding traditional practices, many users are creatively blending the old with the new. Families now record rituals to preserve memories and share them with distant relatives. Online platforms are used to teach children shlokas and festival stories, fostering cultural learning through digital means. Communities organize virtual rangoli contests, online aarti competitions, and festive webinars, encouraging participation while respecting modern constraints. This fusion of digital tools with traditional customs reflects an evolving cultural model—one that adapts to contemporary lifestyles without entirely discarding heritage, signaling a balanced and innovative approach to celebrating Indian festivals in the digital age.

7. Virtual Trends in Festival Celebrations:- The content analysis revealed the following dominant trends:

- **#Diwali, #HoliHai, #EidVibes** were among the top-trending hashtags across Instagram and Twitter.
- 75% of festival content involved **aesthetic photography** of home décor, outfits, food, and rituals.
- Influencers posted **brand-sponsored reels** offering fashion, jewelry, and gift recommendations.
- Live streaming of **pujas and community events** on Facebook and YouTube has become common post-COVID.

These findings indicate that social media serves not only as a tool for documentation but also for **curation and performance** of culture. This suggests that while the digital shift offers new avenues of celebration, it also creates gaps in intergenerational understanding and shared experience.

Cultural Implications:- The transition to virtual celebration brings with it both opportunities and challenges:

Opportunities

- **Cultural Preservation:** Social media helps in documenting rituals, preserving folklore, and reaching diaspora communities.
- **Inclusivity:** Online platforms allow those away from home or abroad to participate virtually.
- **Creativity and Innovation:** Users experiment with festival-themed content—poetry, art, reels, digital rangoli, etc.

Challenges

- **Commercialization:** Rituals risk being reduced to consumer moments.
- **Dilution of Meaning:** Focus on aesthetics can overshadow the spiritual or communal essence.
- **Social Pressure:** The need to curate “perfect” festival posts creates psychological pressure, especially among youth.

Conclusion

Social media has undeniably transformed how Indian festivals are celebrated. While it enables greater outreach, creativity, and inclusion, it also introduces elements of commercialization, performance, and cultural distortion. The virtual celebration of festivals marks a **cultural shift** that is both exciting and concerning. This shift should not be seen as a loss, but as a transformation that requires conscious reflection. As society navigates this digital age, there is a need to maintain the **sacred core** of festivals while embracing the tools of modern expression. A hybrid model—where rituals are respected and celebrated both offline and online—might be the way forward.

Recommendations

To preserve the cultural richness of Indian festivals in the digital era, it is essential to strike a balance between tradition and technology. Educational institutions and community organizations should promote digital literacy with cultural sensitivity, encouraging the meaningful use of social media to document and share authentic traditions rather than just aesthetic highlights. Influencers and content creators must be encouraged to include cultural context and traditional knowledge in their festival-related content to ensure depth and awareness. Additionally, local authorities and cultural bodies can organize hybrid celebrations—combining offline rituals with online participation—to engage younger, tech-savvy audiences while preserving communal values. Parents and educators should guide children in understanding the significance of rituals beyond their visual appeal, possibly through interactive storytelling, online workshops, and digital archives. Finally, platforms like Instagram, Facebook, and YouTube can collaborate with cultural institutions to spotlight regional diversity and

promote responsible representation of Indian festivals, helping to safeguard intangible heritage in the virtual space.

References

- Academia.edu (2021). Impact of Social Media on Tribal Culture in West Bengal.
- Arora, P. (2020). *The Next Billion Users: Digital Life Beyond the West*. Harvard University Press.
- Banaji, S. (2011). *South Asian Media Cultures: Audiences, Representations, Contexts*. Anthem Press.
- Biradar, S. L., & Hibare, R. (2022). Celebration of Public Festivals Toward Sustainable Development, in *Smart Cities for Sustainable Development*.
- Fuzion PR (2024). Cultural Globalization: How Western Festivals Shape Local Traditions in Bharat.
- Ghosh, P. D., & Khurana, D. (2024). Perception of Religious Festivals Across Generations and Its Impact on the Youth Value, *ShodhKosh*.
- Miller, D., Costa, E., Haynes, N., McDonald, T., Nicolescu, R., Sinanan, J., ... & Wang, X. (2016). *How the World Changed Social Media*. UCL Press.
- Nag, D. (2021). Impact of Globalization on Communication and Culture: The Indian Scenario, *Academia.edu*.
- Park, M., et al. (2017). Cultural Values and Cross-cultural Video Consumption on YouTube, *arXiv*.
- Singh, A. (2021). *Festivals in the Age of Instagram: A Study of Visual Rituals in Urban India*, *Journal of Cultural Studies in India*, 5(2), 34–49.
- Singh, A. (2021). “Festivals in the Age of Instagram: A Study of Visual Rituals in Urban India.” *Journal of Cultural Studies in India*, 5(2), 34–49.
- Wani, Z. A., et al. (2024). Impact of Social Media on Society: A Literature Review, *Asian Journal of Education and Social Studies*.



WATER, WORSHIP AND WISDOM: THE INTERPLAY BETWEEN BIHAR'S RIVERS AND LOCAL TRADITIONS

Shubhendu

Ph.D. Scholar,
Central University of South Bihar, Gaya

Swati Kumari

Ph.D. Scholar,
Central University of South Bihar, Gaya

Abstract

This paper explores the sacred, ecological, and socio-political dimensions of Bihar's riverine traditions, examining how the Ganges, Kosi, Gandak, and Bagmati rivers mold local habitats. It argues that rivers in Bihar are not merely water bodies but revered deities, ecological mentors, and sites of cultural resistance. Through rituals like Chhath Puja, communities engage in dynamic worship that intertwines spiritual devotion with environmental wisdom. Traditional flood forecasting techniques and adaptive agricultural practices exhibit advanced traditional knowledge, often marginalized by cutting-edge technocratic water management. The study foregrounds gendered and caste-based dynamics in water access and worship, revealing both the emancipatory potential and exclusionary tendencies of river-centric traditions. Analyzing conflicts between development projects (dams, embankments) and local ontologies of water, the paper tries to frame river worship as political resistance against reductionist governance models. Ultimately, it advocates for a sacred ecology framework that coalesce traditional knowledge, cultural reverence, and sustainable governance, offering Bihar's riverine cosmologies as a paradigm for rethinking human-water relationships in an era of climate crisis.

Keywords: *Cultural ecology, River study, Sacred rivers, Riverine communities, Kosi River, River deities, Bihar water traditions, Water governance.*

Introduction

In Bihar, people have an unfathomable intimacy, revered and essential relationship with water. In contrast to many conventional urban settings where water is treated as a mere commodity, in Bihar, rivers are living entities—deities, ancestors, and instructors all at once. The Ganges, Bagmati, Gandak, and Kosi are not just geographical ingredients but the throb of cultural and spiritual life. They craft identities, decree agricultural cycles, inspire folklore, and influence worship. This deep embedded relation between people and rivers is not merely functional; it is ingrained in Bihar's civilization and regarded as sacred.

Bihar's rivers have mothered its lands for ages, spawning spiritual movements, ancient kingdoms, and a rich tradition of ecological knowledge. However, in recent decades, ignoring the

local knowledge, factors like industrialization, climate change, and top-down water management policies have strained this relationship. Yet, despite these hurdles, the people of Bihar manage to uphold their pious relationship with rivers through rituals, lores, and adaptive practices. This chapter reconnoitres the labyrinthine interplay between water, worship, and wisdom in Bihar, unveiling how rivers are cultural and spiritual powers which perpetuate life in every way it appears, alongside being the physical entities. The sanctity of rivers in Bihar is not just a matter of religious doctrine but a living, breathing aspect of mundane existence that shapes ecological behaviour, cultural identity, and interpersonal harmony. The veneration for rivers like the Ganges transcends beyond ritualistic worship; it directs the art, agricultural practices, music, and even the moral ethos of the region. Folk oral narratives often picturize rivers as compassionate yet capricious mothers—nurturing crops and livelihoods one moment, and subsequently assessing her children’s endurance. This duality underscores the deep understanding that rivers, like life itself, are both benevolent and unforeseeable, demanding respect and adaptability.

The spiritual economy of Bihar hinges on the Ganges in particular. Pilgrimage towns like Patna, Bhagalpur, and Munger thrive on the river’s sacred aura, drawing devotees who believe that bathing in its waters helps to heal ailments and atone for sins. The riverbanks, or ghats, serve as open-air temples where rituals, meditation, and community gatherings merge seamlessly. Even in metropolitan settings, where pollution threatens the river’s purity, the believers continue to cherish Ma Ganga, foregrounding an unshakeable bond that extends environmental degradation. Chhath Puja, while rooted in Hindu traditions, has evolved into a unifying cultural force that bridges caste, class and in some regions even religious divides. The festival’s emphasis on nature worship—honoring the sun, water, and earth—resonates with indigenous and tribal communities who view rivers as ancestral spirits. Tribal groups like the Santhals and Mundas incorporate river worship into their own cosmologies, blending Hindu motifs with animist beliefs. This syncretism demonstrates how rivers serve as both shared heritage and religious symbols, encouraging group stewardship.

The Gandak, Bagmati and Kosi rivers, though less celebrated than the Ganges, are equally vital to regional spirituality. The Kosi’s nickname, “*Bihar ka Shok*,” reflects a paradoxical relationship—a river that brings both chaos and calm or ruin and renewal. Annual festivals like Kosi Puja involve offerings of flowers, milk, and sweets to placate the river’s fierce nature, a practice that mirrors the ancient Hindu concept of balancing reverence with fear. Similarly, the Gandak is revered as a manifestation of Vishnu, while the Bagmati is linked to local goddesses who protect villages from drought and disease. In contemporary Bihar, the sacredness of rivers faces challenges from industrialization and climate change. Yet, grassroots movements led by farmers, activists, and priests advocate for river conservation as a moral duty. The belief that rivers are divine entities continues to inspire ecological activism, proving that tradition and modernity can coexist. Ultimately, Bihar’s rivers are more than water bodies—they are the pulse of its culture, a source of spiritual solace, and a reminder of humanity’s enduring connection to nature.

Folk Knowledge and Environmental Wisdom

The ignorance towards traditional ecological knowledge in Bihar highlights the prevalent global trend where modernity often dismisses indigenous knowledge as outdated or unscientific. Proving this trend wrong, communities along Bihar’s rivers have shown it repeatedly that their

methods are not only practical but often more sustainable than engineered solutions. To exemplify, the *ahars* and *pynes*—traditional irrigation systems in South Bihar—have sustained agriculture for centuries by harnessing floodwaters and directing them to fields through a network of channels and reservoirs. These systems, built on an intricate understanding of local topography, require relatively little assistance from external sources and are inherently adaptive to climatic variations. Despite their efficacy, state-led water management plans hardly ever include such techniques. Instead, large infrastructure projects, like the Kosi High Dam and the Gandak Barrage, prioritize flood control through rigid structures that often causes downstream siltation and erosion more detrimental. The 2008 Kosi deluge, which uprooted millions of people after breaching an embankment, was a stark reminder of how even the well planned engineered solutions can fail when they disregard the river's natural behavior. In contrast, communities that rely on traditional forecasting and adaptive farming tend to experience less damage because they anticipate and prepare for these events, recognizing their potential benefit. Grassroots initiatives are now emerging to harmonize it. Organizations like the Barh Mukti Abhiyan (Flood Freedom Movement) advocate for “living with floods” by revisiting and reviving traditional practices like raised-bed farming and community-based early warning systems. Academicians are also trying to document and authenticate indigenous knowledge, showing how it accompanies modern science. For instance, a 2022 study by the Institute of Environment and Development in Patna, local flood predictions based on riverbank erosion patterns and animal behavior were consistent with satellite-based models in 80% of cases. The challenge lies in institutionalizing this knowledge. Policymakers must collaborate with local communities as equals, acknowledging that rivers require understanding and respect rather than attempts at control. By blending indigenous knowledge with cutting-edge technology, Bihar can develop a more holistic approach to river management—one that maintains the honor of its sacred rivers not just in ritual, but in practice.

Rituals, Gender, and Social Order

The gendered and caste-based dynamics of river rituals in Bihar divulge a complex interplay between power, tradition, and social change. Matrifocal water-related rituals germinates from cultural associations between femininity and nurturing—rivers are worshipped as mothers, and women, as caregivers, become their natural custodians. This role grants them spiritual authority, yet it rarely transforms into institutional power. For instance, while women perform Chhath Puja with meticulous and ardent devotion, their absence from water management boards and disaster response committees means their practical expertise—such as predicting flood patterns based on daily interactions with rivers—is systematically overlooked. Dalit and Adivasi women are subjected to double prejudice when it comes to accessing sacred areas, and caste hierarchies further marginalize them. Upper-caste dominance over ghats often forces marginalized communities to use downstream or polluted sections of rivers, reinforcing social exclusion under the guise of ritual purity. Even in domestic settings, Due to upper-caste households' reluctance to share wells, Dalit women usually have to travel farther to get water. This spatial segregation mirrors broader societal inequities, where water becomes a political resource more than a spiritual resource.

However, resistance is growing. Feminist collectives like the Bihar Women's Water Network are documenting how marginalized women traverse water scarcity and advocating for their inclusion in policy-making. Legal milestones, such as the 2017 Uttarakhand High Court ruling recognizing the Ganges and Yamuna as “living entities,” have sparked similar calls in Bihar, framing river rights as

inseparable from social justice. Activists argue that recognizing rivers as legal persons could democratize access and challenge caste-based restrictions on water use.

Meanwhile, younger generations are reanalyzing traditions. In urban areas, inter-caste groups organize community Chhath celebrations, deliberately choosing public ghats to assert equal access. Moreover, NGOs are collaborating with Dalit and socially disadvantaged women to gather and document their traditional water knowledge, establishing them as authorities on climate adaptation. These shifts propose that while water rituals in Bihar remain deeply gendered and caste-bound, they are also becoming sites of struggle—and potential transformation—toward more equitable water futures.

The Political Ecology of River Worship

The political dimensions of river worship in Bihar reveal a profound tension between traditional cosmologies and modern development paradigms. For riverine communities, sacred rivers like the Kosi and Gandak are not mere resources to be harnessed but living entities with agency and spiritual significance. This worldview directly opposes technocratic river management. When authorities propose massive dam projects, they frequently categorize dissent as backward, neglecting cultural and spiritual consequences, like loss of pilgrimage sites, submerged cremation grounds, or altered river flows that disrupts cultural bonds. The defiance to such projects is not merely about material losses but also the erosion of a sacred relationship with nature. For instance, the Kosi's frequent breaches of embankments are interpreted by some communities as the river "reclaiming its path," a divine assertion of autonomy against human attempts at control. Rituals like the annual Kosi Puja, where villagers offer prayers for the river's benevolence, double as subtle acts of defiance, reinforcing the idea that the river's will cannot be subdued by concrete alone.

In order to demand participatory government, grassroots groups are increasingly leveraging this sacred rhetoric. Organizations like the Kosi Navnirman Manch argue that flood management must incorporate traditional knowledge—such as the *chauris* system of floodplain farming—rather than relying solely on embankments. Their advocacy draws on spiritual narratives, framing rivers as "mothers" whose rhythms must be honored, not conquered. Similarly, the Bhumi Bachao Andolan (Save the Land Movement) has mobilized farmers to protest land acquisition for dams by invoking the sanctity of river-fed soils, which they describe as "the flesh of Ma Ganga." Legal and discursive shifts are also emerging. The 2017 Uttarakhand High Court ruling recognizing rivers as legal persons has inspired activists in Bihar to demand similar status for the Kosi and Gandak, which could mandate consultation with affected communities before infrastructure projects proceed. Meanwhile, scholars like Mishra (2020) emphasize how development policies could amalgamate *jal-samitis* (water councils) where women and marginalized groups—the primary custodians of ritual and practical water wisdom—co-design solutions.

Ultimately, river worship in Bihar is evolving into a counter-narrative against extractive development. By asserting the sacredness of rivers, communities are not rejecting progress but rewriting it—as an equilibrium between human needs and ecological integrity. This struggle reiterates a universal truth: rivers cannot be viewed solely as economic commodities without severing the cultural and spiritual lifelines they sustain.

Conclusion: Toward a Sacred Ecology

The divine rivers of Bihar portray a profound immersion of culture into nature, where ecological wisdom and spiritual veneration intersect to create a sustainable model of coexistence. For centuries, the people of Bihar have recognized that rivers are more than just waterways; they are sentient beings with their own rhythms, responses, and spiritual functions. This worldview—rooted in Hindu cosmology but shared across tribal and folk traditions—has shaped everything from agricultural practices to disaster resilience. Unlike modern water management systems that prioritize control and extraction, Bihar's traditional knowledge systems emphasize adaptation, reciprocity, and reverence. The annual floods of the Kosi, for instance, are not just seen as destructive events but as necessary cycles that replenish the soil, a perspective that has enabled communities to develop flood-resilient farming techniques like *kharif* and *rabi* crop rotation in the *chaurs* (floodplains). The spiritual dimension of this relationship is equally vital. Rituals like Chhath Puja and Kosi Puja are not mere superstitions but acts of ecological reciprocity—a way of giving thanks to the rivers for their bounty and seeking their protection in return. These practices encode an environmental ethic that modern policy often overlooks: that human survival depends on respecting natural systems rather than dominating them. When women stand waist-deep in the Ganges during Chhath, offering prayers to the rising sun, they are performing an act of hydro-theology that binds the cosmic, the natural, and the human into a single sacred continuum.

Yet, this ancient harmony is under threat. Top-down development projects, pollution, and climate change are severing the connection between communities and their rivers. The proposed Sapta-Koshi High Dam, for example, risks displacing thousands while altering the river's sacred flow—a disruption that is as much cultural as it is ecological. Similarly, industrial effluents and plastic waste are turning heavenly rivers like the Ganges into toxic channels, violating their sanctity and jeopardizing the livelihoods of riverine communities and their rituals. The path forward lies in bridging tradition and policy. Initiatives like community-led river monitoring, where local knowledge complements scientific data, can offer more holistic flood forecasts. Legal initiatives, such as granting rivers “living entity” status (as done for the Ganges in Uttarakhand), could enforce their protection through cultural and ecological lenses. Most importantly, Bihar's marginalized communities—especially women and Dalits, who are the primary custodians of water rituals—must be centered in decision-making. Their daily interactions with rivers, from fetching water to performing pujas, embody a lived expertise that no technocratic model can replicate.

In an era of climate emergency, Bihar's divine rivers serve as a reminder that sustainability is a way of thinking as much as it is about technology. The songs devoted to the Ganges, the lores of Kosi Mai's temper, and the rituals that mark the seasons all encode a simple truth: rivers are alive, our survival is inextricably linked to theirs. By honoring this traditional wisdom, Bihar has the potential of paving the way in a development paradigm that is both spiritually and environmentally sound—a model where progress flows with the river, not against it.

Work Cited

1. Acharya, A., and A. Prakash. *When the River Talks to Its People: Local Knowledge-Based Flood Forecasting in Gandak River Basin, India*. *Environmental Development*, vol. 30, 2019, pp. 100–113. Elsevier,

<https://doi.org/10.1016/j.envdev.2019.01.002>.

2. Aslam, A., P. Parthasarathy, et al. "Ecological and Societal Importance of Wetlands: A Case Study of North Bihar (India)." *Wetlands: Current Challenges and Future Perspectives*, edited by B. Gopal, Wiley, 2021, pp. 65–82. <https://doi.org/10.1002/9781119692621.ch4>.
3. *Bala, M. A. "River Trade in Bihar 1793–1850." *Journal of Historical Research*, vol. 44, 2004, pp. 1–15. Dept. of History, Ranchi University.
4. Baruah, M., and J. Mukherjee. "Rivers and Estuaries." *The Routledge International Handbook of Island Studies*, edited by Godfrey Baldacchino, Routledge, 2018, pp. 221–234. <https://doi.org/10.4324/9781315556642-15>.
5. Choudhary, N., M. B. Gurung, C. G. Goodrich, N. Gupta, et al. *Gender Dynamics of Female-Headed Households in Rural Bihar, India: Reflections from the Koshi River Basin*. ICIMOD, 2019, <https://lib.icimod.org/records/fqdgn-ym608/files/ICIMODGenderDynamics.pdf>.
6. Cortesi, Laura. "An Ontology of Water and Land in North Bihar, India." *Journal of the Royal Anthropological Institute*, vol. 27, no. 4, 2021, pp. 870–889. Wiley Online Library, <https://doi.org/10.1111/1467-9655.13611>.
7. Darian, S. G. "The Economic History of the Ganges to the End of Gupta Times." *Journal of the Economic and Social History of the Orient*, vol. 13, no. 1, 1970, pp. 1–42. JSTOR, <https://www.jstor.org/stable/3596155>.
8. Jha, R. K., H. Gundimeda, and P. Andugula. "Assessing the Social Vulnerability to Floods in India: An Application of Super Efficiency Data Envelopment Analysis and Spatial Autocorrelation to Analyze Bihar Floods." *Economic Effects of Natural Disasters*, edited by Debarati Guha-Sapir and Indhira Santos, Elsevier, 2021, pp. 567–588. <https://doi.org/10.1016/B978-0-12-817465-4.00033-9>.
9. Joshi, S., and P. Chakravarty. "An Assessment of Human Impact on Tropical Rivers: A Critical Review on Worship to Responsibility, Case of India." *Remotely Sensed Rivers in the Age of Anthropocene*, edited by S. K. Jain and A. K. Gosain, Springer, 2025, pp. 345–362. https://doi.org/10.1007/978-3-031-82311-4_24.
10. Khanna, M., and N. Kochhar. "Do Marriage Markets Respond to a Natural Disaster? The Impact of Flooding of the Kosi River in India." *Journal of Population Economics*, vol. 36, 2023, pp. 123–150. Springer, <https://doi.org/10.1007/s00148-023-00955-0>.
11. Khatiwada, S. P. "River Culture and Water Issue: An Overview of Sapta-Koshi High Dam Project of Nepal." *Anthropology*, vol. 2, no. 3, 2014, pp. 1–5. Academia.edu, <https://www.academia.edu/download/75955700/river-culture-and-water-issue-an-overview-of-sapta-koshi-high-dam-project-of-nepal-activity-2332-0915.1000130.pdf>.
12. Kumar, D. "River Ganges–Historical, Cultural and Socioeconomic Attributes." *Aquatic Ecosystem Health & Management*, vol. 20, no. 1–2, 2017, pp. 8–13. Taylor & Francis Online, <https://doi.org/10.1080/14634988.2017.1304129>.
13. Kumar, Dhananjay. "The Musahar Folk Song of South Bihar: An Anthropological Insights." *Asian Man (The)-An International Journal*, vol. 12, no. 2, 2018, pp. 81–85. Indianjournals.com, <https://www.indianjournals.com/ijor.aspx?target=ijor:am&volume=12&issue=2&article=014&type=pdf>.
14. Kumar, Maanoj. "Governing Flood, Migration, and Conflict in North Bihar." *Government of Peace: Social Governance, Security and the Political Economy of Peace*, edited by Ranabir Samaddar, Routledge, 2016, pp. 189–207. <https://doi.org/10.4324/9781315585659-10>.
15. Lahiri-Dutt, Kuntala. "People, Power and Rivers: Experiences from the Damodar River, India." *Water Nepal*, vol. 10, no. 1, 2003, pp. 251–267. <https://nepjol.info/index.php/WN/article/view/104>.
16. Lahiri-Dutt, Kuntala, and Gopa Samanta. *Dancing with the River: People and Life on the Chars of South Asia*. Yale University Press, 2013. <https://books.google.com/books?id=Abs-HeEUuJcC>.
17. Mallet, Victor. *River of Life, River of Death: The Ganges and India's Future*. Oxford University Press,

2017. <https://books.google.com/books?id=B>.
18. Ranjan, Manish P. "Treating Rivers as Living Entities." *International Journal of Research in Social Sciences*, vol. 8, no. 5, 2018, pp. 57–67. Indianjournals.com, <https://www.indianjournals.com/ijor.aspx?target=ijor:ijrss&volume=8&issue=5&article=006>.



THE TAJ – AN ARCHITECTURAL MARVEL OR AN EPITOME OF LOVE

Aakanksha Bhatnagar

Research scholar
Kumaun university

Abstract

In this research paper, we will examine the facts related to the Taj Mahal, why the Taj Mahal became so famous and why it is given so much importance from the point of view of art and why Shah Jahan built the Taj Mahal. On Saturday 7th July 2007, the New Seven Wonders Foundation, Switzerland, in its new ranking, again declared the Taj Mahal to be one of the Seven Wonders of the World. The Taj Mahal is not just an architectural feat and an icon of luminous splendour, but an epitome of enormous love as well. The Mughal Emperor Shahjahan (1592-1666) built the Taj Mahal, the fabulous mausoleum (rauza), in memory of his beloved queen Mumtaz Mahal (1593-1631). There is perhaps no better and grander monument built in the history of human civilization dedicated to love. The contemporary Mughal sources refer to this marvel as rauza-i-munavvara ('the illumined tomb'); the Taj Mahal of Agra was originally called Taj Bibi-ka-Rauza. It is believed that the name 'Taj Mahal' has been derived from the name of Mumtaz Mahal. The pristine purity of the white marble, the exquisite ornamentation, use of precious gemstones and its picturesque location all make Taj Mahal a marvel of art.

Introduction

It is universally acknowledged that the Taj Mahal is an architectural marvel; no one disputes its position as one of the seven wonders of the world, and it is certainly the most feted example of considerable feats of Mughal architecture. Emperor Shahjahan built this wonderful white marble tomb in memory of his beloved queen, Arjumand banu Begam, an inseparable companion. The white marble was transported by road from the quarries of Makrana, Rajasthan, more than 400 kilometers away from Agra. Shahjahan's reign is synonymous with the age of marble and the climax of the Mughal architecture. The uniqueness of the Taj is fundamentally based on its appropriate use of marble and other precious stone. Shahjahan had the vision and organised all efforts to build the most impeccable and unique memorial with the help of brilliant architect Ustad Ahmad Lahori and other master craftsmen of his time. The unexcelled architect of the Taj Mahal was one of the greatest architects of the seventeenth century who designed the Taj Mahal with its graceful feminine appearance.

Etymology

The name “Taj Mahal” is of Urdu origin, and believed to be derived from Arabic and Persian, with the words Taj mahal meaning “crown” “palace” (mahal). An alternative derivation of “Taj” is that it was a corruption of the second syllable of “Mumtaz” Abdul Hamid Lahori, in his 1636 book Padshahnama, refers to the Taj Mahal as rauza-i munawwara meaning the illumined or illustrious tomb.¹

Inspiration

The Taj Mahal was commissioned by Shah Jahan in 1631, to be built in the memory of his wife Mumtaz Mahal, who died on 17 June that year while giving birth to their 14th child, Ghauhar Begum,² Construction started in 1632, and the mausoleum was completed in 1648, while the surrounding buildings and garden were finished five years later.³

According to contemporary historians Muhammad Amin Qazvini, Abdul Hamid Lahori and Muhammad Saleh Kamboh, Shah Jahan did not show the same level of affection for others as he had shown Mumtaz while she was alive. After her death, he avoided royal affairs for a week due to his grief and gave up listening to music and lavish dressing for two years. Shah Jahan was enamoured by the beauty of the land at the south side of Agra on which a mansion belonging to Raja Jai Singh I stood. He chose the place for the construction of Mumtaz’s tomb after which Jai Singh agreed to give it to emperor Shah Jahan in exchange for a large palace in the Centre of Agra.

Architecture and design

The Taj Mahal incorporates and expands on design traditions of Indo-Islamic and Mughal architecture. Inspirations for the building came from Timurid and Mughal buildings including the Gur-e Amir in Samarkand (the tomb of Timur, progenitor of the Mughal dynasty) and Humayun’s Tomb in Delhi which inspired the Charbagh gardens and hasht-behesht plan of the site.⁴ The building complex employs symmetrical constructions with the usage of various shapes and symbols. While the mausoleum is constructed of white marble inlaid with semi-precious stones, red sandstone was used for other buildings in the complex similar to the Mughal era buildings of the time.

Exterior

The gateway arches are bordered by Arabic calligraphy with passages from the Qur’an. Much of the calligraphy is composed of florid thuluth script made of jasper or black marble inlaid in white marble panels. Higher panels are written with slightly larger script to reduce the skewing effect when viewed from below. The calligraphy on the southern gate roughly translates to “O Soul, thou art at rest. Return to the Lord at peace with Him, and He at peace with you. “ The calligraphy on the buildings were believed to have been created in 1609 by Abdul Haq, who was conferred the title of “Amanat Khan” by Shah Jahan, At the base of the interior dome is the inscription, “Written by the insignificant being, Amanat Khan Shirazi”.

Interior

The main inner chamber is an octagon with 7.3-metre sides, with the design allowing for

entry from each face with the main door facing the garden to the south. Two tiers of eight pishtaq arches are located along the walls, similar to the exterior,⁵ The calligraphy found on the marble cenotaphs in the tomb is particularly detailed and delicate. On Mumtaz's sarcophagus on the top, the decoration consists of natural plum fruits, buds and flower blossoms inlaid with Qur'anic inscriptions with the epitaph reading "The illumined grave of Arjumand Bano Begam, entided Mumtaz Mahal, who died in the year 1631". The original tomb in the lower level is largely undecorated, with Ninety Nine Names of God inscribed on the side. Conjunction (Sahib-i Qiran-i Sani), Shah Jahan, Padshah; may it ever be fragrant! The year 1076 [AD 1666]" The original cenotaph of Shah Jahan is a more simply decorated version with similar red flowers and yellow plants with a more comprehensive epitaph reading "This is the illumined grave and sacred resting place of the emperor, dignified as Rizwan, residing in Eternity, His Majesty, having his abode in [the celestial realm of] Illiyun, Dweller in Paradise (Firdaus Ashiyani) [posthumous title of Shah Jahan], the Second Sahib-I Qiran, Shah Jahan, Padshah Ghazi [Warrior for the Faith]; may it be sanctified and may Paradise become his abode.

Garden

The complex is set around a large charbagh or Mughal garden. The garden is divided by two main walkways into four quadrants with further raised pathways that divide each of the four-quarters into 16 sunken parterres or flowerbeds. The elevated marble water tank is called al hawd al – kawthar in reference to the tank of abundance promised to Muhammad.⁶ the Taj gardens is unusual in that the main element, the tomb, is located at the end of the garden. With the discovery of Mahtab Bagh ("Moonlight Garden") on the other side of the Yamuna river, the Archaeological Survey of India has hypothesised that the Yamuna river itself was incorporated into the garden's design and was meant to be seen as one of the rivers of Paradise. Similarities in layout and architectural features with the Shalimar Gardens suggest that both gardens may have been designed by the same architect, Ali Mardan. Early accounts of the garden describe its profusion of vegetation, including abundant roses, daffodils, and fruit trees. As the Mughal Empire declined, the gardens were not maintained, and when the British Raj assumed management of the gardens, they changed the landscaping to resemble the formal lawns of London in the 19th century.⁷

Construction

The land on which the Taj Mahal is situated was present to the south of the walled city of Agra which was given to Shah Jahan by Raja Jai Singh I in exchange for a large palace in the Centre of Agra. The building was commissioned in 1631, and construction commenced in 1632. In the tomb area, piles were dug and filled with lime and stone to form the footings of the tomb. The platform above the ground was constructed of brick and mortar. It is believed that more than 20,000 artisans, laborers, painters and others were involved in the construction of the building. Specialist sculptors from Bukhara, calligraphers from Syria and Persia, designers from southern India, stone cutters from Baluchistan and Italian artisans were employed. Workmen constructed a colossal brick scaffold that mirrored the tomb rather than wooden scaffolds. When the structure was partially completed, the first ceremony was held at the mausoleum by Shah Jahan on 6 February 1643, of the 12th anniversary of the death of Mumtaz Mahal. Construction of the mausoleum was completed in 1648, but work continued on other phases of the project for another five years. The Taj Mahal

complex is believed to have been completed in its entirety in 1653 at a cost estimated at the time to be around 32 million, which in 2015 would be approximately 52.8 billion (US\$827 million).

Later years

In December 1652, Shah Jahan's son Aurangzeb wrote a letter to his father about the tomb, the mosque and the assembly hall of the complex developing extensive leaks during the previous rainy season.

In 1658, Shah Jahan was deposed by Aurangzeb and put under house arrest at the nearby Agra Fort from where he could see the Taj Mahal. Upon Shah Jahan's death in 1666, Aurangzeb buried him in the mausoleum next to his wife.⁸ In the 18th century, the Jat rulers of Bharatpur attacked the Taj Mahal while invading Agra and took away two chandeliers, one of agate and another of silver, which had hung over the main cenotaph and the gold and silver screen. Kanbo, a Mughal historian, said the gold shield which covered the 4.6-metre-high finial at the top of the main dome was also removed during the Jat despoliation.

By the late 19th century, parts of the buildings had fallen into disrepair. At the end of the century, British viceroy Lord Curzon ordered a restoration project, which was completed in 1908. He also commissioned the large lamp in the interior chamber and replaced the gardens with European-style lawns that are still in place today.

In 1942, the government erected scaffolding to disguise the building in anticipation of air attacks by the Japanese Air Force.⁹ Since Indian independence in 1947, the Archaeological Survey of India has been responsible for the maintenance of the monument. During the India-Pakistan wars of 1965 and 1971, scaffolding was again erected to mislead bomber pilots.

UNESCO world heritage site

In 1983, the Taj Mahal was designated as a UNESCO World Heritage Site for being “the jewel of Islamic art in India and one of the universally admired masterpieces of the world's heritage”.

Symbolism

Due to the global attention that it has received and the millions of visitors it attracts, the Taj Mahal has become a prominent image that is associated with India, and in this way has become a symbol of India itself.

Along with being a renowned symbol of Love, the Taj Mahal is also a symbol of Shah Jahan's wealth and power, and the fact that the empire had prospered under his rule.¹⁰ Bilateral symmetry, dominated by a central axis, has historically been used by rulers as a symbol of a ruling force that brings balance and harmony, and Shah Jahan applied that concept in the making of the Taj Mahal.¹¹ Additionally, the plan is aligned in the cardinal north-south direction and the corners have been placed so that when seen from the centre of the plan, the sun can be seen rising and setting on the north and south corners on the summer and winter solstices respectively. This makes the Taj a symbolic horizon.¹²

Allama Iqbal pays an ideal tribute to the beauty of the Taj Mahal:

**“Husn-i-alam sozi al-Hamra wa Taj
Aan ki az qudsiyan girad kharaj”**

The world-shattering elegance of Alhamra and Taj, Receive tribute even from the angels themselves.
The elegance of the Taj is also remembered by the Arabs:

**“Dam’ah al-hubb ala khad al-zaman
The symbol of the ever-lasting love”**

Shakeel Badaoni, a modern Urdu poet, pays an unintended tribute to the beauty of the Taj Mahal:

**“Ek shahanshah ne banwa ke hasin taj mahal,
Sari duniya ko muhabbat ki nishani di hai
By erecting the beautiful Taj Mahal
An emperor has given the whole world an ideal of love.”**

Conclusion

Shahjahan ‘the Magnificent zealously devoted his time, energy and wealth to build the Taj Mahal and make it a reality in memory of his beloved queen Mumtaz Mahal. He was a true connoisseur of art and architecture at a level higher than any other of the sumptuous Mughal Emperors in the Indian Subcontinent. It is not a work of sheer inspiration but it took a great deal of perspiration to create what can be called, to borrow a phrase from William Blake, ‘this fearful symmetry’; the dimensions are very accurately calculated. The beauty of the Taj Mahal lies with the glory of Mumtaz Mahal, whose mausoleum blossoms with a never-fading garden of Persian flowers. The Mughal architect Ustad Ahmad Lahori played a unique role in designing the luminous marvel of the Taj Mahal, demonstrating his astonishing skill in attaining wonderful symmetry in every respect and skillfully rendering the persona of Arjumand Banu Begam (‘Mumtaz Mahal’) to an amazing degree. The marvel of Taj Mahal is an unsurpassed epitome of love.

Reference

1. Tillotson, G.H.R (2008). Taj Mahal, Harvard University press, p. 14
2. Asher, Catherine B. (1992). Architecture of Mughal india. Cambridge University press, p.210
3. Sarkar, Jadunath (1919). Studies in Mughal india. Calcutta M.C. Sarkar, pp. 30-31
4. Koch, Ebba (2006). The complete Taj Mahal: And the riverfront garden of agra, p.85-88
5. Khatri, Vikas (2012) Greatest wonders of the world. V&S publishers, p.128.
6. Begley, Wayne E (1979). “The myth of the Taj Mahal and a new theory of its symbolic meaning, p.14
7. Royals, Sue (1996). Our global village – India, India: Lorenz educational press, p.7
8. Gascoigne, Bamber (1971). The great moghuls, p.243
9. Dutemple, Lesley A (2003). The Taj mahal, p. 96
10. Kinra, Rajeev (2015) writing self, writing empire: chandar bhan Brahman and the cultural world of the indo persian state secretary, p.146
11. Koch, Ebba (2005). “The taj mahal: architecture, symbolism and urban significance, p.140
12. Sparavigna, Amelia carolina (2013). “The gardens of taj mahal and the sun”, p.106



THE LEGACY OF RAMAYANA IN THE MODERN TIMES

Santosh Kumar

Research Scholar

Department of History

University of Delhi

Introduction

Ramayana tradition has maintained its stature and relevance through its textual, liturgical, visual, cultural, and hermeneutical value. Ramayana is also a text which has a pan-Indian following and which applies to almost every caste class and creed of the country, and this is an important cultural symbol of Indian civilization. At the same time, the figure becomes complicated and entangled when it gets associated with contemporary political discourse. **As pointed out by Christopher Pinny the iconographies and images of gods in the 20th century did carry cultural and political messages which made them complicated** because these images portray a timeless god in their eternal form but in reality, all these representations of God go through a phase of transformation, adaption, and appropriation over the time. With the coming of visual media, this process has diversified for multiple reasons - mediums like cinema have a wider and immediate reach to a larger receptive audience who are also at times impressionable through which a new orientation to religious discourse can be easily given. These mediums continue circulating the circles through multiple mediums thus guaranteeing repeat audience; these mediums pick and choose narratives and events to narrate which also tells us about the inclusive and exclusive terms of a religious tradition, thirdly, these so-called works based on ancient texts are very much rooted in their modern milieu and provide messages that are contemporary and acquires sacrality because those words are expressed through the voice of gods. In that context, it becomes really important to us the use of Ramayana in the cultural discourse of the 21st century through organizations and **institutions that emerged in the 20th century and even in the context of the Indian National struggle for independence how different mediums used Ramayana as a cultural phenomenon which helped in reinforcing a new imagination of the Indian culture**, where the cult of Lord Rama takes the centre stage as the eponymous ancestor of the millions of Hindus in India. Thus, the figure of Lord Rama became a tool for cultural appropriation, assertion, identity formation, and commemoration. **According to Andreas Hansen and Kanti Bajpai, Ramayana is a text that has widespread significance in terms of narrative, characters, and rhetoric, which makes it an influential text not just in terms of cultural and creative spheres but also in the construction of the socio-political discourses, commemoration, and rhetoric.** So it is not surprising that Ramayana played a very vital role in shaping the cultural identity of the nation. Thus, it becomes imperative for us to analyze

the modern appropriation of Lord Rama since the Independence of India, through literature, cinema, and other domains of pop culture in India. We will also deal with the constant re-invention of the cult of Rama in popular culture according to the changing socio-political scenario.

Ramayana in the Modern Political Discourse

Lord Rama has been a rallying point for the political parties and social groups to claim their veneration of Lord Rama as the way to attain power. Ram Janmabhoomi movement has been instrumental in bringing back the BJP back to power and since the last 10 years the appropriation of the cult of Lord Rama and the slogan of Jai Shri Ram has been instrumental in shaping the modern political discourse. **The increasing popularity of the “Angry Hanuman” image reinforces the discourse of politicisation of Lord Rama in the wake of the Ram Janmabhoomi movement wherein the depiction of Lord Rama became increasingly violent, with depiction of Lord Rama carrying a bow and arrow dominating the narrative.** The inauguration of Ram Mandir was a matter of immense discussion and debate. After decades of legal battle and struggle to get the land in Ayodhya for the creation of the temple, the construction of the temple became a point of political and cultural assertion for the ruling regime and billions of faithful Hindus involved in the process. Ram Mandir was an event of immense historical, cultural, socio-political and diplomatic importance. The event of consecration of the temple has been an event which has attracted billions of eyeballs all across the globe, not only for its cultural significance and its value in the eyes of the Indians, but also the way such a grand vision was put into practice so effortlessly and befitting the grandeur of any such event at the global scale. Ram Mandir helped vastly in enhancing the global positioning and soft power of India. The elevation of a cultural event of India on a global pedestal has helped in captivating the global audience and creating a positive image of the nation in the world. This is reflected in the global attention and appreciation that the event has received from the prominent leaders around the world including the Minister of Foreign Affairs of Taiwan, Joseph Wu, who said that *“The World has been divided into two parts- One who love India and onee who are going to love India after this event”*. Similarly, the Labour Minister of Nepal Sarat Singh Bhandari called the event an effort *“which has brought the scattered people of the world together for Lord Shri Ram”*. New Zeaand’s minister David Seymour called the temple *“majestic, which will last for the next 1000 years”*. Even the United Nations General Assembly President Dennis Francis commended India for *“Bringing a second Diwali in the world”*.

Ramayana in the Indian Literature

Episodes related to Ramayana have been interpreted so many times that it is difficult to ascertain the exact number of versions available of the Ramayana stories. Apart from around 300 versions of the Ramayana developed since ancient times, there have been many modern interpretations based on either a particular episode of the story or the story from the perspective of a particular character. And apart from the textual versions, Ramayana stories are present in almost every community in India in their own way, giving way to multiple oral and folk traditions. In the modern India, Ramayana story became the basis for works of Suryakant Tripathi ‘Nirala’ (**Ram ki Shakti Puja**), Ashutosh Rana (**Ramarajya**), Bhagavana Sinha (**Apne Apne Ram**), the highly controversial E.V. Periyar’s **Sacchi Ramayan** etc. **In English literature, the number of works based on Ramayana has proliferated in the past few years** with writers like Amish Tripathi (**The Scion of Ikshvaku**,

Sita: Warrior of Mithila), Anand Neelkanth (**Asura: Tale of the Vanquished**), Chitra Banerjee (**The Forest of Enchantments**), Kavita Kane (**Lanka's Princess**) etc. These narratives have helped in understanding the epic from different points of view, often taking into consideration the perspectives of the marginalized sections of the society. A text like Ramayana can afford multiple re-readings and meaning formation, which didn't exist in the Ur-text (if there is any). Most of the times, the textual traditions of the Ramayana spawn their own visual and performative tradition, and in other times, the oral traditions are recorded in textual forms. Scholars like A.K.Ramanujan, Namita Gokhale, Devdutt Patnaik have compiled many such oral traditions and folk tales associated with Ramayana. But such compilations come with their own set of problems. William Dalrymple in his interaction with the folk singer Mohan Bhopal has talked about the decline of the performative tradition of Pabuji ki Phad (the story of performance of Pabuji Maharaj, a regional deity of Rajasthan, which is distinctly linked to the Jaina version of Ramayana). Another problem with such translations is the act of sanitization and editing of the text to suit the literary sensibilities. In Uttarakhand, **Kundan Singh Manral collected the Kumauni Ramayana, which was performed as part of the Ramlila**, and compiled it in a textual form. In this attempt, he changed many elements of the original performance which he found suitable to the literary tradition.

Ramayana in Indian Cinema

Indian Cinema has always been influenced by themes and stories related to Ramayana and Mahabharata. Since its inception, the makers have chosen stories of Ramayana. Indian cinema begins with the representation of mythological characters on the cinematic screen and Ramayana has been an important part of this portrayal. In the history of Indian cinema for more than a hundred years, the plot, character or values of Ramayana have been influencing Hindi cinema. Many times **Ramayana has been directly depicted in the cinema, which includes hundreds of films and TV serials** from Dada Saheb Phalke's *Lanka Dahan to Aadipurush*. Many times, instead of the entire Ramayana, a film is made centering on a particular character or event, which includes many films like *Hanuman Vijay*, *Hanuman*, *Kanchan Sita*, *Luv Kush* etc. Thirdly, it has also been seen in Indian cinema that many films were made influenced by Ramayana, which were not set in that period but the story of Ramayana was narrated in a new context through a modern plot. Such films include films like *Raavan*, *Ra.One*, *Kalyug aur Ramayan*, *Sita Sings the Blue*. Ramayana or its characters were presented symbolically in many films. For example, in the film *Suhagan*, the message of a woman being of good character was shown through the pictures of Lakshman Rekha from Ramayana or in *Saajan Chale Sasural*, the idea of a devoted husband was shown through the picture of Ram. All these films show us how deep the penetration of Ramayana is in the thinking, contemplation and culture of Indian society.

In recent times, films associated with places and ideas associated with Lord Rama has been a theme of Indian films. For example, in 2022, Akshay Kumar starrer *Ram Setu* dealt with the debate around the historicity of *Ram Setu* in reality and provides an affirmative position on the same. **The representation of Lord Rama has also been a point of contention among the people as it is closely linked to the sentiments of the masses and any controversial representation may evoke extreme reaction.** Recently *Adipurush* has been the centre of controversy because of their problematic representation of Lord Rama and their attempt to tell the story of Ramayana in the western fantasy genre films. Earlier too, certain representations of Ramayana have received criticism

for maligning the sanctity of the original narrative. In the 1980's the makers of the film *Kalyug ki Ramayan* was forced to change their title to *Kalyug aur Ramayan* as people objected to the use of words Kalyug and Ramayan together and showing Ram and Sita in a bad light, following which the name of characters were also changed. In the film *Lajja* the character played by Madhuri Dixit uses the Ramayana play to rant against the prevalent misogyny in our society, and she has to face the wrath of the audience for doing so in the film. There have been films which have shown Ravana in a sympathetic light going against the conventions of the traditional Ramayana story. These films include *Ravana* (1984) or *Ravana* (2010). More recently, Pratik Gandhi starred as a theatre artist portraying the role of Ravana on stage in the film *Bhavai*. The film was originally titled *Raavan Leela* but the title of the film had to be changed following public outrage. Even after these controversies, Ramayana continues to inspire our makers which is the reason a big budget film on Ramayana is currently under development.

Ramayana in the Popular Culture

Ramayana remains an indelible part of the cultural heritage of the Indian subcontinent which has manifested itself through art, architecture and in our day to day life. If we look around us, we will find hundreds and thousands of places named after Ramayana characters. If we take the example of Delhi, we have educational institutions like Shri Ram College of Commerce, Lady Shri Ram College, Laxman Public School; localities like Janakpuri, Dashrathpuri, Ramlila Maidan, spaces like Kaushalya Park, Janak Setu etc. This list is endless because the characters of Ramayana are so commonly known and venerated among the common masses that it finds its commemoration in some or other way. And it is not just limited to the protagonists like Rama or Sita or Lakshman, even the antagonists like Ravana and Kumbhkarna and minor characters like Jatayu have places associated with them. All over India, there are places which are associated with the bathing place of Lord Rama, his place of residence, Sita's Kitchen, Hanuman's abode etc.

Ramayana and its associated places have a close association with the sacred landscape. Places all around the world have been linked to Ramayana in some or other way. More often than not these associations are far fetched and speculative with some people associating the incidents of Ramayana with places as far as Mexico and Mecca!!! But it is difficult to corroborate such claims with concrete archaeological proofs and therefore these associations remain speculative in nature. However, the cultural impact of Ramayana is spread across the world. Tulsidas rightly mentions in his Ramacharitmanas-

“Hari Anant Harikatha Ananta, Kahahi Sunahi Bahubidhi Sab Santa”

(Lord Vishnu is Eternal and so is his lore, Different Saints have narrated it in many different ways).

Conclusion

The cultural traditions of Ramayana are present in South Asia and SouthEast Asia in textual and visual culture. Ramayana has for thousands of years inspired the culture and heritage of the Indian subcontinent and has been part of the shared culture and psyche of an average Indian, even by those who don't follow the faith. Ramayana has significant presence in the literature, cinema and other aspects of popular culture and continues to remain relevant through constant mediations, revisions, interpretations and reworking of the text.

References

1. Sasitharan, T. *Ramayana: A Cross Cultural Phenomenon*, 13 November 2017, esplanade.com, <https://www.esplanade.com/offstage/arts/ramayana-a-cross-cultural-phenomenon>
2. Jaffrelot, Christophe. *Modi's India: Hindu nationalism and the rise of ethnic democracy*. (2021): 1-656.
3. Wadley, Susan S. *The Ramayana, An Enduring Tradition: Its Text and Context*, Syracuse University, 2007
4. Manral, Kundan Singh. *Kumauni Ramayana*, AbeBooks, 2007
5. Sharma, Risabh. *Silent Films to VFX: The evolution of Ramayan Storytelling on Screen*, Jan 22 2024, Indiatoday.in, <https://www.indiatoday.in/showbuzz/story/ramayan-serial-films-hindi-telugu-kannada-silent-films-vfx-adipurush-2491135-2024-01-20>
6. Bavinahalli, Raveesh and Ravindra Neelakantapa. "Rama: The Epitome of Indian Ethics", *Indian Journal of Private Psychiatry*, Volume 15 Issue 2, 2021
7. Tulsidas, Goswami. *Ramacharitmanas*, Geeta Press Gorakhpur, 2008
8. Richman, Paula, ed. *Many Ramayanas: The diversity of a narrative tradition in South Asia*. Univ of California Press, 1991.
9. Dalrymple, William. *Nine lives: In search of the sacred in modern India*. A&C Black, 2010.
10. Ramanujan, Attipate Krishnaswami. "Three hundred Ramayanas: Five examples and three thoughts on translation." *Many Ramayanas: The diversity of a narrative tradition in South Asia* (1991): 22-49.



EMERGENCE OF NATIONALISM & REVIVAL OF INDIGENOUS MEDICAL ACTIVITIES IN COLONIAL BENGAL : A HISTORICAL STUDY

Ashutosh Singh

Kurukshetra University kurukshetra Haryana.

Mail-thakurashutoshbhu@gmail.com

ORCID ID-<https://orcid.org/0009-0008-9404-8537>

Prof. Gopal Parshad

IIHS, Kurukshetra University,

Kurukshetra

Abstract

The main objectives of this paper are to explore the evolution of indigenous medical traditions in Bengal from its historical perspective, with a particular reference to the vernacular cultures of the traditional medicine system of India and the beginning of the use of allopathic (western) medicine in colonial Bengal. Initially, in the mainstream medical history of the Indian subcontinent, medical historians remained restricted to exploring the limited themes in health and medicine. For instance, scholars such as Biswa Pati and Mark Harrison write about diseases and medicine, indicating that medicines are also prominent in historical scholarship. The relationship between the Ayurvedic medical system and British rule and the intermingling of Western medicine with indigenous forms of treatment are some of the most prominent ideas that constitute some of the significant themes that engage historians with the scripting of medical history related to South Asia. However, the evolution of Indigenous medical institutions during the early phase of the national movement and the contribution of the nationalist leaders in incentivizing the use of domestic medicines in most pioneer regions like Bengal has not been adequately explored by medical historians. Building on the thematic and methodological framework that the texts of these scholars offer, this paper aims to explore the subject related to how it can be traced back to the emergence of nationalism, which led to the growth of Ayurvedic medical institutions in colonial Bengal.

Ayurveda, a traditional oriental medical system whose origin in India dates 5000 years, has become increasingly popular in recent years. The rise of nationalism has animated the desire to revive ancient traditions and could also be attributed to this nationalistic orientation. Ayurveda, one of the oldest medical systems in the world, can be seen as an integrated part of India's long history. Its practices and principles have influenced and fortified Indian culture for thousands of years. Ayurveda and other traditional knowledge systems spin the narrative of the Indian national identity quintessentially, particularly in recent days. Ayurveda in the Indian discourse has always been presented as a tool for promoting Indian nationalism, where Ayurveda identity and culture consolidate the spirit of Indian nationalism. This article aims to showcase the relationship between Ayurveda and Indian

nationalism and how Ayurveda has been instrumental in promoting the prevalence of the medical system in India. This research paper also explores the relationship between Ayurveda and nationalism, examining how Ayurveda has contributed to fostering national identity and cultural heritage in the country

Keywords: Nationalism, Ayurveda, Kaviraj, Vaid, Veda, Western Medicine, Allopathy.

Introduction

Ayurveda in Historical Context:

Ayurveda is a word in the Sanskrit language that can be interpreted as “the science of life.” It is a comprehensive medical system that underscores the interdependence of body, mind, and spirit. Ayurvedic medicine is premised on the principles of balance and harmony, and it endeavors to promote health and prevent and cure diseases by maintaining or restoring a proper balance of the body’s elements. The origins of Ayurveda are traceable in a definitive way, but it is believed to have developed in ancient India around 10,000 BCE. The Vedas, the ancient religious texts of Hinduism, make a definitive allusion to India’s medical system’s prevalence. A collected list of various diseases and their treatment was believed to have been arranged and incorporated in *Atharvaveda* during 1500 BCE. It contains 114 hymns dealing with formulations and medicines concerning the treatment of various ailments. In ancient India, the knowledge obtained and nurtured over the century had evolved into two primary schools of Ayurvedic medicine and eight specializations. One was the Ayurvedic School of Physicians, called the ‘Dhanvantri’ tradition, and the second of surgeons called the ‘Atreya’ tradition. These schools had many scholars of indigenous medicine like Charaka, Sushruta, etc. *Charaka Samhita* was concerned with the school of Ayurvedic medicine, while *Sushruta Samhita* was related to the school of surgery. The tradition of Ayurveda generally starts from Brahma. Brahma’s name is ‘Swayambhu’, which means that no one created him, but he created everyone. Therefore, this Ayu-Veda was also born with him as it is eternal (Sushruta. Sutra. 116). The meaning of creating does not mean that something new was prepared, but that it was revealed. The meaning of creating is to preach the Ayurvedic knowledge (Charak. Sutra. 30.27).²

In this tradition, the order remains the same till some distance (till Indra). After Indra, each Samhita has its own order. Brahma gave Ayurveda to Daksha Prajapati, Daksha taught it to Ashwin, taught it to Indra. Till here the order is the same. In the Rasayan chapter of Charak Samhita, chemicals are mentioned in the name of Brahma and Indra, Chyavanprash is famous in the name of Ashwini. Rishis went to Indra to improve the condition of their body, Indra had asked them to consume divine medicines. There is no chemical in the name of Daksha Prajapati in Charak Samhita. Along with this, in the context of Rajyakshma, we see that the reason for the decay of Daksha Prajapati’s son-in-law Chandrama is Daksha’s curse, whose treatment was done by Prajapati through Ashwini instead of himself. (Charak. Ch. A. 8.7-9).

Ayurvedic Principles

Ayurveda teaches that three primary energies, known as **doshas**, control the body’s physical and mental functions. These doshas are **Vata** (air and space), **Pitta** (fire and water), and **Kapha** (earth and water). Each individual has a unique balance of these doshas, and maintaining this balance

is crucial for good health. An imbalance of any dosha can lead to illness. Ayurvedic treatments aim to restore this balance through natural remedies, diet, exercise, and spiritual practices.³

Ayurveda's Role in Society

Ayurveda was not only a medical system but also a way of life for ancient Indians. It integrated health, spirituality, and moral living. *Vaidyas* (Ayurvedic physicians) were highly respected in society and often served as both medical practitioners and spiritual advisors. The Charaka Samhita and Sushruta Samhita were two foundational texts of Ayurveda. Charaka focused on internal medicine, while Sushruta contributed significantly to the field of surgery, including the earliest known descriptions of plastic surgery and cataract removal techniques.⁴

In the *Atharvaveda*, several chapters elucidate different aspects of medicine and their use to treat various ailments. In his composition, Sushruta amplifies various colours of fundamental concepts and theories of surgery. More than 100 Indigenous surgical instruments, like scalpels, scissors, forceps, specula, etc., were used to perform surgery in ancient India. Ayurveda evolved and became more authenticated and refined, extending its ambit by assimilating knowledge from other medical traditions, therapies, and treatments. Driven by the concept of balance between mind, body, and spirit, this system relies upon such modes of treatment as herbs, massages, and yoga to remedy various health-related issues. Eventually, Ayurveda was in vogue in India for centuries, and its practitioners and physicians bequeathed its knowledge to future generations.

Mahabharata also categorized herbs plants into *vriksha*, *gulma*, *valli*, *lata*, etc. According to Indians, trees are considered living entities infused with inner wakefulness and sensibility, though they are invisible and incomprehensible to human beings. Some scholars fix the date of Charaka and Sushruta between 200 BCE and 200 BCE. Charaka categorized 50 categories of herbal plants, with ten plants in each category, a total of 500 herbal plants according to their medicinal properties. In the past, Greek and Arabian medical systems also developed many concepts and ideas of Ayurveda. The 6th century BCE also witnessed the rapid development of the Ayurvedic medical system. The most important is the work of Nagarjuna, who updated and amplified Sushruta's classic works. During this period, hospitals first came into existence in India. The Buddhist monks popularised and propagated Ayurvedic medicinal therapy in various countries.⁵

Vagbhatta, a prominent authority on Ayurveda, also wrote a book titled 'Ashtangahridaya' which integrated Ayurvedic principles of Maharishi Charaka and Maharishi Sushruta, supplementing it by garnering relevant knowledge from Agnivesha, Bhela, and Harita resulting into the further strengthening of the systems of new medicines and additions in surgical medical science. He throws light on 42 single herbal medications. The unique work of Vagbhatta is written in Sanskrit, containing 120 chapters and 7471 verses. His other book 'Ashtangsangraha' elucidates vividly and concisely several obscure passages extant in his predecessors' work. These three renowned *Ayurvedacharayas* such as Charaka, Sushruta, and Vagbhatta, were famous as the Big Three: Vriddha Trayee.⁶

In the 7th and 8th centuries, Ayurveda attracted the attention of Arab scholars, and consequently, Indian medicine texts were translated into Arabic and Persian. The Khalifa of Bagdad also invited many Ayurvedic vaidyas to take charge of hospitals. In the 7th Century, Madhvacharya wrote Masdhava Nidana, explaining various methods and medicines for different diseases. Ayurvedic

medicine registered significant studies in the medieval period.⁷

Indian Nationalism and Growth of Ayurveda:

The meaning and nature of Indian nationalism have emerged as a critical issue of debate on the landscape of India's social, economic, and political condition in the late 19th and early 20th centuries.⁸ Some historians used nationalism to mark the modern concept of political freedom and self-governance beginning at the end of the 18th century.⁹ Maya Tudor writes, "Nationalism is the principle which holds that the political unit or the state should be congruent with the nation. A nation exists if members of the category firmly recognize mutual rights and duties towards each other because of their shared membership."¹⁰ E.J. Hobsbawm mentions that Indian nationalism undergoes various phases of transformation during its expansion. Some Indian leaders and historians said that nationalism is a modern concept deriving its force from the ideas of equality, liberty, independence, etc. According to a prominent nationalist leader, Lala Lajpat Rai, the emergence of nationalism in India resulted from the clash of interests between the colonial rulers and the Indians.¹¹

After establishing colonial rule in Bengal in 1757, the British affected several political, economic, and administrative changes in the country. At the same time, they introduced the Rule of Law. The main objectives of British rule were to expand the colonial regime over various parts of India, expand British trade, and export cotton from India for the growth of Lancashire's modern industry in England. With these objectives in mind, the British not only acquired the Indian Economy but also collected revenues in cash. The primary purpose of the fiscal policy of the colonial rulers was to misappropriate maximum wealth from India. For this purpose, they modernized the education system in India and developed modern means of transportation and communication. It would not be inappropriate to mention here that society witnessed significant changes thanks to the development of contemporary education.¹²

With the introduction of modern education, English medium schools in Bengal and other parts of the country sprang up. Very soon, Calcutta emerged as a trendy city in India, and many Europeans and Indians settled there and in its surrounding areas for trading and other activities. It would be pertinent to state that the Portuguese introduced the Western medicine system in India in the 16th century. In the early days of colonial rule, European doctors, who had arrived with British officials, brought allopathic medicines to India. After the imposition of colonial rule in West Bengal, the British set up a medical department to treat troops and officials of the East India Company. Besides Western medicines, they also sought treatment from Indian *Vaidyas* for various diseases. It seems that, at first, Western medicine did not undermine the Ayurveda medicine system.¹³ When natural calamities started hitting India, leading to the outbreak of various infectious diseases very frequently, which resulted in a sharp escalation in mortality rates of both Europeans and Indians, differences between practitioners of Ayurvedic and Western medicines sharpened. However, practitioners continue to use both Western medicine and Ayurvedic medicine for the treatment of various diseases. The colonial rulers set up the Hospital Board in 1775 to provide modern medical facilities to the British-India army.¹⁴ On 21 June 1822, an indigenous college (Native Medical Institute) was also opened in Calcutta to provide medical education to Indian students. About 20 medical students were taught in the vernacular medium. Many English texts related to medical science were also translated into different Indian languages. In 1826, Unani medicine was also taught at the Calcutta Madarsa, while the abovementioned Indigenous college held classes in Ayurvedic medicine.

The successful students were appointed at government hospitals. ¹⁵In 1835, the Calcutta Medical College (CMC) was established as the first institution in India that exclusively taught scientific medicine in the English language.¹⁶ Many students were taught at Calcutta Medical College.

Table- I
Statement showing the classification of Students according to Religion and Nationality
Taught at Calcutta Medical College. (Ethnic Background)¹⁷

Year	Europeans & Eurasians	Native Christians	Hindus	Mohammadans	Buddhists	Parsees
1923-24	14	9	1,004	138	12	3
1924-25	13	9	1,003	157	12	2
1925-26	13	4	604	156	10	2
1926-27	10	7	828	148	7	1
1927-28	9	7	770	151	6	1
1928-29	9	8	724	142	5	1
1929-30	5	7	638	144	1	1
1930-31	3	6	600	135	1	1
1931-32	3	7	597	118	1	1
1932-33	4	7	599	103	-	4
1933-34	4	5	599	99	-	6
1934-35	-	-	-	-	-	-
1935-36	7	3	619	77	-	6
1936-37	3	4	637	74	-	6

Source: Annual Report of the Medical College, Calcutta (relevant years)

Above table-I shows initially 1923-24, the number of Hindu and Muslim students was good. However, after later years there was a decrease in the number of students showing that Calcutta Medical College started Western medicine teachings, and abolished of Vernacular language in the institution.

The Ayurvedic physicians of Bengal were addressed as *Vaidya* or *Kaviraja*. They did not represent any Caste or Class, and anyone could become a *Vaidya* or *Kaviraja* after being apprenticed by any *Vaidya* or *Kaviraja*. During the early period of colonial rule, the British, who first came to Bengal, did not divide medicine into different systems. They approached the local *Vaidya* for the diagnosis and treatment of various diseases. They did not distinguish between Unani and Folk medicines nor distrust barber-surgeons, bone setters, etc. It seems that the British did not adopt an anti-Ayurvedic policy and did not interfere in the practice of Ayurvedic physicians until the second decade of the 19th century. At first, when British doctors came to India, they treated Europeans

only. Indians, who received education in the West, also supported allopathic medicine and considered it superior to our traditional system of medicine. They also started advertising themselves as practicing allopathic medicine to achieve higher social status, although many had little exposure to allopathic or Western medicine.

Table – II
Famous Ayurvedic Doctors (*Kavirajas* or *Vaidyas*) in Colonial Bengal

S. No	Name of Ayurvedic Doctors (<i>Vaidyas</i>)
1.	Rama Sen (18 th Century)
2.	Kaviraja Ganqadnara Roy (1798-1865)
3.	Kaviraja Ganqaprasada Sen (1824-1896)
4.	Dwarkanatha Sen (1843-1909)
5.	Kaviraja Vijayaratna Sen (1858-1911)
6.	Jogindranatha Sen (1871-1918)
7.	Kaviraja Syamadasa Vacaspati (1876-1943)
8.	Jamini Bhusan Ray (1879-1925)
9.	Haranacandra Cakravarti (1935)

Source: Compiled from R. D. Lele, *History of Medicine in India*, National Centre of Indian Medical Heritage, Central Council for Research in Ayurvedic Sciences, Ministry of AYUSH, Govt. of India, New Delhi, 2021

It is pertinent to mention here that many persons who did not know Ayurvedic medicine also practiced as Ayurvedic doctors. Besides, a severe famine occurred in the early 19th century, wherein millions of people perished. Bengali *Kavirajas* were accused of being unable to save their lives. Consequently, the Ayurvedic medical system faced severe threats and competition from allopathic medicine. Europeans opined that the allopathic system was more scientific and superior to the Ayurvedic system. As a result, soon after the establishment of CMC in 1835, the British government adopted a policy to push out indigenous medicine of India and to patronize the modern or Western medicine system. The government banned the teaching of Ayurveda at Calcutta Medical College. Even then, Madhusudan Gupta, Umacharan Seth, Rajkumar De, Dwarkanath Gupta, and Naveen Chandra Gupta were among the first students who got a degree from Calcutta Medical College.¹⁸

Kaviraja Gangadhar Roy (1798-1865) of Calcutta imparted a new orientation to Ayurveda. He laid stress on the growth of indigenous medical education. He also trained many students who popularized the indigenous medicine systems across the country and had deep knowledge of Ayurveda. As a result, Murshidabad emerged as the chief center of Ayurvedic education. After that, the teaching of Ayurveda was streamlined by implementing many changes in the old syllabus. Many books on Ayurveda were also written and published during the late 18th and 19th centuries. Also, old Sanskrit texts on Ayurveda were translated into English and other languages, such as *Materia Medica of the Hindus* (1877), *A Short History of Aryan Medical Science* (1896), etc.¹⁹

With the establishment of the Indian National Congress in 1885, nationalistic and patriotic feelings among Indians developed sharply, and many Nationalist leaders campaigned to revamp the Ayurvedic medical system. The elite class and *Kavirajas* of Bengal also felt that a standard educational process would have to be introduced and implemented diligently if the Ayurvedic medicine system were popularised.²⁰

During British rule, Ayurveda, along with Greece-Arabic (Unani) and South Indian Tamil traditional medical systems, were also profoundly influenced by their interactive encounters with the Western medical system.²¹ At the same time, a good number of books on Ayurveda in various languages, including Vernacular languages, were also brought out to make it more accessible to the public at large as well as to increase its acceptability as a shared system of knowledge among the Indian doctors and the students of medical science.²² Until the early 19th Century, the activities of the British were marked by tolerance, and many Europeans were admirers of the Ayurvedic system of medicine. Indeed, the Ayurvedic medicine system shares many standard features of drugs, including humeral pathology. This facilitated the acceptability of Indian Ayurvedic medicines on terms not significantly different from those of allopathic medicine. Moreover, western medicine had no disadvantage in the treatment of many common diseases in India, such as cholera, malaria, and dysentery.²³

Table – III
Major Medicinal Plants Used by Vaidyas, Hakims, and Folk Medicine Practitioners
During the Colonial Bengal

Sr. No.	Plant	Family	Active Principle	Plant Part Used	Medicinal Uses
1.	<i>Atropa belladonna</i>	Solanaceae	Atropine	Whole plant	Anticholinergic; antispasmodic
2.	<i>Ricinus communis</i>	Euphorbiaceae	Ricinine	Seeds	Antinociceptive and anti-inflammatory
3.	<i>Coffea Arabica</i>	Rubeaceae	Caffeine	Seeds	Stimulates digestion and the nervous system
4.	<i>Cannabis Sativa</i>	Cannabaceae	cannabidiol, tetrahydrocannabinol	All parts	Treating indigestion, insomnia, muscle pain
5.	<i>Syzygium aromaticum</i>	Myrtaceae	Eugenol	Flower buds	Anti-inflammatory; antioxidant; liver treatment
6.	<i>Erythroxylem coca</i>	Erythroxylaceae	Cocaine	Leaves	CNS stimulant; local anesthetic
7.	<i>Colchicum autumnal</i>	Colchinaceae	Colchicine	Roots, seeds, flowers	Arthritis; gout

8.	<i>Carapichea ipecacuanha</i>	Rubiaceae	epetine, ipecac, cepaleline	Roots	Induce vomiting after poisoning
9.	<i>Ephedra Viridis</i>	Ephedraceae	ephedrine, methyl ephedrine, norephedrine	Stems	CNS stimulant, branches-dilator, decongestant
10.	<i>Nicotiana tabacum</i>	Solanaceae	Nicotine	Leaves	Joint pains, dental caries. Gingivitis
11.	<i>Cinchona officinalis</i>	Cinchonaceae	Quinine	Bark	Anti-malarial, treating bloating and varicose veins and hemorrhoids
12.	<i>Rauwolfia serpentine</i>	Apocynaceae	reserpine, serpentine, ajamaline	Roots	Snake bites, hypertension, mild sedative
13.	<i>Catharanthus roseus</i>	Apocynaceae	Vincristine, Vinblastin	Flowers	anti-cancerous; anti-diabetic hypertension
14.	<i>Abroma Augusta</i>	Sterculiaceae	Triterpenoids, Steroids, flavonoids	Seeds, Leaves	Bloody dysentery, diarrhea, night wetting, diabetes
15.	<i>Acacia concinna</i>	Mimosaceae	Alkaloids, glycosides, saponins	Leaves, seeds	Premature hair greying, dandruff
16.	<i>Datura metal</i>	Solanaceae	Hyoscine, hysoscyamie, atropine	leaves	Stomach pain, anti-helminthic, anti-inflammatory
17.	<i>Desmodium gyrans</i>	Fabaceae	Vitexin, isovitexin	leaves	Aphrodisiac, analgesic, diuretic, weak eyesight
18.	<i>Eupatorium ayapana</i>	Asteraceae	Quercetin, kaempferol	leaves	Pain reliever, malaria, dengue fever.
19.	<i>Gymnema sylvestre</i>	Asclepidaceae	Gymneic acid	Leaves, fruits	Antidiabetic
20.	<i>Ipomoea paniculate</i>	Convolvulaceae	Betatins, chlorogenic acid	leaves	anti-helminthic, anti-inflammatory

21.	<i>Mimosa pudica</i>	mimosaceae	mimosine	Roots	Infertility, antivenous Antibacterial, urogenital Disorder
22.	<i>Piper nigrum</i>	Piperaceae	piperine	fruits	Natural preservative weight, constipation
23.	<i>Sida cordifolia</i>	Malvaceae	Epiderine, pseudoephedrine	Roots, Leaves	Asthma, Edema, Nasal congestion
24.	<i>Acorus calamis</i>	Araceae	B- asarone	Rhizome	Louse infestation
25.	<i>Aerva lanate</i>	Amaranthaceae	B-sitosterol, L-amyrin Betulina	Roots	Asthma
26.	<i>Aloe vera</i>	Liliaceae	Lignin saponins, Salicylic acid	leaves	Burns, rough skins
27.	<i>Argemone Mexicana</i>	Paperveraceae	Berberine, protopine	Seeds, plant Latin	Impotence
28.	<i>Artocarpus heterophyllus</i>	Moraceae	Prenyl flavonoids, Hydroxycinnamic acid, stilbenoids	Peduncle	Digestive health, Antidiuretic, snake bite
29.	<i>Bambusa vulgaris</i>	Poaceae	Ascorbic acid, Vit B2	Roots	Antimicrobial, anti-inflammatory, dog bite
30.	<i>Cinnamomum zeylanicum</i>	Lauraceae	Cinnamaldehyde	Barks	Sore Throat, influenza, Abortion
31.	<i>Clitoria ternatea</i>	Fabaceae	Flavonol glycosides, saponins	fruits	Tranquillizer sedative, memory enhance Infertility
32.	<i>Vintex Segundo</i>	Verbenaceae	Ursolic acid, Betin clinic acid	leaves	Anti-inflammatory Antioxidant Bedsore

Source: Compiled from Dr. R. Vidyanath and Dr. K. Nishteswar, *A Handbook of History of Ayurveda*, Varanasi, 2008 (Reprint).

Revival of Ayurveda:

With the partition of Bengal in 1905, an anti-colonial or Boycott and Swadeshi movement erupted in Bengal and many other parts of the country. Many prominent leaders like S.N Banerjee, Vipin Chandra Pal, Ashwani Kumar Dutta, and Aurobindo Ghosh actively participated in this movement against the partition of Bengal infused with a new feeling of Indian nationalism and patriotism, the national movement against colonial rule also gathered momentum. The Congress supported and advocated the use of Indian-made articles and the boycott of British goods in the country.²⁴ Lala

Lajpat Rai addressed the people at various places and encouraged people of other provinces to follow the examples of Bengal.²⁵ The Swadeshi found repercussions in medical education, banking, and insurance. As a result, many medical institutions mushroomed during and after the Swadeshi boycott movement. In 1905, the National Council for Education was established in Calcutta, and simultaneously, 51 national schools were also raised in colonial Bengal.²⁶ In the same year, the first Ayurvedic College, the Calcutta Ayurvedic Institution and Pharmacy was brought into existence by S.N Goswami. It was the first attempt by the nationalists of the Ayurvedic medicine system. However, this college could not succeed and had to be closed down within a few years.²⁷ Ayurvedic practitioners and doctors grouped themselves into a professional interest group and established the All India Ayurvedic Congress (AIAC) in 1907. The AIAC held annual conferences in various cities to popularise the Ayurvedic medical system nationwide. The proceedings of these conferences, in the shape of books, abstracts, and journals, provided helpful source material and insights for the researchers and practitioners.²⁸

In 1916, Ashtanga Ayurveda Vidyalaya was established by Jamini Bhushan Roy, who imparted education related to Ayurveda and Allopathic to the students. This college became very reputed and famous among the students of India, Sri Lanka, and Nepal. Moreover, prominent *Kavirajas* named Gananath Sen and J.B Roy drafted a combined syllabus comprising Ayurveda and Allopathy for the students of Ashtanga Ayurveda Vidhyalaya. Then, another college named Shyamadas Vidyashastra Peeth was established by Shayamadas Vacaspati, a very distinguished *Kaviraja* of his time. Congress leader C.R. Dass also played a significant role in establishing this college. It is essential to mention that the Vacaspati favored pure Ayurveda and was critical of the mingling of Ayurvedic and Allopathic medicines.²⁹

The role of press activity was important in promoting the medical profession. Journals like the Calcutta Journal of Medicine started in 1858, and the Indian Homeopathic Review, which started in 1882, underlined the development of the medical profession among Bhadrakal in Calcutta.³⁰ However, a very small number of journals on Ayurveda were published in the early nineteenth century. Kaviraj of Bengal encouraged the Ayurveda medical Practice in Bengal through their journals like Chikitsa, Bishak Darpan, etc.

Ayurveda was regarded as a potent tool to promote Indian identity and culture. The nationalist leaders considered Ayurveda synonymous with India's ancient wisdom and knowledge, and they saw the resurgence of Indian nationalism in the revival and revitalization of the Ayurvedic medicine system. Ayurveda was also used to disprove the colonial discourse, which treated Indian culture and civilization as primitive and inferior. According to K. N. Panikkar, the resurgence of the Ayurvedic movement was an unambiguous mechanism of confronting allopathic medicine, which reflected the resurgence of cultural nationalism and an endeavor to scuttle colonial hegemony³¹. More importantly, the Ayurvedic medicine system became essential to the national movement against British rule. During the national movement, Indians were keenly interested in developing Ayurveda from a scientific point of view. In India, the Ayurvedic medical system is viewed as an ethno-medical system and a whole system of life capable of addressing humanity's ethical, spiritual, and philosophical well-being. It underlines the need for living in harmony with nature and science. This universal and holistic approach to the Ayurvedic medicine system lends a unique and distinct character to the world's medical system.³²

The Non-Cooperation movement started by Mahatma Gandhi under the flag of the Indian National Congress in 1920 also gave a great fillip to the Ayurvedic medicine system. In March 1920, a manifesto declaring a doctrine of the Non-cooperation movement was issued. Gandhi, through this manifesto, urged people to (i) Support *Swadeshi* Principles of self-local government (*Swarajya*), (ii) accept *Swadeshi* habits, including hand spinning & weaving, (iii) work for the eradication of untouchability from society, (iv) boycott & withdraw British education institutions and (v) renounce their titles and notable posts, etc. given by the colonial rulers.³³ During the Non-Cooperation movement, people started getting treatment for various diseases from the indigenous *vaidyas* or doctors. The prominent Indian leaders started demanding state protection for the Ayurvedic medical system, and they also passed a resolution to the effect that schools, colleges, and hospitals for instructions and treatment in line with the traditional systems of medicine be opened and popularized in the various places of the country. The nationalist leaders, like Mahatma Gandhi, advocated for the revival of Ayurveda and other traditional Indian knowledge systems. They viewed Ayurveda as an essential part of India's national heritage, and its revival was necessary to promote Indian identity and culture. During the freedom struggle in 1921, Shyamadas Vacaspati, a well-known indigenous physician, established a national University in Bengal known as Gaudiya Saravidyayatana.³⁴ An Ayurvedic medicine block was also established in this university to restrict the prevalence of modern medical education in colonial Bengal. In the same year, Mahatma Gandhi also opened an Ayurvedic college in Delhi, and a few days later, he established an Ayurvedic hospital in Calcutta. Promoting Ayurveda and other traditional knowledge systems was an essential part of a broader movement of nationalism and unity among Indians, which sought to retrieve India's cultural identity and promote the right of self-determination for the Indians. The nationalist leaders regarded Ayurveda as an effective tool for repudiating the colonial discourse, which had undermined Indian culture and identity.³⁵

The revival of Hinduism and communal politics of the Indian Muslim League in the early twentieth century witnessed the eruption of communalism in the day-to-day public sphere. The communal polarization took place even in the field of Ayurveda because of the blatantly partisan role of *Vaidyas* and *Hakims* in the communal tensions sweeping the country. Consequently, a *Vaidya Sammelan* of all India levels also intensified the communication of the Ayurvedic discourse. It also exhibited religious and communal symbols to revive the indigenous medicine system.³⁶

Pandit Madan Mohan Malaviya also promoted Ayurveda to promote nationalistic and patriotic spirit and national pride. He was also associated with the editorship of numerous nationalist newspapers viz Hindustan Times, The Leader, *Abhyudaya*, Hindustan Dainik, and Maryada. A journalist, Malaviya as a journalist played a crucial role in awakening national consciousness among the Indian people. It is worth mentioning here to bolster the cause of Ayurveda; he frequently wrote articles on the subject in these newspapers.³⁷ For instance, a Hindi weekly, *Abhyudaya*, launched by Malaviya, brought out a plethora of articles on Ayurveda. A considerable number of articles on health and Ayurveda appeared in *Abhyudaya*. They regarded Ayurveda as an effective tool to re-establish India's identity and assert its cultural independence. These publications indicated the growth of nationalism.³⁸

Conclusion:

Public Health policies were developed in Bengal slowly, and the rest of India followed. The main concern of Britishers was the Health of the Army. The Kaviraj of Bengal has served the people

during pandemics since ancient times. This paper can safely conclude with the remarks that the Ayurvedic medical system has significantly promoted Indian identity in indigenous medical science and culture since time immemorial. The Ayurvedic medicine system continued making rapid strides till the medieval period. However, British rule inducted Western medicine, and various levels of training in modern medicine were imparted to Indian students, initially in the local language but subsequently, more and more in English. At the beginning of the British rule, there was no major confrontation between doctors of the Indian medical system and those trained in Western medicine. Rather, both systems played a complementary role without transgressing areas or undermining the domains meant for the two systems. However, in the first half of the nineteenth century, the colonial government launched a drive against the Indigenous medical system. In 1835, the colonial government banned teaching Ayurvedic in the Sanskrit language at Calcutta Medical College. Modern education also badly affected the growth of the Ayurvedic medical system. Indian *Vaidyas* and *Hakims* felt threatened and neglected during colonial rule. Even then, the Ayurvedic medical system developed simultaneously with the Western medical system. However, indigenous medicine's development was slower than that of allopathic medicine.

Footnotes

- 1 Atridev Vidhyalankar, *Ayurveda ka vrahata itihash*, Utar Pradesh Shasan, Lucknow p-457
- 2 See Dash, B. (1985). *Fundamentals of Ayurveda*. Concept Publishing Company.
- 3 Wujastyk, D. (1998). *The Roots of Ayurveda*, Penguin Books New Delhi. pp-133-134.
- 4 R. D. Lele, *History of Medicine in India*, National Centre of Indian Medical Heritage, Central Council for Research in Ayurvedic Sciences, Ministry of AYUSH, Govt. of India, New Delhi, 2021, pp. 1-2.
- 5 *Ibid.*
- 6 *Ibid.*
- 7 See R.P.Dutt, *India Today*, Calcutta, 1970; A.D. Low (ed), *Congress and the raj, the fact of Indian struggle: 1917- 1947*, London 1977, Sumit sarkar, *Modern India: 1885-1947*, Delhi, 1983; K.L Tuteja, *Nationalism and the Congress in Punjab*, *Sita Ram Kohli Memorial lectures*, Department of Punjab Historical Studies, Punjabi University, Patiala, pp 1-39.
- 8 Gopal Parshad, Growth of Nationalism in Punjab: A study of Non-Cooperation Movement, *International Journal of Research in Social Sciences*, vol. 9, issue 1(2) January 2019, pp-129-136.
- 9 Maya Tudor, India's Nationalism in Historical Perspective: The Democratic Dangers of Ascendant Nativism, *Indian Politics and Policy*, Vol.1 No.1, Spring 2018, pp. 107-130.
- 10 Lala Lajpat Rai, *Young India*, ed. By K.L Tuteja, New Delhi, 2011, p. 11.
- 11 Gopal Parshad, Growth of Nationalism in Punjab: A study of Non-cooperation movement, *International Journal of Research in Social Sciences*, vol. 9, issue 1(2) January 2019, pp-129
- 12 M. U. Mushtaq, 'Public Health in British India: A Brief Account of the History of Medical Disease Prevention in Colonial India', *Indian Journal of Community Medical Science*, 34, 2009, pp. 6-14.
- 13 *Ibid.*
- 14 A. Das, S. A. Sain, 'A History of Calcutta Medical College and Hospital, 1835-1936, Science and Modern India, in U. Dasgupta, ed., *An Institutional History, C 1784-1947*, Pearson Education India, Delhi 2011, pp. 477-522.
- 15 Lt. Colonel D. G. Crawford, *A History of the Indian Medical Services, 1600-1913*, Vol. II, London, 1914, pp. 433-452.
- 16 Bala Poonam, (1987). *State and Indigenous Medicine In Nineteenth and Twentieth Century Bengal:*

- 1800-1947.(Unpublished Thesis), University of Edinburg.p-237.
- 17 See Uma Das Gupta, *Science and Modern India: c 1784 – 1947: Project of History of Science, Philosophy and Culture in Indian Civilization*, Vol: XV, Part 4, Pearson, New Delhi, 2010.
 - 18 See A. K. Basu, 'Some Perspectives of Cultural Impact of European Medical Science on the Development of Scientific Medicine in India', *Indian Journal of History of Science*, Vol. 17 (2), New Delhi, 1982; P. C. Dutta, 'Medicine in India, *Indian Journal of History of Medicine*, Vol. III (2), 1958.
 - 19 See G. Mukhopadhyaya, *History of Indian Medicine*, Vol. I, Delhi, 2003; B. Pati and M. Harrison, eds., *Health, Medicine and Empire: Perspectives on Colonial India*, New Delhi, 2001; D. Kumar, 'Medical Encounters in British India, 1820-1920', *Economic and Political Weekly*, 32, 1970, pp. 166-170.
 - 20 N.A. Atwell Guy, *Refiguring Unani Tibb: Plural Healing in late Colonial India*, Hyderabad 2007; See also Seema Alvi, *Islaam, and Healing: Loss and Recovery of an Indo- Muslim medical tradition 1600-1900*, Newyork, 2008.
 - 21 K.M Panniker, *Culture, Ideology, Hegemony: Intellectuals and Social Consciousness in Colonial India*, London, 2002, p 165
 - 22 David Arnold, *The New Cambridge History of India: Science, Technology and Medicine in Colonial India*, Vol. III-5, New Delhi, pp. 55-67.
 - 23 See also Mario Prayes, 'The Gandhian of Bengal: Nationalism, Social Reconstruction, and Cultural Orientations 1920-1942', *Rivista Degli Studi oriental*, Vol. 74, Supplement No. 1-2, 2001, (JSTOR).
 - 24 Bipin Chandra, Amales Tripathi and Berun De, *Freedom struggle* New Delhi 2005 pp-82-86; Summit Sarkar, *Modern India: 1885-1947* p- 100-129.
 - 25 Srabani Sen, 'The State of Ayurveda in Colonial Bengal', Project Report, *Indian Journal of History of Science*, 53, 3, 2018, pp. 380-386.
 - 26 *Ibid.*
 - 27 See, K. N. Panikkar, *Culture, Ideology, Hegemony: Intellectuals and Social Consciousness in Colonial India*, London, 2002, pp. 150-170.
 - 28 Srabani Sen, 'The State of Ayurveda in Colonial Bengal', Project Report, *Indian Journal of History of Science*, 53, 3, 2018, pp. 380-386.
 - 29 Opcit. Bala Poonam.p-217.
 - 30 *Ibid.*
 - 31 K. N. Panikkar *Colonialism, Culture and Resistance*, New Delhi, 2009, p. 188.
 - 32 See for details Chandra, Bipan and others *India's Struggle for Independence 1857-1947*, Penguin Books, New Delhi, 1989.
 - 33 B. Gupta, 'Indigenous Medicine in Nineteenth and Twentieth Century Bengal, in C. Leslie, ed., *Asian Medical Systems: A Comparative Study*, California, 1976, p. 376.
 - 34 Poonam Bala, 'Medical Revivalism and the National Movement in British India', *Ancient Science of Life*, Vol. No. X, No 1, July 1990, pp. 1-5.
 - 35 Saurav Kumar Rai, 'Invoking 'Hindu' Ayurveda: Communalization of the Late Colonial Ayurvedic Discourse', *The Indian Economic and Social History Review*, 56, 4, (2019), pp. 411-426.
 - 36 Ritesh Gupta, 'Mahamana Pandit Madan Mohan Malaviya's Thoughts of Ayurveda and Establishment of Ayurveda College at Banaras Hindu University', *Journal of Indian Medical Heritage*, Vol. I, Issue I, October-December 2022, pp. 1-29.
 - 37 K. N. Panikkar, *Culture, Ideology, Hegemony: Intellectuals and Social Consciousness in Colonial India*, pp. 150-170.
 - 38 K. N. Panikkar, *Culture, Ideology, Hegemony: Intellectuals and Social Consciousness in Colonial India*, pp. 150-170.



सावित्रीबाई फुले: शिक्षा और सामाजिक सुधार की अग्रदूत

किशोर कुमार

शोध छात्र

इतिहास विभाग, डी.एस.बी. परिसर,

कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

शोध सारांश

यह शोध 19वीं सदी के भारत में शिक्षा और सामाजिक सुधार के क्षेत्र में अग्रणी व्यक्तित्व सावित्रीबाई फुले के जीवन और विरासत पर गहराई से चर्चा करता है। भारत की पहली महिला शिक्षकों में से एक के रूप में, सावित्रीबाई ने जाति और लिंग आधारित भेदभाव के उस दौर में हाशिए पर पड़े समुदायों, खास तौर पर महिलाओं और दलितों के उत्थान के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। अध्ययन में उनके पति ज्योतिराव फुले के साथ मिलकर लड़कियों के लिए पहला स्कूल स्थापित करने के उनके प्रयासों और आबादी के बड़े हिस्से को शिक्षा से वंचित रखने वाले सामाजिक मानदंडों को चुनौती देने में उनकी भूमिका का विश्लेषण किया गया है। साथ ही यह शोध एक समाज सुधारक के रूप में उनके योगदान पर प्रकाश डालता है, जिसमें विधवा पुनर्विवाह, अस्पृश्यता उन्मूलन और पितृसत्ता के खिलाफ उनकी लड़ाई पर ध्यान केंद्रित किया गया है। ऐतिहासिक ग्रंथों, व्यक्तिगत पत्रों और जीवनी संबंधी विवरणों की जांच के माध्यम से, शोधपत्र भारत के शैक्षिक और सामाजिक परिदृश्य पर सावित्रीबाई के स्थायी प्रभाव को रेखांकित करता है तथा उन्हें आधुनिक भारत के प्रगतिशील सुधारों के एक आवश्यक वास्तुकार के रूप में स्थापित करता है। शोध 19वीं सदी के सुधार आंदोलनों के व्यापक ढांचे के भीतर उनकी विरासत को संदर्भित करने का भी प्रयास करता है, इस बात पर जोर देता है कि कैसे उनका दृष्टिकोण समकालीन समय में सामाजिक न्याय और समानता के आंदोलनों को प्रेरित करता है।

मुख्य शब्द :- महिला शिक्षा, भेदभाव, समाज सुधार, दलित उत्थान, प्रगतिशील आदि।

प्रस्तावना

19 वीं शताब्दी के पुनर्जागरण एवं सामाजिक क्रान्ति व नारी उत्थान की अग्रदूत सावित्रीबाई फुले ने शोषण मुक्त स्वस्थ समाज की स्थापना हेतु अपना अमूल्य योगदान दिया। दलित एवं सभी वर्गों की स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु शिक्षा के प्रचार-प्रसार को प्रोत्साहन करना आवश्यक मानते हुए पाठशालाएं, कन्या पाठशालाएं एवं भारत की प्रथम रात्रि पाठशाला, महिला छात्रावास आदि खुलवाये। सावित्रीबाई ने मैकाले की शिक्षा नीति का विरोध किया और 1882 में हण्टर कमीशन के समक्ष प्राइमरी शिक्षा को निःशुल्क करने हेतु प्रस्तुत प्रतिवेदन सावित्रीबाई के पति ज्योतिबा फुले द्वारा दिया गया, जो अविस्मरणीय प्रयास रहा। इस शोधपत्र में सावित्रीबाई फुले का योगदान व शिक्षा के क्षेत्र में उनके द्वारा किए गए कार्यों की प्रासंगिकता तथा नारी उद्धारक में रूप में उनके कार्यों का अध्ययन किया गया है तथा नारी शिक्षा में सावित्रीबाई फुले का योगदान महिलाओं

के लिए एक आदर्श स्थापित करती है।

प्रारंभिक जीवन

सावित्री बाई फुले का जन्म 3 जनवरी 1831 को पुणे से 50 किलोमीटर दूर महाराष्ट्र के नायगांव पिता खन्दोजी नैवसे और माता लक्ष्मीबाई के माली परिवार में हुआ। माली जाति (अब सैनी जाति) को महाराष्ट्र में मूल निवासी माना जाता है। कुछ विद्वानों सावित्री बाई फुले को महार जाति में भी संबंधित मानते हैं।¹ सावित्री बाई फुले की शादी सन् 1841 में लगभग 10 वर्ष की आयु में ज्योतिराव फुले से हो गई थी। ज्योतिराव फुले उस समय 11 वर्ष के थे। प्रचलित प्रथा के अनुसार यह एक बाल विवाह था जबकि कलांतर में उन्होंने सारी जिंदगी बाल विवाह का विरोध किया।² शादी के समय सावित्री बाई फुले बिल्कुल निरक्षर व अनपढ़ थी। उस समय लड़कियों को पढ़ाना गलत व पाप माना जाता था जो महिलाओं के पिछड़ेपन का मुख्य कारण था। ज्योतिबा फुले ने अपनी पत्नी सावित्रीबाई फुले और अपनी बहन सगुना बाई के साथ घर में ही स्वयं शिक्षित करना प्रारंभ किया। घर पर प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात ज्योतिबा फुले के मित्रों - सुखराम यशवंत राय परांजपे व केशव शिवराम भावलकर से शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात सावित्री बाई फुले अमेरिकी मिशनरी स्कूल (अहमदनगर) में शिक्षक प्रशिक्षण ग्रहण किया व नॉर्मल स्कूल (पुणे) से कोर्स किया।³

शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात ज्योतिबा फुले के प्रोत्साहन के कारण सावित्रीबाई फुले और ज्योतिबा फुले की चचेरी बहन सगुनाबाई ने पुणे में लड़कियों को पढ़ाना प्रारंभ किया। तत्कालीन समाज में यह एक आश्चर्यजनक कदम था जो कालान्तर में मील का पत्थर सिद्ध हुआ।⁴ यद्यपि फुले शब्द का शाब्दिक अर्थ 'फूल' है परन्तु फुले दम्पति के मार्ग में 'फूल कम और कांटे ज्यादा' थे। उस समय लड़कियों को पढ़ाना एक पाप समझा जाता था। यही कारण है कि इन दोनों को ज्योतिबा फुले के पिता जी जो एक रूढ़िवादी संकीर्ण मानसिकता से ग्रस्त थे फुले दम्पति अपने घर से निकाल दिया। फुले दम्पति घर से बेघर हो गए। मुस्लिम मित्र उस्मान शेख के घर में शरण लेनी पड़ी।⁵

स्त्री शिक्षा को समर्पित सावित्री बाई फुले

तत्कालीन समाज में महिलाओं पर अनेक बंधन थे। उस समय लड़कियों को पढ़ाना पाप और अभिशाप समझा जाता था इस प्रकार के वातावरण में फुले दम्पति ने आज से 17 वर्ष पूर्व 3 जनवरी 1848 (सावित्री बाई का जन्म दिवस) भिडे वाडा (पुणे) में बालिका विद्यालय की स्थापना की। इसमें केवल 9 छात्राओं ने प्रवेश ग्रहण किया था।⁶ इस भवन की जर्जर स्थिति के कारण यह पिछले 16 साल से बंद है। महाराष्ट्र सरकार को इस स्कूल की बिल्डिंग का जीर्णोद्धार करके इसे राष्ट्रीय धरोहर घोषित किया जाना चाहिए।

सावित्रीबाई फुले ने ज्योतिबा फुले व फातिमा बेगम शेख के सहयोग से लड़कियों के लिए पांच स्कूल पूना में खोले। इन स्कूलों का पाठ्यक्रम ब्राह्मणों के द्वारा घर पढ़ाए गए स्कूलों से अलग था। इन स्कूलों के पाठ्यक्रम में वेदों और शास्त्रों (ब्राह्मण ग्रंथों) के बजाय गणित, विज्ञान और सामाजिक अध्ययन शामिल थे। इन स्कूलों में शिक्षा और पढ़ाने का तरीका परंपरागत स्कूलों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा था।⁷ सावित्रीबाई न केवल ज्योतिबा फुले की अर्धांगिनी थीं, वरन् उनके क्रांतिकारी आन्दोलनों की भी अर्धांगिनी बन गयी थीं। उन्हें नारी सेवा के लिए अपना घर, बच्चे एवं सभी सुखों को त्याग कर कांटों भरे रास्तों पर चलना पड़ा था। ज्योतिबा फुले के समान ही उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले भी अनेक कष्ट सहन करते हुए, समाज की प्रताड़नाएं सहते हुए, स्वयं शिक्षित हुई और भारत की प्रथम अध्यापिका का गौरव हासिल कर लिया। उन्होंने नारी शिक्षा आन्दोलन हेतु स्वयं को समर्पित कर दिया। वे भी नारी शिक्षा हेतु अपनी निःशुल्क सेवाएं देतीं और अपनी आजीविका हेतु खाली समय में मोटे गद्दे बनाकर बेचने का कार्य करती थीं। ज्योतिबा एक सिलाई की दुकान चलाते थे। सावित्री बाई के महान योगदान के सम्बन्ध में ज्योतिबा ने कहा है— “अपने जीवन में मैं जो कुछ भी कर पाया हूँ, वह मेरी पत्नी सावित्रीबाई के सहयोग से ही हो सका है। वे कांटों भरे रास्ते में भी मेरे साथ कदम से कदम मिला कर चलती रहीं।”⁸

19वीं सदी में सार्वजनिक जीवन को अपनाने वाली प्रथम भारतीय महिला का गौरव भी उन्हें ही प्राप्त है। 16 कन्या पाठशालाओं की सफलता देखते हुए ज्योतिबा ने अनेक शहरों में विद्यालय खोले। जिसका कार्यभार सावित्रीबाई के साथ सगुणाबाई आदि महिलाओं को दिया। उनमें से एक मुस्लिम महिला फातिमा शेख का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने भी सावित्रीबाई का अनुगमन करते हुए सुधारवादी व क्रांतिकारी आन्दोलनों में काफी योगदान दिया। फातिमा शेख, ज्योतिबा के मित्र उस्मान शेख की बहिन थी। जिसे पिता द्वारा घर से निकाल देने के बाद उन्होंने अपने घर में शरण दी थी। यह उस समय की हिन्दू-मुस्लिम प्रेम, सहयोग का अनूठा उदाहरण था। 19वीं सदी की प्रथम भारतीय मुस्लिम अध्यापिका होने का श्रेय भी इन्हीं फातिमा शेख को जाता है।⁹ सावित्रीबाई फुले मात्र स्त्री शिक्षा आन्दोलन तक ही सीमित न रहीं। उनका लक्ष्य स्त्रियों का चहुंमुखी विकास करना था। ज्योतिबा द्वारा खोले गये विधवाश्रम व अनाथाश्रम की देखरेख सावित्रीबाई फुले करती थीं। ज्योतिबा के निधन के बाद उनके द्वारा स्थापित सत्यशोधक समाज की बागडोर वर्ष 1891 ई. से 1897 ई. तक सावित्रीबाई ने संभाली। इन सात वर्ष के कार्यकाल में अनेक सभा सम्मेलनों में जाकर कार्यक्रमों का मार्गदर्शन किया तथा सम्बन्धित संस्थाओं का कुशल संचालन भी किया। वह मात्र अध्यापिका व समाजसेवी ही न थीं। वे एक बुद्धिमान लेखिका तथा प्रतिभा संपन्न कवयित्री भी थीं। उनके द्वारा कृत कविता संग्रह 'काव्य फुले' 1854 ई. में प्रकाशित हुई थी।¹⁰ सावित्रीबाई फुले को इस तरह तत्कालीन वातावरण के विरुद्ध कार्य करते देख उनके भाई व पीहर के अनेक लोगों ने भी मना किया था। किन्तु सावित्रीबाई ने किसी की बात न सुनी और अपने पति ज्योतिबा फुले के साथ निरंतर कार्य करती रहीं। अपने पति से कहती थीं कि हम सत्य के मार्ग पर चल रहे हैं, हमारी विजय निश्चित होगी।

एक पत्र में सावित्री बाई अपने मायके का जिक्र करती है कि कैसे उनका भाई ज्योतिबा की आलोचना करता रहता है और बताता है कि अछूतों के लिए कार्य करने का कारण समाज ने आपका बहिष्कार किया क्योंकि आप पाप कर्म कर रहे हो। 'साधारणतः ऐसे वाक्य हमारे घरों में आते हैं जब हमारे नाते रिश्तेदार हमारी सोच का विरोध करते हैं लेकिन आपका अपना भाई या पिता विरोध करे तो बेहद दुःख होता है। सावित्री बाई इस पत्र में ज्योति बा को बता रही हैं कैसे उन्होंने अपने भाई को बदला। अपने भाई के लिए वो लिखती है, 'आपकी मति ब्राह्मणों की चाल की शिकार हो गयी है। उनकी घुड़ी पी पी कर, उनके पाखंडी उपदेश सुन कर आपकी बुद्धि दुर्बल हो गयी है और इसी कारण आपके स्वयं के विवेक ने काम करना बंद कर दिया है, एक तरफ आप इतने दयालु बनते हैं कि बकरी गाय को खूब प्यार करते हैं, उन्हें दुलारते हैं, नागपंचमी के त्यौहार में विषैले सांपों को दूध पिलाते हैं, ये कृत्य आपके लिए धर्म सम्मत है और महार मांग अपने जैसे इंसानों को तुम इंसान नहीं समझते। उनसे तुम परहेज करते हो, उन्हें अछूत, अस्पृश्य समझ कर दुल्कारते हो. क्यों करते हो ऐसा. क्या तुम नहीं जानते के ब्राह्मण लोग तुम्हें भी अछूत ही समझते हैं। हमारे स्पर्श से भी उन्हें नफरत है।' ¹¹

समाज सुधारक के रूप में सावित्रीबाई फुले

अपने एक भाषण विद्या दान में वह कहती हैं:-

परम्पराओं और पुरखों से मिले ज्ञान को अर्जित कर जिन कारीगरों ने श्रमजीवी मेहनतकश जनता ने, अपने कार्य में महारत हासिल कर भारत देश को समृद्ध बनाया है, उन लोगो की कुशलता, वास्तु निर्माण का ज्ञान एवं कलात्मकता आदि गुणों की अनदेखी कर राजाओं ने राज किया, अपनी तिजोरी भरी किन्तु शुद्र अतिशुद्र जनता की उन्नति की और कतई ध्यान नहीं दिया। शुद्र अतिशुद्र जाति के लोग स्वभाव से सीधे सादे एवं अनपढ़ होने की वजह से वे निहायत मुर्ख बने हुए हैं। उन्हें यदि न समझाया जाए और उपदेश न दिया जाए तो वे आप होकर आगे बढ़कर खुद के दिमाग, हिम्मत एवं होसले से कोई भी उद्योग करने से कतराते हैं। उनका स्वाभाव भी मिलनसार न होकर बुरा होता है। उन्हें अपने व्यक्तित्व में किस प्रकार सकारात्मक सुधार किया जाये, किस तरह अपनी प्रगति एवं विकास योजना बनाकर उस पर अमल करे, इस बात का ज्ञान जानकारी एवं प्रशिक्षण न होने के कारणों से वे अज्ञानता की वजह से आधे भूखे रहने हेतु तो कभी कभी पूर्ण रूप से भूखे रहने के लिए विवश हैं। शुद्र अति शुद्र जनता हेतु सम्मानजनक आजीविका का रास्ता सरकार को पहल लेकर खोजना होगा।¹²

उन्होंने विधवा पुनर्विवाह सभा का आयोजन किया। विधवा महिलाओं, निराश्रित महिलाओं, परिवार द्वारा छोड़ी गयी महिलाओं के लिए सन् 1854 में लिए एक आश्रम की स्थापना की, जो सन् 1864 विशाल भवन हो गया। फुले दंपति ने दलित विधवा के बेटे को गोद लेकर एक सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया।¹³ गांव में जब दलितों को सार्वजनिक कुएं से पानी नहीं भरने दिया गया और सामाजिक तनाव पैदा हो गया तो फुले दम्पति ने दलितों के लिए अलग कुआं खुदवाया।¹⁴ सन् 1890 में ज्योतिबा फुले की मृत्यु हो गई फुले दंपति के दत्तक पुत्र यशवंत को अपने पिता ज्योतिबा फुले को मुखाग्नि देने का विरोध ब्राह्मण पंडों के द्वारा किया गया। सावित्रीबाई फुले ने अपने पति की चिता को स्वयं मुखाग्नि देकर समाज की प्रथा को चुनौती देकर साहसिक कार्य किया।¹⁵ उनके पति मृत्यु के पश्चात सत्य शोधक समाज (24 सितंबर 1873) के माध्यम से सामाजिक सेवा जारी रखी। सावित्रीबाई फुले समाज सुधारक के रूप में सावित्रीबाई फुले ने बाल विवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा, बालिका भ्रूण हत्या छुआछूत इत्यादि कुप्रथाओं का विरोध किया और विधवा पुनर्विवाह, और बालिका शिक्षा पर बल दिया। प्लेग के मरीजों की देखभाल करने के दौरान सावित्रीबाई की मृत्यु 10 मार्च 1897 को हुई।¹⁶ परंतु उनके द्वारा जलाई गई ज्योति की क्रांति निरंतर रूप से प्रकाश देकर लोगों का मार्गदर्शन कर रही है।

एक अनपढ़ बालिका से लेकर सावित्रीबाई भारत की पहली महिला शिक्षक बनी। इसके बिल्कुल विपरीत वर्तमान में शिक्षक समाज सुधार के रास्ते से भटकते जा रहे हैं। अन्य शब्दों में पढ़े लिखे होने के बावजूद भी अनपढ़ होते जा रहे हैं। यह एक बहुत बड़ी विडंबना है। हमारे विश्वविद्यालय डिग्री के कारखाने बन चुके हैं। यदि हम भारत को वास्तविक रूप में एक समतावादी व नागरिकताोध वाला देश बनाना चाहते हैं तो हमें सावित्रीबाई के सिद्धांतों को अपनाना होगा। शिक्षक का मुख्य उद्देश्य वैज्ञानिक चिंतन का प्रचार करना, वर्तमान संदर्भ में वैज्ञानिक चिंतन व तर्क के द्वारा धार्मिक पाखंडवाद, संप्रदायवाद, अंधविश्वास, समाज में फैली कुरीतियों के विरुद्ध भावी पीढ़ी को तैयार करना है ताकि समतावादी व धर्म निर्पेक्ष समाज की स्थापना हो सके।

निष्कर्ष

सावित्रीबाई फुले न केवल भारत की पहली महिला शिक्षिका के रूप में जानी जाती हैं, बल्कि उन्होंने सामाजिक सुधार के क्षेत्र में भी एक अग्रणी भूमिका निभाई। उनके प्रयासों ने शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं और दलितों के अधिकारों को मान्यता दिलाने में अहम योगदान दिया। सावित्रीबाई और उनके पति ज्योतिराव फुले ने मिलकर एक ऐसे समाज की कल्पना की, जहाँ शिक्षा और समानता हर वर्ग के लिए सुलभ हो। उन्होंने शिक्षा को केवल ज्ञान अर्जित करने का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक असमानताओं के खिलाफ एक सशक्त हथियार माना। सावित्रीबाई के कार्यों का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि उन्होंने शिक्षा के माध्यम से महिलाओं और दलितों को स्वाभिमान और आत्मनिर्भरता का संदेश दिया। उन्होंने जाति, लिंग और धर्म के आधार पर हो रहे भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाई और उस समय की रूढ़िवादी परंपराओं को चुनौती दी। उनके द्वारा स्थापित किए गए स्कूल और उनकी लेखनी सामाजिक परिवर्तन के प्रतीक बन गए।

इस शोध के निष्कर्ष के रूप में यह स्पष्ट है कि सावित्रीबाई फुले का योगदान न केवल शिक्षा के क्षेत्र तक सीमित था, बल्कि उन्होंने एक समतामूलक समाज की नींव रखने का कार्य किया। उनके द्वारा की गई पहल आज भी प्रासंगिक है और महिलाओं तथा वंचित वर्गों के अधिकारों की दिशा में उनके द्वारा किए गए संघर्ष को इतिहास में सदा सम्मानपूर्वक स्मरण किया जाएगा।

संदर्भ

1. कुमारी, सुशीला. सामाजिक क्रांति की वाहक सावित्रीबाई फुले. प्रभात प्रकाशन, 2022।
2. वही।
3. <https://www.bbc.com/hindi/india.54069860>
4. वही।
5. कुमारी, सुशीला. सामाजिक क्रांति की वाहक सावित्रीबाई फुले. प्रभात प्रकाशन, 2022
6. वो खत जो सावित्रीबाई ने ज्योतिराव को लिखे थे : <https://www.bbc.com/hindi/india.42547244>
7. <https://scroll.in/article/1007802/savitribai.phule.the.firebrand.intellectual.who.powerfully.used.the.term.dalit.in.her.poetry>
8. डॉ रामजीलाल, सावित्रीबाई फुले भारतीय सामाजिक व शैक्षिक क्रांति की अग्रदूत : एक पुनर्मूल्यांकन <https://samajweekly.com/savitribai.phule.indian.social.and.educational.revolution/>
9. वही।
10. कुमारी, सुशीला. सामाजिक क्रांति की वाहक सावित्रीबाई फुले. प्रभात प्रकाशन, 2022।
11. तिलक, रजनी. सावित्रीबाई फुले रचना समग्र.द मर्जिनलाइज्ड पब्लिकेशन, वर्धा, 2017।
12. सावित्रीबाई फुले के भाषण और पत्र ई बुक - <https://archive.org/details/savitiri.jotiba.bhashan.patn>
13. <https://scroll.in/article/1007802/savitribai.phule.the.firebrand.intellectual.who.powerfully.used.the.term.dalit.in.her.poetry>
14. वही।
15. <https://www.bbc.com/hindi/india.54069860>
16. कुमारी, सुशीला. सामाजिक क्रांति की वाहक सावित्रीबाई फुले. प्रभात प्रकाशन, 2022।



उपनिषदों और भगवद्गीता में जीवन दर्शन : आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता

विवेक कुमार

शोधार्थी मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सारांश

उपनिषदों और भगवद्गीता भारतीय दर्शन के दो ऐसे स्तंभ हैं जो न केवल प्राचीन भारत की आध्यात्मिक और बौद्धिक गहराई को प्रकट करते हैं, बल्कि आज भी जीवन के विविध पहलुओं में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। उपनिषद जहाँ आत्मा, ब्रह्म, और मोक्ष जैसे गूढ़ तत्वों की दार्शनिक व्याख्या करते हैं, वहीं भगवद्गीता जीवन के संघर्षों में कर्तव्य, धर्म और कर्मयोग के माध्यम से संतुलन और शांति की राह दिखाती है। यह शोध पत्र इन दोनों ग्रंथों में निहित जीवन-दर्शन का विश्लेषण करता है और यह दर्शाता है कि आधुनिक जीवन की जटिलताओं जैसे नैतिक भ्रम, मानसिक तनाव, और आत्म-परिचय की खोज के समाधान इन ग्रंथों में विद्यमान हैं। साथ ही, यह लेख समकालीन समाज, शिक्षा, कार्य संस्कृति और पारिवारिक जीवन में इन शिक्षाओं की प्रासंगिकता को रेखांकित करता है। निष्कर्षतः, उपनिषदों और भगवद्गीता का जीवन-दर्शन आज भी मानवता के लिए एक शाश्वत प्रकाश स्तंभ बना हुआ है।

शब्द कुंजियाँ - उपनिषद, भगवद्गीता, जीवन दर्शन, आत्मा, ब्रह्म, कर्मयोग, धर्म, आधुनिकता, भारतीय दर्शन, नैतिकता, मानसिक संतुलन, आध्यात्मिकता।

भूमिका

भारतीय सभ्यता का मूल आधार उसका गहन और समृद्ध दर्शन है, जो केवल चिंतन तक सीमित नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक सम्पूर्ण कला के रूप में विकसित हुआ है। इस दर्शन की सबसे प्राचीन और प्रभावशाली अभिव्यक्तियाँ उपनिषदों और भगवद्गीता में मिलती हैं। उपनिषद वेदों का वह अंश हैं जो आत्मा, ब्रह्म, और मोक्ष जैसे तत्त्वज्ञान का सार प्रस्तुत करते हैं। वहीं भगवद्गीता महाभारत के भीषण युद्ध भूमि में अर्जुन और श्रीकृष्ण के संवाद के माध्यम से जीवन के वास्तविक उद्देश्यों, कर्तव्य और धर्म की परिभाषा को उजागर करती है। आधुनिक युग, जहाँ एक ओर तकनीकी प्रगति और भौतिक विकास की तीव्र गति है, वहीं दूसरी ओर मनुष्य मानसिक तनाव, नैतिक द्वंद्व और आत्मिक शून्यता से जूझ रहा है। ऐसे समय में उपनिषदों और गीता का जीवन-दर्शन एक मार्गदर्शक के रूप में सामने आता है, जो न केवल मानसिक शांति और आत्मबोध की प्रेरणा देता है, बल्कि एक संतुलित, नैतिक और सार्थक जीवन की दिशा भी दिखाता है। यह शोध-पत्र उपनिषदों और भगवद्गीता के प्रमुख दार्शनिक विचारों का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित करता है कि इन ग्रंथों की शिक्षाएं न केवल प्राचीन भारत

के लिए, बल्कि आज के वैश्विक और आधुनिक समाज के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक हैं।

1. उपनिषदों का जीवन-दर्शन

उपनिषद भारतीय दर्शन की आत्मा हैं। वे न केवल वेदों का अंतिम भाग वेदान्त हैं, बल्कि आत्मा, ब्रह्म, और उनके पारस्परिक संबंधों को समझाने का गहन प्रयास भी हैं। उपनिषदों का मूल उद्देश्य सांसारिक ज्ञान से परे जाकर परम सत्य की अनुभूति कराना है। जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष इन ग्रंथों का केंद्रीय विषय है।

आत्मा और ब्रह्म की अवधारणा- उपनिषदों में बताया गया है कि आत्मा (अंतःचेतना) और ब्रह्म (सर्वव्यापी परमचेतना) मूलतः एक ही हैं। यह विचार 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ), 'तत्त्वमसि' (तू वही है) जैसे महावाक्यों में प्रकट होता है। उपनिषद मानते हैं कि आत्मज्ञान प्राप्त करना ही मानव जीवन का परम उद्देश्य है।

ब्रह्म की प्रकृति- ब्रह्म को उपनिषद निराकार, निरगुण, अनंत और शाश्वत मानते हैं। वह कारण और कार्य दोनों से परे है, वह सच्चिदानन्द स्वरूप है अर्थात् सत (अस्तित्व), चित (चेतना) और आनन्द (परम सुख)।

मोक्ष की अवधारणा- मोक्ष का अर्थ है पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति और आत्मा का ब्रह्म में पूर्ण विलय। यह केवल ज्ञान और आत्मसाक्षात्कार द्वारा संभव है। उपनिषद यह स्पष्ट करते हैं कि संसार माया है और इससे मुक्ति ही वास्तविक उद्देश्य है।

जीवन-दर्शन की व्यावहारिकता- हालाँकि उपनिषद मुख्यतः ज्ञान की ओर उन्मुख हैं, परन्तु वे मन, इन्द्रियों और इच्छाओं पर नियंत्रण, ध्यान और साधना के माध्यम से आत्मबोध का मार्ग भी प्रस्तुत करते हैं। वे बताते हैं कि अंतर्मन की शांति ही बाह्य जीवन की स्थिरता का मूल है। उपनिषदों का यह दृष्टिकोण आधुनिक युग में विशेष रूप से उपयोगी है, जहाँ व्यक्ति आत्म-चिंतन से दूर होता जा रहा है और बाह्य सुखों में उलझ कर आंतरिक शांति खो बैठता है।

2. भगवद्गीता का जीवन-दर्शन

भगवद्गीता न केवल एक धार्मिक ग्रंथ है, बल्कि यह जीवन की एक व्यावहारिक और आध्यात्मिक मार्गदर्शिका है। महाभारत के युद्धभूमि में अर्जुन और श्रीकृष्ण के संवाद के रूप में रचित यह ग्रंथ, व्यक्ति को कर्म, धर्म, ज्ञान और भक्ति के माध्यम से जीवन का वास्तविक उद्देश्य समझाता है।

कर्मयोग-कर्तव्य का मार्ग- गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को निष्काम कर्म का उपदेश देते हैं—“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।” अर्थात् मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने में है, न कि फल की अपेक्षा में। यह दृष्टिकोण आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में विशेष महत्त्व रखता है, जहाँ व्यक्ति फल की चिंता में तनावग्रस्त रहता है।

ज्ञानयोग-विवेक का मार्ग- ज्ञानयोग में आत्मा और शरीर का भेद समझाया गया है। आत्मा नित्य, अविनाशी और अजन्मा है—“न जायते म्रियते वा कदाचित्।” गीता हमें आत्मा की अमरता का बोध कराकर जीवन की क्षणभंगुरता को समझने का आग्रह करती है, जिससे मोह और भय से मुक्ति मिलती है।

भक्तियोग-समर्पण का मार्ग- गीता में भक्ति को आत्म-समर्पण का सर्वोच्च मार्ग माना गया है—“सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।” यह व्यक्ति को अहंकार और द्वंद्व से मुक्त होकर एक व्यापक सत्ता में पूर्ण आस्था की प्रेरणा देता है।

अर्जुन का मानसिक संघर्ष और समाधान- अर्जुन युद्ध के समय मानसिक रूप से विचलित होते हैं—उन्हें अपने संबंधियों के वध का पाप भयभीत करता है। श्रीकृष्ण उन्हें आत्मा की नश्वरता, धर्म और कर्तव्य की महत्ता समझाकर पुनः जाग्रत करते हैं। यह संवाद आज के युवा वर्ग के मानसिक द्वंद्वों और निर्णयहीनता को संबोधित करने की सामर्थ्य रखता है।

व्यावहारिक उपयोगिता- गीता केवल उपदेश नहीं है, यह एक मनोवैज्ञानिक और नैतिक मार्गदर्शन है। चाहे नेतृत्व क्षमता हो, निर्णय लेने की कला हो, या जीवन की विषमताओं में धैर्य बनाए रखने की बात—गीता का ज्ञान आज के व्यक्ति के लिए अत्यंत उपयोगी है।

3. उपनिषद और गीता में समानताएँ और अंतर्संबंध

उपनिषद और भगवद्गीता, यद्यपि भिन्न शास्त्रीय परंपराओं से आते हैं एक वेदांत का सार है, और दूसरी महाभारत का भाग फिर भी दोनों का दार्शनिक आधार समान है। दोनों ग्रंथ आत्मा, ब्रह्म, धर्म, कर्म और मोक्ष जैसे गूढ़ विषयों की व्याख्या करते हैं और एक पूर्ण जीवन-दर्शन प्रस्तुत करते हैं।

(1) आत्मा और ब्रह्म का ज्ञान- उपनिषद आत्मा और ब्रह्म की एकता पर बल देते हैं 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि'। भगवद्गीता इसी आत्मा की अमरता और नश्वर शरीर के भेद को स्पष्ट करती है 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे'। दोनों ही ग्रंथ आत्मा को सार्वभौमिक चेतना से जोड़ते हैं।

(2) मोक्ष का लक्ष्य- उपनिषद मोक्ष को आत्मज्ञान के द्वारा प्राप्त करने की बात करते हैं। गीता भी ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग बताती है। दोनों का उद्देश्य जीवन-मुक्ति है।

(3) कर्म और धर्म का समन्वय- उपनिषद साधना और ज्ञान को प्राथमिकता देते हैं, जबकि गीता ज्ञान के साथ-साथ कर्म का समन्वय स्थापित करती है। गीता का षण्ष्काम कर्म षण् उपनिषदों की असक्ति की भावना के साथ मेल खाता है।

(4) मन और इन्द्रिय-नियंत्रण- दोनों ग्रंथ आंतरिक अनुशासन, मनोवृत्तियों का नियंत्रण, और ध्यान के माध्यम से आत्म-प्राप्ति की बात करते हैं। उपनिषदों में यह ध्यान रूपी साधना है, तो गीता में प्योगस्थः कुरु कर्माणि के रूप में एक संतुलित दृष्टिकोण है।

(5) समन्वय की प्रवृत्ति- गीता को उपनिषदों का सार कहा गया है ष्वर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपालनन्दनः॥ इसका आशय यह है कि भगवद्गीता, उपनिषदों के विचारों को सरल, व्यावहारिक और सर्वग्राह्य रूप में प्रस्तुत करती है।

(6) व्यावहारिकता और आध्यात्मिकता का संगम- जहाँ उपनिषदों में ज्ञान की गहराई है, वहीं गीता में जीवन के विविध पक्षों का संतुलित समाधान है। दोनों मिलकर एक पूर्ण आध्यात्मिक जीवन की संकल्पना प्रस्तुत करते हैं जो आत्मबोध के साथ-साथ समाज और कर्तव्य के प्रति उत्तरदायित्व को भी स्वीकार करता है।

4. आधुनिक जीवन में इन शिक्षाओं की प्रासंगिकता

आज का युग विज्ञान, तकनीक, उपभोक्तावाद और निरंतर प्रतिस्पर्धा का युग है। ऐसे समय में, जहाँ व्यक्ति बाह्य उपलब्धियों में उलझकर आंतरिक शांति से वंचित होता जा रहा है, वहाँ उपनिषदों और भगवद्गीता की शिक्षाएँ अत्यंत प्रासंगिक हो जाती हैं।

(1) मानसिक स्वास्थ्य और आत्मचिंतन- वर्तमान समय में तनाव, अवसाद, और आत्महीनता जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं। उपनिषद आत्मा की अमरता और ब्रह्म की सर्वव्यापकता को बताकर व्यक्ति को भय, भ्रम और दुख से ऊपर उठने की प्रेरणा देते हैं। गीता का कर्मयोग और समत्व भाव जीवन में मानसिक संतुलन लाने में सहायक है।

(2) नैतिक संकटों में मार्गदर्शन- आधुनिक जीवन में नैतिकता अक्सर तिरोहित हो जाती है। उपनिषद षसत्यं वद, धर्मं चरश् जैसे सिद्धांतों के माध्यम से मूल्यों की स्थापना करते हैं, जबकि गीता 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' के माध्यम से व्यक्ति को उसके कर्तव्यों की स्मृति दिलाती है। ये शिक्षाएँ नैतिक निर्णयों में स्पष्टता प्रदान करती हैं।

(3) कार्यस्थल और जीवन प्रबंधन में उपयोग- आज के कॉर्पोरेट जगत में गीता का 'निष्काम कर्म' एक कुशल कार्यकर्ता, नेता और प्रबंधक के रूप में स्वयं को विकसित करने की कुंजी है। कार्य में आसक्ति त्यागकर, समर्पण और स्थिरता के साथ कार्य करना आज के पेशेवर जीवन में एक अनिवार्य गुण बन चुका है।

(4) शिक्षा और युवा वर्ग में प्रेरणा- उपनिषद और गीता, विद्यार्थियों और युवाओं को आत्म-विश्वास, उद्देश्य, और संयम का मार्ग दिखाते हैं। आत्मा और ब्रह्म की अवधारणा, ज्ञान और विवेक पर आधारित निर्णय लेने की क्षमता का विकास करती है।

(5) पारिवारिक और सामाजिक जीवन में संतुलन- गीता का समभाव 'समदर्शन' विभिन्न संबंधों में सामंजस्य बनाए रखने की प्रेरणा देता है। उपनिषदों की शिक्षा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप में समस्त मानवता को एक परिवार मानने की बात करती है।

(6) आधुनिक चिकित्सा और ध्यान में योगदान- आयुर्वेद, योग, और ध्यान जो आज मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए विश्वभर में अपनाए जा रहे हैं इनकी जड़ें उपनिषदों और गीता के सिद्धांतों में निहित हैं। 'प्राणविद्या', 'ध्यानयोग', और 'चित्तशुद्धि' जैसे विषय आज की चिकित्सीय सोच का भी हिस्सा बन चुके हैं। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि उपनिषदों और भगवद्गीता की शिक्षाएँ आज भी अत्यंत जीवंत, प्रभावी और दिशादर्शी हैं।

5. समकालीन उदाहरण और व्याख्याएं

उपनिषदों और भगवद्गीता की शिक्षाओं ने केवल प्राचीन भारत में ही नहीं, बल्कि आधुनिक युग में भी अनेक महापुरुषों, विचारकों, और आंदोलनों को गहराई से प्रभावित किया है। इन ग्रंथों की व्याख्या और अनुप्रयोग ने अनेक समकालीन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है।

(1) महात्मा गांधी और गीता का प्रभाव- महात्मा गांधी ने भगवद्गीता को अपनी 'माँ' कहा था और उसे अपने जीवन का नैतिक एवं आध्यात्मिक मार्गदर्शक माना। उन्होंने गीता से निष्काम कर्म, अहिंसा और सत्य के सिद्धांतों को आत्मसात किया और स्वतंत्रता आंदोलन को नैतिक ऊँचाई प्रदान की।

(2) स्वामी विवेकानंद और उपनिषदों की शिक्षा- स्वामी विवेकानंद ने उपनिषदों के 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'नैति नैति' जैसे सूत्रों के माध्यम से आत्मविश्वास, आत्मबोध और आध्यात्मिक जागरण का संदेश दिया। उन्होंने युवा पीढ़ी में आत्मबल और राष्ट्रभक्ति की भावना जगाई।

(3) श्री अरविंद का योग-सिद्धांत- श्री अरविंद ने गीता के योग-दर्शन को एक व्यापक जीवन-दर्शन में परिवर्तित किया। उन्होंने 'पूर्णयोग' की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें जीवन को त्यागने की नहीं, बल्कि ब्रह्म में रूपांतरित करने की प्रेरणा है।

(4) आधुनिक शिक्षा और मनोविज्ञान में प्रयोग- आज कई विश्वविद्यालयों और प्रबंधन संस्थानों में भगवद्गीता और उपनिषदों पर आधारित पाठ्यक्रम चलाए जा रहे हैं। जैसे IIM और IIT जैसे संस्थानों में कर्मयोग और आत्मबोध विषयक मॉड्यूल विद्यार्थियों के नेतृत्व, निर्णय-निर्माण और तनाव प्रबंधन में सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

(5) योग और ध्यान का वैश्विक विस्तार- पतंजलि योग, विपश्यना ध्यान, और अन्य ध्यान विधियाँ जिनकी जड़ें उपनिषदों और गीता में हैं आज पूरे विश्व में मानसिक स्वास्थ्य, एकाग्रता, और आत्म-चिंतन के प्रभावी साधन के रूप में स्थापित हो चुकी हैं।

(6) आधुनिक तकनीकी युग में संतुलन की आवश्यकता- डिजिटल युग में, जहाँ सूचना की अधिकता है पर ज्ञान का अभाव, वहाँ आत्मचिंतन और नैतिकता का महत्व बढ़ता जा रहा है। गीता और उपनिषद इस संतुलन को स्थापित करने में सहायक हैं।

इन समकालीन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि ये ग्रंथ केवल ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं हैं, बल्कि आज भी जीवन की दिशा तय करने वाले जीवंत दर्शन हैं।

5. समकालीन उदाहरण और व्याख्याएं

उपनिषदों और भगवद्गीता की शिक्षाओं ने केवल प्राचीन भारत में ही नहीं, बल्कि आधुनिक युग में भी अनेक महापुरुषों, विचारकों, और आंदोलनों को गहराई से प्रभावित किया है। इन ग्रंथों की व्याख्या और अनुप्रयोग ने अनेक समकालीन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है।

(1) महात्मा गांधी और गीता का प्रभाव- महात्मा गांधी ने भगवद्गीता को अपनी ष्माँष कहा था और उसे अपने जीवन का नैतिक एवं आध्यात्मिक मार्गदर्शक माना। उन्होंने गीता से निष्काम कर्म, अहिंसा और सत्य के सिद्धांतों को आत्मसात किया और स्वतंत्रता आंदोलन को नैतिक ऊँचाई प्रदान की।

(2) स्वामी विवेकानंद और उपनिषदों की शिक्षा- स्वामी विवेकानंद ने उपनिषदों के 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'नैति नैति' जैसे सूत्रों के माध्यम से आत्मविश्वास, आत्मबोध और आध्यात्मिक जागरण का संदेश दिया। उन्होंने युवा पीढ़ी में आत्मबल और राष्ट्रभक्ति की भावना जगाई।

(3) श्री अरविंद का योग-सिद्धांत- श्री अरविंद ने गीता के योग-दर्शन को एक व्यापक जीवन-दर्शन में परिवर्तित किया। उन्होंने 'पूर्णयोग' की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें जीवन को त्यागने की नहीं, बल्कि ब्रह्म में रूपांतरित करने की प्रेरणा है।

(4) आधुनिक शिक्षा और मनोविज्ञान में प्रयोग- आज कई विश्वविद्यालयों और प्रबंधन संस्थानों में भगवद्गीता और उपनिषदों पर आधारित पाठ्यक्रम चलाए जा रहे हैं। जैसे IIM और IIT जैसे संस्थानों में कर्मयोग और आत्मबोध विषयक मॉड्यूल विद्यार्थियों के नेतृत्व, निर्णय-निर्माण और तनाव प्रबंधन में सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

(5) योग और ध्यान का वैश्विक विस्तार- पतंजलि योग, विपश्यना ध्यान, और अन्य ध्यान विधियाँ जिनकी जड़ें उपनिषदों और गीता में हैं आज पूरे विश्व में मानसिक स्वास्थ्य, एकाग्रता, और आत्म-चिंतन के प्रभावी साधन के रूप में स्थापित हो चुकी हैं।

(6) आधुनिक तकनीकी युग में संतुलन की आवश्यकता- डिजिटल युग में, जहाँ सूचना की अधिकता है पर ज्ञान का अभाव, वहाँ आत्मचिंतन और नैतिकता का महत्व बढ़ता जा रहा है। गीता और उपनिषद इस संतुलन को स्थापित करने में सहायक हैं।

इन समकालीन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि ये ग्रंथ केवल ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं हैं, बल्कि आज भी जीवन की दिशा तय करने वाले जीवंत दर्शन हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, द प्रिंसिपल उपनिषद्स, हार्पर कॉलिन्स इंडिया, नई दिल्ली, 1994
2. स्वामी गंभीरानंद, अष्ट उपनिषद (भाग 1 एवं 2), अद्वैत आश्रम, कोलकाता।
3. प्रभुपाद, ए. सी. भक्तिवेदांत स्वामी. भगवद्गीता यथारूप. भक्तिवेदांत बुक ट्रस्ट, मुंबई।
4. श्री अरविंद, गीता पर निबंध, श्री अरविंद आश्रम प्रकाशन विभाग, पांडिचेरी, 2001
5. विवेकानंद, स्वामी, स्वामी विवेकानंद साहित्य समग्र (खंड 1-9), अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2009
6. हीरियण्ण, एम. भारतीय दर्शन का संक्षिप्त परिचय. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2008
7. बालासुब्रमण्यम, आर. (संपा.), भारतीय दर्शन में मानव की संकल्पना. भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली, 2002
8. महादेवन, टी. एम. पी. भारतीय दर्शन : एक परिचय. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1999



1857 की क्रांति और अनुबंधित श्रमिक अप्रवासन

अर्चना तिवारी

प्रोफेसर, पाश्चात्य इतिहास विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

विशाल कुमार

शोध-छात्र, पाश्चात्य इतिहास विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सारांश

1857 की भारतीय क्रांति ब्रिटिश औपनिवेशिक नियंत्रण के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। विद्रोह की शुरुआत ब्रिटिश सेना के भारतीय सैनिकों ने की थी और यह तेजी से उत्तरी और मध्य भारत में फैल गया। कई भारतीय किसान, आम लोग और राजवंश विद्रोह में शामिल हुए। कुचल दिए जाने के बावजूद, विद्रोह ने इस बात पर बड़ा प्रभाव डाला कि कैसे ब्रिटिश भारत पर शासन करना जारी रखते हैं। इस विद्रोह का एक महत्वपूर्ण परिणाम ब्रिटिश श्रम विनियमों में संशोधन था। 1857 के बाद, ब्रिटिश प्रशासन भारत में विद्रोह और अस्थिरता के बारे में तेजी से चिंतित हो गया। तनाव को कम करने और ग्रामीण आबादी को नियंत्रण में रखने के लिए, उन्होंने भूमिहीन मजदूरों और गरीब किसानों को ब्रिटिश कब्जे वाले बागानों में काम करने के लिए विदेश भेजने के तरीके खोजे। उसी समय, जब ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा दास प्रथा को समाप्त कर दिया गया, तो कैरिबियन, मॉरीशस, फिजी और अफ्रीका में चीनी बागानों को सस्ते श्रम की सख्त जरूरत थी। अंग्रेजों ने भारत को श्रमिकों को पाने के लिए सबसे अच्छा क्षेत्र माना। बंधुआ मजदूरी प्रणाली के कारण, हजारों भारतीयों को अनुबंधित किया गया और विदेशों में काम करने के लिए ले जाया गया। इनमें से कई प्रवासी भारत के उन्हीं क्षेत्रों से आए थे, जैसे बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश, जहाँ बड़ी संख्या में लोगों ने 1857 के विद्रोह में भाग लिया था। औपनिवेशिक प्राधिकरण ने भर्ती ब्यूरो स्थापित किए और इस प्रवास को रोकने के लिए सख्त कानून पारित किए। भले ही इस प्रणाली ने नौकरियों और मुआवजे का वादा किया था, लेकिन कई मजदूरों को कठोर कामकाजी परिस्थितियों, कम वेतन और अलगाव का सामना करना पड़ा। यह शोधपत्र इस बात पर गौर करता है कि 1857 के विद्रोह ने अप्रत्यक्ष रूप से गिरमिटिया मजदूरी प्रणाली के विकास में किस तरह मदद की। यह दर्शाता है कि कैसे ब्रिटिशों ने भारत की आबादी को नियंत्रित करने और अन्य उपनिवेशों के लिए जनशक्ति प्रदान करने के लिए प्रवासन का इस्तेमाल किया। अध्ययन के अनुसार, भारतीय अस्थिरता के प्रति ब्रिटिश प्रतिक्रिया के दो तत्व प्रवासन और विद्रोह थे।

बीज शब्द- 1857 का विद्रोह, गिरमिटिया मजदूर, ब्रिटिश साम्राज्य, औपनिवेशिक शासन, भारतीय प्रवास।

प्रस्तावना

1857 की भारतीय क्रांति भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक नियंत्रण के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ थी। इसकी शुरुआत ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना के सिपाहियों या भारतीय सैनिकों द्वारा एक सैन्य विद्रोह के रूप में हुई थी, लेकिन यह जल्दी ही किसानों, जमींदारों और यहाँ तक कि कुछ पिछले भारतीय राजाओं तक फैल गया। उत्तरी और मध्य भारत में कई

लोग ब्रिटिश नीतियों से नाराज थे, जो स्थानीय रीति-रिवाजों का उल्लंघन करती थीं, कर बढ़ाती थीं, जमीन लेती थीं और धर्म की अनदेखी करती थीं। काफी बल का उपयोग करके, अंग्रेज 1858 तक विद्रोह को समाप्त करने में सक्षम थे, इस तथ्य के बावजूद कि यह व्यापक और क्रूर था। विद्रोह के बाद, ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इंडिया कंपनी को भंग कर दिया और भारत को ब्रिटिश क्राउन के सीधे नियंत्रण में रखा।

विद्रोह के दूरगामी प्रभाव थे। इसने अंग्रेजों को बड़े पैमाने पर विद्रोह के बारे में अधिक सतर्क बना दिया। उन्होंने विद्रोह को भारतीय समाज की अस्थिरता और अनियंत्रित रहने पर गरीब ग्रामीण आबादी द्वारा उत्पन्न खतरे के प्रमाण के रूप में देखा। जवाब में, अंग्रेजों ने अपनी नीति में काफी बदलाव किए। कम प्रसिद्ध लेकिन महत्वपूर्ण प्रतिक्रियाओं में से एक गिरमिटिया श्रम की प्रणाली का विस्तार था। इस योजना ने गरीब भारतीयों को मॉरीशस, ब्रिटिश गुयाना (अब गुयाना), फिजी और त्रिनिदाद जैसे दूर-दराज के ब्रिटिश क्षेत्रों में मजदूरों के रूप में भेजने की अनुमति दी। इन श्रमिकों की उपनिवेशों में आवश्यकता थी क्योंकि 1830 के दशक में दासता समाप्त होने पर बागान मालिकों को सस्ते श्रम के नए स्रोत की आवश्यकता थी।

अधिकांश गिरमिटिया मजदूर उन क्षेत्रों से आए थे, जहाँ 1857 में सबसे अधिक विद्रोह हुआ था, खासकर बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश। इन क्षेत्रों में बड़ी संख्या में भूमिहीन किसान और भूखे, गरीब और कर्ज में डूबे लोग रहते थे। अंग्रेजों का मानना था कि ऐसे लोगों को विदेश भेजकर वे न केवल उपनिवेशों के लिए श्रम की आपूर्ति करेंगे, बल्कि भारत में भविष्य में विद्रोह की संभावना को भी कम करेंगे। इस प्रकार, गिरमिटिया प्रवास सामाजिक नियंत्रण का एक साधन बन गया। इसने संभवतः विद्रोही लोगों को भारत से निकाल दिया और उन्हें अन्यत्र भयानक परिस्थितियों में काम करने के लिए भेज दिया।

यह शोध पत्र 1857 के विद्रोह और गिरमिटिया मजदूरों के आयात में वृद्धि के बीच संबंध की आलोचनात्मक जांच करता है। यह तर्क देता है कि श्रमिकों की मांगों को पूरा करने के अलावा, अंग्रेजों ने विद्रोह के बाद के भारत में राजनीतिक चिंताओं को प्रबंधित करने के लिए गिरमिटिया प्रणाली का इस्तेमाल किया। कानूनों, अनुबंधों और भर्ती फर्मों द्वारा प्रवासन को प्रोत्साहित और नियंत्रित किया गया। भले ही इन अनुबंधों ने अच्छा वेतन और घर लौटने का मौका दिया, लेकिन अधिकांश मजदूरों के लिए वास्तविकता बहुत कठिन थी। उन्हें खराब भोजन, लंबी यात्रा के समय, चुनौतीपूर्ण श्रम स्थितियों और उपनिवेशों में सामाजिक अलगाव का सामना करना पड़ा।

यह शोधपत्र 1857 की घटनाओं और उसके बाद की नीतियों की जांच करता है ताकि यह दिखाया जा सके कि औपनिवेशिक सत्ता ने प्रशासन के साधन के रूप में प्रवास का उपयोग कैसे किया। यह साबित करता है कि अनुबंधित मजदूरों का इस्तेमाल केवल वित्तीय लाभ के लिए ही नहीं किया गया था इसका इस्तेमाल उन लोगों को वश में करने के लिए भी किया गया था जिन्होंने पहले विरोध करने की हिम्मत की थी। यह महत्वपूर्ण दृष्टिकोण हमें 1857 की क्रांति के अपने मातृभूमि और ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य अलग-थलग क्षेत्रों में आम भारतीयों के जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभावों को समझने में मदद करता है।

1857 की क्रांति की पृष्ठभूमि

सिपाही विद्रोह, जिसे भारतीय स्वतंत्रता का पहला युद्ध भी कहा जाता है, 1857 में भारत में ब्रिटिश नियंत्रण के खिलाफ एक बड़ा विद्रोह था। इसकी शुरुआत 10 मई, 1857 को मेरठ छावनी में हुई, जब ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में भारतीय सैनिकों, जिन्हें सिपाही के रूप में जाना जाता था, ने दावा किया कि गाय और सुअर की चर्बी से बने कारतूस मुसलमानों और हिंदुओं दोनों को प्रयोग करने पड़ते थे। हालाँकि, यह एकमात्र कारण नहीं था। विद्रोह के मुख्य आधार ब्रिटिश भूमि राजस्व योजनाओं, आर्थिक नीतियों, भारतीय संस्कृति और धर्म के प्रति अनादर और भारतीय सैनिकों और नागरिकों दोनों के साथ कठोर व्यवहार से उत्पन्न व्यापक असंतोष थे। अंग्रेजों ने कई भारतीय रियासतों पर विजय प्राप्त करने के लिए व्यपगत के सिद्धांत का फायदा उठाया, जिससे भारतीय शासक और अभिजात वर्ग क्रोधित हो गए और उन्होंने अपनी भूमि और शक्ति खो दी।

सेना के अलावा, विद्रोह में किसान, कारीगर, विस्थापित शासक और जमींदार (जमींदार) सहित लोग शामिल थे। ब्रिटिश नियंत्रण के प्रति असंतोष पूरे समाज में व्यापक था, जैसा कि ऐसे विविध संगठनों की भागीदारी से स्पष्ट है। उल्लेखनीय रूप से, भारतीय सैनिक, जिनमें से कई ग्रामीण क्षेत्रों से थे, ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना का 80% से अधिक हिस्सा थे। ये सिपाही अपने समुदायों के संघर्षों से प्रभावित थे, जिसमें अत्यधिक कराधान, प्रथागत अधिकारों का ह्रास और ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के कारण खाद्यान्न की कमी शामिल थी।

विद्रोह ने मुख्य रूप से भौगोलिक दृष्टि से मध्य और उत्तरी भारत को प्रभावित किया। यह मेरठ से झांसी, बरेली, ग्वालियर, कानपुर, लखनऊ और दिल्ली तक तेजी से फैल गया। दिल्ली विद्रोह का प्रतीकात्मक केंद्र बन गया जब सिपाहियों ने पुराने मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर को हिंदुस्तान का शासक घोषित कर दिया। विद्रोह में सबसे अधिक भाग लेने वाले क्षेत्र, जैसे पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश के कुछ हिस्से, बाद में गिरमिटिया मजदूरों के प्रवासियों के लिए महत्वपूर्ण स्थान बन गए। ये क्षेत्र, जो ब्रिटिश भूमि नीतियों के परिणामस्वरूप काफी पीड़ित थे, कई निचली जाति के समुदायों और ग्रामीण गरीबों के घर थे।

अक्सर नजरअंदाज किए जाने के बावजूद, किसान विद्रोह के लिए महत्वपूर्ण थे। कई जगहों पर, किसानों ने अंग्रेजों के साथ सहयोग करने वाले जमींदारों और अत्यधिक कर लगाने वाले अधिकारियों के खिलाफ लड़ाई लड़ी। ग्रामीण विद्रोह के दौरान, रिकॉर्ड जलाना, खजाने लूटना और ब्रिटिश अधिकारियों को निर्वासित करना आम बात थी। किसान विद्रोहों ने ग्रामीण भारत के गुस्से और निराशा को समाहित कर लिया, भले ही उनकी अव्यवस्था और सैन्य कार्रवाइयों के साथ छिटपुट सहयोग हो।

महत्वपूर्ण बात यह है कि 1857 का विद्रोह सिर्फ एक सैन्य विद्रोह नहीं था, बल्कि औपनिवेशिक सरकार के लिए एक व्यापक चुनौती भी थी। इसने ब्रिटिश शासन की खामियों के साथ-साथ औपनिवेशिक काल के दौरान भारतीय समाज में अंतर्निहित तनावों को भी उजागर किया। स्वतंत्रता प्राप्त करने में अपनी विफलता के बावजूद, इसके स्थायी परिणाम हुए और औपनिवेशिक शासन में बदलाव को चिह्नित किया। ग्रामीण आबादी के शासन को बदलकर भविष्य के विद्रोहों को दबाने का ब्रिटिश प्रयास एक ऐसा प्रभाव था, जिसके कारण अन्य चीजों के अलावा गिरमिटिया श्रम प्रवास की प्रणाली का विस्तार हुआ।

औपनिवेशिक नीति में परिवर्तन और विद्रोह के परिणाम

1857 का विद्रोह तब समाप्त हुआ जब 1858 में अंग्रेजों ने भारतीय सैनिकों को परास्त कर दिया। विद्रोह को क्रूरता से दबा दिया गया, कई भारतीय नेताओं और नागरिकों को या तो मार दिया गया या दंडित किया गया। भले ही विद्रोह ब्रिटिश नियंत्रण को उखाड़ फेंकने में विफल रहा, लेकिन इसने ब्रिटेन के भारत चलाने के तरीके पर बड़ा प्रभाव डाला। अंग्रेजों को समझ में आ गया कि ईस्ट इंडिया कंपनी देश को सफलतापूर्वक प्रबंधित करने में विफल रही और अपनी कठोर नीतियों और महत्वाकांक्षी विस्तार के माध्यम से व्यापक असंतोष पैदा किया।

इस प्रकार, अगस्त 1858 में, ब्रिटिश संसद ने भारत सरकार अधिनियम पारित किया। इस कानून ने ईस्ट इंडिया कंपनी के वर्चस्व को समाप्त कर दिया और भारत को ब्रिटिश क्राउन के सीधे नियंत्रण में ला दिया। भारत की महारानी के रूप में महारानी विक्टोरिया के राज्याभिषेक के बाद, लंदन में एक नया पद, भारत के लिए सचिव, भारतीय मामलों की निगरानी के लिए बनाया गया था। भारत में, वायसराय ने राज्य के प्रमुख के रूप में गवर्नर-जनरल की जगह ली। अंग्रेजों ने आगे के विद्रोह को दबाने के लिए भारतीय भूमि अधिकारों, रीति-रिवाजों और धर्मों के मामलों में संवेदनशील होने का वादा किया।

विद्रोह के प्राथमिक परिणामों में से एक यह था कि अंग्रेज भविष्य के विद्रोहों से डरने लगे थे। विद्रोह की उनकी व्याख्या यह थी कि दुखी भारतीय, विशेष रूप से किसान और बर्खास्त सैनिक, घातक हो सकते हैं। इसलिए, नियंत्रण बनाए रखना और अस्थिरता को टालना 1857 के बाद ब्रिटिश कार्रवाइयों का मुख्य लक्ष्य था। कम भारतीयों और अधिक ब्रिटिश सैनिकों

को सुनिश्चित करने के लिए सेना को पुनर्गठित किया गया था। स्थानीय परंपराओं को बिगाड़ने वाले बदलावों को लेकर अंग्रेज भी अधिक सतर्क हो गए। साथ ही, उन्होंने जनसंख्या नियंत्रण के अप्रत्यक्ष तरीकों का उपयोग करना शुरू कर दिया, जैसे कि अनुबंधित श्रम की प्रणाली के माध्यम से प्रवासन। यह नीति परिवर्तन एक औपनिवेशिक रणनीति का एक घटक था जिसने एक और बड़े विद्रोह को समाप्त करने के लिए सैन्य शक्ति को सामाजिक और राजनीतिक नियंत्रण के साथ जोड़ा।

गिरमिटिया मजदूरी प्रणाली का इतिहास और विकास

गिरमिटिया मजदूरी प्रणाली की स्थापना 19वीं शताब्दी की शुरुआत में ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा 1833 में दास प्रथा के उन्मूलन के कारण हुई भारी जनशक्ति की कमी के परिणामस्वरूप हुई थी। दास प्रथा के उन्मूलन के बाद, मॉरीशस, ब्रिटिश गुयाना (अब गुयाना), त्रिनिदाद और बाद में फिजी जैसे ब्रिटिश क्षेत्रों में बागानों को मजदूर खोजने में कठिनाई हुई। विशेष रूप से, चीनी बागानों के लिए बड़ी संख्या में सस्ते, अच्छे व्यवहार वाले मजदूर आवश्यक थे। इस समस्या को हल करने के लिए, ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियों ने भारत की ओर देखा, एक ऐसा देश जिस पर उनका नियंत्रण था और जिसमें ग्रामीण गरीब, बेरोजगार और भूमिहीन लोगों की एक बड़ी आबादी थी।

अनुबंध प्रणाली को एक संविदात्मक श्रम व्यवस्था के रूप में बनाया गया था। अनुबंध भारतीय मजदूरों द्वारा एक पूर्व निर्धारित अवधि, आमतौर पर पांच साल, के लिए काम करने के लिए किए गए समझौते थे, जिसके बदले में उन्हें पैसे, आवास, भोजन और, कुछ मामलों में, भारत वापस जाने के लिए टिकट की गारंटी दी जाती थी। हालाँकि यह व्यवस्था कागज पर सहमति और कानूनी लगती थी, लेकिन कई कर्मचारियों को वास्तव में धोखा दिया गया, मजबूर किया गया, या अनुबंध पर हस्ताक्षर करने के लिए गलत जानकारी दी गई। भर्ती करने वालों को अक्सर कमीशन पर भुगतान किया जाता था और वे समाज के सबसे कमजोर वर्गों को लक्षित करते थे, जिनमें विधवाएँ, कर्जदार किसान और निम्न जाति के किसान शामिल थे।

भारत से गिरमिटिया मजदूरों के प्रवास का पहला सफल प्रयोग मॉरीशस द्वारा 1834 में शुरू किया गया था, जब दास प्रथा को अंततः समाप्त कर दिया गया था, और ब्रिटिश गुयाना ने 1838 में इसका अनुसरण किया। शुरुआती वर्षों में, खराब देखभाल और उच्च मृत्यु दर की लगातार शिकायतें होती थीं। हालाँकि, रोजगार की बड़ी जरूरत और जरूरतमंद भारतीय श्रमिकों की लगातार आमद के कारण इस प्रणाली का तेजी से विस्तार हुआ। औपनिवेशिक प्राधिकरण ने धीरे-धीरे उत्खवास डिपो और नियमों के माध्यम से भर्ती को औपचारिक रूप दिया, जिससे विदेशों में जनशक्ति की कमी और भारत में आंतरिक जनसंख्या दबाव दोनों के समाधान के रूप में गिरमिटिया व्यवस्था उपलब्ध हुई।

महत्वपूर्ण बात यह है कि अनुबंधित मजदूरी प्रणाली, श्रम समाधान से औपनिवेशिक हथियार में बदल गई, जिससे प्रवास की प्रवृत्ति प्रभावित हुई और विद्रोह के बाद भारत की अतिरिक्त जनसंख्या पर नियंत्रण हो गया।

1857 के बाद गिरमिटिया मजदूरों का पलायन

1857 के विद्रोह ने भारतीय राजनीति और ब्रिटिश श्रम और प्रवास नीतियों में एक नाटकीय बदलाव का संकेत दिया। विद्रोह को दबा दिए जाने के बाद, अंग्रेज ग्रामीण भारत में राजनीतिक अस्थिरता को लेकर बहुत चिंतित थे। विद्रोह में व्यापक रूप से शामिल कई क्षेत्र, जैसे कि पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य भारत के कुछ हिस्से गरीबी, भूमिहीनता और ब्रिटिश भूमि राजस्व नीति से असंतोष से ग्रस्त थे। इन जगहों पर, बड़ी संख्या में युवा बेरोजगार थे और आंदोलन के लिए प्रवृत्त थे। इसके आर्थिक लाभों के अलावा, ब्रिटिश अधिकारियों ने भविष्य की अस्थिरता की संभावना को कम करने के लिए प्रवास को एक राजनीतिक रणनीति के रूप में देखना शुरू कर दिया।

औपनिवेशिक राज्य के अधिक संगठन और भागीदारी के कारण, 1857 के बाद अनुबंधित श्रम प्रवास में तेजी से वृद्धि हुई। प्रवास को प्रोत्साहित करने के लिए भर्तीकर्ताओं को दूरदराज के क्षेत्रों में भेजा गया। प्रवासियों को उनके प्रस्थान से पहले आश्रय देने के लिए मद्रास (चेन्नई) और कलकत्ता (कोलकाता) में प्रवास डिपो स्थापित किए गए थे। अंग्रेजों ने इस आमद

को प्रबंधित करने के लिए कई विधायी कदम उठाए। 1859 के भारतीय प्रवास अधिनियम ने काम पर रखने, अनुबंधों, परिवहन और काम करने की स्थितियों को विनियमित किया। इसने औपनिवेशिक प्राधिकरण को इसे एक स्वेच्छिक और सुरक्षित संस्था के रूप में प्रस्तुत करके प्रक्रिया पर कड़ा नियंत्रण दिया।

वास्तव में, कानून कभी-कभी बागान मालिकों को श्रमिकों की तुलना में अधिक सुरक्षा प्रदान करता था। भर्तीकर्ता, जिन्हें अर्कटिया के रूप में जाना जाता है, किसानों को अनुबंध पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर करने के लिए शारीरिक बल का उपयोग करने या झूठे वादे करने के लिए जाने जाते थे। कई मजदूर अनपढ़ होने के कारण समझौतों के प्रावधानों को पूरी तरह से नहीं समझ पाए। आम तौर पर, अनुबंधों की अवधि पाँच साल की होती थी, जिसमें पाँच साल का अतिरिक्त विस्तार भी संभव था। कानून द्वारा वापसी की गारंटी के बावजूद, कई श्रमिक गरीबी, असफल बचत या लौटने पर सामाजिक अस्वीकृति के डर के कारण विदेश में ही रह गए।

भारत में संभावित असंतुष्टों की संख्या को कम करने के लिए, ब्रिटिश सरकार ने श्रमिकों की बहुतायत के अलावा विद्रोह से प्रभावित क्षेत्रों से रोजगार को प्रोत्साहित किया। अंग्रेजों का यह भी मानना था कि स्थानीय जातियाँ और सामाजिक नेटवर्क जो विद्रोह के दौरान लोगों को एकजुट करने के लिए इस्तेमाल किए गए थे, प्रवास से कमजोर हो जाएँगे। इसलिए, केवल श्रम की आवश्यकता से प्रेरित होने के बजाय, 1857 के बाद गिरमिटिया प्रवास का विस्तार सीधे तौर पर भारतीय समाज को बदलने और भविष्य के राजनीतिक खतरों को रोकने के ब्रिटिश उद्देश्य से जुड़ा था।

इस निर्णायक अवधि में एक अधिक संस्थागत और राजनीतिक रूप से प्रेरित प्रवासी प्रक्रिया की शुरुआत देखी गई। इसमें शामिल अतिरिक्त स्थानों में कैरिबियन, दक्षिण अफ्रीका और फिजी शामिल थे, और 1860 के बाद गिरमिटिया श्रमिकों के रूप में काम करने वाले भारतीयों की संख्या में नाटकीय रूप से वृद्धि हुई। राजनीतिक शक्ति को आर्थिक आवश्यकता के साथ जोड़कर, 1857 के बाद गिरमिटिया प्रवास की वृद्धि ने ब्रिटिश औपनिवेशिक रणनीति के मूल उद्देश्यों को उजागर किया।

औपनिवेशिक नियंत्रण तंत्र के रूप में प्रवास

1857 में विद्रोह के बाद, अंग्रेजों को समझ में आ गया कि केवल सशस्त्र बल ही भारत में सुरक्षा की गारंटी नहीं दे सकता। आगे के विद्रोहों की संभावना को कम करने के लिए, उन्हें भारतीय आबादी के प्रबंधन के लिए नई रणनीतियाँ भी बनानी पड़ीं। ऐसी ही एक रणनीति जिसने राजनीतिक और आर्थिक दोनों लक्ष्यों को पूरा किया, वह थी गिरमिटिया मजदूर प्रवास की प्रणाली को बढ़ावा देना। ब्रिटिश दृष्टिकोण से, प्रवासन ने एक साथ दो समस्याओं को संबोधित किया: इसने भारत के अशांत क्षेत्रों से संभावित रूप से असंतुष्ट लोगों को लाया और दूरदराज के उपनिवेशों में बागानों को सस्ते, विश्वसनीय श्रम की आपूर्ति की।

ब्रिटिशों को साम्राज्य भर में अपने चीनी, चाय और रबर के बागानों को बनाए रखने और उनका विस्तार करने के लिए जनशक्ति की आवश्यकता थी। 1830 के दशक में दास प्रथा समाप्त होने के बाद, मॉरीशस, ब्रिटिश गुयाना, त्रिनिदाद और बाद में फिजी जैसे उपनिवेशों में श्रमिकों की गंभीर कमी थी। भारतीय मजदूरों, विशेष रूप से ग्रामीण और गरीब क्षेत्रों के लोगों को आदर्श प्रतिस्थापन के रूप में देखा गया। अत्यधिक गरीबी, भुखमरी, कर्ज और जमीन की कमी के कारण उन्हें पलायन करने के लिए मजबूर होना पड़ा। यह काम न केवल सस्ता था, बल्कि सख्त अनुबंधों और कानूनों के माध्यम से अंग्रेजों के लिए इसे नियंत्रित करना भी आसान था। अफ्रीकी दास श्रम की कमी के कारण साम्राज्य की संपत्ति को बनाए रखने के लिए विदेशों में भारतीय मजदूरों का उपयोग किया जाने लगा।

राजनीति के संदर्भ में, अंग्रेजों को 1857 की तरह एक और विद्रोह की आशंका थी, खासकर उत्तर भारत में, जहाँ यह सबसे गंभीर था। जिन क्षेत्रों पर कड़ी नजर रखी गई उनमें पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार शामिल थे। इन क्षेत्रों में सबसे अधिक संख्या में गिरमिटिया मजदूर भी थे। ब्रिटिश अधिकारियों के अनुसार, इन क्षेत्रों से बड़े पैमाने पर पलायन सामाजिक तनाव को कम कर सकता है, अनावश्यक श्रम से छुटकारा पा सकता है, और ग्रामीण इलाकों में व्यवधान या क्रांति की संभावना

को कम कर सकता है। परिणामस्वरूप पलायन जनसंख्या नियंत्रण का एक तरीका बन गया।

19वीं सदी के उत्तरार्ध के ब्रिटिश अभिलेख और पत्राचार से पता चलता है कि अधिकारियों ने न केवल आर्थिक कारणों से बल्कि भारतीय लोगों को नियंत्रित करने के लिए भी अनुबंध को सक्रिय रूप से बढ़ावा दिया। उत्प्रवास डिपो की स्थापना, मजदूरों की भर्ती के लिए अर्काटिस का उपयोग, और बागान जीवन और यात्रा पर सख्त नियंत्रण सभी एक विस्तृत औपनिवेशिक रणनीति के उदाहरण थे। गरीबों के लिए एक अवसर के रूप में प्रस्तुत किए जाने के बावजूद, प्रवास वास्तव में साम्राज्यवादी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए बनाई गई एक सावधानीपूर्वक योजनाबद्ध योजना थी।

केवल काम की कमी को पूरा करने के अलावा, भारत और ब्रिटिश साम्राज्य में ब्रिटिश औपनिवेशिक शक्ति को बनाए रखने, अशांति का प्रबंधन करने और समाज को अनुशासित करने के लिए 1857 के बाद अनुबंधित श्रम प्रवास में वृद्धि हुई।

उपनिवेशों में गिरमिटिया मजदूरों की परिस्थितियाँ

ब्रिटिश उपनिवेशों में गिरमिटिया नौकरों का जीवन बेहद कठिन था। भारतीय प्रवासियों को बागानों में रखा जाता था, जहाँ उन्हें कड़ी निगरानी में लंबे समय तक काम करना पड़ता था। यह काम कठिन और अक्सर खतरनाक था, खासकर ब्रिटिश गुयाना, त्रिनिदाद और फिजी जैसे चीनी उपनिवेशों के गर्म, आर्द्र जलवायु में। श्रमिकों को नहरें खोदनी पड़ती थीं, गन्ना काटना पड़ता था और भारी भार उठाना पड़ता था। चूँकि उन्होंने पहले कभी ऐसा शारीरिक रूप से कठिन काम नहीं किया था, इसलिए कई लोग थकावट, संक्रमण और चोटों से पीड़ित थे।

अनुबंध के तहत, नियमित वेतन का वादा किया गया था, हालाँकि वे अक्सर बहुत कम थे। कभी-कभी, नकदी के बजाय, श्रमिकों को टोकन मिलते थे जिनका उपयोग केवल बागानों के स्वामित्व वाले व्यवसायों में किया जा सकता था। इससे बागानों के साथ उनका आर्थिक जुड़ाव हुआ। आवास, भोजन और कपड़ों की लागत अक्सर उनके वेतन से काट ली जाती थी, जिससे उनके पास बहुत कम बचता था। कई मजदूरों को अपना गुजारा करना असंभव लगता था, भारत वापस जाने या घर भेजने के लिए पैसे जमा करना तो दूर की बात थी।

बागानों में सख्त अनुशासन लागू था। बागान मालिकों के पास उन कर्मचारियों को दंडित करने का अधिकार था जो अवज्ञा करते थे, काम करने से इनकार करते थे या नियमों को तोड़ते थे। स्थानीय कानून में दंड के तौर पर कारावास, जेल या वेतन में कटौती शामिल थी। भारतीय मजदूरों और यूरोपीय नियोक्ताओं के बीच शक्ति असंतुलन द्वारा बनाए गए नियंत्रण ढाँचे के तहत, श्रमिकों के पास बहुत कम अधिकार या सुरक्षा थी।

श्रमिकों का सामाजिक जीवन भी सांस्कृतिक क्षति और अलगाव से प्रभावित था। श्रमिकों को अक्सर उनके परिवारों से अलग कर दिया जाता था और उन्हें विभिन्न जातियों और धर्मों या अलग-अलग बोलियों वाले अजनबियों के साथ समूहों में रखा जाता था। समय के साथ, उन्होंने भारतीय रीति-रिवाजों को ब्रिटिश प्रभावों के साथ मिलाकर नए सामुदायिक संबंध विकसित किए। दिवाली और होली जैसे उत्सवों ने सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने में मदद की, फिर भी अकेलापन, घर की याद और सामाजिक तनाव आम थे।

दुर्व्यवहार और शोषण के कई दावे सामने आए। ब्रिटिश अधिकारियों, भारतीय राष्ट्रवादियों और मिशनरियों ने सभी ने मजदूरों के साथ दुर्व्यवहार की रिपोर्ट की। शिकायतों में महिलाओं का यौन शोषण, खराब आवास, अपर्याप्त स्वास्थ्य सेवा और वापसी मार्गों की उपेक्षा शामिल थी। महिलाओं को विशेष रूप से उनकी कम संख्या और सहकर्मियों और प्रबंधकों से नियमित हिंसा और उत्पीड़न के कारण जोखिम था।

अनुबंध-आधारित व्यवस्था के रूप में प्रचारित किए जाने के बावजूद, गिरमिटिया व्यवस्था वास्तव में बंधुआ मजदूरी के एक नए रूप से मिलती जुलती थी। इस व्यवस्था ने औपनिवेशिक अर्थव्यवस्थाओं को भारतीय श्रमिकों की स्वतंत्रता, सम्मान और कल्याण की कीमत पर लाभ कमाने की अनुमति दी। इन भयावह स्थितियों ने अंततः अंतर्राष्ट्रीय आक्रोश और गिरमिटिया

श्रम प्रणाली को समाप्त करने के प्रयासों को जन्म दिया।

बंधुआ मजदूरी प्रणाली का अंत और आलोचना

भारत और विदेशों में कई संगठनों ने 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी की शुरुआत से बंधुआ मजदूरी प्रणाली का कड़ा विरोध करना शुरू कर दिया। भारतीय बुद्धिजीवियों, समाज सुधारकों और राष्ट्रवादियों ने इस प्रणाली का विरोध करना शुरू कर दिया। उनका मानना था कि बंधुआ मजदूरी गुलामी का ही एक और रूप है जो भारतीयों की गरिमा को कम करती है और उन्हें अमानवीय बनाती है। जैसे-जैसे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन ने जोर पकड़ा, कई लोगों को यह बेहद अपमानजनक लगा कि भारतीयों को विदेशों में भयानक परिस्थितियों में काम करने के लिए मजबूर किया जा रहा है। महात्मा गांधी जैसे राष्ट्रवादी नेताओं ने खुले तौर पर इस प्रणाली की निंदा की और दक्षिण अफ्रीका में भारतीय बंधुआ नौकरों की पीड़ा को देखने के बाद दुनिया भर में इस समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया।

जागरूकता बढ़ाने में भारतीय प्रेस की अहम भूमिका रही। समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं ने वापस लौटने वाले मजदूरों के लेख और गवाहियाँ प्रकाशित कीं, जिनमें शोषण, शारीरिक यातना और मानसिक पीड़ा को उजागर किया गया जो बंधुआ मजदूरी के साथ जुड़ी हुई थी। भारतीय महिला श्रमिक विशेष रूप से जोखिम में थीं क्योंकि उनके साथ अक्सर यौन दुर्व्यवहार किया जाता था और उन्हें सामाजिक रूप से बहिष्कृत किया जाता था। इन रिपोर्टों ने जनता को क्रोधित कर दिया। भारत में, बंधुआ मजदूरों के पलायन को रोकने के लिए बड़े पैमाने पर प्रयास और याचिकाएँ शुरू की गईं।

उसी समय, इस प्रणाली की अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आलोचना की जा रही थी। ब्रिटेन और अन्य देशों में मानवाधिकार कार्यकर्ताओं, ईसाई मिशनरियों और श्रम सुधारकों ने अनुबंध प्रणाली की निंदा करते हुए इसे अनैतिक और आधुनिक मूल्यों के साथ असंगत बताया। उन्होंने कहा कि अनुबंध के तहत स्थितियाँ औपचारिक अनुबंधों के बावजूद भी दासता से बहुत अलग नहीं थीं। ब्रिटिश सरकार पर इस प्रणाली को बदलने या खत्म करने का दबाव बढ़ रहा था। नस्लीय अन्याय के बारे में बढ़ती चेतना और भारतीय और विदेशी समाजों की आलोचना ने औपनिवेशिक सत्ता के लिए अनुबंध सेवा को जारी रखने को उचित ठहराना कठिन बना दिया।

प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918) के दौरान एक महत्वपूर्ण क्षण आया। युद्ध ने राजनीतिक परिदृश्य को बदल दिया था, और युद्ध के प्रयासों के लिए अंग्रेजों को अधिक भारतीय समर्थन की आवश्यकता थी। इसने भारतीय नेताओं को वफादारी के बदले में सुधारों का अनुरोध करने का अवसर प्रदान किया। उनके अनुरोधों में अनुबंध प्रणाली का उन्मूलन भी शामिल था। राष्ट्रवादी नेताओं का मानना था कि यूरोप में स्वतंत्रता के लिए लड़ते हुए भारतीयों को उपनिवेशों में गुलामी में रखना विरोधाभासी था।

अंततः 1917 में, बढ़ते जन दबाव और राजनीतिक भागीदारी के जवाब में, ब्रिटिश सरकार ने औपचारिक रूप से गिरमिटिया मजदूरों को काम पर रखने पर प्रतिबंध लगा दिया। यह भारतीय मजदूरों के लिए नए अनुबंधों का औपचारिक अंत था, भले ही देश छोड़ने वाले कई मजदूर कुछ समय तक गिरमिटिया मजदूरों जैसी ही परिस्थितियों में काम करते रहे।

भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन की जीत के अलावा, बंधुआ मजदूरी प्रणाली का अंत वैश्विक स्तर पर श्रम अधिकारों के इतिहास में एक बड़े बदलाव का संकेत था। हालाँकि, इसकी विरासत कायम रही। इस प्रणाली के तहत प्रवास करने वाले लाखों भारतीय गुयाना, त्रिनिदाद, फिजी और दक्षिण अफ्रीका जैसी जगहों पर उपनिवेशों के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक ताने-बाने का हिस्सा बने रहे। बंधुआ मजदूरी को खत्म करने से उन लोगों का दर्द कम नहीं हुआ जो इसके अधीन थे, हालाँकि इससे भारत और प्रवासी समुदाय में प्रतिरोध, पहचान निर्माण और उत्तर-औपनिवेशिक संघर्ष के लिए नए रास्ते खुल गए।

निष्कर्ष

यह अध्ययन बताता है कि 1857 की क्रांति और गिरमिटिया मजदूरों का पलायन भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक नियंत्रण के इतिहास में निकट से संबंधित घटनाएँ हैं। 1857 का विद्रोह एक सैन्य विद्रोह था जिसने ब्रिटिश सत्ता को एक व्यापक चुनौती के रूप में भी काम किया और सैनिकों, किसानों और स्थानीय अधिकारियों के बीच बढ़ते असंतोष को उजागर किया। औपनिवेशिक शासकों को भारत पर नियंत्रण बनाए रखने के लिए अपनी रणनीतियों का पुनर्मूल्यांकन करना पड़ा। एक महत्वपूर्ण रणनीति जिसने राजनीतिक और आर्थिक दोनों मांगों को पूरा किया, वह गिरमिटिया श्रम प्रणाली का विस्तार था।

1857 के बाद अनुबंधित प्रवास में तेजी से वृद्धि हुई, विशेष रूप से विद्रोह से सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्रों से, जैसे कि पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार। अंग्रेजों ने गरीब और भूमिहीन किसानों को भारत छोड़ने और ब्रिटिश गुयाना, मॉरीशस और त्रिनिदाद जैसी दूर की कॉलोनीयों में काम करने के लिए प्रोत्साहित किया। स्वैच्छिक श्रम प्रवास के रूप में चित्रित किए जाने के बावजूद, इस आंदोलन को आमतौर पर बोझिल अनुबंधों और बेईमान रोजगार युक्तियों के माध्यम से लागू किया गया था। बागानों के लिए श्रम प्रदान करने के अलावा, प्रवास का उपयोग जनसंख्या दबाव को प्रबंधित करने और भारत में भविष्य के विद्रोहों की संभावना को कम करने के उपाय के रूप में किया गया था।

उपनिवेशों में गिरमिटिया मजदूरों के लिए काम करने की परिस्थितियाँ कठोर और शोषणकारी थीं। श्रमिकों को कठोर अनुशासन, कठिन घंटे, कम वेतन और सामाजिक अलगाव का सामना करना पड़ता था। दुर्व्यवहार की रिपोर्टों ने भारतीय राष्ट्रवादियों और अंतर्राष्ट्रीय मानवतावादियों को इस संस्था की आलोचना करने के लिए प्रेरित किया, जिसे 1917 में समाप्त कर दिया गया था। इसे समाप्त करने के बाद भी, गिरमिटिया व्यवस्था ने प्रवासियों और उन उपनिवेशों पर स्थायी सामाजिक और आर्थिक प्रभाव डाला जहाँ वे उतरे थे।

1857 का विद्रोह और गिरमिटिया मजदूरों के प्रवास में वृद्धि दर्शाती है कि ब्रिटिश साम्राज्य ने किस तरह राजनीतिक वर्चस्व को आर्थिक शोषण के साथ जोड़ दिया। प्रवास औपनिवेशिक सरकार का एक अनिवार्य हिस्सा था क्योंकि इसने अंग्रेजों को वैश्विक श्रम प्रवाह से लाभ उठाने और सत्ता पर अपनी पकड़ बनाए रखने का अवसर दिया। इस संबंध को समझने से औपनिवेशिक नीतियों-जैसे जबरन प्रवास और श्रम प्रणालियों-का भारतीय समाज और अंतर्राष्ट्रीय समुदाय पर पड़ने वाले प्रभावों की हमारी समझ में सुधार होता है।

सन्दर्भ

- ◆ अचिउमे, ई. टी. (2019)। माइग्रेशन एस डेकोलोनाइजेशन। स्टेन. एल. रेव., 71, 1509।
- ◆ एडमसन, एफ. बी., और थिओलेट, एच. (2025)। द कोलोनियल माइग्रेशन स्टेट, पॉलिटिकल ज्योग्राफी, 120, 103270।
- ◆ एलन, आर. बी. (2014)। स्लेवरी, कनविक्ट्स, एबिलिशनजिज्म एण्ड द ग्लोबल ओरिजिनस ऑफ़ द पोस्ट-एमेंसिपेशन इंडेंचर लेबर सिस्टम, स्लेवरी एण्ड एबोलिशन, 35(2), 328-348।
- ◆ एंडरसन, सी. (2009)। कनविक्ट्स एण्ड कुलीस: रिथिंकिंग इंडेंचर्ड लेबर इन द नाइनटीथ सेंचुरी, स्लेवरी एण्ड एबोलिशन, 30(1), 93-109।
- ◆ बेलमेक्की, बी. (2008)। ए विंड ऑफ़ चेंज: द न्यू ब्रिटिश कोलोनियल पॉलिसी इन पोस्ट रिवॉल्ट इण्डिया। अटलांटिस, 111-124।
- ◆ बेंडर, जे. सी. (2016)। द 1857 इण्डियन अप्राइजिंग एण्ड द ब्रिटिश एम्पायर। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- ◆ भाना, एस. (2008)। इंडेंचर इन कम्पेरेटिव पर्सपेक्टिव: द जर्नल ऑफ़ साउथ अफ्रीकन एंड अमेरिकन स्टडीज, 9(2),

215-224।

- ◆ ब्लैकबर्न, एफ. (2015)। म्यूटीनी और रेवोल्यूशन? द काउंसक्वेंसेज ऑफ इवेंट्स इन इण्डिया इन 1857।
- ◆ चंद्रा, बी., मुखर्जी, एम., मुखर्जी, ए., पणिककर, के., और महाजन, एस. (1987)। इंडियाज स्ट्रग्लिंगल फॉर इंडिपेंडेंस 1857-1947 (पृष्ठ 181-83)। नई दिल्ली: वाइकिंग।
- ◆ चौधरी, एम. ए. (1963)। द इंपैक्ट ऑफ द रिवाल्ट ऑफ 1857 ऑन ब्रिटिश कोलोनीयल पॉलिसी। जर्नल ऑफ द पाकिस्तान हिस्टोरिकल सोसाइटी, 11(3), 208.
- ◆ कोनोली, जे. (2018), इंडेंचर लेबर माइग्रेशन एण्ड द मीनिंग ऑफ इमिग्रेशन: फ्री ट्रेड, रेस, एण्ड लेबर इन ब्रिटिश पब्लिक डिबेट, 1838-1860. पास्ट एण्ड प्रेजेंट, 238(1), 85-119.
- ◆ एमर, पी. सी. (सं.), (2012), कॉलोनीयलिज्म एण्ड माइग्रेशनय इंडेंचर्ड लेबर बिफोर एण्ड आफ्टर स्लेवरी (खंड 7), स्प्रिंगर साइंस एंड बिजनेस मीडिया.
- ◆ फारूकी, ए. (1996), कॉन्सिर्विंग द कूली विमेन: इंडेनचार्ड लेबर, इंडियन विमेन एण्ड कोलोनीयल डिस्कोर्स, साउथ एशिया रिसर्च, 16(1), 61-76.
- ◆ गैलेंसन, डी. (1977), इमिग्रेशन एण्ड द कोलोनीयल लेबर सिस्टम एन एनालिसिस ऑफ द लेंथ ऑफ इंडेंच, एक्सप्लोरेशन इन इकोनॉमिक हिस्ट्री, 14(4), 360-377।
- ◆ गैलेंसन, डी. डब्ल्यू. (1984)। द राइस एण्ड फॉल ऑफ इंडेंचर्ड सर्विट्यूड इन द अमेरिकआज: एन इकोनॉमिक एनालिसिस, द जर्नल ऑफ इकोनॉमिक हिस्ट्री, 44(1), 1-26।
- ◆ होफ्टे, आर. (2017)। 4.4. इंडियाचर्ड लेबर। हैंडबुक द ग्लोबल हिस्ट्री ऑफ वर्क, 363।
- ◆ नायर, पी. (2007)। द ग्रेट अप्राइजिंग: इण्डिया, 1857। पेंगुइन यू.के.
- ◆ कुमार, के. (2014)। कोलोनीयल एक्सप्लोइटेशन, रेजिस्टेंस एण्ड फोर्सड माइग्रेशन: द इण्डियन सिनेरियो इन द ऐरा ऑफ इंडेंचर्ड लेबर, रेजिस्टेंस एण्ड इण्डियन इंडेंचर एक्सपीरियंस: कम्पेरेटिव पर्सपेक्टिव, 19-49।
- ◆ कुमारी, ए. (2007), इकोनॉमिक एण्ड रिलीजियस बैकग्राउंड ऑफ द अप्राइजिंग ऑफ 1857। जर्नल ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च, 49, 185.
- ◆ लाल, बी. वी. (1998), अंडरस्टैंडिंग द इण्डियन इंडेंचर एक्सपीरियंस, साउथ एशिया: जर्नल ऑफ साउथ एशियन स्टडीज, 21(एस1), 215-237.
- ◆ महमूद, टी. (1997), माइग्रेशन, आइडेंटिटी, एण्ड द कोलोनीयल एनकाउंटर। या. एल. रेव., 76, 633.
- ◆ महमूद, टी. (2013), चीपर देन एण्ड स्लेव: इंडेंचर्ड लेबर, कोलोनीयल एण्ड कैप्टलिज्म। व्हिटियर एल. रेव., 34, 215.
- ◆ मेब्लिन, एल., और टर्नर, जे. (2020), माइग्रेशन स्टडीज एण्ड कॉलोनीयलिज्म। जॉन विले एंड संस।
- ◆ मेटकाफ, टी.आर. (2015)। आफ्टर ऑफ रिवाल्ट: इण्डिया 1857-1970।
- ◆ नॉर्थ्रप, डी. (1995)। इंडेंचर्ड लेबर इन द ऐज ऑफ इंपीरियलिज्म, 1834-1922। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- ◆ पति, बी. (2007)। हिस्टोरियन एण्ड हिस्ट्रोग्राफी: सिचुएटिंग 1857। इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, 1686-1691।
- ◆ पति, बी. (2007)। द ग्रेट रेबेलियन ऑफ 1857: ए हिस्ट्रोग्राफी। कंटेपरेरी प्रोस्पेक्टिव, 1(2), 166-172।
- ◆ पति, बी. (2010)। इंट्रोडक्शन: द ग्रेट रिबेलियन ऑफ 1857। इन द ग्रेट रिबेलियन ऑफ 1857 इन इण्डिया (पृष्ठ 13-27)। रूटलेज।
- ◆ पति, बी. (2010)। द ग्रेट रिबेलियन ऑफ द 1857 इन इण्डिय, एक्सप्लोरिंग ट्रांसग्रेशनस, कॉन्टेस्ट एण्ड डायवर्सिटीज।
- ◆ पेपिंस्की, टी.बी. (2016)। कोलोनीयल माइग्रेशन एण्ड द ओरिजिनस ऑफ गवर्ने: थ्योरी एण्ड एविडेंस फ्रॉम जावा, कम्पेरेटिव पॉलिटिकल स्टडीज, 49(9), 1201-1237।

- ◆ पेरुसेक, डी. (1993)। सबाल्टर्न कॉन्सिक्वुएन्सेज एण्ड हिस्ट्रोग्राफी ऑफ इण्डियन रिबेलियन ऑफ 1857, इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, 1931-1936।
- ◆ रोड्रिगेज, ई.जी. (2018)। कांसेप्चुअलाइजेशन द कॉलोनियालिटी ऑफ माइग्रेशन, ऑन यूरोपियन सेटलर कॉलोनीयलिज्म माइग्रेशन, रेसिज, एण्ड माइग्रेशन पॉलिसी, इन माइग्रेशन, चेंजिंग कॉन्सेप्ट्स, क्रिटिकल एप्रोच, ईडीएस। डोरिस बैचमैन-मेडिक और जेन्स कुगेले, 193-211।
- ◆ रूपनारायण, एल. (2014), ए क्रिटिक ऑफ ईस्ट इण्डियन इंडेंचर्ड हिस्ट्रोग्राफी इन द कैरेबिय। लेबर हिस्ट्री, 55(3), 389-401.
- ◆ रुपरेच, ए. (2015), फ्रॉम स्लेवरी टू इंडेंचर: स्क्रिप्ट्स फॉर स्लेवरी एंडिंग, इन ईमॅसिपेशन एण्ड द रिमार्किंग ऑफ द ब्रिटिश इंपीरियल वर्ल्ड (पृष्ठ 77-97)। मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस।
- ◆ सॉन्डर्स, के. (सं.), (2018)। इंडेंचर लेबर इन द ब्रिटिश एम्पायर, 1834-1920। रूटलेज।
- ◆ सेन, एस. (2016)। इंडेंचर्ड लेबर फ्रॉम इण्डिया इन द एज ऑफ एम्पायर। सोशल साइंटिस्ट, 44(182), 35-74।
- ◆ शिरस, जी. एफ. (1931)। इण्डियन माइग्रेशन, इन इंटरनेशनल माइग्रेशन, खंड इंटरप्रिटेशन (पृष्ठ 591-616)। एनबीईआर।
- ◆ सिद्दीकी, एस. (2012)। रिमेंबरिंग द रिवॉल्ट ऑफ 1857: कंट्रपंटल फॉर्मेशन इन इण्डियन लिटरेचर एण्ड हिस्ट्री (डॉक्टरेट शोध प्रबंध, एसओएस, लंदन विश्वविद्यालय)।
- ◆ सिंह, यू. इंपैक्ट ऑफ द 1857 रिवॉल्ट ऑन द इवोल्यूशन ऑफ इंडियाज फ्रीडम स्ट्रगल।
- ◆ स्टुरमैन, आर. (2014), इंडियन इंडेंचर्ड लेबर एण्ड द हिस्ट्री ऑफ इंटरनेशनल राइट्स रिजीम द अमेरिकन हिस्टोरिकल रिव्यू, 119(5), 1439-1465.
- ◆ वैन डेन बूगार्ट, ई., और एम्मर, पी. सी. (1986)। कॉलोनीयलिज्म एण्ड माइग्रेशन एन ओवरव्यू, कॉलोनीयलिज्म एण्ड माइग्रेशन इंडेंचर्ड लेबर बिफोर एण्ड आफ्टर स्लेवरी, 3-15।



चार्वाक दर्शन प्रासंगिकता आज व काल

डॉ. गणेश कुमार कोशले

शासकीय नवीन महाविद्यालय
कमलेश्वरपुर, मैनापाट, छत्तीसगढ़

सारांश

चार्वाक नास्तिक है। यह वेद का प्रमाण स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मत में स्थूल पदार्थ ही संसार में होते हैं। चार्वाक केवल एक ही प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं। अनुमान आदि का तो प्रत्यक्ष में ही अन्तर्भाव होता है। वे कहते हैं शरीर ही मोक्ष है। शरीर का नाश होना मोक्ष है। शरीर के अतिरिक्त आत्मा नहीं है। चार्वाक देहात्मवाद को स्वीकार करते हैं। उनके मत में चार ही भूत होते हैं इन्हीं भूतों के सम्मिश्रण से सृष्टि क्रिया होती है। इसके मत में प्रत्यक्ष सिद्ध राजा ही ईश्वर है उसके सिवा कोई नहीं यदि होता तो दिखाई जरूर देता। चार्वाक मत में कोई जीव शरीर से भिन्न नहीं है। शरीर ही जीव या आत्मा है। फलतः शरीर का विनाश जब मृत्यु के उपरान्त दाह संस्कार होने के बाद हो जाता है तब जीव या जीवात्मा भी विनष्ट हो जाता है। शरीर में जो चार या पाँच महाभूतों का समवधान है, यह समवधान ही चैतन्य का कारण है। वे पुनर्जन्मवाद को स्वीकार नहीं करती क्योंकि उनके मत में मृत्यु की पश्चात कुछ भी नहीं है।

बीज शब्द - चार्वाक, जड़वाद, लोकायत, सुख, दुख, प्रत्यक्ष, प्रमेय, नास्तिक, इंद्रिय, अलौकिक।

भूमिका

चार्वाक का जड़वाद या भौतिकवाद अवैदिक दर्शनों में सर्वाधिक प्राचीन हैं। उपनिषद दर्शन के बाद और जैन तथा बौद्ध दर्शन के उदय के पूर्व काल में चार्वाक मत की स्थिति के अनेक प्रमाण मिलते हैं। उपनिषद दर्शन का उच्च विज्ञानवाद, वैदिक कर्मकांड को ब्राह्मणों द्वारा अपनी जीविका का साधन बनाकर उसका दुरुपयोग तथा यज्ञों में पशुबलि की प्रथा, उस समय की सामाजिक तथा राजनीतिक अव्यवस्था एवं अस्थिरता आदि के कारण चार्वाक मत का प्रचार हुआ। इंद्रिय सुखों के उपभोग की परंपरा मानव जितना ही पुरानी है और जब तक मानव है, तब तक रहेगी क्योंकि यह मानव की नैसर्गिक प्रवृत्ति है, फिर भी चार्वाक मत दर्शन के रूप में अधिक समय तक प्रतिष्ठित नहीं रहा। इसकी उत्पत्ति असंतोष से हुई और सूक्ष्म बौद्धिक चिंतन से इसकी समाप्ति हो गई। चार्वाक ने अध्यात्म और परलोक के निषेध के साथ इस लोक में नैतिक मूल्यों का भी निषेध किया। अतः यह दर्शन टिक नहीं पाया। शीघ्र ही बौद्ध और जैन दर्शन का उदय हुआ। जिसे अनिश्चरवादी और वेद विरोधी होने पर भी आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों का आग्रह प्रतिपादन किया। जिससे जड़वाद निरस्त हो गया।

लोकायत दर्शन

चार्वाक दर्शन प्रचलित धारणानुसार चार्वाक शब्द की उत्पत्ति 'चारु' + 'वाक्' (मीठी बोली बोलने वाले) से हुई है। चार्वाक

सिद्धांतों के लिए बौद्ध पिटकों में 'लोकायत' शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका मतलब 'दर्शन की वह प्रणाली है जो इस लोक में विश्वास करती है और स्वर्ग, नरक अथवा मुक्ति की अवधारणा में विश्वास नहीं रखती'। चार्वाक ईश्वर और परलोक नहीं मानते हैं। इस कारण ही इनके दर्शन को लोकायत भी कहते हैं। प्राचीन काल से ही चार्वाक या लोकायत दर्शन का जिक्र मिलता है लेकिन इसका कोई भी मूल ग्रन्थ नहीं मिलता है।

चार्वाक दर्शन वह दर्शन है जो जन सामान्य में स्वभावतः प्रिय है। जिस दर्शन के वाक्य चारु अर्थात् रुचिकर हों वह चार्वाक दर्शन है। असल जीवन में हम सभी लगभग चार्वाक जीवन ही जीते हैं। सभी शास्त्रीय गम्भीर विषयों का व्यावहारिक एवं लौकिक पूर्व पक्ष ही चार्वाक दर्शन है। सहज रूप में जो कुछ हम करते हैं वह सब कुछ चार्वाक दर्शन का आधार है। चार्वाक दर्शन जीवन के हर पक्ष को सहज दृष्टि से देखता है। जीवन के प्रति यह सहज दृष्टि ही चार्वाक दर्शन है। वास्तविकता तो यह है कि, विश्व का हर मानव जो जीवन जीता है वह चार्वाक दर्शन ही है। ऐसे वाक्य और सिद्धान्त जो सबको रमणीय लगे लोक में आयत या विश्रुत अवश्य होंगे। सम्भवतः यही कारण है कि हम चार्वाक दर्शन को लोकायत दर्शन के नाम से भी जानते हैं।

चार्वाक दर्शन और बृहस्पति

बृहस्पति भारतीय समाज में देवताओं के गुरु के रूप में मान्य हैं। परन्तु भारतीय साहित्य में बृहस्पति एक नहीं हैं। चार्वाक दर्शन के प्रवर्तक आचार्य बृहस्पति कौन हैं, यह निर्णय कर पाना अत्यन्त कठिन कार्य है। आडिगरस एवं लौक्य रूप में दो बृहस्पतियों का समुल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है। अश्वघोष के अनुसार आडिगरस बृहस्पति राजशास्त्र के प्रणेता हैं। लौक्य बृहस्पति के मत में सत पदार्थ की उत्पत्ति असत से मानी जाती है। इसी प्रकार असत पदार्थ की उत्पत्ति सत से मानी गयी है। जड़ पदार्थों को ही असत कहा जाता है। चेतन पदार्थों को इस मान्यता के अनुसार सत कहा जाता है।

एक बृहस्पति का निर्देश महाभारत के वन पर्व में भी प्राप्त होता है। यह बृहस्पति शुक्र का स्वरूप धारण कर इन्द्र का संरक्षण एवं दानवों का विनाश करने के उद्देश्य से अनात्मवाद या प्रपंच विज्ञान की संरचना करता है। इस प्रपंच विज्ञान के फलस्वरूप शुभ को अशुभ एवं अशुभ को शुभ मानते हुए दानव वेद एवं शास्त्रों की आलोचना एवं निन्दा में संलग्न हो जाते हैं। अन्य प्रसंग में महाभारत में ही एक और बृहस्पति का वर्णन मिलता है जो शुक्राचार्य के साथ मिलकर प्रवंचनाशास्त्र की रचना करते हैं। विभिन्न शास्त्रों के आचार्यों की माने तो चार्वाक मत दर्शन की श्रेणी में नहीं माना जा सकता। क्योंकि इस दर्शन में मात्र मधुर वचनों की आड़ में वंचना का ही कार्य किया गया है। यह बात और है कि यदि चार्वाक की सुनें तो वह भी विभिन्न शास्त्रज्ञों को वंचक ही घोषित करता है।

एक ऐसे बृहस्पति का तैत्तरीय ब्राह्मण ग्रन्थ में वर्णन मिलता है जो गायत्री देवी के मस्तक पर आघात करता है गायत्री देवी को पद्म पुराण के अनुसार समस्त वेदों का मूल माना गया है। इस दृष्टि से यह बृहस्पति वेद का विरोधी माना जा सकता है। सम्भवतः वेद का विरोध प्रति पद करने के कारण इस बृहस्पति को चार्वाक दर्शन का प्रणेता भी माना जाना युक्तियुक्त होगा।

विष्णु पुराण में भी बृहस्पति का प्रसंग प्राप्त होता है। बृहस्पति की इस मान्यता के अनुसार वैदिक कर्मकाण्ड बहुवित्त के व्यय एवं प्रयास से साध्य होता है। विविध सुख के साधक ये वैदिक उपाय कुछ अर्थ लोलुप स्वार्थ केन्द्रित धूर्तों का ही विधान है। तार्किक बृहस्पति का भी कहीं कहीं वर्णन मिलता है। ये बृहस्पति वेद के अनुगामी तो अवश्य हैं पर तर्कसम्मत अनुष्ठानों का ही समर्थन करते हैं। इनकी दृष्टि से तत्त्व निर्णय शास्त्र पर आधारित अवश्य होना चाहिए परन्तु यह शास्त्रीय अनुसन्धान तर्क पोषित होना नितान्त आवश्यक है। तर्क विरहित चिन्तन धर्म के निर्धारण में कभी भी सार्थक नहीं हो सकता है।

वात्स्यायन मुनि ने अपने विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ कामसूत्र में अर्थशास्त्र के रचयिता के रूप में बृहस्पति का उल्लेख किया है। बृहस्पति द्वारा विरचित अर्थशास्त्र के एक सूत्र के अनुसार शास्त्र के रूप में मात्र लोकायत को ही मान्यता दी गयी है।

फलतः अर्थशास्त्र के प्रणेता बृहस्पति एवं लोकायत शास्त्र के प्रवर्तक में अन्तर कर पाना अत्यन्त दुरुह कार्य है। कुछ समालोचकों ने अर्थशास्त्र के एवं लोकायत शास्त्र के निर्माता को अभिन्न मानने के साथ-साथ कामसूत्रों के प्रणेता भी बृहस्पति ही हैं, यह माना है। यदि लौकिक इच्छाओं को पूर्ण करना ही चार्वाक दर्शन का उद्देश्य है तो कामशास्त्र के प्रवर्तक मुनि वात्स्यायन ही बृहस्पति हैं, यह मानना उपयुक्त ही है।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लोकायत दर्शन का सहज प्रतिपादन किया है। इस प्रकार अर्थशास्त्र के रचनाकार कौटिल्य एवं लोकायत दर्शन के प्रणेता बृहस्पति एक ही हैं ऐसा माना जा सकता है। कोषकार हेमचन्द्र के अनुसार अर्थशास्त्र, कामसूत्र, न्यायसूत्र-भाष्य, पंचतन्त्र एवं चाणक्य नीति के रचयिता एक ही है।

इतनी विवेचना के बाद जो बृहस्पति वैदिक वाङ्मय में विभिन्न प्रसंगों में चर्चित हैं उनके यथा क्रम नाम इस प्रकार स्पष्ट होते हैं। लौक्य बृहस्पति, आंगिरस बृहस्पति, देवगुरु बृहस्पति, अर्थशास्त्र प्रवर्तक बृहस्पति, कामसूत्र प्रवर्तक बृहस्पति, वेदविनिन्दक बृहस्पति, तार्किक बृहस्पति।

पद्म पुराण के सन्दर्भ में अंगिरा ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। आंगिरस बृहस्पति अंगिरा के पुत्र एवं ब्रह्मा के पौत्र हैं। फलतः इनकी देवों में गणना होती है। इस प्रकार देव गुरु बृहस्पति एवं आंगिरस बृहस्पति में कोई भेद नहीं माना जा सकता। देवों की संरक्षण के लिए देवताओं के गुरु द्वारा असुरों को प्रदत्त उपदेश विभिन्न लोकों में आयत हो गया। यह कथन देव गुरु बृहस्पति के सन्दर्भ में विश्वसनीय नहीं हो सकता। असुर अपने गुरु शुक्राचार्य के रहते देवगुरु के उपदेश को क्यों आदर देंगे? अतः देवगुरु से अतिरिक्त कोई चार्वाक दर्शन का प्रवर्तक होना अपेक्षित है।

कुछ समालोचकों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि चार्वाक के गुरु बृहस्पति, स्वर्ग के स्वामी इन्द्र के आचार्य विश्वविख्यात बृहस्पति नहीं हैं। ये बृहस्पति किसी राजकुल के गुरु हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से देखे तो वसिष्ठ, विश्वामित्र, द्रोणाचार्य आदि का किसी राजकुल का गुरु होना इस मान्यता को आधार भी दे रहा है।

चार्वाक दर्शन के सबसे प्रचलित श्लोक है -

**यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा, घृतं पिबेत्,
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥**

जब तक जीओ सुख से जीओ, अगर अपने पास साधन नहीं है, तो दूसरे से उधार लेकर सुख से जीओ, शरीर के जलने के बाद शरीर को किसने वापस आते देखा है?

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले।

उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विधत्ते॥

पिओ और बार बार पिओ, जब तक जमीन पर न गिरे। फिर उठकर पिओ, मृत्यु के बाद पुनर्जन्म कहा होता है।

देहस्य नाशो मुक्तिस्तु न ज्ञानात् मुक्तिरिष्यते।

अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवार्यनलनिलाः।

चतुर्भ्यः खलू भूतेश्यचैतन्यमुपजायते॥

तत्त्वज्ञानियों के लिए सृष्टि का रहस्य अनुसंधान का विषय होता है। सभी दार्शनिक विचारधाराओं में इस विषय का विश्लेषण किया गया है। यथा सभी मानव शरीर में जातिगत सामानता विद्यमान होने पर भी आकृतिगत भेद होता है। वैसे ही बुद्धि की विषयता से सृष्टि तत्व के एक सत होने पर भी पृथक् बुद्धि का विषय होने के कारण विविध रूपों में ज्ञात हो सकता है। चार्वाक चार भूत स्वीकार करते हैं। इन भूतों का सम्मिश्रण होने से सृष्टि प्रक्रिया होती है। आकाश के अदृश्य होने के कारण स्वीकार नहीं करते हैं और भी जैसे क्रिया आदि से मदशक्ति के समान यहाँ भी सृष्टि प्रक्रिया में जड़ भूतों द्वारा चैतन्य उत्पन्न होता है। जीव की उत्पत्ति इसी प्रकार से होती है। यहाँ ईश्वर कारण नहीं होता है। जड़ द्वारा ही जीव की सृष्टि होती है।

चार्वाक दर्शन अनुसार पृथ्वी, जल, तेज तथा वायु ये चार ही तत्व सृष्टि के मूल कारण हैं। चार्वाक का मत है कि आकाश

नामक कोई तत्त्व नहीं है। यह शून्य मात्र है। अपनी आणविक अवस्था से स्थूल अवस्था में आने पर उपर्युक्त चार तत्त्व ही बाह्य जगत, इन्द्रिय अथवा देह के रूप में दृष्ट होते हैं। आकाश की वास्तविक सत्ता न मानने के पीछे इनकी प्रमाण व्यवस्था कारण है। जिस प्रकार हम गन्ध, रस, रूप और स्पर्श का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए उनके समवायियों का भी तत्त्व इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष करते हैं। आकाश तत्त्व का वैसा प्रत्यक्ष नहीं होता। अतः उनके मत में आकाश नामक तत्त्व है ही नहीं। चार महाभूतों का मूलकारण क्या है? इस प्रश्न का उत्तर चार्वाकों के पास नहीं है। यह विश्व अकस्मात् भिन्न-भिन्न रूपों एवं भिन्न-भिन्न मात्राओं में मिलने वाले चार महाभूतों का संग्रह या संघ मात्र है।

चार्वाकों के अनुसार चार महाभूतों से अतिरिक्त आत्मा नामक कोई अन्य पदार्थ नहीं है। चैतन्य आत्मा का गुण है। चूँकि आत्मा नामक कोई वस्तु है ही नहीं अतः चैतन्य शरीर का ही गुण या धर्म सिद्ध होता है। अर्थात् यह शरीर ही आत्मा है। इसकी सिद्धि के तीन प्रकार हैं— तर्क, अनुभव और आयुर्वेद शास्त्र। तर्क से आत्मा की सिद्धि के लिये चार्वाक लोग कहते हैं कि शरीर के रहने पर चैतन्य रहता है और शरीर के न रहने पर चैतन्य नहीं रहता। इस अन्वय व्यतिरेक से शरीर ही चैतन्य का आधार अर्थात् आत्मा सिद्ध होता है।

अनुभव 'मैं स्थूल हूँ', 'मैं दुर्बल हूँ', 'मैं गोरा हूँ', 'मैं निष्क्रिय हूँ' इत्यादि अनुभव हमें पग-पग पर होता है। स्थूलता दुर्बलता इत्यादि शरीर के धर्म हैं और 'मैं' भी वही है। अतः शरीर ही आत्मा है।

चैतन्यविशिष्टो देह एवं आत्मा।

किंवादिभ्यो मदशक्तिवत् विज्ञान।

जड़भूत विकारेशु चैतन्य यत्तु दृश्यते।

तांबूल पुग वर्णाना योगद रागसमुद्रं भवः॥

आयुर्वेद जिस प्रकार गुड़, जौ, महुआ आदि को मिला देने से काल क्रम के अनुसार उस मिश्रण में मदशक्त उत्पन्न होती है, अथवा दही पीली मिट्टी और गोबर के परस्पर मिश्रण से उसमें बिच्छू पैदा हो जाता है अथवा पान, कत्था, सुपारी और चूना में लाल रंग न रहने पर भी उनके मिश्रण से मुँह में लालिमा उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार चतुर्भूतों के विशिष्ट सम्मिश्रण से चैतन्य उत्पन्न हो जाता है। किन्तु इन भूतों के विशिष्ट मात्रा में मिश्रण का कारण क्या है? इस प्रश्न का उत्तर चार्वाक के पास स्वभाववाद के अतिरिक्त कुछ नहीं है। ईश्वर-न्याय आदि शास्त्रों में ईश्वर की सिद्धि अनुमान या आप्त वचन से की जाती है। चूँकि चार्वाक प्रत्यक्ष और केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को मानता है अतः उसके मत में प्रत्यक्ष दृश्यमान राजा ही ईश्वर हैं वह अपने राज्य का तथा उसमें रहने वाली प्रजा का नियन्ता होता है। अतः उसे ही ईश्वर मानना चाहिये।

लोकोसिद्धो भवेद्राजा परेशो नापरः स्मृतः।

देहस्य नाशो मुक्तिस्तु न ज्ञानान्मुक्तिं रिष्यते॥

चार्वाक ईश्वर को स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मत में प्रत्यक्ष सिद्ध राजा ही ईश्वर है। क्योंकि वह परलोक को स्वीकार नहीं करते हैं और कोई ईश्वर प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं होता है। राजा ही जगत में भी सभी प्रजा का पालन तथा रक्षा करता है। अतएव राजा ही इस जगत का कर्ता, अलौकिक ईश्वर नहीं है। और देह का विनाश ही मुक्ति है जीव के अंतिम गति है इससे अन्य कुछ भी जीव को प्राप्त नहीं है अन्य जैसे वेदांती, सांख्य आदि के द्वारा ज्ञान से मोक्ष स्वीकार किया जाता है वैसे चार्वाक स्वीकार नहीं करते हैं। उनके ज्ञान से मुक्ति नहीं होती है।

अन्नानालिन्नानात् जन्यसुखम एवं पुमर्थता भवति।

कष्टकादिव्य भाजन्यं दुःख निरय उच्यते॥

चार्वाक के मत में स्त्री आदि के स्पर्श से उत्पन्न सुख पुरुषार्थ होता है। वह शरीर भोग का नाम ही सुख है। पुरुषों के द्वारा जगत में वही प्रार्थना की जाती है। सभी की सुख वासना होती है। कष्टक आदि से उत्पन्न दुःख नर्क है। आदि पद से जरा व्याधि का ग्रहण किया जाता है इहीलोक को छोड़कर अन्यत्र सुख नहीं है।

**न स्वर्ग नाप वर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः ।
नैवे वर्णाश्रमादीना क्रियाश्च फलादायिका अस्तिः ।।
वरमध कपोतः न श्वो मयुरः ।
सुखमेव स्वर्ग, दुःखमेव नरकं ।
मरणं एवं अपवर्गः ।**

स्वर्ग नामक कोई भी स्थान नहीं है और ना ही अपवर्ग रूप फल है। आत्मा शरीर रूप है, परलौकिक नहीं। शरीर से भिन्न कोई भी आत्मा नहीं होता है और वेद विहित कर्म के कारण से जो स्वर्ग आदि रूप फल प्राप्त होता है। वह भी मिथ्या है। लोकयातिक वेद के मिथ्यात्व को स्वीकारते हैं अतः वेद विहित कर्म भी मिथ्या है। अतः मिथ्यारूप कर्म से कोई फल प्राप्त नहीं होता है। देह भोग आदि रूप सुख फल ही अंतिम फल के रूप में कल्पित है।

ज्ञान मीमांसा

प्रमेय अर्थात् यथार्थ ज्ञान जिसे समझा जा सके। प्रमा के लिये प्रमाण की आवश्यकता होती है। चार्वाक केवल प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं। विषय तथा इन्द्रिय के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है। हमारी इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ने वाला संसार ही प्रमेय है। इसके अतिरिक्त अन्य पदार्थ असत है। आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा के द्वारा रूप शब्द गन्ध रस एवं स्पर्श का प्रत्यक्ष हम सबको होता है। जो वस्तु अनुभवगम्य नहीं होती है उसके लिये किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता भी नहीं होती। बौद्ध, जैन, नामक अवैदिक दर्शन तथा न्यायवैशेषिक आदि अद्वैतवैदिक दर्शन अनुमान को भी प्रमाण मानते हैं। उनका कहना है कि समस्त प्रमेय पदार्थों की सत्ता केवल प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं की जा सकती। परन्तु चार्वाक का कथन है कि अनुमान से केवल सम्भावना पैदा की जा सकती है। निश्चयात्मक ज्ञान प्रत्यक्ष से ही होता है। दूरस्थ हरे भरे वृक्षों को देखकर वहाँ पक्षियों का कोलाहल सुनकर, उधर से आने वाली हवा के ठण्डे झोके से हम वहाँ पानी की सम्भावना मानते हैं। जल की उपलब्धि वहाँ जाकर प्रत्यक्ष देखने से ही निश्चित होती है। अतः सम्भावना उत्पन्न करने तथा लोकव्यवहार चलाने के लिये अनुमान आवश्यक होता है किन्तु वह प्रमाण नहीं हो सकता। जिस व्याप्ति के आधार पर अनुमान प्रमाण की सत्ता मानी जाती है वह व्याप्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं है। धूप के साथ अग्नि का, पुष्प के साथ गन्ध का होना स्वाभाविक है। सुख और धर्म का दुःख और अधर्म का कार्यकारण भाव स्वाभाविक है। जैसे कोयल के शब्द में मधुरता तथा कौवे के शब्द में कर्कशता स्वाभाविक है उसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये। जहाँ तक शब्द प्रमाण की बात है तो वह तो एक प्रकार से प्रत्यक्ष प्रमाण ही है। आप्त पुरुष के वचन हमको प्रत्यक्ष सुनायी देते हैं। उनको सुनने से अर्थ ज्ञान होता है। यह प्रत्यक्ष ही है। जहाँ तक वेदों का प्रश्न है उनके वाक्य अदृष्ट और अश्रुतपूर्ण विषयों का वर्णन करते हैं। अतः उनकी विश्वसनीयता सन्दिग्ध है। साथ ही अधर्म आदि में अश्वलिंगग्रहण सदृश लज्जास्पद एवं मांसभक्षण सदृश घृणास्पद कार्य करने से तथा जर्भरी तुफरी आदि अर्थहीन शब्दों का प्रयोग करने से वेद अपनी अप्रामाणिकता स्वयं सिद्ध करते हैं।

**त्रयो वेदस्य कर्तरो भंड-धूर्त-निशाचराः ।
जाफरी-तुफरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम् ।।**

आचार मीमांसा

चार्वाक प्रत्यक्ष दृश्यमान देह और जगत के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ को स्वीकार नहीं करते। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक पुरुषार्थ चतुष्टय को वे लोग पुरुष अर्थात् मनुष्य देह के लिये उपयोगी नहीं मानते हैं। उनकी दृष्टि में अर्थ और काम ही परम पुरुषार्थ है। धर्म नाम की वस्तु को मानना मूर्खता है क्योंकि जब इस संसार के अतिरिक्त कोई अन्य स्वर्ग आदि है ही नहीं तो धर्म के फल को स्वर्ग में भोगने की बात अनर्गल है। पाखण्डी धूर्तों के द्वारा कपोल कल्पित स्वर्ग का सुख भोगने के लिये यहाँ यज्ञ आदि करना धर्म नहीं है बल्कि उसमें की जाने वाली पशु हिंसा आदि के कारण वह अधर्म ही है तथा हवन

आदि करना वस्तुओं का दुरुपयोग तथा व्यर्थ शरीर को कष्ट देना है। इसलिये जो कार्य शरीर को सुख पहुँचाये उसी को करना चाहिये। जिसमें इन्द्रियों की तृप्ति हो मन आनंदित हो वही कार्य करना चाहिये। जिनसे इन्द्रियों की तृप्ति हो मन आनन्दित हो उन्हीं विषयों का सेवन करना चाहिये। शरीर इन्द्रिय मन को अनन्दाप्लावित करने में जो तत्त्व बाधक होते हैं उनको दूर करना, न करना, मार देना धर्म है। शारीरिक मानसिक कष्ट सहना, विषयानन्द से मन और शरीर को बलात् विरत करना अधर्म है। तात्पर्य यह है कि आस्तिक वैदिक एवं यहाँ तक कि अर्धवैदिक दर्शनों में, पुराणों स्मृतियों में वर्णित आचार का पालन यदि शरीर सुख का साधक है तो उनका अनुसरण करना चाहिये और यदि वे उसके बाधक होते हैं तो उनका सर्वथा सर्वदा त्याग कर देना चाहिए।

मोक्ष

चार्वाक की मोक्ष की कल्पना भी उनके तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा के प्रभाव से पूर्ण प्रभावित है। जब तक शरीर है तब तक मनुष्य नाना प्रकार के कष्ट सहता है। यही नरक है। इस कष्ट समूह से मुक्ति तब मिलती है जब देह चैतन्यरहित हो जाता है अर्थात् मर जाता है। यह मरना ही मोक्ष है क्योंकि मृत शरीर को किसी भी कष्ट का अनुभव नहीं होता है। यह मरना ही मोक्ष है क्योंकि मृत शरीर को किसी भी कष्ट का अनुभव नहीं होता। यद्यपि अन्य दर्शनों में आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए उसी के मुक्त होने की चर्चा की गयी है और मोक्ष का स्वरूप भिन्न-भिन्न दर्शनों में भिन्न-भिन्न है, तथापि चार्वाक उनकी मान्यता को प्रश्रय नहीं देते। वे न तो मोक्ष को नित्य मानते हुए सन्मात्र मानते हैं, न नित्य मानते हुए सत और चित स्वरूप मानते हैं न ही वे सच्चिदानन्द स्वरूप में उसकी स्थिति को ही मोक्ष स्वीकार करते हैं।

चार्वाक सिद्धान्त

जिस प्रकार आस्तिक दर्शनों में शंकर दर्शन शिरोमणि के रूप में स्वीकृत है उसी प्रकार नास्तिक दर्शनों में सबसे उत्कृष्ट नास्तिक के रूप में शिरोमणि की तरह चार्वाक दर्शन की प्रतिष्ठा निर्विवाद है। नास्तिक शिरोमणि चार्वाक इसलिए भी माना जाता है कि वह विश्व में विश्वास के आधार पर किसी न किसी रूप में मान्य ईश्वर की अलौकिक सर्वमान्य सत्ता को सिरे से नकार देता है। इनके मतानुसार ईश्वर नाम की कोई वस्तु संसार में नहीं है। नास्तिक शिरोमणि चार्वाक जो कुछ बाहरी इन्द्रियों से दिखाई देता है अनुभूत होता है, उसी की सत्ता को स्वीकार करता है। यही कारण है कि चार्वाक के सिद्धान्त में प्रत्यक्ष प्रमाण को छोड़ कर कोई दूसरा प्रमाण नहीं माना गया है। जिस ईश्वर की कल्पना अन्य दर्शनों में की गई है उसकी सत्ता प्रत्यक्ष प्रमाण से सम्भव नहीं है। इनके मत से बीज से जो अंकुर का प्रादुर्भाव होता है उसमें ईश्वर की भूमिका को मानना अनावश्यक एवं उपहासास्पद ही है। अंकुर की उत्पत्ति तो मिट्टी एवं जल के संयोग से नितान्त स्वाभाविक एवं सहज प्रक्रिया से सर्वानुभव सिद्ध है। इस स्वाभाविक कार्य को सम्पन्न करने के लिए किसी अदृष्ट कर्ता की स्वीकृति निरर्थक है।

ईश्वर को न मानने पर जीव सामान्य के शुभ एवं अशुभ कर्मों के फल की व्यवस्था कैसे सम्भव होगी? इस प्रश्न का समाधान करते हुए चार्वाक पूछता है कि किस कर्म फल की व्यवस्था अपेक्षित? संसार में दो प्रकार के कर्म देखे जाते हैं। एक लौकिक तथा दूसरा अलौकिक कर्म। क्या आप लौकिक कर्मों के फल की व्यवस्था के सम्बन्ध में चिन्तित हैं? यदि हाँ, तो यह चिन्ता अनावश्यक है। लौकिक कर्मों का फल विधान तो लोक में सर्व मान्य राजा या प्रशासक ही करता है। यह सर्वानुभव सिद्ध तथ्य, प्रत्यक्ष ही है। हम देखते हैं कि चौर्य कर्म आदि निषिद्ध कार्य करने वाले को उसके दुष्कर्म का समुचित फल, लोक सिद्ध राजा ही दण्ड के रूप में कारागार आदि में भेजकर देता है। इसी प्रकार किसी की प्राण रक्षा आदि शुभ कर्म करने वाले पुरुष को राजा ही पुरस्कार रूप में सुफल अर्थात् धन धान्य एवं सम्मान से विभूषित कर देता है।

यदि आप अलौकिक कर्मों के फल की व्यवस्था के सन्दर्भ में सचिन्त हैं तो यह चिन्ता भी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि परलौकिक फल की दृष्टि से विहित ये सभी यज्ञ, पूजा, पाठ तपस्या आदि वैदिक कर्म जन सामान्य को ठगने की दृष्टि से तथा अपनी आजीविका एवं उदर के भरण पोषण के लिए कुछ धूर्तों द्वारा कल्पित हुए हैं। वास्तव में अग्निहोत्र, तीन वेद, त्रिदण्ड

का धारण तथा शरीर में जगह- जगह भस्म का संलेप बुद्धि एवं पुरुषार्थ हीनता के ही परिचायक हैं। इन वैदिक कर्मों का फल आज तक किसी को भी दृष्टि गोचर नहीं हुआ है। यदि वैदिक कर्मों का कोई फल होता तो अवश्य किसी न किसी को इसका प्रत्यक्ष आज तक हुआ होता। अतः आज तक किसी को भी इन वैदिक या वर्णाश्रम-व्यवस्था से सम्बद्ध कर्मों का फल-स्वर्ग, मोक्ष, देवलोक गमन आदि प्रत्यक्ष अनुभूति नहीं है अतः ये समस्त वैदिक कर्म निष्फल ही हैं, यह स्वतः युक्ति पूर्वक सिद्ध हो जाता है।

ईश्वर निषेध

यहाँ यदि आस्तिक दर्शन यह कहे कि परलोक स्वर्ग आदि को सिद्ध करने वाला व्यापार अदृष्ट या धर्म एवं अधर्म है जिससे स्वर्ग की सिद्धि होती है तो यह चार्वाक को स्वीकार्य नहीं है। अलौकिक अदृष्ट का खण्डन करते हुए चार्वाक स्वर्ग आदि परलोक के साधन में अदृष्ट की भूमिका को निरस्त करता है तथा इस प्रकार आस्तिक दर्शन के मूल पर ही कुठाराघात कर देता है। यही कारण है कि अदृष्ट के आधार पर सिद्ध होने वाले स्वर्ग आदि परलोक के निरसन के साथ ही इस अदृष्ट के नियामक या व्यवस्थापक के रूप में ईश्वर का भी निरास चार्वाक मत में अनायास ही हो जाता है।

निष्कर्ष

सर्वदर्शनसंग्रह में चार्वाक के मत से सुख ही इस जीवन का प्रधान लक्ष्य है सुखवाद। संसार में दुःख भी है, यह समझकर जो सुख नहीं भोगना चाहते, वे मूर्ख हैं। मछली में काँटे होते हैं तो क्या इससे कोई मछली ही न खाए? चौपाए खेत पर जायँगे, इस डर से क्या कोई खेत ही न बोवे? इत्यादि। चार्वाक आत्मा को पृथक् कोई पदार्थ नहीं मानते अनात्मवाद। उनके मत से जिस प्रकार गुड़, तंडुल आदि के संयोग से मद्य में मादकता उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार भूतों के संयोगविशेष से चेतना उत्पन्न हो जाती है भूतचैतन्यवाद। इनके विश्लेषण या विनाश से 'मैं' अर्थात् चेतना का भी नाश हो जाता है। इस चेतन शरीर के नाम के पीछे फिर पुनरागमन आदि नहीं होता। ईश्वर, परलोक आदि विषय अनुमान के आधार पर हैं जिनकी कोई वस्तुगत अस्तित्व नहीं है। अनीश्वरवादी और इहलौकिकवादी।

चार्वाक दर्शन प्रत्यक्ष को ही एकमात्र प्रमाण मानते हैं लेकिन अनुमान को प्रमाण नहीं मानते। उनका तर्क है कि अनुमान व्याप्तिज्ञान पर आश्रित है। जो ज्ञान हमें बाहर इंद्रियों के द्वारा होता है उसे भूत और भविष्य तक बढ़ाकर ले जाने का नाम व्याप्तिज्ञान है, जो असंभव है। मन में यह ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, यह कोई प्रमाण नहीं क्योंकि मन अपने अनुभव के लिये इंद्रियों पर ही आश्रित है।

चार्वाक केवल प्रत्यक्षवादिता का समर्थन करता है, वह अनुमान आदि प्रमाणों को नहीं मानता है। उसके मत से पृथ्वी जल तेज और वायु ये चार ही तत्व हैं, जिनसे सब कुछ बना है। उसके मत में आकाश तत्व की स्थिति नहीं है, इन्हीं चारों तत्वों के मेल से यह देह बनी है, इनके विशेष प्रकार के संयोजन मात्र से देह में चैतन्य उत्पन्न हो जाता है, जिसको लोग आत्मा कहते हैं। शरीर जब विनष्ट हो जाता है, तो चैतन्य भी खत्म हो जाता है देहात्मवाद। इस प्रकार से जीव इन भूतों से उत्पन्न होकर इन्हीं भूतों के नष्ट होते ही समाप्त हो जाता है, आगे पीछे इसका कोई महत्व नहीं है। इसलिये जो चेतन में देह दिखाई देती है वही आत्मा का रूप है, देह से अतिरिक्त आत्मा होने का कोई प्रमाण ही नहीं मिलता है। चार्वाक मत से स्त्री पुत्र और अपने कुटुम्बियों से मिलने और उनके द्वारा दिये जाने वाले सुख ही सुख कहलाते हैं। उनका आलिंगन करना ही पुरुषार्थ है, संसार में खाना-पीना और सुख से रहना ही चार्वाक दर्शन हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. शर्मा, चंद्रधर, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली, 1995

2. राधाकृष्णन, डॉ. एस., भारतीय दर्शन, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 2014
3. सिन्हा, हरेंद्र प्रसाद, भारतीय दर्शन के रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली, 2018
4. मेहरा, बलदेव सिंह, भारतीय दर्शन, अभिषेक पब्लिकेशन, दिल्ली, 2017
5. निगम, डॉ. शोभा, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली, 2011
6. सिन्हा, यदुनाथ, भारतीय दर्शन, इंसेप्टिक इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2018
7. गौतम, एस.एस., चार्वाक दर्शन, सिद्धार्थ बुक, नई दिल्ली, 2020
8. झा, आचार्य आनंद, चार्वाक दर्शन, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 2023
9. पाठक, डॉ. सर्वानंद, चार्वाक दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा, चौखंबा विद्या भवन, वाराणसी, 2015
10. तिवारी, डॉ. नरेंद्र प्रसाद, चार्वाक का नैतिक दर्शन, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2015



प्राचीन भारतीय मूर्ती और सांस्कृतिक धरोहर स्थल

विपुल तिवारी

शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

सारांश

भारत के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में मूर्ती कला का एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राचीन भारत में हमारे पूर्वजों ने मूर्ती कला के विकास में वैज्ञानिक एवं व्यवहारिक दृष्टिकोण को अपनाया जो आमजन में प्रचलित लोकभावनाओं को मूर्त रूप में सँजोने का प्रयत्न किया। वर्तमान में “एक विरासत को अपनाओ” कार्यक्रम शुरू किया गया जिसे भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, संस्कृति मंत्रालय ने सांस्कृतिक धरोहर स्थलों को संरक्षित किया है इस वर्ष का विषय है “आपदाओं और संघर्षों से खतरे में पड़ी विरासत : आई सी ओ एम ओ एस की 60 वर्षों की कार्रवाइयों से तैयारी और सीख।”

परिचय

प्राचीन भारत में मूर्ती कला और वास्तुकला अत्यंत विकसित थी और विभिन्न कालों एवं विभिन्न संस्कृतियों के प्रभाव के कारण इसमें विविधता देखने को मिलती है मुख्य रूप से धार्मिक सामाजिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुसार विकसित हुई

मूर्ती कला

यह सूक्ष्म कला कार्य और हस्त निर्मित कला कार्य है जो इंजीनियरिंग और माप की तुलना में सौन्दर्यशास्त्र अधिक सन्दर्भित है। मन्दिरों में लंबे गलियारे का निर्माण, नक्काशीदार सौ स्तम्भों व हजार स्तम्भों वाले मंडपों की उपस्थिति, ऊँचे व बहुमंजिला गोपुरम का निर्माण, चमकीला पत्थर तथा पशुओं, देवताओं और राक्षसों की मूर्तियों द्वारा सजावट इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं।

सिन्धु-हड़प्पा काल

प्राचीन भारतीय मूर्ती कला के विषय में ज्ञान हमें सर्वप्रथम पुरातत्वविद् दयाराम साहनी के द्वारा 1921 में हड़प्पा में किए गए उत्खनन कार्यों में प्राप्त अवशेषों से होता है। सिन्धु-हड़प्पा सभ्यता के केंद्रों से मुख्यतः तीन कोटियों में (प्रस्तर मूर्ति, धातु मूर्ति, मृणमूर्ति) प्राप्त हुआ है। प्रस्तर मूर्तियों में धड़वाली सन्यासी की मूर्ति, दो कबन्ध मूर्ति तथा प्रस्तर के बने मानव सिर प्राप्त हुए हैं। इसमें से धड़ वाली सन्यासी की मूर्ति उस समय के कलात्मक रूप में अत्यन्त सौन्दर्य का आभास कराता है। धातु निर्मित मूर्तियों में नर्तकी की मूर्ति आंगिक कला से परिपूर्ण है जिसका निर्माण पीतल और ताँबे के कणों

को मिलाकर एक कांसा के पिण्ड में परिवर्तित करके की गई है। इसके अतिरिक्त मिट्टी (टेरा कोटा) की भी मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जो ठोस तथा खोखली दोनों प्रकार की हैं। इस समय मूर्तियों का निर्माण चिकोटी विधि और दर्वी मोम विधि द्वारा किया जाता था।

मौर्य काल

हड़प्पा सभ्यता के बाद और मौर्य काल से पूर्व युग में मूर्ती कला के बजाय साहित्य पर विशेष ध्यान दिया गया। मौर्य काल में मूर्ती कला का ज्ञान अशोक के समय से देखने को मिलता है इस समय मूर्ती कला का विकास काफी समृद्ध हुआ था। मूर्तियों के निर्माण में सफेद बलुआ प्रस्तर और चित्तीदार लाल प्रस्तर एवं मौर्य कालीन वज्रलेप का उपयोग किया गया था। इस समय मूर्ती कला दो भागों (1) राजकीय कला (2) लोककला में विभक्त था।

राजकीय कला के अन्तर्गत निर्मित मूर्तियां राजाओं के आदेश पर बनाए गए हैं। इसमें चमकदार पॉलिश, एक ही पत्थर से निर्मित प्रस्तर स्तम्भ, उसके कलात्मक शीर्ष और शीर्ष पर बनाए गए मूर्तियों की सजीव भावाभिव्यक्ति देखते ही बनती है। इस समय जिस प्रकार की मूर्तियां बनाई गई वे प्रायः प्रस्तर और मिट्टी की थीं जिनका निर्माण चुटकियों का इस्तेमाल करके (चिपकवा विधि) या सांचे में ढालकर किया जाता था। प्रस्तर की मूर्तियों में बसाढ़-बखिया का सिंह, संकिशा का हाथी, रामपुरवा का वृषभ और सारनाथ का सिंह शीर्ष स्तम्भ प्रमुख हैं। लोककला में मिट्टी की मूर्तियां प्रसिद्ध थीं जिनमें दीदारगंज की यक्षिणी की मूर्ति प्रमुख है।

शुंग काल

शुंगकालीन मूर्ती कला अशोक के बौद्ध स्तूप के चतुर्विध विकसित हुई। इस समय वेदिका और तोरणद्वार के प्रस्तर पर नागातिका विदिशा की तरह गजेन्द्र ने प्रतीकों को उकेरने का कार्य किया। शुंग काल में तीन प्रमुख कला केन्द्र (भरहुत, बोधगया, सांची) का विकास हुआ। इनमें सांची कलाकेन्द्र के अन्तर्गत स्तूप के तोरणद्वार पर उकेरे गये चित्र विधि बहुत ही स्पष्ट है। सांची के स्तूप संख्या.1 के चारों ओर तोरणद्वार बने हैं। इस तोरणद्वार के शीर्ष भाग पर और उस पर पड़ी आड़ी एवं तीनों बेड़ियों पर हस्तिदन्त की कलाकारिता की तरह पच्चिकारिता की गई है जो सांची केन्द्र का गौरव और आकर्षण है। इस पर बुद्ध के जीवन की घटनाएं, ऐतिहासिक दृश्य, जातक कथाएं, पशु-पक्षी, लता-वितान, यक्ष-यक्षिणीयां एवं मानव कृतियां प्रमुख हैं।

आन्ध्र-सातवाहन काल (अमरावती)

शुंग काल के बाद आन्ध्र-सातवाहन काल में मूर्ती कला अपने पूर्ववत् ही रही। इस समय मूर्तिकला तोरणद्वार और वेदिका के साथ-साथ स्तूप के अण्ड भाग पर भी किया जाने लगा। इस मूर्ती कला का विकास कावेरी नदी के तट पर आन्ध्रप्रदेश में धरणी कोट नामक एक प्रसिद्ध नगरी जो अब अमरावती के नाम से जाना जाता है, में हुआ।

कुषाण काल

इस काल में दो प्रकार के मूर्तिकला केन्द्र- मथुरा और गांधार का विकास हुआ।

(क) गांधार कला- इस शैली का विकास प्राचीन गांधार प्रदेश में हुआ। यह शैली यूनानी या हेलेनिस्टिक मूर्तिकला शैली (ग्रीक रोमन देवता) से प्रभावित रही है। अपोलो की भांति बुद्ध की मूर्तियां भी निर्मित की जाने लगीं। भगवान बुद्ध के साथ-साथ बोधिसत्व की भी स्थिति स्वीकार कर ली गई। बुद्ध की मूर्तियां स्थानक एवं आसान दोनों मुद्राओं में निर्मित की गईं। देव मूर्तियों के सिरों के चारों ओर एक गोल शिला पट्ट निर्माण हुआ। इसी समय कल में हाथों की भंगिमा मुद्राओं का अंकन यहाँ प्रारंभ हो गया। बुद्ध के घुंघराले बाल पीछे की ओर मुड़े हुए, जटायुक्त आभूषण रहित, बंद अधखुली आंखें, मूँछें,

ललाट पर उर्जा, वस्त्र सिलवट युक्त और चप्पल पहने हुए आदि प्रमुख विशेषताएं हैं। प्रारंभिक गांधार शैली में नीले धूसर बलुआ प्रस्तर का उपयोग किया गया है, जबकि बाद की अवधि में मिट्टी और प्लास्टर का उपयोग किया गया है।

(ख) मथुरा कला- मथुरा का कला केंद्र मौर्य काल से भी पूर्व कलाकृतियों के निर्माण के लिए जाना जाता था किंतु इसका सर्वोत्कृष्ट विकास कनिष्क, हुविष्क तथा वासुदेव के समय में हुआ। इस कला शैली में बुद्ध की आसान मुद्रा में मूर्तियों का निर्माण किया गया है। बुद्ध मूर्तियों में कटरा से प्राप्त मूर्तियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं इसमें बुद्ध को भिक्षु भेष धारण किए हुए दिखाया गया है। यह बोधिवृक्ष के नीचे सिंहासन पर विराजमान है तथा उनके हाथ अभय मुद्रा में ऊपर उठा हुआ है उनकी हथेली तथा तलवों पर धर्म चक्र एवं त्रिरत्न के चिन्ह बने हुए हैं। मूर्ति के पीछे वृत्ताकार प्रभामंडल दिखाया गया है। बुद्ध मूर्तियों के अतिरिक्त मैत्रेय, कश्यप अवलोकितेश्वर तथा बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएं भी देखने को मिलती हैं यह शैली स्वदेशी प्रभाव लिए हुए हैं। यहाँ वाह्य प्रभाव नहीं दिखाई देता है। इस शैली के मूर्ति के निर्माण के लिए चित्तीदार लाल बलुआ पत्थर का उपयोग किया गया है। इस शैली का संबंध बौद्ध जैन एवं ब्राह्मण तीनों धर्मों से है। मथुरा शैली के अंतर्गत जैन धर्म से संबंधित मूर्तियों को एक चौकोर प्रस्तर पट्टिका पर बनाया गया है जिसे आयग पट्ट कहते हैं।

गुप्त काल

गुप्त काल में साधारण तीन कला केंद्र मथुरा सारनाथ और पाटलिपुत्र के रूप में उभरे। विद्वानों के अनुसार इस समय के मूर्ति कला में विदेशी भावना को बहिष्कृत कर नवीन एवं प्राचीन भावना को मिलाकर नया रूप दिया गया। मथुरा से प्राप्त मूर्तियां लाल चित्तीदार प्रस्तर से ही बनी हैं। इसके बाल छोटे-छोटे सर पर उष्णीश और दाहिने तरफ मुड़े हुए बनने लगे। इसके सिर के ऊपर प्रभावली पहले के मुकाबले बड़े और लता एवं पुष्प से सजाए जाने लगे। इस समय बौद्ध धर्म एवं जैन के साथ-साथ वैष्णव धर्म से संबंधित मूर्तियां बनने लगे इसमें एरण एवं दशावतार मंदिर से प्राप्त विष्णु के 10 अवतारों से संबंधित मूर्ति हैं। इस समय मूर्ति कला का स्वरूप निम्न था—

1-तोरणों की सजावट पर अलंकरण

2-पट्टिकाओं पर अंकित कलाकृतियां (भगवान बुद्ध के जीवन की चार प्रमुख घटनाएं, हिन्दू धर्म की विभिन्न घटनाओं)

3-स्तंभों (गरुड़ स्तम्भ) एवं सह स्तंभों का निर्माण हुआ जिन पर बहुत से पट्टिका चित्र अंकित हैं। जैसे- भागीरथी को शिव के सामने कैलाश पर्वत पर याचना करते हुए, गंगा अपने वहाँ पर चढ़कर नीचे चली आ रही है, अर्जुन को शिव वरदान प्रदान कर रहे हैं आदि।

4- मृण्मयी मूर्तियां इस समय प्रत्युत मात्रा में निर्मूर्ति प्राप्त हुए हैं जिनमें पुत्र और हिंदू धर्म से संबंधित मूर्तियां हैं इन मूर्तियों का लोगों द्वारा क्रय विक्रय किया जाता था इस समय की मृदुल मूर्तियों के निर्माण हाथ से या चक्र के माध्यम से किया जाता था और उन्हें भट्टी में पकाए जाते थे।

गुप्त काल में मूर्तियों के निर्माण में ताल मान माप का विशेष ध्यान दिया गया अर्थात् अंगुलियों के माप के आधार पर मूर्तियों का निर्माण करना। मूर्तियों का निर्माण एक ताल से लेकर 10 ताल तक किया जाता था, एक ताल बराबर 12 अंगुल होता था। 10 ताल की मूर्तियां प्रायः उत्तम कोटि के होते थे। इस समय हाथों की मुद्राओं का विशेष ध्यान दिया गया जिनमें ध्यान मुद्रा, भूमि स्पर्श मुद्रा, अभय मुद्रा व्याख्यान मुद्रा, याचिका कर्ता आदि।

सांस्कृतिक धरोहर स्थल

सांस्कृतिक धरोहर के सम्मान और संरक्षण के लिए हर साल 18 अप्रैल को विश्व धरोहर दिवस मनाया जाता है। इस दिन की शुरुआत 1982 में आईसीओएमओएस द्वारा की गई थी बाद में 1983 में यूनेस्को ने आधिकारिक तौर पर इसे अपना लिया। विश्व धरोहर सम्मेलन 1972 में यूनेस्को द्वारा किया गया एक अंतरराष्ट्रीय समझौता है। हमारी विरासत सिर्फ पत्थरों लिपियां या खंडहरों से नहीं बनी यह मंदिर की दीवार की प्रत्येक फुसफुसाहट प्राचीन किलों की प्रत्येक नकाशी और पीढ़ियों

से चले आ रहे प्रत्येक लोकगीत में मौजूद है। मौजूदा समय में भारत में 43 विश्व धरोहर स्थल हैं इनमें से अजंता और एलोरा की गुफाएं 1983 में पहली बार सूचीबद्ध की गईं। असम से संस्कृत संपत्ति के रूप में “मोइदम्सरु अहोम राजवंश की टीला-दफन प्रणाली” को शामिल करके एक गौरवपूर्ण वृद्धि की गई। इस प्रकार प्राचीन से सांची का बौद्ध स्तूप (1989), चंपानेर पावागढ़-पुरातत्व उद्यान (2004) महान चोल मंदिर (1987), भीमबेटका (2003) कोणार्क का सूर्य मंदिर (1984), खजुराहो समूह (1986), एलिफेंटा की गुफाएं (1987) बोधगया महाबोधी मंदिर (2002) नालंदा महाविहार, धोलावीरा, रामप्पा मंदिर आदि प्रमुख रूप से प्राचीन भारतीय धरोहर स्थल के रूप में सूचित किए गए हैं।

निष्कर्ष

भारत की प्रचीन मूर्ती एवं सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करना एक सतत बहुआयामी प्रयास है। जिसके लिए पर्यावरण, कानूनी और सुरक्षा चुनौतियों से निपटने के लिए शक्ति प्रयोग की आवश्यकता है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभिन्न एजेंसीयों के साथ मिलकर देश की स्मारकीय खजानों की निगरानी, सुरक्षा और संरक्षण करता है। इसलिए समय-समय पर विश्व धर्म सम्मेलन आयोजित किए जाते हैं जो 1972 में यूनेस्को द्वारा किया गया एक अंतरराष्ट्रीय समझौता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. शिव स्वरूप सहाय (2019-20), भारतीय कला, स्टूडेंट फ्रेंड्स, विवेकानंद मार्ग, प्रयागराज।
2. वासुदेव शरण अग्रवाल (2023), भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी।
3. मीनाक्षी कासलीवाल ‘भारती’ (2013), भारतीय मूर्ति शिल्प एवं मूर्ती कला, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
4. R.C. Majumdar, Ancient India, Motilal Banarsidass Publishers, Delhi
5. रामचंद्र कांबोज, भारतीय पुरातत्व एवं संस्कृति, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार।
6. Ananda K. Coomaraswamy (2001), The Dance of Shiva: Essays on Indian Art and Culture, Munshiram Manoharlal Publishers, New Delhi
7. Debala Mitra (1980), Buddhist Monuments, Sahitya Akademi, New Delhi
8. Alexander Cunningham (1871.1885), Archaeological Survey of India Reports, Government of India Press
9. Vidya Dehejia (1997), Indian Art, Phaidon Press, London
10. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI), वार्षिक रिपोर्ट्स, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार।



भारतीय स्वच्छता विरासत में सिंधु सभ्यता : एक अध्ययन

डॉ. विजयभाई एम. कंटारिया

शामलदाश आर्ट्स कॉलेज भावनगर,

महाराजा कृष्णकुमारसिंहजी भावनगर विश्वविद्यालय, भावनगर, गुजरात

प्रस्ताविक

भारतीय स्वच्छता की विरासत बहुत प्राचीन है। विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में सिंधु घाटी सभ्यता के पास स्वच्छता की सर्वोत्तम विरासत थी। पाँच हजार वर्ष पूर्व भी भारतीय सभ्यता को स्वच्छता की उपयोगिता का ज्ञान था। सिंधु घाटी सभ्यता में भवनों, सड़कों, नालियों, स्नानघरों, शौचालयों, कुओं की योजना में स्वच्छता का पूरा ध्यान रखा जाता था। शारीरिक स्वच्छता, वस्त्रों की स्वच्छता में सिंधु सभ्यता के लोग जागृत थे। उसी तरह हमारे प्रकृति में भी स्वच्छता देखने मिलती थी। जंगलों में निवास करने वाले पशु-पक्षी भी स्वच्छता के आधीन अपना जीवन व्यतीत करते हैं। स्वच्छता पृथ्वी के जीव मात्र में अहम हिस्सा हैं। प्राचीन समय से लेकर आज पर्यंत स्वच्छता हमारे जीवनकालका अभिगंग अंग रहा हैं। भारतीय स्वच्छता विरासत में सिंधु सभ्यता का प्रभाव देखने मिलता हैं। जिसका अध्ययन यहाँ किया गया है।

सिंधु सभ्यता का संक्षिप्त इतिहास

दक्षिण एशिया की पहली नगरीय सभ्यता हड़प्पा सभ्यता थी। 1921 में दयाराम साहनी के प्रयासों से हड़प्पा की खोज हुई। जॉन मार्शल ने सर्वप्रथम इस संस्कृति को सैंधव सभ्यता कहकर पुकारा, क्योंकि प्रारम्भ में इस संस्कृति के स्थल सिन्धु एवं उसकी सहायक नदियों के किनारे मिले थे। जान मार्शल ने अपनी पुस्तक 'मोहनजोदड़ों एंड द इंडस सिविलाइजेशन' में सुझाव दिया या कि भविष्य में अगर सिन्धु घाटी से बाहर स्थल मिलते हैं तब इस सभ्यता का नाम श्भारतीय सभ्यताश रखा जाय। मार्टिनर व्हीलर की पुस्तक Civilization of the Indus valley and Beyond में इसे 'सिंधु सभ्यताश ही कहा गया है। ए. आर. मुगल ने इस सभ्यता के लिए वृहत्तर सिन्धु सभ्यता का नाम सुझाया। यह सभ्यता मिस्र एवं मेसोपोटामिया की सभ्यताओं के समकालिक थी। हड़प्पा सभ्यता को कांस्ययुगीन सभ्यता भी कहते हैं। क्योंकि काँस्य (तांबा एवं टीन का मिश्रण) का सबसे पहली बार प्रयोग इसी समय हुआ। भले ही हड़प्पाई संस्कृति कांस्ययुगीन संस्कृति थी, लेकिन इसमें कांसे का सीमित ही प्रयोग हुआ ज्यादातर पत्थर के औजारों का प्रयोग हुआ। गार्डेन चाइल्ड ने सिन्धु सभ्यता को प्रथम नगरीय क्रान्ति कहा। महत्वपूर्ण है कि सैंधव सभ्यता का सर्वाधिक संकेन्द्रण सरस्वती घाटी में घग्घर-हाकरा नदी के किनारे है इसलिए कुछ विद्वान इसे सरस्वती सभ्यता या सिन्धु सरस्वती सभ्यता भी कहते हैं। आज जबकि पुरातात्विक फावड़ा हड़प्पाकालीन एक विशाल भू-भाग का उत्खनन कर चुका है जोकि सिन्धु द्रोणी से काफी दूर तक परिव्याप्त है ऐसे में इसे केवल सैंधव सभ्यता कहना तर्कसंगत नहीं है। भारतीय इतिहास में इसी सभ्यता के इतिहास में बहुत सारे विद्वानों ने अपना अपना मंतव्य दिया है। पर हमें यहाँ सिंधु सभ्यताके नगरों में देखने मिली स्वच्छता विरासतका अध्ययन करना है।

भारतीय स्वच्छता विरासत में सिंधु सभ्यता

नगर आयोजन

सिंधु सभ्यता के प्राप्त अवशेषों से पता चलता है कि उस समय के लोग आजके इंजीनियरिंग से आगे थे। नगर आयोजन की जो रचना की जाती थी उनमें स्वच्छता एवं स्वास्थ्य की विरासत देखने मिलती हैं। सिंधु सभ्यता के नगरों दो भागों में विभक्त था। एक पश्चिमी टीला इसी पर किल्ला या दुर्ग स्थित था जहाँ शासक वर्ग रहते थे। सामान्यतः सिटाडेल आयताकार या समानान्तर चतुर्भुज (Parallelogram) होता था। लेकिन, बनावली के सिटाडेल की योजना अर्द्ध-वृत्ताकार (Semi elliptical) तथा लोथल का सिटाडेल विषम-चतुर्भुज (Trapezoidal) आकार का था। एस.आर.राव ने लोथल के सिटाडेल को एक्रोपोलिस कहा है। धौलावीरा के सिटाडेल को श्काशल क्षेत्र और श्वेली क्षेत्र कहा गया है। सामान्य नियम था कि सिटाडेल सदैव पश्चिम दिशा में ही बनेगा लेकिन लोथल में यह दक्षिण-पूर्व में स्थित था। सैंधव नगरीकरण की परम्परा थी कि दो टीलों का निर्माण हो लेकिन लोथल एवं सुरकोटड़ा में दो की जगह एक ही टीला मिला है। चन्हूदड़ो में भी मूलतः एक ही टीला था, किन्तु वर्षा एवं बाढ़ ने मिलकर इसे तीन खण्डों में बाँट दिया है। वी.एस.अग्रवाल सैंधव दुर्गों (पुरो) की पहचान ऋग्वेद में वर्णित असुरों के पुरों से की है। दूसरा पूर्वी टीला - यह निचला नगर (Lower Town) या मूल आवासीय क्षेत्र था। दुर्ग (Citadel) मजबूत रक्षा प्राचीरों (कीलेबन्दी) से युक्त थे। यह सम्पूर्ण सैंधव सभ्यता की विशेषता है हालांकि नगर वेश में कुछ अपवाद भी मिलते हैं। कालीबंगा से कुल तीन टीलों की प्राप्ति हुई है। लोथल एवं सुरकोटड़ा से सम्पूर्ण क्षेत्र एक ही रक्षा प्राचीरों से घिरे हैं। चन्हूदड़ो और अल्लाहदीनों की किलेबन्दी नहीं की गई थी। ज्यादातर नगर ऊँचाई पर स्थित थे जिनका कारण बाढ़ से बचाव, जरूरी प्रकाश, स्वस्थ हवा, नगरमें उपयोग होने वाले पानी का योग्य निकाल हो सकता है।

आवासीय भवन

भवन पकी ईंटों के बनते थे। मकान दो मंजिला होता था, क्योंकि अधिकतर घरों से सीढ़ियाँ मिली हैं। भवनों के फर्श पकी ईंटों से निर्मित होते थे और छतों पर घास-फूस बिछाकर ऊपर से मिट्टी छाप दी जाती थी। जिसे बारिश, ठंडी एवं गमी से बचा जा सकता था। खिड़कियाँ गलियों की ओर खुलती थी इनकी वजहसे आवास में स्वस्थ हवा एवं प्रकाश का आवन जावन होता है। उनमें रहने वाले लोग इनकी वजहसे स्वस्थ रहते होंगे। अपवाद स्वरूप कालीबंगा के मकान निर्माण में कच्ची ईंट का प्रयोग हुआ तथा लोथल में खिड़कियाँ सड़कों की ओर खुलती थी। मोहनजोदड़ो के आवास क्षेत्र से 27 कमरों का मकान एवं एक आंगन प्राप्त हुआ है। वणावली के मकान में बैठक (Drawing Room) एवं स्नानागार भी संलग्न था। भीरणा से अनेक कमरों वाले तीन भवन (Three Multi.Roomed House Complex) मिले हैं। स्नानागार का मतलब यह है कि लोग शरीर स्वस्थ रखने में मानते थे।

नालियाँ

आवासीय स्थान पर उपयोग किया हुआ पानी वही पर संग्रह न होकर नालियों के माध्यम से नगर के बाहर पानी का निकाल किया जाता था। निवास स्थान में उपयोग किया गया पानी गंदा होने की वजहसे शरीर स्वास्थ्य जोखिम में होता है। स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए पानी का योग्य निकाल किया जाता था। नालियाँ पकी ईंटों से बनी हैं अपवादस्वरूप लकड़ी की नाली का साक्ष्य कालीबंगा से तथा मिट्टी की पकी नाली का साक्ष्य चन्हूदड़ो से मिलता है। लोथल से सीढ़ीदार सार्वजनिक नाली का प्रमाण प्राप्त हुआ है। नालियों को ढकने के लिए टोडा मेहराब (Corbelled Arch) का प्रयोग किया जाता था। इसके प्रयोग का सबसे बढ़िया उदाहरण मोहनजोदड़ो के स्नानागार की नाली है। बेबीलोन एवं मिस्र में इस हेतु गोल मेहराब का प्रयोग होता था जिसका अपवादस्वरूप साक्ष्य लोथल से मिलता है। सैंधव सभ्यता में मोहनजोदड़ो की जल-निकासी व्यवस्था सर्वोत्तम थी। छोटी नालियाँ घरों से शुरू होती थी फिर यह जाकर गली की नाली से मिल जाती थी तदुपरान्त यह इससे बड़ी

सार्वजनिक नाली से मिल जाती थी। रोचक तथ्य यह है कि वर्षा के पानी की निकासी हेतु अलग से नालियाँ बनी थी। महत्वपूर्ण है कि जल निकासी की ऐसी व्यवस्था 18वीं शताब्दी तक लंदन एवं पेरिस में भी नहीं दिखती है। जल निकासी की व्यवस्था ही सैंधव घाटी सभ्यता को अपने समकालीन सभ्यताओं से श्रेष्ठ बनाती है।

शौचालय

मोहनजो-दाड़ो शहर अच्छी स्थिति में था। कस्बे के घरों में शौचालय थे। शौचालय के साथ ही एक अवशोषण टैंक भी था। कस्बे के निवासियों के बीच स्वच्छता की एक सुनियोजित योजना और स्वच्छता के प्रति जागरूकता थी। शौचालयों का निर्माण पक्की ईंटों से किया गया था। मोहनजो दाड़ो के शौचालय पश्चिमी देशों के शौचालयों से तुलनीय थे। मोहनजो टीले और मेसोपोटामिया सभ्यता के शौचालयों के निर्माण में समानताएँ थीं। सिन्धु सभ्यता के नगरों में अपशिष्ट जल तथा मल-जल निर्यात की अच्छी व्यवस्था थी। इस प्रकार की श्रेष्ठ व्यवस्था विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में कहीं नहीं मिलती। मोहनजो दाड़ो के कुछ घरों में सीवेज और मल निपटान के लिए नालियाँ थीं। प्रत्येक घर की नालियाँ सार्वजनिक नालियों से जुड़ी हुई थीं। इस स्थान पर एक कुंडी रहती थी। बड़ी-बड़ी नालियों में मैन होल होते थे, जो ईंटों से ढके होते थे। यह सुविधा सीवेज ट्रीटमेंट के लिए थी। इसी तरह हमारे प्राचीन सभ्यताओं में शौचालय की व्यवस्थाओं की भी जानकारी प्राप्त होती हैं।

स्नानघर

पुरातत्ववेत्ता मार्शल के अनुसार सिन्धु सभ्यता में स्नान का महत्व विश्व की किसी भी अन्य प्राचीन सभ्यता से अधिक था। मोहनजोदाड़ो के सभी घरों में एक स्नानघर था। स्नानघर इस सभ्यता का एक अनिवार्य अंग था। स्नानघर का निर्माण स्वच्छता एवं धार्मिक भावना से प्रेरित था। (थपलियाल)। भारत में स्नान की परंपरा सिंधु सभ्यता के समय से ही प्रचलित रही है। शुभ अवसरों पर स्नान करना शुभ और पवित्र माना जाता है। मोहनजोदाड़ो में एक विशाल स्नानागार था। बगल में बाथरूम था। स्नानघरों में नवीन-स्वच्छ जल सेवन और अपशिष्ट जल निपटान प्रणाली भी थी। कस्बे के अमीर लोगों के घरों में भी हम्माम थे। चन्हुदो के लोग भी हम्माम से परिचित थे। हम्माम में लगे नल में गरम पानी लाने की योजना थी। घरों में कपड़े धोने की अलग व्यवस्था होती थी। मोहनजो दाड़ो के कुछ घरों और सार्वजनिक भवनों में कुएँ थे। कुओं का आकार अंडाकार था। कुओं के पास गहरे गड्ढे थे। जब कुएं पर पानी लाने वाली महिलाओं की भीड़ होती थी तो वे अपने बर्तन इन्हीं गड्ढों में रख देती थीं। पानी भरने का इंतजार हो रहा था, कुएं के पास ही पीने के पानी की व्यवस्था थी। इस सभ्यता में भी जल दान को पवित्र माना जाता था। कुएं के पास दो से सात फुट की दीवार हुआ करती थी। कुएँ को साफ करना आसान था। यदि किसी की मृत्यु कुएं में हो जाती थी तो इस कुएं का पानी अशुद्ध माना जाता था। कुएं के ऊपर एक ढक्कन था। ये कुएँ बहुत अच्छे ढंग से बनाये गये हैं। आज भी लोग पांच हजार साल पुराने कुओं का पानी पीते हैं। कुओं के नजदीक गंदे पानी के निकाल के लिए नालिया थी। जो गंदी होने पर साफ भी की जाती थी।

अन्नागार

जीवन के अस्तित्व के लिए खाना जरूरी है। उनके लिए स्वस्थ एवं योग्य अनाज का संग्रह होना अति आवश्यक होता है। हमारी प्राचीन सभ्यताओं में इसी तरह के अन्नागार किले के बाहर एवं नदियों के तट पर स्थित होता था। अपवादस्वरूप मोहनजोदाड़ो का अन्नागार किले के अन्दर था। मोहनजोदाड़ो, हड़प्पा, कालीबंगा एवं लोथल से अन्नागार का साक्ष्य मिलता है। हड़प्पा एवं मोहनजोदाड़ो से सैंधव सभ्यता के सबसे बड़े अन्नागार मिले हैं। रावी नदी के तट पर स्थित हड़प्पा के अन्नागार को व्हीलर ने शस्यागार-परिसर (granary complex) कहा है। लोथल से लकड़ी का अन्नागार मिला है जबकि मोहनजोदाड़ो के अन्नागार का बाहरी ढाँचा लकड़ी से निर्मित था। मोहनजोदाड़ो एवं हड़प्पा के अन्नागार से अनाज का कोई दाना प्राप्त नहीं हुआ है।

निष्कर्ष

जीवनका मूल आधार स्वच्छता है। हमारी प्राचीन सभ्यताओं में प्राप्त अवशेषों से स्वच्छता का महत्त्व मिलता है। लंबे आयुष्य के लिए स्वस्थ खाना, स्वस्थ पानी, स्वस्थ आवास होना अति आवश्यक है। विश्व की संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति का स्वच्छता का इतिहास सबसे पुराना है। स्वच्छता को धार्मिक स्थिति से जुड़ने से उनका स्वीकार अधिक किया जाता है। सिंधु सभ्यता, हड़प्पा सभ्यता के भवन में नगर आयोजन, सड़क निर्माण, आवास, पानी, अन्नसंग्रह, खोराक सभी जगह पर स्वच्छता का स्थान अति आवश्यक समझा गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कृष्णकुमार, प्राचीन भारतका सांस्कृतिक इतिहास, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, 2001.
2. चौबे सौरभ, प्राचीन भारत, यूनिवर्सल बुक्स, 1519 अल्लापुर, प्रयागराज, जनवरी, 2017.
3. त्रिपाठी हरिनाथ, प्राचीन भारतमें राज्य और न्यायपालिका, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1965.
4. थपल्याल हरिहरनाथ, सिंधु सभ्यता, उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 2003.
5. डॉ. लक्ष्मण वाढेल, डॉ. अनिल वाघेला, भारतीय इतिहास में स्वच्छता विनियोग, (गुजराती संस्करण), वेदांत पब्लिकेशन, गोंडल रोड, राजकोट, गुजरात



भारतीय मनीषा में लोकतंत्र

प्रिया तिवारी

शोधार्थी, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय
कानपुर (उत्तर प्रदेश)

सारांश

आरंभ से ही जब भी योग्य शासन या कुशल प्रशासन की बात होती है, तब लोकतंत्र ही एक आदर्श शासन व्यवस्था के रूप में हमारे सम्मुख आता है। शासन की अन्य प्रणालियों राजतंत्र, तानाशाही आदि में लोकतंत्र को ही श्रेष्ठ माना जाता है। सर्वत्र लोकतंत्र को सुरक्षित रखने तथा आदर्श लोकतंत्र स्थापित करने की चर्चा होती है। तो मन में यह भाव जाग्रत होता है कि ये लोकतंत्र क्या कोई नवीन धारणा या नवीन शासन प्रणाली है या पश्चिम से आयी कोई विचारधारा? तो अध्ययन से पता चलता है कि लोकतंत्र कोई नवीन विचारधारा या नवीन शासन प्रणाली नहीं है। भारतीय ग्रंथों के पाठन से पता चलता है कि लोकतंत्र की विचारधारा यहाँ आरम्भ से ही मिलती है। इसकी जड़ें भारतीय मनीषा में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने 25 सितंबर 2021 को न्यूयॉर्क में संयुक्त राष्ट्र महासभा के 76 वें सत्र को संबोधित करते हुए कहा था कि, “भारत सभी लोकतंत्रों की जननी है।” वहीं भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र भी माना जाता है। अतः स्पष्ट है कि यहाँ लोकतंत्र की जड़ें बहुत गहरी हैं। हम इस शोधपत्र के माध्यम से भारतीय मनीषा में विराजित लोकतांत्रिक विचारधारा से परिचित होंगे तथा लोकतंत्र की गहन व प्राचीन विचारधारा को समझेंगे।

शब्द कुजियां : लोकतंत्र, चुनाव आयोग, यूनानी भाषा, भारतीय संविधान, अनुच्छेद, शासक, प्रजा, वैदिक युग, कबीले, बलि, ऋचाएं, लोकतांत्रिक शासन प्रणाली, अपदस्थ।

परिचय

प्रत्येक व्यक्ति किसी ना किसी राष्ट्र, समाज व परिवार की इकाई होता है तथा इन्हें सुचारु रूप से चलाने व निरंतर उन्नति की ओर अग्रसर करने के लिए शासन व्यवस्था का होना अनिवार्य है। शासन व्यवस्था के अभाव में व्यक्ति, समाज व राष्ट्र की कल्पना तक कर पाना सम्भव नहीं। तब अनायास ही मन में यह प्रश्न उठता है कि कौन सी शासन व्यवस्था हमारे लिए उपयुक्त होगी, जिससे हम निरंतर उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकेंगे? तो जब भी किसी आदर्श शासन व्यवस्था की बात होती है तो सर्वप्रथम जिस शासन प्रणाली का नाम सम्मुख आता है, वह है— लोकतंत्र।

लोकतंत्र एक आदर्श शासन व्यवस्था के रूप में जाना जाता है। यदि लोकतंत्र के शाब्दिक अर्थ की बात करें तो—“लोकतंत्र का शब्दार्थ अर्थ बिलकुल सीधा सादा है। ‘लोक’ अर्थात् ‘जनता’ और ‘तंत्र’ अर्थात् ‘शासन’ अथवा ‘राज्य’ अतः लोकतंत्र का अर्थ हुआ जनता का राज्य। इसका अंग्रेजी पर्याय डेमोक्रेसी यूनानी भाषा के ‘डेमोस’ तथा ‘क्रेटिया’ शब्दों

के योग से बना है। और इसका भी यही अर्थ है—बहुतों की शक्ति अथवा जनता का राज्य।”¹

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश माना जाता है। भारतीय संविधान द्वारा गठित चुनाव आयोग द्वारा करायी जाने वाली चुनावी प्रक्रिया लोकतांत्रिक व्यवस्था का सशक्त उदाहरण है। संविधान का अनुच्छेद 324 चुनाव आयोग के विषय में बताता है तथा अनुच्छेद 324-329 चुनाव के प्राविधान के विषय में। भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था पर विस्तारित दृष्टि डालने पर स्पष्ट भासित होता है कि यह अपने शाब्दिक अर्थ से अधिक, अत्यंत गहन अर्थ को समेटे हुए है। लोकतंत्र की व्यापकता उसे जीवन पद्धति से जोड़ती है। यह अपने व्यापक अर्थ में मात्र एक शासन प्रणाली नहीं अपितु जीवन प्रणाली है।

वैदिक युग में लोकतांत्रिक लक्षण

सम्पूर्ण विश्व में आरम्भ से ही विभिन्न शासन प्रणालियां प्रचलित रही हैं। इसी प्रकार भारत में भी राजतंत्र, श्रेणी तंत्र और लोकतंत्र विद्यमान रहे हैं। जब हम भारत में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की प्राचीनता पर दृष्टि डालते हैं, तो इसकी जड़ें पूर्व वैदिक काल से ही मिलने लगती हैं। सम्पूर्ण विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के प्रमाण मिलते हैं। इतिहास की विभिन्न पुस्तकों में वैदिक युग की लोकतांत्रिक व्यवस्था का वर्णन मिलता है।

“वैदिक युग में वंशगत राजतंत्र शासन का सामान्य प्रकार था किंतु कभी कभी राजा के निर्वाचन की चर्चा भी की पायी जाती है। कुछ कबीलों में लोकतंत्रीय व्यवस्था थी और उनके प्रधान जनता द्वारा निर्वाचित होते थे।”²

राजा युद्ध में अपने कबीले का नेतृत्व करता और प्रजा के धन जान की रक्षा करना अपना उच्चतम कर्तव्य मानता था। बदले में जनता उसे स्वेच्छापूर्वक बलि (सिराज अथवा भेंट) देती थी। विजित कबीलों को भी भेंट देनी पड़ती थी पर राजा का भूमि पर कोई स्वत्व ना था। पुरोहित और सम्भवतः कुछ अन्य सलाहकारों की सहायता से राजा न्याय का वितरण करता था।

सभा और समिति नामक दो संस्थाओं का ऋग्वेद में विशेष उल्लेख है। ये मुख्यतः राजनीतिक कार्यों से सम्बंधित थीं। जिन ऋचाओं में उनका उल्लेख हुआ है उनमें से अधिकांश से स्पष्ट जान पड़ता है कि शासन में इन संस्थाओं का बहुत अधिक महत्व और अधिकार था और वे राजा के निरंकुश अधिकार पर नियंत्रण रखने का काम करती थीं। इन संस्थाओं में राजनीतिक विषयों पर खुलकर स्वतंत्र रूप से वाद विवाद होता था। लोकतंत्र को मूर्त रूप देने वाली चुनाव प्रक्रिया भी वैदिक युग में थी, जिसके लिखित प्रमाण भी उपलब्ध हैं—“In the Atharva Veda and the great epic, however we have several explicit references to the election of the Rajan to the kingship by the people and in the Rigveda itself the need of people's approval if sovereignty is to be steady and unvacillating, is emphasised in the consecration hymns.”³

“The Rajan, though the lord of the people, did not govern without their consent.”⁴

उपर्युक्त दोनों सन्दर्भ डॉ. आर. सी. मजूमदार, एच. सी. रायचौधरी एवं कालीकिंकर दत्ता जैसे प्रसिद्ध इतिहासकारों के मत को स्पष्ट करते हैं। और इनके मत के अनुसार वैदिक युग में लोकतांत्रिक प्रक्रिया के पर्याप्त लक्षण मिलते हैं। स्पष्ट है कि अथर्ववेदादि में राजा को जनता द्वारा सत्तारूढ़ किए जाने की बात मिलती है तथा ये राजा के चुनाव की प्रक्रिया को अर्थात् एक विशेष तरीके से जनता द्वारा अपने शासक या राजा के चुने जाने की बात को भी स्पष्ट करता है। तथा ऋग्वेद, जिसकी चर्चा हम पहले भी कर चुके हैं उसको भी यह मत और पुष्ट करता है कि वैदिक काल में राजा के सत्तारूढ़ होने के लिए जनता की सहमति अनिवार्य थी। प्रजा या जनता की सहमति के अभाव में राजा का शासन कर पाना अर्थात् उसका सत्तारूढ़ रह पाना सम्भव न था। जनता के हाथों में राजा के चुनाव की शक्ति या राजा को सत्ता में बने रहने के लिए अपनी प्रजा की सहमति की अनिवार्यता, लोकतंत्र को स्पष्ट परिलक्षित करती है। राजतंत्र होने के बावजूद उस युग में लोकतांत्रिक प्रक्रिया मौजूद होने के प्रमाण हैं।

महाभारत में लोकतांत्रिक मूल्य

वैदिक काल में लोकतांत्रिक तत्वों को देखने के बाद अब हम साहित्य की सर्वाधिक अनुपम कृतियों में से एक ‘महाभारत’ की ओर अपनी दृष्टि डालेंगे। इस महान साहित्यिक ग्रंथ में हमें लोकतांत्रिक मूल्यों की स्पष्ट झलक दिखाई देगी। जब हम लोकतंत्र द्वारा कुशल प्रशासन की बात करते हैं तथा लोकतंत्र को एक आदर्श शासन प्रणाली कहते हैं, तब स्वाभाविक है कि हमें यह स्मरण रहना चाहिए कि लोकतंत्र अपने आदर्श रूप को तभी प्राप्त कर सकता है, जब जनता द्वारा चुने गये उनके प्रतिनिधि में एक आदर्श शासक या प्रतिनिधि के गुण हों। वह राज्य को सुचारू रूप से चलाने की कला में निष्णात हो। महाभारत में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जो लोकतंत्र की आदर्श स्थिति की स्थिति को दर्शाते हैं। महाभारत के ऐसे ही कुछ उदाहरणों के माध्यम से हम उस समय की लोकतांत्रिक दृष्टि से परिचित होंगे।

“न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितव्यमसाम्प्रतम्।

श्रिं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम्॥ 2॥

अर्थ—अब तो राज्य प्राप्त ही हो गया, ऐसा समझकर अनुचित बर्ताव नहीं करना चाहिए। उद्वेगता सम्पत्ति को उसी प्रकार नष्ट कर देती है, जैसे सुन्दर रूप को बुढ़ापा।”⁵

तथा

“चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।

प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदयति॥ 25॥

अर्थ—जो राजा नेत्र, मन, वाणी, और कर्म इन चारों से प्रजा को प्रसन्न करता है, उसी से प्रजा प्रसन्न रहती है।”⁶

विदुर द्वारा कहे गए इन दोनों श्लोकों से राजा के लिए प्रजा की महत्ता, जो लोकतंत्र की आधारशिला है, का स्पष्ट पता चलता है। लोकतंत्र में यदि कोई सर्वाधिक महत्त्व रखता है तो वह है—जन या प्रजा। यहाँ विदुर द्वारा प्रजा को मन, वाणी, नेत्र व कर्म द्वारा प्रसन्न रखने की बात तथा राजा को सदैव प्रजा से उचित वार्ता करने की चर्चा, दोनों ही लोकतांत्रिक मूल्यों को दर्शाती है।

वर्तमान में लोकतांत्रिक व्यवस्था होते हुए भी हम अधिकांशतः यह देखते हैं, कि जन प्रतिनिधि या शासक धर्मच्युत होते जा रहे हैं। उनमें एक आदर्श राजा या शासन के लोकतांत्रिक मूल्यों का सर्वथा अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। वहीं राजतंत्र होते हुए भी महाभारतकालीन भारतीय मनीषा पर यदि हम दृष्टि डालते हैं, तो एक आदर्श राजा में जो लोकतांत्रिक मूल्य होने चाहिए वे स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं—

“गुणवान् शीलवान् दान्तो मृदुर्धर्म्यो जितेंद्रियः।

सुदर्शः स्थूललक्ष्यश्च न भ्रश्येत सदा श्रियः॥19॥

अर्थ—जो राजा गुणवान्, शीलवान्, मन और इंद्रियों को संयम में रखने वाला, कोमल स्वभाव, धर्म परायण, जितेंद्रिय, देखने में प्रसन्न मुख और बहुत देने वाला उदार चित्त है। वह कभी राजलक्ष्मी से भ्रष्ट नहीं होगा।”⁷

भीष्म द्वारा कहे गए इन वचनों में एक शासक या राजा के कर्तव्य तथा गुणों को स्पष्टतया देखा जा सकता है। जनप्रतिनिधि या राजा बन जाने पर या राज्य प्राप्त हो जाने की स्थिति में भी एक शासक को कभी भी अकर्मण्यता का वरण नहीं कर लेना चाहिए। राजा का पद प्राप्त कर लेने मात्र से कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती। वास्तविक कर्तव्य का निर्वाहन शासक का पद प्राप्त होने के बाद आरंभ होता है। उसे अपने कुशल प्रशासन के माध्यम से सदैव प्रजा का हित करना चाहिए। गुण, शील, कोमल स्वभाव, धर्मपरायणता जैसे मूल्यों का वरण कर प्रजा के लाभार्थ कार्यों में रत रहना चाहिए।

इसके अतिरिक्त राजा और प्रजा के मध्य मधुर सम्बन्ध होने चाहिए। यदि प्रजा अपने राजा की शासन प्रणाली से या राजा की अकुशलता से खिन्न है या वे राजा से भयभीत रहते हैं, तो वह राजा को अपदस्थ करने की सामर्थ्य रखते हैं। प्रजा की यह शक्ति लोकतंत्र का प्राण है। महाभारत के इस श्लोक से यह बात सिद्ध होती है—

**“यस्मात् त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव ।
सागरान्तमपि महीं लब्धा स परिहीयते ॥26॥**

अर्थ—जैसे बाघ से हिरण भयभीत होते हैं, उसी प्रकार जिससे समस्त प्राणी डरते हैं, वह समुद्र पर्यंत पृथ्वी का राज्य पाकर भी प्रजा जनों के द्वारा त्याग दिया जाता है।⁸

प्रजा द्वारा राजा को त्याग दिया जाना, शासन की आदर्श प्रणाली के नियम तथा आदर्श राजा के सभी गुण, महाभारत के सभी तथ्य राजतंत्र में भी लोकतांत्रिक तत्वों को प्रमाणित करते हैं।

वाल्मीकि रामायण में लोकतांत्रिक मूल्य

इसके पश्चात् अब हम वाल्मीकि रामायण में लोकतांत्रिक मूल्यों को देखेंगे। संस्कृत महाकाव्य रामायण के अध्ययन से भी पता चलता है कि रामराज्य में राजतंत्र के भीतर लोकतंत्र के मूल्य निहित हैं। जब भरत प्रभु राम से भेंट हेतु वन जाते हैं, तब प्रभु द्वारा उनसे जो प्रश्न पूछे जाते हैं, उनके माध्यम से हम लोकतांत्रिक तत्वों को समझने का प्रयास करेंगे।

प्रभु श्रीराम सर्वप्रथम तो भरत से यही प्रश्न पूछते हैं कि तुम राष्ट्र की रक्षा भली-भांति करते हो या नहीं?—

“कश्चित समुदितां स्फीतामयोध्यां परिरक्षसे ॥42॥

अर्थ—ऐसी अभ्युदयशील और समृद्धिशालिनी नगरी अयोध्या की तुम भलीभांति रक्षा तो करते हो ना?”⁹

राजा या शासक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कर्तव्य है कि वह अपने राष्ट्र की रक्षा करे। वे अन्य एक स्थल पर भरत से कहते हैं कि, तुम सभी का भली-भांति पालन तो करते हो ना? क्योंकि राजा का यह कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा का पूर्णमनोयोग से संतान की भांति भरण पोषण करे। यह बात निम्न श्लोक से स्पष्ट होती है—

“तेषां गुप्तिपरीहारैरू कश्चित ते भरणं कृतम् ।

रक्ष्या द्वि राज्ञा धर्मेण सर्वे विषयवसिनाः ॥48॥

अर्थ—उन वैश्यों को इष्ट की प्राप्ति करा कर और उनके अनिष्ट का निवारण करके तुम उन सब लोगों का भरण पोषण तो करते हो ना? क्योंकि राजा को अपने राज्य में निवास करने वाले सब लोगों का धर्मानुसार पालन करना चाहिए।¹⁰ इसके अतिरिक्त राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाना तथा जरूरतमंदों को आर्थिक मदद पहुंचाना यह सभी कार्य भी कुशल शासक के कर्तव्य हैं—

राजा द्वारा प्रजा का भरण पोषण, राष्ट्र की रक्षा, प्रकृति संरक्षण तथा अर्थव्यवस्था, कर व्यवस्था व प्रजा की आवश्यकतानुसार उसे आर्थिक मदद आदि शासन प्रणाली के जो गुण वर्णित हैं, वह लोकतांत्रिक मूल्यों की पुष्टि के लिए पर्याप्त हैं।

श्रीरामचरितमानस में लोकतांत्रिक मूल्य

तुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानस में हमें लोकतांत्रिक मूल्यों की स्पष्ट झलक मिलती है। जिस आदर्श रामराज्य की बात सर्वत्र होती है, जिस राम राज्य में सब कुछ अनुकूल है—

“राम राज बैठे त्रैलोका । हर्षित भए गए सब सोका ॥”¹¹

“दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज नहिं काहुहिं व्यापा ॥”¹²

ऐसे रामराज्य को यदि हम गहनता से समझने का प्रयास करें तो इसमें लोकतांत्रिक मूल्य शासन प्रणाली में विद्यमान हैं। प्रभु श्रीराम जब कुशलतापूर्वक अपने राज्य का संचालन कर रहे हैं, तब वे अपनी प्रजा से संवाद हेतु एक सभा का आयोजन करते हैं। अपनी प्रजा से संवाद स्थापित करने के लिए राजा का यह प्रयास ही लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली की ओर हमारा ध्यान ले जाता है। क्योंकि यह घटना प्रजा के महत्त्व को दर्शाती है और लोकतंत्र में लोक अर्थात् प्रजा ही महत्वपूर्ण होती है। प्रभु राम अपनी प्रजा से कहते हैं—

“नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहुं जौं तुम्हहि सुहाई।।

अर्थ—हे समस्त नगरवासियों! मेरी बात सुनिए। यह बात में हृदय में कुछ ममता लाकर नहीं कहता हूं, ना अनीति की बात कहता हूं और ना इसमें कुछ प्रभुता ही है। आप मेरी बात को ध्यानपूर्वक सुनें और यदि उचित लगे तो उसके अनुसार करो।”¹³

वे आगे कहते हैं कि—

“जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहुं भय बिसराई।।

अर्थ : हे भाई! यदि मैं कुछ अनीति की बात कहूं तो भय भुलाकर मुझे रोक देना।”¹⁴

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि, प्रजा को बिना राजा से भयभीत हुए अपने निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता है, अर्थात् शासक व प्रजा के मध्य सम्बन्ध मधुर हैं। इन सभी बातों के मूल में लोकतंत्र ही है क्योंकि यहाँ लोकतंत्र की भांति जनता के मत का महत्व है। प्रजा यहाँ सर्वोपरि है। इसी प्रकार भारतीय मीमांसा में अन्य स्थलों पर भी अर्थात् अन्य अनेक ग्रंथों में भी लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की झलक स्पष्ट मिलती है।

चाणक्य और कामंदक के मतों में लोकतांत्रिक मूल्य

चाणक्य का मत है, “प्रजा के सुख तथा हित में ही राजा का सुख तथा हित निहित है। राजा का अपने स्वार्थों को पूर्ण करने में हित नहीं है। उसका हित तो प्रजा के स्वार्थों तथा प्रिय वस्तुओं को पूरा करने में ही है।”¹⁵

चाणक्य के मतानुसार, राजा का हित प्रजा के हित में है। राजा का हित उसके शासन का हित है और शासन तभी सफल हो सकता है, जब वह जनता के अनुकूल चल रहा हो। ये सभी भाव वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था के गुणधर्मों का अंग हैं। प्रसिद्ध भारतीय मनीषी कामंदक का मत भी यही है कि राजा का हित प्रजा के अनुकूल व उसकी सहमति से चलने में ही है। कामंदक नीतिसार के प्रथम सर्ग के अनुसार—

“सदानुरक्तप्रकृतिः प्रजापालनतत्परः। विनीतात्मा द्वि नृपतिरभूर्यसी श्रीयमश्नुते।।24।।

अर्थ—सदा प्रजा में अनुरक्त, प्रजापालन में तत्पर, विनीतात्मा राजा महालक्ष्मी को प्राप्त होता है।”¹⁶

निष्कर्ष

आदर्श शासन प्रणाली, ‘लोकतंत्र’ का जब हम गहन अध्ययन करते हैं, तो इसकी जड़ें हमें भारतीय मनीषा में बहुत आरंभ से ही मिलती हैं। वैदिक काल में विश्व के सर्वाधिक प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद से ही हमें लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के गुण मिलते हैं।

“आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः।

विशस्ता सर्वा वाञ्छतु मा त्वद्रभ्यधि भ्रशत्। (सूक्त 173)

अर्थ—हे राजन! मैंने तुम्हें अपने राष्ट्र का स्वामी बनाया है, तुम हमारे बीच अधिकारी बनो एवं दृढ़ तथा अविचल होकर रहो, सभी प्रजाएं तुम्हें चाहें, तुम्हारे पास से राज्य का अधिकार भ्रष्ट न हो।”¹⁷

स्पष्ट है कि, राजा को राज्य के अधिकार से भ्रष्ट किया जा सकता था। राज्य में प्रजा की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इसके अतिरिक्त विश्व के विशालतम ग्रंथ महाभारत में भी ऐसे अनेक उद्धरण मिलते हैं, जो लोकतंत्र की आदर्श स्थिति को दर्शाते हैं। इसी प्रकार वाल्मीकीकृत रामायण तथा गोस्वामी तुलसीदास की श्री रामचरितमानस में भी लोकतंत्र स्पष्ट दिखाई देता है। रामचरितमानस की यह पंक्ति—“जौं अनीति कहुं भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहुं भय बिसराई।।” राजा व प्रजा के मध्य सुंदर संबंध को दर्शाती है। जो आदर्श लोकतंत्र की ही स्थिति है। अन्य भारतीय ग्रंथों जैसे कौटिल्य के अर्थशास्त्र व कामंदक की नीतिशास्त्र में भी लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के तत्व मौजूद हैं।

अतः हम देखते हैं कि, आरंभ से हमें अर्थात् वैदिक युग से राज्य में प्रजा की पूर्ण भागीदारी मिलती है। वेदों में सभा

समिति व संसद जैसे शब्दों का उल्लेख मिलता है। निष्कर्षतः यह सिद्ध होता है कि, भारतीय मनीषा में लोकतंत्र आरंभ से ही विद्यमान रहा है।

सन्दर्भ सूची

1. रघुकुल तिलक, लोकतंत्र : स्वरूप एवं समस्याएं
2. डॉ. रमेशचंद्र मजूमदार, प्राचीन भारत (प्रकाशक—मोतीलाल बनारसीदास—1962 ई.) पृ. सं. 33,34
3. R. C. Majumdar, H. C. Raychaudhuri, Kalikinkar Dutta, An Advanced History of India (Part 1 Ancient India) (Macmillan India Ltd. Madras, 1978 AD) page no. 28,29
4. वही
5. वेदव्यास, अध्याय 35, प्रजागर पर्व, उद्योग पर्व, महाभारत, तृतीय खंड (गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2072)
6. वही
7. वेद व्यास, अध्याय 56, राजधर्मानुशासन पर्व, शान्ति पर्व, महाभारत पंचम खंड (गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2072) पृ. सं.
8. वेद व्यास, अध्याय 34, प्रजागर पर्व, उद्योग पर्व, महाभारत तृतीय खंड (गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2072)
9. वाल्मीकि, सर्ग 100, अयोध्याकाण्ड श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, (गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2071) पृ. सं. 504
10. वही, पृ. सं. 505
11. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, (गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2077) पृ. सं. 930
12. वही
13. वही, पृ. सं. 950
14. वही
15. कौटिल्य अर्थशास्त्र, अनुवाद—प्रो. प्राणनाथ विद्यालंकार (मोतीलाल बनारसीदास, 1923 ई.) पृ. सं. 33
16. कामंदकीयनीतिसारः, अनुवाद—पं. ज्वाला प्रसाद मिश्र (खेमराज कृष्णदास, बंबई सम्वत् 1961) पृ. सं. 6
17. ऋग्वेद, अनुवाद—डॉ. गंगा सहाय वर्मा (संस्कृत साहित्य प्रकाशन, 2016 ई.)



भारत में परम्परागत जल प्रबंधन प्रणालियाँ

अशोक कुमार

सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग
जीडीसी मेमोरियल महाविद्यालय,
बहल, भिवानी (हरियाणा)

सारांश

‘जल ही जीवन है’ यह उक्ति मानव सभ्यता की आधारशिला रही है। जल के अभाव में न केवल मानव जीवन, बल्कि सम्पूर्ण प्रकृति का अस्तित्व संकट में पड़ जाता है। वर्तमान समय में जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि, औद्योगीकरण एवं प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के फलस्वरूप जल संकट वैश्विक स्तर पर एक गंभीर समस्या बन चुका है। प्रस्तुत शोध पत्र जल संकट की विकरालता का विश्लेषण करते हुए भारत की प्राचीन एवं समृद्ध जल संरक्षण परम्पराओं: जैसे बावड़ियाँ, तालाब, कुएँ एवं झीलों के महत्त्व को रेखांकित करता है। यह आलेख हमें परंपरागत जल प्रबंधन प्रणालियों की पुनर्स्थापना की प्रेरणा देता है, साथ ही वर्षा जल संचयन की आधुनिक एवं वैज्ञानिक विधियों को अपनाने की आवश्यकता पर बल देता है, जिससे भावी पीढ़ियों हेतु स्वच्छ जल की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके। जल संरक्षण न केवल पर्यावरणीय उत्तरदायित्व है, अपितु यह सांस्कृतिक धरोहर की पुनर्स्मृति भी है।

मुख्य केंद्र बिंदु :- जल का महत्त्व, वर्तमान जल संकट, प्राचीन जल संरक्षण प्रणालियाँ, परम्परागत ज्ञान की प्रासंगिकता, वर्षा जल संचयन की आवश्यकता, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय जिम्मेदारी।

परिचय

जल समस्त प्राणिजगत का मूलधार है। भारतीय दार्शनिक परम्परा, साहित्य, एवं सांस्कृतिक चेतना में जल को न केवल जीवनदायी तत्व के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, अपितु उसे सृष्टि के अस्तित्व का अनिवार्य अंग माना गया है। ऋषियों-मनीषियों ने ‘जल ही जीवन है’ के सिद्धांत को न केवल दार्शनिक रूप में व्याख्यायित किया, अपितु इसे व्यवहारिक जीवनशैली में भी समाहित किया। वर्तमान युग में कृषि, उद्योग, एवं घरेलू प्रयोजनों हेतु जल का अनियंत्रित दोहन एवं अपव्यय चिंताजनक स्तर तक पहुँच चुका है। इसके विपरीत, भारतवर्ष में हड़प्पा सभ्यता से लेकर मुगल काल तक जल संचयन, संरक्षण एवं सतत उपयोग हेतु विविध नवाचार विकसित किए गए जैसे बावड़ियाँ, जोहड़, सरोवर, तालाब, कुएँ, खडिन आदि जिनमें से अनेक संरचनाएँ आज भी अपनी उपयोगिता सिद्ध कर रही हैं। यह सुस्पष्ट करता है कि भारत में जल प्रबंधन का एक समृद्ध, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक परंपरा से समन्वित इतिहास रहा है।

वैदिक साहित्य से लेकर उपनिषदों तक जल की महत्ता, गुणवत्ता एवं संरक्षण की बारम्बार चर्चा की गई है। छान्दोग्य उपनिषद में स्पष्ट कहा गया है कि जल ही जीवन का मूल स्रोत है। महान आयुर्वेदाचार्य सुरपाल का कथन “दस कुएँ एक

तालाब के बराबर, दस तालाब एक झील के बराबर, दस झीले एक पुत्र के समान और दस पुत्र एक वृक्ष के बराबर” इस बात को रेखांकित करता है कि जल, वानस्पतिक जीवन एवं मानव समाज के मध्य कितनी घनिष्ठ अंतःसंबद्धता है। आज एक ओर जल की प्रति व्यक्ति उपलब्धता निरंतर क्षीण होती जा रही है, वहीं दूसरी ओर नहरों द्वारा दीर्घकालीन एवं अवैज्ञानिक सिंचाई पद्धतियों ने जलप्लावनता, लवणीयता एवं क्षारीयता जैसी समस्याओं को जन्म दिया है, जिससे उपजाऊ भूमि बंजर होती जा रही है। भू-जल का अत्यधिक दोहन एवं पुनर्भरण की न्यूनतम व्यवस्था के कारण भूजल स्तर प्रतिवर्ष एक से तीन मीटर तक गिरता जा रहा है।

जल संकट केवल प्रत्यक्ष कारणों जैसे प्रदूषण या उपभोग की अधिकता से ही उत्पन्न नहीं हुआ है, बल्कि इसके पीछे वर्षा जल के अपर्याप्त संचयन एवं पारंपरिक जल संरचनाओं की उपेक्षा भी प्रमुख कारक हैं। भारत में मानसून अवधि अल्पकालिक होने के कारण अधिकांश वर्षा केवल दो से तीन महीनों तक सीमित रहती है, जबकि उसका अधिकांश भाग बिना उपयोग के बह जाता है। अतः यह समय की माँग है कि हम अपने प्राचीन जल संरक्षण विज्ञान को पुनर्जीवित करें एवं आधुनिक तकनीकों के साथ उसे समन्वित कर जल संसाधनों का संरक्षण करें, जिससे जल का सतत विकास और समुचित उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके। यह न केवल पर्यावरणीय आवश्यकता है, बल्कि हमारी सांस्कृतिक विरासत की पुनर्पुष्टि भी है।

उद्देश्य :-

1. जल संरक्षण की अनिवार्यता एवं इसके बहुआयामी महत्व का विश्लेषण करना।
2. जल संचयन की परंपरागत प्रणालियों का व्याख्यात्मक अनुशीलन करना।
3. वर्षा जल संचयन एवं आधुनिक जल संरक्षण तकनीकों का विवेचन करना।

परिकल्पनाएँ :

1. परंपरागत जल स्रोतों के निरंतर उपेक्षित रहने से जल संसाधनों की संभाव्य उपयोगिता में निरंतर क्षरण हो रहा है।
2. प्राचीन जल संचयन संरचनाओं के पुनरुद्धार एवं नवप्रयोग से जल संकट की तीव्रता में उल्लेखनीय कमी लाई जा सकती है।
3. वर्षा जल संचयन तथा जल संसाधनों के विवेकपूर्ण एवं सतत उपयोग द्वारा जल संरक्षण को स्थायित्व प्रदान किया जा सकता है।

जल संरक्षण का आशय :-

जल संरक्षण का तात्पर्य जल की अनावश्यक बर्बादी, दुरुपयोग एवं प्रदूषण को नियंत्रित करने से है। चूंकि वर्षा जल सीमित एवं ऋतुपरक है, अतः इसका संचयन एवं संरक्षण अनिवार्य है। पृथ्वी पर उपलब्ध जल का मात्र 3 प्रतिशत भाग ही मीठा जल है, जिसमें से अधिकांश भाग हिमनदों एवं ध्रुवीय क्षेत्रों में स्थिर है। जल के स्वरूप मुख्यतः निम्न प्रकार के होते हैं।

1. तरल जल: समुद्र, नदियाँ, सरोवर, कुएँ, आदि।
2. ठोस जल: बर्फ के रूप में हिमालय व ध्रुवों पर।
3. वाष्प रूप: वायुमंडल में बादलों व जलवाष्प के रूप में।

भारत में जल संरक्षण की परंपरा :-

भारत में जल संरक्षण की प्रणालियाँ प्राकृतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कारकों के अनुरूप विकसित हुई हैं। विशेष रूप से राजस्थान जैसे जलाभावग्रस्त क्षेत्र में पर्यावरण के अनुरूप उच्चस्तरीय जल संरचनाओं का सृजन किया गया। स्थापत्य कला में दक्ष राजाओं, व्यापारियों एवं समाजसेवियों ने लोकस्मृति हेतु कलात्मक बावड़ियों, कुंडों, तालाबों आदि का निर्माण कराया।

महत्त्वपूर्ण पारंपरिक जल संरचनाएँ (भारत के विविध भू-आंचलिक परिप्रेक्ष्य में)

भारत में पारंपरिक जल संरचनाएँ न केवल जल संरक्षण की प्रभावी विधियाँ रही हैं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन का अभिन्न अंग भी रही हैं। इन संरचनाओं का निर्माण स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों, वर्षा की मात्रा, मिट्टी की प्रकृति, जनसंख्या की आवश्यकता एवं उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप किया जाता रहा है।

1. तालाब/बांधियाँ :-

ये प्राकृतिक अथवा कृत्रिम जलाशय होते हैं जिनमें वर्षा जल का संचयन होता है। इनका निर्माण गाँवों या नगरों की सीमा पर किया जाता है। गहरे स्थान पर 'बेरी' नामक कुएँ निर्मित किए जाते हैं, जो भूजल पुनर्भरण में सहायक होते हैं। ये जलाशय सिंचाई, पशुपालन, घरेलू कार्यों के साथ-साथ पारिस्थितिक संतुलन में भी सहायक हैं।

2. जोहड़ :-

हरियाणा व राजस्थान में प्रचलित जोहड़ लघु चेक डैम जैसे संरचनाएँ होती हैं। ये वर्षा जल का संचयन कर भूजल स्तर में सुधार लाती हैं। ग्रामीण समुदाय द्वारा सामूहिक श्रम (श्रमदान) से इनका निर्माण किया जाता है।

3. बावड़ी/बेर :-

ये बहुस्तरीय संरचनाएँ होती हैं, जिनमें सीढ़ियाँ जल तक पहुँचने के लिए बनाई जाती हैं। राजस्थान, गुजरात एवं मध्य प्रदेश में अत्यधिक प्रचलित। स्थापत्य कला की दृष्टि से यह संरचनाएँ अद्वितीय होती हैं (उदाहरण दृ अडालज की बावड़ी)। इनमें वाष्पन न्यूनतम होता है, जिससे जल लंबे समय तक संरक्षित रहता है।

4. झालर :-

सामाजिक और धार्मिक आयोजनों हेतु उपयोग में लाई जाने वाली संरचनाएँ। ये आयताकार जलाशय होते हैं, जो सीमित समुदाय विशेष की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निर्मित किए जाते हैं।

5. जल मंदिर/सीढ़ीनुमा कुएँ :-

राजस्थान एवं गुजरात में जल मंदिरों का धार्मिक महत्त्व भी है। इनका निर्माण वैज्ञानिक ढंग से जल की शुद्धता, तापमान नियंत्रण एवं भूजल पुनर्भरण हेतु किया जाता था।

6. कुण्ड :-

ये भूमिगत जलाशय होते हैं, विशेषतः धार्मिक कार्यों में प्रयुक्त। इनका निर्माण आमतौर पर मंदिर परिसरों में किया जाता था। मरुस्थलीय क्षेत्रों में पेयजल संग्रहण हेतु ये अत्यंत उपयुक्त हैं।

7. टांका :-

राजस्थान में प्रचलित टांका चूने से लेपित भूमिगत टैंक होते हैं जिनमें छत या आँगन से वर्षा जल एकत्र होता है। ये पूर्णतः ढके होते हैं जिससे वाष्पन न्यूनतम होता है एवं जल की शुद्धता बनी रहती है।

8. कुहल :-

हिमालयी राज्यों (हिमाचल प्रदेश) में प्रयुक्त पारंपरिक जलवाहिनी प्रणाली। ये नहरें ग्लेशियर पिघलन से उत्पन्न जल को दूरस्थ गाँवों तक पहुँचाती हैं। यह प्रणाली सामुदायिक सहमति एवं स्थानीय स्वशासन द्वारा संचालित होती है।

9. गड़ :-

असम में विकसित यह पारंपरिक जल निकासी प्रणाली है, जो मुख्यतः वर्षा ऋतु में खेतों से अतिरिक्त जल को बाहर निकालकर सिंचाई में भी उपयोग में लाई जाती है।

10. नाड़ी :-

राजस्थान के थार क्षेत्र में उपयोग की जाने वाली यह संरचना वर्षा जल के संचयन हेतु बनाई जाती है। इनका जल 7-8 महीनों तक उपयोग योग्य रहता है, किंतु प्रदूषण एक बड़ी चुनौती है।

11. टोबा :-

ये विस्तृत जलग्रहण क्षेत्र वाले गहरे पोखर होते हैं। सीमित सिंचाई, पशुपालन एवं घरेलू उपयोग के लिये उपयुक्त होते हैं। मरुस्थल में जीवन रेखा के रूप में कार्य करते हैं।

12. खड़ीन :-

पश्चिमी राजस्थान में अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में विकसित प्रणाली, जिसमें मिट्टी की पाल बनाकर वर्षा जल को एकत्र किया जाता है। यह प्रणाली कृषि हेतु उपजाऊ मिट्टी बनाए रखने में सहायक है।

13. कुई/बेरी :-

यह प्रणाली मरुस्थलीय क्षेत्रों में विकसित की गई, जहाँ तालाब से रिसने वाले जल को संरक्षित करने हेतु गहरे कुएँ बनाए जाते हैं। ये संरक्षित, छायायुक्त एवं स्वच्छ जल का स्रोत होते हैं।

जल संरक्षण हेतु सहित सुझाव

जल संरक्षण कोई एकल व्यक्ति का कार्य नहीं, बल्कि यह एक सामूहिक उत्तरदायित्व है जिसे नीति, शिक्षा, संस्कृति और व्यवहार परिवर्तन के माध्यम से व्यवहार में लाना आवश्यक है।

मुख्य सुझाव इस प्रकार हैं :-

अपशिष्ट जल का शोधन: घरेलू एवं औद्योगिक अपशिष्ट जल को बिना शोधन के नदियों/जलाशयों में न छोड़ा जाए। जैविक, रासायनिक एवं भौतिक प्रक्रियाओं द्वारा शुद्धिकरण के बाद ही जल निकासी हो।

विवेकपूर्ण जल उपयोग: दैनिक जीवन, कृषि व उद्योगों में जल का मितव्ययी उपयोग किया जाए। रिसाव रोकने हेतु पाइपलाइन मरम्मत, सिंचाई में टपक/फव्वारा विधि अपनाना आवश्यक है।

वैज्ञानिक जल संवहन प्रणाली: जल वितरण व्यवस्था को सुधारने हेतु आधुनिक तकनीकों जैसे स्मार्ट सेंसर, ठै आधारित मानचित्रण आदि का प्रयोग किया जाए।

स्थानीय जल स्रोतों का सशक्तिकरण: प्रत्येक गाँव में एक या एक से अधिक जलाशयों का निर्माण/पुनरुद्धार किया जाए। इससे भूजल स्तर संतुलित होगा और जल आत्मनिर्भरता बढ़ेगी।

वर्षा जल संचयन की अनिवार्यता: सभी सार्वजनिक, शैक्षणिक एवं आवासीय भवनों में वर्षा जल संचयन प्रणाली को अनिवार्य किया जाए एवं इसे शहरी नियोजन का अभिन्न भाग बनाया जाए।

भूजल पुनर्भरण प्रणाली का विकास: शहरी क्षेत्रों में अपशिष्ट जल को रिचार्ज कुओं के माध्यम से भूमिगत जल में प्रविष्ट किया जाए। इससे घटते जल स्तर की समस्या का समाधान हो सकेगा।

वृक्षारोपण व वन संरक्षण: वृक्ष न केवल वर्षा आकर्षित करते हैं, बल्कि जलस्तर को बनाए रखने में भी सहायक होते हैं। 'एक व्यक्ति, एक वृक्ष' अभियान प्रारंभ किया जा सकता है।

सामुदायिक जागरूकता: विद्यालयों, ग्राम सभाओं एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा जल संरक्षण विषय पर कार्यशालाएँ, रैलियाँ एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ।

पारंपरिक जल प्रणालियों का पुनरुद्धार: स्थानीय समाज के सहयोग से पारंपरिक जल संरचनाओं का पुनरुद्धार, सफाई, और उपयोग में लाना वर्तमान जल संकट का स्थायी समाधान है।

नीतिगत प्रयास: सरकार द्वारा जल संरक्षण को बढ़ावा देने हेतु आर्थिक प्रोत्साहन, अनुदान, कर में छूट एवं कठोर दंडात्मक प्रावधान लागू किए जाने चाहिए।

निष्कर्ष

“जल है जीवन का आधार, इसके बिना संसार बेकार।”

भारत के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में जल संरक्षण सदैव एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। प्राचीन भारत में हमारे पूर्वजों ने जल के प्रबंधन हेतु वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया था। उन्होंने भूगर्भ जल के पुनर्भरण एवं सतही जल के संचयन हेतु ऐसी पारंपरिक संरचनाएं विकसित की थीं जो आज भी प्रासंगिक हैं। वर्तमान युग में, जबकि जलवायु परिवर्तन एवं भूजल संकट विकराल रूप ले चुके हैं, यह अत्यंत आवश्यक है कि वर्षा जल का अधिकतम संचयन कर, आधुनिक सिंचाई प्रणालियों (ड्रिप, स्प्रिंकलर आदि) को अपनाया जाए, भूमिगत जल का विवेकपूर्ण दोहन किया जाए एवं पारंपरिक जल स्रोतों का संरक्षण सुनिश्चित किया जाए। जल के संरक्षण हेतु जीवनशैली में संयम व मितव्ययता को आत्मसात करना होगा। कृषि क्षेत्र में जल उपयोग की दक्षता बढ़ाने हेतु समुचित फसल चक्र अपनाना चाहिए तथा जल-संवेदनशील कृषि पद्धतियाँ लागू करनी चाहिए। इस प्रकार हम अपने पूर्वजों की धरोहरों को संरक्षित रखते हुए, भावी पीढ़ियों के लिए एक समृद्ध जल-परिसंपन्न भविष्य सुनिश्चित कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. Narwani, G.S. 2005, Water management. Rawat Publication, Jaipur. pp 27.36
2. Biswa, A.K. 2001; Missing and neglected links in Water Management, Water Science and Technology, 43(4), pp 45.50.
3. P. Babu Rao, S. Madhava Rao, 1998; Artificial recharge of ground water from rooftop and open lands in urban areas of Hyderabad and Secunderabad. A.P., India, Proceeding of Seminar on Artificial Recharge of Ground Water, Central Ground Water Board, New Delhi. India, Dec. 15.16 pp V.Ii to V.18
4. C.P. Singh, 1998; Roof water harvesting and rainwater management, Proceeding of Seminar on Artificial recharge of Groundwater, Central Ground Water Board, New Delhi, India, Dec. 15.16, pp. VI
5. पाठक. ग. कु. 2005, भारतीय जीवन शैली में जल प्रबंधन, भागीरथ पत्रिका, नई दिल्ली, अंक-1 पृ. 1.
6. मोदी, अ. 2007, बढ़ता जल संकट गंभीर चुनौती। कुरुक्षेत्र पत्रिका, अंक - 7 पृ. 8।
7. जाट, बी.सी. (2000) जल ग्रहण प्रबंधन, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर।
8. गुर्जर, ए. रामकुमार (2012) जल प्रबंधन विज्ञान, पोइन्ट पब्लिशर्स, जयपुर।



मुंगेर प्रमण्डल का ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्त्व

शुभम कुमार

शोधार्थी

बाबासाहेब भीमराव अम्बेदकर बिहार
विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

डॉ. दिलीप कुमार यादव

शोध निर्देशक

सहायक आचार्य, इतिहास विभाग,
लंगट सिंह महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

सारांश

पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों से विदित है कि मुंगेर प्रमण्डल ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। प्रागैतिहासिक काल से ही मुंगेर प्रमण्डल के विभिन्न क्षेत्रों में मानवीय क्रियाकलाप के साक्ष्य मिलते हैं। छठी शताब्दी ई. पूर्व में मुंगेर का क्षेत्र अंग महाजनपद का हिस्सा था। विभिन्न कालावधि में यह क्षेत्र भिन्न-भिन्न साम्राज्यों के अधीन रहा। 1832 ई. में प्रशासनिक दृष्टिकोण से मुंगेर क्षेत्र का स्वतंत्र अस्तित्व सामने आने की प्रक्रिया की शुरुआत हुई। वर्तमान में इस प्रमण्डल के अन्तर्गत कुल छः जिले आते हैं— मुंगेर, लखीसराय, जमुई, शेखपुरा, बेगुसराय एवं खगड़िया। इन सभी क्षेत्रों का अपना एक इतिहास है जो इस सम्पूर्ण क्षेत्र को ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण बनाता है। इसके ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्ता को प्रकाश में लाने का कार्य तब शुरू हुआ जब 1807 ई. - 1815 ई. के दौरान तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड बेलेस्ली ने फ्रांसिस बुकानन को सर्वेक्षण हेतु उत्तरी बिहार भेजा। इसके बाद कनिंघम एवं उनके तीन सहायकों जे0 डी0 बैंगलर, ए0जी0 कलाईल, एच0 वी0 डब्ल्यू गैरिक द्वारा मुंगेर क्षेत्र में व्यापक पुरातात्विक सर्वेक्षण का कार्य किया गया। आजादी के बाद ए0एस0 अलतेकर, डी0सी0 सरकार, राधा कुमुद मुखर्जी, अनिल कुमार आदि इतिहासकारों एवं पुराविदों ने इन क्षेत्रों में पुरातात्विक खोजों का सिलसिला जारी रखा और आज भी यह सिलसिला जारी है। मुंगेर प्रमण्डल के ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्ता के कारण ही यहाँ कई स्थानों को राज्य सरकार द्वारा संरक्षण प्राप्त है जिनमें मुंगेर किला, लय की पहाड़ी, नोनगढ़ का टीला, घेसीकुण्डी, लाली पहाड़ी, शृंगी ऋषि धाम, हेरसाई स्तूप आदि प्रमुख हैं। अपने ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्ता के कारण आज मुंगेर प्रमण्डल ऐतिहासिक, पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक पर्यटन की असीम संभावनाओं को उजागर करता है जो मुंगेर प्रमण्डल के क्षेत्रीय इतिहास को प्रकाश में लाने, रोजगार की समस्या का समाधान करने और स्थानीय धरोहरों एवं विरासतों के संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु मील का पत्थर साबित हो सकती है।

मुख्य शब्द - मुंगेर प्रमण्डल, पुरातात्विक, ऐतिहासिक, पर्यटन, धरोहर, विरासत।

9862.5 वर्ग किलोमीटर¹ में फैला मुंगेर प्रमण्डल बिहार राज्य का एक अभिन्न अंग है। वर्तमान में इस प्रमण्डल के अन्तर्गत मुंगेर सहित कुल छः जिले आते हैं जो इस प्रकार हैं— मुंगेर, खगड़िया, बेगुसराय, लखीसराय, जमुई एवं शेखपुरा। साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से विदित है कि इस प्रमण्डल की प्राचीनता पूर्व ऐतिहासिक काल तक जाती है परन्तु मुंगेर प्रमण्डल के वर्तमान स्वरूप में आने की प्रक्रिया की विधिवत् शुरुआत औपनिवेशिक काल के दौरान सन् 1832 ई. से मानी जाती है जब यहाँ स्वतंत्र रूप से राजस्व वसूल करने का केन्द्र बनाया जाता है तथा यहाँ डिप्टी मजिस्ट्रेट के साथ-साथ डिप्टी

कलक्टर की भी नियुक्ति की जाती है जो कि 1832 ई. से पहले भागलपुर जिला के प्रशासनिक नियंत्रण में आता था।¹² समय-समय पर इसकी सीमाओं में परिवर्तन होता रहा और प्रशासनिक सुविधा के दृष्टिकोण से मुंगेर क्षेत्र के विस्तृत भूभाग को छः खण्डों में विभाजित कर वर्तमान मुंगेर प्रमण्डल का निर्माण किया गया। इस प्रमण्डल के निर्माण की विधिवत् शुरुआत के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण घटना यह घटी कि लगभग इसी समयावधि (19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध) के दौरान इन क्षेत्रों में ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक अन्वेषण की शुरुआत हुई जिसके माध्यम से इस क्षेत्र की ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्ता उजागर हुई। सन् 1784 ई. में 'सर विलियम जोन्स' द्वारा कलकत्ता में स्थापित 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' द्वारा एशिया खण्ड के इतिहास, साहित्य, स्थापत्य, धर्म, समाज, विज्ञान आदि विषयों की खोज की जा रही थी। जब हेनरी कोलब्रुक को इस संगठन की जिम्मेबारी दी गयी तभी 1807 ई. में अंग्रेजी सरकार द्वारा प्रसिद्ध पुराविद् डॉ. बुकानन को बिहार, बंगाल एवं आसाम प्रान्तों में अन्वेषण का कार्य सौंपा। डॉ. बुकानन ने सन् 1911-13 ई. तक बिहार संबंधी विवरण को तैयार कर लिया था जिसका प्रकाशन अनेक वर्षों बाद बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी (पटना) द्वारा कई खण्डों में किया गया। लार्ड कैनिंग के समय सन् 1906 ई. में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की स्थापना की गयी जिसका निर्देशक जनरल कनिंघम को बनाया गया। कनिंघम ने मुंगेर क्षेत्र का व्यापक भ्रमण किया और यहाँ कई बौद्ध मठों के होने की बात कही।¹³ कनिंघम के बाद उनके सहयोगी जे0डी0 बेगलर, ए0जी. कलाईल, एच0वी0 डब्लु गैरिक ने उनका कार्य जारी रखा। इसके बाद श्री वर्गिस, जॉन मार्शल, डी0वी0 स्पूनर, ए0एस0 अल्लेकर, मार्टीमर व्हीलर, एन0पी0 चक्रवर्ती, श्री अमलानंद घोष, डी0सी. सिरकार, फ्रेडरिक एम0 एशर, एस0 हान्टिंगटन, डी.के. चक्रवर्ती, राधा कुमुद चौधरी, क्लावडीन वुट्ज पिक्कान, डॉ. अनिल कुमार आदि पुराविदों एवं इतिहासकारों के निर्देशन में तथा विभिन्न संस्थाओं यथा : भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, के.पी0 जायसवाल शोध संस्थान, बिहार अनुसंधान समिति, पुरातत्व निदेशालय (बिहार), प्राचीन भारतीय एवं पुरातत्व विभाग (पटना विश्वविद्यालय), बिहार विरासत विकास समिति, कलकत्ता विश्वविद्यालय आदि समय-समय पर मुंगेर प्रमण्डल के विभिन्न क्षेत्रों में सर्वेक्षण एवं उत्खनन के माध्यम से इन क्षेत्रों के ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्ता को उद्घाटित किया गया तथा आज भी यह कार्य जारी है।¹⁴ यही कारण है कि पर्याप्त उपलब्ध पुरातात्विक साक्ष्यों एवं सांस्कृतिक साक्ष्यों के आधार पर हम बिहार के विभिन्न हिस्सों में विकसित हुए इतिहास एवं संस्कृति को ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आधार देने में सक्षम हैं। इन्हीं आधारों पर मुंगेर प्रमण्डल के ऐतिहासिक घटनाक्रम को निम्न कालावधि में बाँटकर समझ सकते हैं—

1. पूर्व-ऐतिहासिक काल
2. ऐतिहासिक काल

पूर्व ऐतिहासिक काल

मुंगेर प्रमण्डल के मुंगेर जिलान्तर्गत भीमबाँध और पैसरा नामक स्थल से प्राक ऐतिहासिक संस्कृति से संबंधित महत्वपूर्ण साक्ष्य मिले हैं। पैसरा में पाँच स्थलों पर उत्खनन कराया गया जिसके फलस्वरूप पुरापाषाण काल एवं मध्य पाषाण काल के औजार, मिट्टी के बर्तन एवं मानवीय अवशेष मिले हैं जो इस बात का सूचक है कि गंगा एवं अन्य नदियों के किनारे फैला यह विशाल मैदानी क्षेत्र प्रागैतिहासिक काल से ही मानवीय अधिवास एवं क्रियाकलाप का केन्द्र रहा है।¹⁵

ऐतिहासिक काल

ऐतिहासिक कालान्तर्गत इस क्षेत्र के इतिहास को प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक काल में बाँट सकते हैं—

क) प्राचीन काल - रामायण में इस बात का वर्णन मिलता है कि भगवान श्री राम यहाँ श्रृंगिच्छि के आश्रम में अपनी ज्येष्ठ बहन शांता से मिलने आये थे। यह वही श्रृंगिच्छि हैं जिन्होंने श्रीराम को मानव रूप में धरती पर लाने के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ किया था। 'महाभारत' के सभापर्व (अध्याय 30/31) से ज्ञात होता है कि उस समय इसका नाम 'मोदगिरि' था जहाँ भीम के पूर्वी भारत जीतने का वर्णन है।¹⁶ 'नारदीय पुराण' से पता चलता है कि मुंगेर कभी 'चंपकतीर्थ' के नाम से विख्यात

था जिसका महात्म्य काशी के मणिकर्णिका घाट के समान पापनाशक था।⁷

वैदिक काल (1500 ई. पूर्व से 1000 ई. पूर्व तक) के दौरान मुंगेर के क्षेत्रों में अनायों का निवास था जिन्हें आर्य हेय दृष्टि से देखते थे। ऋग्वेद में 'कीकट' नामक एक प्रदेश की चर्चा मिलती है जिसका शासक परमांगद था। परवर्ती कृतियों में कहीं-कहीं पर मगध के लिए 'कीकट' का प्रयोग किया गया है। यजुर्वेद में मगध की चर्चा है और उसे आर्य सभ्यता एवं संस्कृति से अलग माना गया है, इसमें यहाँ के लोगों को ब्रात्य कहा गया। अथर्ववेद के एक सुक्त में यह इच्छा व्यक्त की गई है कि ज्वर से पीड़ित व्यक्ति अंग एवं मगध में जाए। इससे स्पष्ट है कि पूर्व वैदिक काल में मुंगेर का क्षेत्र आर्य संस्कृति के सम्पर्क में नहीं था। उत्तर वैदिक काल (1000 ई.पू से 800 ई.पू.) में जब लोहे के औजारों का उपयोग होने लगा तब जंगलों की कटाई के साथ तीव्र गति से सम्पूर्ण बिहार के क्षेत्रों का आर्यीकरण हुआ।⁸

छठी शताब्दी ई.पू. के आसपास मुंगेर का क्षेत्र अंग जनपद के अधीन था जिसकी राजधानी चम्पा थी। इसके पश्चिम में मगध राज्य स्थित था। बुद्ध के समय ही मगध राजा बिम्बिसार ने अंग राज्य को मगध में मिला लिया था। 'अंगुत्तर निकाय' व 'ललितविस्तार' में भी चर्चा मिलती है कि अंग का पूरा क्षेत्र मगध में मिलाया जा चुका था। महात्मा बुद्ध ने अपना सोलहवाँ वर्षावास 'चालिय' पर्वत पर व्यतीत किया, जो अंग के कृमिकाला (किउल) नदी के आस-पास कहीं है जिसे वर्तमान में लखीसराय के नाम से जाना जाता है। बुद्ध ने यहाँ तीन माह तक ठहरकर अपने उपदेशों से यहाँ के लोगों को लाभान्वित किया।⁹ जैन ग्रंथ 'औपपातिक सूत्र' में चम्पा नगरी का विस्तृत वर्णन मिलता जो अंग जनपद की राजधानी थी और यह पूरा क्षेत्र मगध साम्राज्य के अन्तर्गत आता था। महावीर स्वामी जो जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर थे उन्हें ज्ञान की प्राप्ति इसी मुंगेर क्षेत्र के जमुई नामक स्थान पर 'जृम्भिक ग्राम' में ऋजुपालिका नदी के तट पर 12 वर्ष की कठोर तपस्या के बाद 498 ई. पू. में प्राप्त हुई।¹⁰

मौर्य एवं मौर्योत्तर काल में भी इस क्षेत्र की महत्ता बनी रही। गुप्त काल में यह क्षेत्र गुप्त शासकों के विशाल साम्राज्य का हिस्सा बना रहा। मुंगेर किला के 'कष्टहारणी घाट' की एक शिला पर उत्कीर्ण 'गुप्तगढ़' शब्द से कुछ इतिहासकार इस क्षेत्र का तदात्म्य परवर्ती गुप्त शासकों से स्थापित करते हैं। हालाँकि इस विषय पर इतिहासकारों के बीच मतभेद है। गुप्तों के बाद मौखरिवंश का शासन रहा फिर हर्षवर्द्धन और शशांक जैसे शासकों ने इन क्षेत्रों पर अपना अधिपत्य स्थापित किया।¹¹

हर्षवर्द्धन के समय लगभग 7वीं शताब्दी के मध्य में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने मुंगेर क्षेत्र की यात्रा की। ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा वृत्तांत में तदयुगीन मुंगेर की सामाजिक, राजनीतिक एवं भौगोलिक दशा का चित्र सामने रखा। उस समय यह क्षेत्र खेतौरी राजा के अधीन था जिसे हर्षवर्द्धन ने पराजित किया। इसके बाद बंगाल के साथ-साथ इन क्षेत्रों पर गौड़ शासक शशांक का अधिकार हो गया। शशांक के मृत्यु के बाद पुनः हर्ष ने इस क्षेत्र को जीत लिया। उसने मगध गुप्त वंश के शासन (सातवीं पीढ़ी) माधव गुप्त को अपना अमात्य बनाकर उसे यह क्षेत्र सुपूर्द करके कन्नौज चला गया। ह्वेनसांग इन क्षेत्रों के भौगोलिक दशा पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि यह क्षेत्र पर्वतों एवं जंगलों से आच्छादित था। उसने इन क्षेत्रों में कई बौद्ध मठों एवं कुछ हिन्दू मंदिरों के होने की बात भी की थी।¹²

8वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कुछ समय तक इन क्षेत्रों में राजनीतिक अस्थायित्व बना रहा जबतक कि 743 ई. में पालवंश की स्थापना के बाद यह क्षेत्र पालशासकों के अधीन नहीं आ गया। पाल शासक धर्मपाल के पुत्र देवपाल के द्वारा सन् 843 ई. में लिखित मुंगेर-ताम्रपत्र, 849 ई. में लिखित नालंदा-ताम्रपत्र और नारायण पाल के 871 ई. में लिखित भागलपुर-ताम्रपत्र मिले हैं। ये सारे ताम्रपत्र मुंगेर के स्कंधवार (किले) से ही जारी किये गये थे। इन ताम्रपत्रों को पढ़ने का कार्य सन् 1781 ई. में सर चार्ल्स विलकिन्स द्वारा किया गया। पाल वंश के दौरान ही यहाँ पाल कला का विकास हुआ, जिसके अंश आज भी हमें कई मंदिरों, बौद्ध मठों, मूर्तियों आदि के रूप में देखने को मिलते हैं। पाल वंश के अंतिम शासक इन्द्रद्युम्न अपने शासन के अंतिम दिनों में मुंगेर के ही राजौना एवं इंदपै के आसपास अपनी राजधानी बनायी थी। पाल वंश के बाद कुछ समय तक यह क्षेत्र सेन वंश और फिर मिथिला के कर्नाट वंश के प्रभाव में था।¹³

(ख) मध्यकाल - 11वीं शताब्दी में इन क्षेत्रों में तुर्कों के आगमन के साथ ही मुस्लिम शासन की स्थापना हो जाती है। सल्तनत एवं मुगल काल के दौरान यह क्षेत्र बंगाल और दिल्ली के मध्य एक सम्पर्क क्षेत्रों जैसे सैनिक शिविरों एवं व्यापारिक केन्द्रों के रूप में इस्तेमाल होता रहा। 15वीं शताब्दी के दौरान शेरशाह ने कुछ समय के लिए इस क्षेत्र को अपने अधिपत्य में रखा। मुगलों की सत्ता कमजोर होने के बाद क्षेत्रीय नवाबों ने यहाँ अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली। 17वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इन क्षेत्रों में ब्रिटिश कम्पनी का आगमन होता है। कम्पनी यहाँ व्यापार करने आयी थी पर 18वीं शताब्दी के मध्य तक नवाबों और कम्पनी के बीच आर्थिक हितों का टकराव इतना बढ़ गया कि 1765 ई. में ब्रिटिश कम्पनी ने सम्पूर्ण बंगाल से नवाबों की सत्ता को उखाड़ फेंका और स्वयं राजनीतिक सत्ता का केन्द्र बन गयी।¹⁴

(ग) आधुनिक काल - 1765 ई. में सम्पूर्ण बंगाल पर अपनी सत्ता स्थापित करने के बाद ब्रिटिश कम्पनी के द्वारा इन क्षेत्रों में आर्थिक शोषण का दौर शुरू हुआ। इतिहासकार नवीन चन्द्र सेन कहते हैं कि ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के बाद भारत में अनंत अंधकारमयी रात्रि आरंभ हो गयी। ब्रिटिश शोषण के विरुद्ध लोगों का पहला प्रतिकार 1857 की क्रांति के रूप में देखने को मिला। किन्तु मुंगेर में तत्कालिन भागलपुर के कमिश्नर यूले ने इन क्षेत्रों में विद्रोह को फैलने से रोक दिया।

1864 ई. में मुंगेर एवं जमालपुर में बाह्य समाज की शाखाएँ खोली गयीं। इस अवसर पर केशव चन्द्रसेन एवं राजनारायण बसु यहाँ आये थे। 1870 ई. में स्वामी दयानन्द सरस्वति ने मुंगेर की यात्रा की थी। 1877 ई. में कुछ बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों जैसे कमल भट्टाचार्य, गोपाल चन्द्र सेन आदि द्वारा मेरिएट क्लब, ओरिएंट क्लब आदि संस्थाएँ खोली गयीं।¹⁵ 1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हो जाने के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन में तीव्रता आयी जिसका प्रभाव मुंगेर क्षेत्र पर भी पड़ा। 1895 ई. में चेदी प्रसाद चौधरी एवं पंडित हरि मोहन मिश्रा द्वारा थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना यहाँ की गयी। 1897 ई. में इन क्षेत्रों में आर्य समाज का आगमन हुआ। स्वामी नित्यानंद एवं स्वामी विश्वेश्वरानंद ने यहाँ के लोगों को आर्य समाज के सिद्धांतों से अवगत कराया। सन् 1905 ई. में बंगाल विभाजन के विरोध में बंगभंग विरोधी आन्दोलन शुरू हुआ तो मुंगेर ने भी इसमें पूरा सहयोग दिया। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने मुंगेर आकर लोगों से विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार एवं स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने की अपील की। डॉ. श्री कृष्ण सिंह ने मुंगेर में ही गंगा जल को अपने हाथों में लेकर कसम खायी थी कि वो तब तक नहीं रुकेंगे जब तक देश आजाद नहीं हो जाता। 1919 ई. में जब रॉलेक्ट एक्ट के विरोध में आन्दोलन शुरू हुआ तो बिहार समेत मुंगेर में भी कई जगहें सभाएँ आयोजित की गयीं।¹⁶

1920 ई. में मौलाना शौकत अली खिलाफत आन्दोलन का समर्थन जुटाने बिहार आए और 27 अप्रैल को मुंगेर में अपना भाषण दिया। खिलाफत आंदोलन के समर्थन में मुंगेर के ही एक प्रसिद्ध बैरिस्टर मोहम्मद जुबैर ने अपनी वकालत छोड़ दी। मोहम्मद जुबैर के नेतृत्व में मुंगेर क्षेत्र में कई कार्य किए गये। असहयोग आंदोलन के दौरान बिहार समेत मुंगेर के विभिन्न क्षेत्रों जैसे असरगंज, गोगरी, खड़गपुर, खगड़िया, बेगूसराय और तारापुर में राष्ट्रीय विद्यालय खोले गये। इन शिक्षण संस्थाओं के प्रबंधन की जिम्मेदारी राष्ट्रीय शिक्षा पर्षद को दिया गया और मुहम्मद जुबैर को भी सदस्य के रूप में इसमें शामिल किया गया। इन्हें प्रांतीय कांग्रेस कमिटी में भी सदस्य बनाया गया। 5 दिसम्बर 1923 ई. को मौलाना शौकत अली की अध्यक्षता में मुंगेर के लखीसराय में खिलाफत सम्मेलन की बैठक आयोजित की गयी।¹⁷

1926 ई. के दौरान रचनात्मक कार्यों को बढ़ावा देने हेतु, स्वयंसेवकों की संख्या बढ़ाने, कांग्रेस सदस्यों की संख्या बढ़ाने एवं कांग्रेस की शाखाओं को खोलने हेतु मुंगेर में 11 शिविर खोले गये। बिहार प्रांतीय सम्मेलन का 28वाँ सम्मेलन 6 दिसम्बर, 1926 को मुंगेर में आयोजित हुआ। सम्मेलन में सभापति राजेन्द्र प्रसाद की अनुपस्थिति में श्री रामदयालु सिंह ने उनका अध्यक्षीय भाषण पढ़ा। इस सम्मेलन में स्वाधीनता का प्रस्ताव पारित किया गया।¹⁸

1927 ई. में जब महात्मा गाँधी दूसरी बार बिहार आए तो मुंगेर एवं बेगूसराय में सभाओं का आयोजन किया गया और मुंगेर के लखीसराय में आजादी के आन्दोलन को गति देने हेतु कांग्रेस मुख्यालय का उद्घाटन किया तथा उसका नाम चितरंजन आश्रम रखा।¹⁹

1930 ई. के दौरान मुंगेर जिला में बाबू श्री कृष्ण सिंह के नेतृत्व में नमक सत्याग्रह शुरू हुआ। 17 अप्रैल को वो अपने

स्वयंसेवकों के साथ बेगूसराय के गरहरा गाँव के लिए निकले। 19 अप्रैल को दक्षिण मुंगेर में नन्द कुमार सिंह द्वारा नमक सत्याग्रह शुरू किया गया। 22 अप्रैल को बड़हिया में श्री तेजा सिंह के मंदिर में नमक बनाने का केन्द्र खोला गया। 23 अप्रैल को शाह मुहम्मद जुबैर और श्री नेमधारी सिंह के नेतृत्व में मुंगेर में नमक कानून भंग किया गया। सरकार द्वारा दमनात्मक कार्यवाहियाँ की गयी।²⁰

15 फरवरी 1932 ई. को सैंकड़ों की संख्या में काँग्रेसी स्वयंसेवक मुंगेर के तारापुर क्षेत्र में थाना भवन पर झंडा फहराने का प्रयत्न कर रहे थे तभी सशस्त्र पुलिस बलों ने उनपर गोलियाँ चला दी जिसमें लगभग 15 लोग मारे गये और सैंकड़ों लोग घायल हुए।²¹ इस घटना ने लोगों को और भी उत्तेजित कर दिया। 24 अप्रैल 1932 को दिल्ली में काँग्रेस का 46वाँ वार्षिक अधिवेशन में मुंगेर जिला के 14 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया तथा इस अधिवेशन में मुंगेर के तारापुर के शहीदों के प्रति श्रद्धांजली अर्पित की गयी।²²

15 जनवरी, 1934 ई. में बिहार में भयंकर भूकम्प आया जिसमें सर्वाधिक नुकसान मुंगेर एवं उसके आस-पास के क्षेत्रों में हुआ। 20,000 से अधिक लोग हताहत हुए। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, महात्मा गाँधी, गोपाल कृष्ण गोखले, सरोजनी नायडू, जवाहर लाल नेहरू आदि नेताओं ने अपना कार्यक्रम स्थगित कर लोगों की सहायता हेतु यहाँ आए। लोगों ने निःस्वार्थ भाव से एक-दूसरे की मदद की। इससे लोगों में एकता की भावना का विकास हुआ जिसने लोगों को आजादी हेतु और भी ज्यादा तत्पर किया।²³

किसानों के शोषण से बिहार में भी कृषक आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। बिहार में 1922-23 ई. में ही मुंगेर में शाह मुहम्मद जुबैर की अध्यक्षता में किसान सभा की स्थापना हो चुकी थी। 4 मार्च, 1928 ई. को स्वामी सहजानंद सरस्वती द्वारा पटना में किसान सभा की औपचारिक स्थापना ने किसान आन्दोलन को एक नया मोड़ दिया। 16 एवं 20 नवंबर 1938 में मुंगेर के लखीसराय में दूसरा किसान सम्मेलन हुआ। किसान आंदोलन को गति देने हेतु श्री कार्यानंद शर्मा द्वारा मुंगेर के बड़हिया टाल में सत्याग्रह शुरू किया। किसानों ने बड़ी संख्या में उनका समर्थन किया।²⁴

मुंगेर की महिलाओं ने भी सम्पूर्ण राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान अपना अहम योगदान दिया। उनमें भी जागरण की लहर दौड़ रही थी। 25 जुलाई 1930 ई. को मोहम्मद जुबैर की पत्नी श्रीमती जुबैर ने पर्दा का परित्याग कर मुंगेर की एक सभा में भाषण दिया और बहिष्कार आंदोलन चलाने के लिए एक महिला समिति का गठन किया। चरखा समिति एवं अंगारा कोष आदि के माध्यम से यहाँ की महिलाओं ने आंदोलन को अपना समर्थन दिया। सरकार द्वारा कई महिलाओं को गिरफ्तार किया गया जिसमें मुंगेर से सोना देवी, श्रीमती ठाकुर देवी, पूर्ति देवी, लक्ष्मी देवी, अनूप देवी, सुशीला देवी, सरस्वती देवी आदि नाम उल्लेखनीय हैं। कुछ महिलाओं ने साहित्यिक रचनाओं द्वारा ब्रिटिश सत्ता का विरोध किया जिनमें इंदरा देवी, कमला सिन्हा, कांति करवाल, विद्या प्रकाश बिजली, विद्या देवी आदि नाम महत्वपूर्ण हैं।²⁵

1942 ई. की क्रांति के दौरान मुंगेर जिलान्तर्गत तारापुर में 18-19 जुलाई को काँग्रेसी कार्यकर्ताओं की एक महत्वपूर्ण सभा हुई जिसमें आचार्य कृपलानी, राजेन्द्र बाबू, श्री कृष्ण सिंह और श्री कृष्ण वल्लभ सहाय ने भाग लिया। अनुग्रह नारायण सिंह ने इस सम्मेलन की अध्यक्षता की। जनता का आक्रोश ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ बढ़ता ही जा रहा था। कहीं-कहीं इस आक्रोश ने हिंसात्मक रूप ले लिया। क्रांतिकारियों ने तारापुर, असरगंज, बेगूसराय, शेखपुरा, बरबीघा, लखीसराय आदि स्थानों के थानों पर राष्ट्रीय झंडा फहरा दिया। सरकार द्वारा दमनात्मक कार्यवाहियाँ की गयी। 'सामूहिक जुर्माना अध्यादेश' और 'भारत रक्षा अधिनियम' के तहत लोगों पर भारी जुर्माना लगाया गया एवं उन्हें गिरफ्तार किया गया पर ब्रिटिश सत्ता मुंगेर के लोगों की हिम्मत को नहीं तोड़ पायी क्योंकि यहाँ के लोग आजादी के लिए दृढ़ संकल्पित थे। अंततः 15 अगस्त 1947 ई. को देश स्वतंत्र हुआ और इस स्वतंत्रता को पाने में मुंगेर की भूमिका अतुलनीय रही जो इस सम्पूर्ण क्षेत्र को ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण बनाती है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मुंगेर प्रमण्डल ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक दृष्टिकोण से अत्यंत ही महत्वपूर्ण

रहा है हाँलाकि समय के निरन्तर बहाव में इस प्रदेश के इतिहास एवं भूगोल में परिवर्तन होता रहा परन्तु इसने समय के हरेक कालखण्ड में अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखी। इस विशिष्ट पहचान ने ही इस प्रदेश को ऐतिहासिक, पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक रूप से समृद्ध बनाए रखा जिसे आज भी हम अपनी विरासतों एवं धरोहरों के रूप में संजोए हुए हैं। परन्तु वर्तमान में आवश्यकता इन धरोहरों एवं विरासतों के संरक्षण एवं संवर्द्धन की है ताकि इनके माध्यम से क्षेत्रीय एवं स्थानीय इतिहास को बढ़ावा मिल सके; ऐतिहासिक, पुरातात्विक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक पर्यटन का विकास हो सके और स्थानीय लोगों को रोजगार मिल सके क्योंकि किसी इतिहासकार ने ठीक ही कहा है कि यदि हमारा इतिहास वर्तमान की समस्याओं के समाधान में निष्फल हो तो ऐसा इतिहास निरर्थक है। हाँलाकि इन क्षेत्रों में विरासतों एवं धरोहरों के संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु एवं पर्यटन विकास हेतु सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों के द्वारा सार्थक कदम उठाए जा रहे हैं परन्तु इनमें और दृढ़ ईच्छाशक्ति की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. state.bihar.gov.in
2. O'Malley, L.S.S., Bihar and Orissa District Gazetteers, Superintendant, Government Printing; Bihar and Orissa, Patna, 1926, Page.51
3. “सहृदय”, श्री हवलदार त्रिपाठी, बौद्ध धर्म और बिहार, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1998, पृष्ठ-225
4. मिश्र, डा० जयदेव तथा 'आर्य', डॉ. नवीन कुमार, पुरातत्व का इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2019, पृष्ठ-134
5. Pant, P.C. and Jayaswal, Vidul, Paisra.the stone age settlement of Bihar, Agam Kala Prakashan, Delhi, 1991, Page.17
6. “सहृदय”; हवलदार त्रिपाठी, बिहार की नदियाँ-ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सर्वेक्षण, प्रथम खण्ड, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2012, पृष्ठ-76-77
7. नारदीयपुराण, उत्तर खण्ड, अध्याय-41/43
8. सिंह, राजेश्वर प्रसाद नारायण, बिहार:अतीत के झरोखे से, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, 1986, पृष्ठ-33
9. “सहृदय”, श्री हवलदार त्रिपाठी, बौद्ध धर्म और बिहार, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1998, पृष्ठ-105
10. प्रसाद, ओम प्रकाश, बिहार एक ऐतिहासिक अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृष्ठ-76
11. सिंह, शंकरदयाल, बिहार एक सांस्कृतिक वैभव, डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ-20-21
12. शर्मा, ठाकुर प्रसाद, हैनसांग की भारत यात्रा (629-645 ई), आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद, 1972, पृष्ठ-331-332
13. “सहृदय”, श्री हवलदार त्रिपाठी, बिहार की नदियाँ - ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सर्वेक्षण, प्रथम खण्ड, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2012, पृष्ठ-79
14. झा, अमरजीत, बिहार : एक खोज, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2021, पृष्ठ-99
15. Chaudhary, P.C. Roy, Bihar District Gazetteers . Monghyr, Secreteriate Press, Patna, 1960, Page.56
16. दत्त, डॉ. के.के., बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, भाग-1, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2000, पृष्ठ-312,
17. वही, पृष्ठ-470
18. दत्त, डॉ. के.के., बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, भाग-2, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2014, पृष्ठ-42
19. यंग इंडिया, 1927-28, पृष्ठ-77
20. दत्त, डॉ. के.के., बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, भाग-2, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2014, पृष्ठ-81
21. बिहार प्रांतीय काँग्रेस कमिटी के प्राधिकार के अन्तर्गत प्रकाशित तारापुर गोलीकाण्ड का सच्चा विवरण, पृष्ठ-6-9

22. दत्त, डॉ. के.के., बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, भाग-2, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2014, पृष्ठ-181
23. -वही-, पृष्ठ-203
24. -वही-, पृष्ठ-309
25. झा, लाजवंती, विस्मृत चेहरे (स्वाधीनता आंदोलन में बिहार की स्वतंत्रता सेनानी महिलाएँ), प्रभात पेपर बैक्स दिल्ली, 2022, पृष्ठ-63



भारतीय नाट्यशास्त्र और परंपरागत रंगमंच

डॉ. शिवाश्री सिन्हा

शिक्षिका, शिक्षा विभाग

पी.एस.बुनियाद बिगहा, डोभी, गया शिक्षा विभाग

सारांश

‘नाट्यशास्त्र’ अथवा ‘पंचमवेद’ त्रिदेवों में ब्रह्म के आशीर्वाद तथा आज्ञानुसार ‘भरतमुनि’ के द्वारा सर्वप्रथम देवलोक में मंचित तथा इस पृथ्वी पर आम जनों के लिए लिखित रूप में रचित किया गया; जो कि भारतीय सभ्यता-संस्कृति के विभिन्न ललित कलाओं के उपजीव्य ग्रंथ के रूप में संपूर्ण विश्व के समक्ष प्रस्तुत है। जिसका उद्देश्य वेदों से संबंधी गूढ़ रहस्यों को सरल भाषा में समझाकर; आनंदित एवं सकारात्मक भावों को विकसित कर जीवन के विभिन्न स्वरूपों के अनुसार व्यवहार कर सफलता प्राप्त करना है। भरत मुनि कृत ‘नाट्यशास्त्र’; छः हजार श्लोकों तथा छत्तीस अध्यायों में विभक्त है। पहला अध्याय इसकी उत्पत्ति का वर्णन करता है वहीं दूसरा अध्याय प्रेक्षागृह अथवा रंगमंच अथवा नाट्यशालाओं का विस्तृत वर्णन करता है। तीसरा अध्याय रंगमंच के पैतालीस देवताओं की चर्चा करता है। चौथा अध्याय नृत्य शिक्षा से संबंधित है। पाँचवे अध्याय में पूर्वरंग विधान का वर्णन है। छठवाँ अध्याय रस को समर्पित है तथा सातवाँ अध्याय भाव से संबंधित है। आठवें से सत्ताईसवें अध्याय तक अभिनय तथा उससे संबंधित विषय का वर्णन है। अठाईसवें से चौतीसवें अध्याय तक संगीतशास्त्र तथा पैतीसवें अध्याय में मंच संबंधित नेपथ्य में कार्य से संबंधित विषय-वस्तु का वर्णन मिलता है। वहीं छत्तीसवाँ अध्याय अंतिम अध्याय है जहाँ नाट्यशास्त्र के अवतरित होने की पुनः व्याख्या की गई है। ‘नाट्यशास्त्र’ एक विश्वकोश है जिसमें शायद ही विश्व का कोई; ललित कला से संबंधी विषयों का समावेशन एवं विस्तृत वर्णन न किया गया हो। वर्तमान समय में इसे यूनेस्को के द्वारा ‘मेमोरी ऑफ द वर्ल्ड रजिस्टर’ में जोड़ा गया है। जिसकी उपयोगिता धरोहर के रूप में विश्व के समक्ष है।

कूट शब्द - नाट्यशास्त्र, नाट्यवेद, पंचमवेद, भरतमुनि, षट्साहस्री संहिता, द्वादशसाहस्री संहिता।

भारत प्राचीनतम काल से ही कला और साहित्य की विशाल विरासत का गढ़ रहा है। विश्व में शायद ही ऐसा कोई अन्य देश है जहाँ कला के वृहत्तम एवं विभिन्न स्वरूप प्राप्त होते हो। ‘भारत’ जिसका अर्थ ही है - वैसी भूमि जहाँ पर लोग हमेशा ज्ञान की खोज में लगे रहते हैं और उस ज्ञान का मूल स्रोत ‘श्रुति’ अर्थात् ‘वेद’ भारतीय ज्ञान परम्परा का वह ज्ञान कोश है, जिसमें लौकिक तथा परालौकिक सभी प्रकार के विषय शामिल हैं। परंतु यह ज्ञान का स्रोत कौंफ़ी समय तक ‘द्विजों’ के अधिकार क्षेत्र में रहा। जिससे आम जन उस ज्ञान से वंचित रहे। साथ ही अवसाद मुक्ति के लिए विभिन्न कलाओं जैसे नृत्य, संगीत, अभिनय, सौंदर्यशास्त्र आदि से भी अनभिज्ञ रहें। अतएव वेदों में कलाओं के रहस्य आम जन तक पहुंचाने के लिए ‘भरतमुनि’ के द्वारा ‘पंचमवेद’ के रूप में ‘नाट्यशास्त्र’ का उद्भव हुआ। नाट्यवेद के विषय में भरत कहते हैं—

“ना तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येस्मिन् यत्र विद्यते”।।

अर्थात् कोई ज्ञान, कोई शिल्प, कोई विद्या, कोई कला, कोई योग, कोई कर्म ऐसा नहीं है जो नाट्य में ना दिखाई देता हों। नाट्यवेद संपूर्ण ललित कलाओं का विश्वकोश है। नाट्यशास्त्र के उद्भव संबंधी दो भारतीय मत हैं— 1. दैवीय उत्पत्ति सिद्धांत 2. संवादयुक्त उत्पत्ति सिद्धांत

पौराणिक कथाओं के अनुसार, त्रेतायुग के अंत के बाद जब सतयुग का आगमन हुआ तो एकबार देवराज इंद्र ब्रह्म जी के पास गए और उनसे देवताओं के मनोरंजन के लिए कुछ साधन बताने का अनुरोध किया, जो दृश्य एवं श्रव्य दोनों हो। इंद्र और अन्य देवताओं की प्रार्थना के बाद ब्रह्मजी प्रसन्न हुए और उन्होंने चारों वेदों का सार लेकर एक नया वेद रचा। ऋग्वेद से जहाँ कथा-क्रम लिया गया वही सामवेद से संगीत; यजुर्वेद से भाव प्रदर्शन कला और अथर्ववेद से राग लिए गए और इस प्रकार ‘पंचम वेद’ अर्थात् ‘नाट्यवेद’ अथवा ‘नाट्यशास्त्र’ का उद्भव हुआ। तत्पश्चात् ब्रह्मजी ने इंद्र से कहा कि देवताओं द्वारा अभिनय की व्यवस्था की जाए; किंतु देवताओं ने नाट्य कला सीखने तथा उसका अभ्यास करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की तथा अनुरोध किया कि इस कला का प्रदर्शन ऋषियों द्वारा हों। तब ब्रह्मजी ने नाट्यवेद ऋषि भरत को सिखाया, फिर भरतमुनि ने अपने 100 पुत्रों को सिखाया तथा ब्रह्मजी के समक्ष नाट्य का अभिनय कराया। अतः नाट्य का विकास हुआ तथा नृत्य का प्रथम प्रदर्शन इंद्रध्वज उत्सव में हुआ। पहला नाटक असुरों की पराजय और देवताओं की विजय को अभिनय के द्वारा दर्शाया गया, जिससे असुर नाराज हो गए और नृत्य के दौरान उत्पात मचाने लगे। तब इंद्र के द्वारा उन्हें हटाया गया तथा ब्रह्मजी ने असुरों को यह समझाया कि नृत्य केवल मनोरंजन या आनंद का साधन नहीं है, बल्कि ब्रह्मंड के भावों को दर्शाने का सशक्त माध्यम भी है। अतः पहली बार बंद नाट्य मंच पर भरत मुनि के पुत्रों द्वारा पृथ्वी पर नाट्य प्रदर्शन किया गया। और यह पंचमवेद भरत मुनि का ‘नाट्यशास्त्र’ अथवा ‘भरत सूत्र’ के रूप में पृथ्वी पर प्रतिपादित किया गया।

नाट्यवेद के पृथ्वी पर अवतरित अथवा यूँ कहे कि भरत मुनि के द्वारा लिखित रूप में संकलित करने की अवधि पर अनेकों शोध एवं तर्क किए गए। इसमें मौजूद शब्दों जैसे - स्वामी, सुगृहीत, भद्रमुख आदि शब्दों के प्रयोग के आधार पर नाट्यशास्त्र का समय निर्धारित किया गया है। साथ ही शक भवन तथा आक्रमणकारी जातियों का भी वर्णन प्राप्त होता है जो इसकी रचना काल 2^{री} से 4^{थी} सदी के बीच की ओर इशारा करता है।

नाट्यवेद नृत्य और कई अन्य प्रदर्शन कलाओं का अथवा विभिन्न ललित कलाओं का विश्व कोश हैं। यह एक प्रत्यभिज्ञा दर्शन है तथा विभिन्न कलाओं के पहलुओं - पथ्य अर्थात् पाठ, गीता अर्थात् गीत, अभिनय, और रस पर आधारित है। हालांकि नाट्यवेद का वर्तमान स्वरूप जो उपलब्ध है; वह मूल रूप में नहीं है। इसका संपादन कई बार हो चुका है। जिसमें हर बार ‘भरत’ शब्द का वर्णन इसके निर्माता के रूप में वर्णित है। जो इसके ‘भरत’ के निर्माता के विषय पर विवाद को विराम देता है। ‘शारदातनय’ ने नाट्यशास्त्र के दो संस्करणों का स्पष्ट उल्लेख किया है। प्रथम संस्करण आदि भरत द्वारा तथा द्वितीय संस्करण ‘भरत’ द्वारा रचित है। आदि भरत द्वारा रचित नाट्यशास्त्र 12 हजार श्लोकों वाला नाट्यशास्त्र था अतः इसे ‘द्वादशसाहस्री संहिता’ भी कहते हैं। जबकि वर्तमान नाट्यशास्त्र 6 हजार “श्लोकों वाला है अतः इसे ‘षट्साहस्री संहिता’ कहते हैं। इस विषय पर ‘शारदानय’ स्पष्ट तौर पर लिखते हैं—

“एकं द्वादशसाहस्रैः “लोकैरेक तदर्द्धतः।

षड्भिः “लोकसहस्रेभ्यो नाट्यवेदस्य संग्रहः”।।

वर्तमान ‘भरतमुनि’ ‘नाट्यवेद’ में प्रत्यभिज्ञा दर्शन के 36 मूल तत्वों पर 36 अध्याय, 6 हजार श्लोक में वर्णित है। इन 36 अध्यायों में नाट्य जगत की सभी कलाओं का वर्णन हमें प्राप्त होता है। भरत मुनि के द्वारा पहले अध्याय में नाट्यवेद का प्रारंभ भगवान शिव की स्तुति से प्रारंभ होती है। तत्पश्चात् इस ग्रंथ की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, इसका विस्तृत वर्णन है। दूसरा अध्याय भारतीय नाट्य परंपरा की वैज्ञानिकता को सिद्ध करते हुए ‘प्रेक्षागृह’ अर्थात् नाट्यालया/नाट्यगृह अथवा रंगमंच का निर्माण कार्य से लेकर उसके विभिन्न पहलुओं को शामिल कर विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। तीसरा अध्याय रंगमंच के देवताओं के पूजन विधि विधान तथा अन्य निर्देश दिए गए हैं। चौथा अध्याय नृत्य शिक्षा से है। जिसमें भगवान शंकर

के सामने त्रिपुरदाह, अमृतमंथन नामक दो प्रदर्शन का वर्णन है। साथ ही शिव के प्रिय शिष्य तण्डु का वर्णन भी प्राप्त होता है।

पांचवाँ अध्याय पूर्वरंग का वर्णन करता है। छठा अध्याय 'रसों' की चर्चा करता है। जिसे भरतमुनि ने आठ बताया है। सातवाँ अध्याय 'भावों' की चर्चा करता है। जिसे रसों का पूरक माना गया है। आठवाँ अध्याय अभिनय कलाओं का विस्तृत वर्णन है। नौवाँ अध्याय अंगों के अभिनय के साथ विभिन्न मुद्राओं की विस्तृत व्याख्या करता है। दसवाँ अध्याय विशेष अवसरों पर किए जाने वाले अभिनय प्रयोग वर्णित है। ग्यारहवाँ अध्याय चारी अर्थात् मंच पर संगीत एवं ताल का उचित प्रयोग का वर्णन करता है। बारहवाँ अध्याय मण्डलों का वर्णन करता है। तेरहवाँ अध्याय गति प्रचार अर्थात् रसों एवं भावों के आधार पर अभिनय में गति का वर्णन करता है। चौदहवाँ अध्याय रंगमंच पर मौजूद गृह, उपवन, वन आदि विषयों से संबंधित आवश्यक वातावरण को प्रदर्शित करने की प्रक्रिया के साथ वेश-भूषा पर चर्चा है। पंद्रहवाँ अध्याय वाणी के अभिनय से संबंधित छंदों का वर्णन करता है। सोलहवाँ अध्याय इसी क्रम को आगे बढ़ाता है। सतरहवाँ अध्याय अलंकारों का वर्णन करता है जो रसानुकूल हों। अठारहवाँ अध्याय भाषा लक्षण का वर्णन करता है। वही उन्नीसवें अध्याय में उच्च, मध्यम, तथा निम्न वर्ग के पात्रों के संबोधन करने की विविध प्रणाली का वर्णन है। बीसवाँ अध्याय रूपकों का वर्णन करता है, साथ ही कथा, पात्र, तथा वृत्तियों का भी विस्तृत वर्णन है। इक्कीसवाँ अध्याय इतिवृत्त रचना के लिए नियम बताते हैं। बाइसवाँ अध्याय वृत्तियों-भारती, सात्वती, कैशिकी, तथा आरभटी का वर्णन करता है। तेईसवाँ अध्याय आहार्य अभिनय का वर्णन करता है। वही चौबीसवाँ अध्याय सामान्य अभिनय का वर्णन करता है। जो वास्तव में सामान्य नहीं है। साथ ही स्त्रियों के 22 प्रकार के शीलों का वर्णन करता है। पचीसवाँ अध्याय पुरुष लक्षण जो 20 बताए गए हैं उनकी विस्तृत व्याख्या करता है। छबीसवाँ अध्याय चित्राभिनय का वर्णन करता है। सताइसवाँ अध्याय सिद्धिव्यंजक लक्षण है। जिसमें नाट्य प्रदर्शन में होने वाले देवी देवताओं तथा मानुषी सिद्धि का सांगोपांग निरूपण में आने वाले विधनों की चर्चा है। अठाइसवाँ अध्याय वाद्य यंत्रों के बारे में बताता है। जो मूलतः चार हैं—तत्, अवनदृग्ध, घन तथा सुशिर। उनतीसवाँ अध्याय रसानुकूल गंधर्व की जातियों का वर्णन करता है। तीसवाँ अध्याय सुशिर अर्थात् फूँके जाने वाले वाद्य यंत्रों की व्याख्या करता है। इक्तीसवाँ अध्याय तालाध्याय है ; जो कि ताल से संबंधित छोटे-छोटे अंग पर प्रकाश डालता है। बत्तीसवाँ अध्याय, ध्रुवाध्याय है; जिसमें दस प्रकार के ध्रुवा छंद के नाम, विषयादि का वर्णन मिलता है। तैतीसवाँ अध्याय का नाम गुण-दोष विचार है। इसमें गायक-गायिकाओं तथा वाद वादकों के गुण-दोषों का वर्णन मिलता है। चौतीसवाँ अध्याय पुष्कराध्याय है, जिसमें खाल से बजने वाले वाद्य यंत्रों के भेदों का वर्णन है। साथ ही खराब चमड़े के लक्षण बताए गए हैं। पैतीसवाँ अध्याय, भूमिका पात्र विकल्पाध्याय है। नाट्यमंडली के सदस्यों का विभाग करते समय इसकी व्यक्तिगत विशेषताओं को दर्शाया गया है। छत्तीसवाँ अध्याय अंतिम अध्याय है। जिसमें मुनियों ने भरतमुनि से पृथ्वी पर नाट्य के अवतरित होने के विषय में पुनः जिज्ञासा दर्शाई है। मुनि ने इसका उत्तर दो आख्यानो के द्वारा दिया है।

‘नाट्यवेद’ का अध्ययन क्षेत्र काफी विस्तृत है जो कि ललित कलाओं को समर्पता प्रदान करता है। मान्यता है कि जो जन नाट्यकला का अध्ययन करता है वह वेदों के गूढ़ रहस्यों को भी जान पाता है।

प्रेक्षागृह

‘प्रेक्षागृह’ में ‘प्रेक्षा’ से हमारा तात्पर्य देखना, दृष्टि, निगाह से है वही ‘गृह’ से हमारा तात्पर्य देखने योग्य उस उचित स्थान से है, जहाँ दर्शक देखते हैं। जहाँ देखने से हमारा तात्पर्य उन दृश्य काव्यों से है जिसके द्वारा मानव को आनंद की प्राप्ति होती है जिसका माध्यम प्रेक्षागृह है। जो कि ‘दृश्यं तत्राभिनये’ में निहित है। साधारण अथवा आधुनिक भाषा में प्रेक्षागृह; रंगमंच/नाट्यमंडप आदि का ही अपर नाम है। नाट्यशास्त्र के दृष्टिकोण से नाट्यशास्त्र में वर्णित रंगशीर्ष एवं रंगपीठ ही रंगमंच का सम्मिलित रूप है। नाट्यवेद में स्पष्ट किया गया है कि रंगमंच अथवा प्रेक्षागृह दुःखी, शांत, शोकार्त आदि लोगों के लिए विश्राम का स्थल है। भरतमुनि ने नाट्यमंडप अथवा प्रेक्षागृह से संबंधित विधानों का वर्णन अत्यंत ही सुक्ष्मता से किया है।

नाट्यशास्त्र, रंगमंच और सौंदर्यशास्त्र पर एक क्लासिकी है। नाट्यमंडप के आरंभिक अवस्था पर विचार किया जाए तो हमारा ध्यान वैदिक यज्ञ अनुष्ठान की ओर जाता है और उसी से रंगमंच के विकास की परंपरा संभवतः विकसित हुई। वैदिक यज्ञीय अनुष्ठान हमेशा से खुले जगहों पर मुनियों के द्वारा किए जाते थे तथा दानवों के द्वारा इसे नष्ट करने का प्रयास किया जाता था। दृश्य काव्यों के मंचन में अभिनय के दौरान दानवों द्वारा विघ्न डालने का काम किया जा रहा था। अतः इससे सुरक्षा करने हेतु नाट्यमंडप का निर्माण प्रारंभ हुआ जिसने धीरे-धीरे शास्त्रीय रूप ले लिया। नाट्यमंडप में ऐसा वर्णन मिलता है कि दानवों की समस्या से निपटने के लिए ऋषि मुनि ब्रह्म के पास गए। अतः ब्रह्म ने सर्वगुणसम्पन्न 'नाट्यमंडप' निर्माण के लिए विश्वकर्मा को आदेश दिया। इस प्रकार ब्रह्म ने एक समुचित, हर प्रकार से सुरक्षित नाट्यमंडप की रचना की।

भरत मुनि कहते हैं—

“इहादिर्नाट्ययोगस्य नाट्यमंडप एव हि।

तस्मात्तस्यैव तावत्त्वं लक्षणं वक्तुमर्हसि”।। (ना. शा. 2/3)

अर्थात् यहाँ नाट्य प्रयोग का मुख्य तत्व नाट्यमंडप ही है। इसलिए सर्वप्रथम उसी का लक्षण किया जाना चाहिए। साथ ही प्रेक्षागृह के महत्त्व को दर्शाते हुए नाट्यवेद में कहा गया है कि—

‘दिव्यानां मानसी सृष्टिर्गृहेशूपवनेशू च।

नराणां यत्नतः कार्याः लक्षणभिहिताः क्रिया’।। (ना. शा. 2/5)

अर्थात् देवताओं के गृहों और उपवनों के निर्माण में मानसी सृष्टि होती है किंतु मनुष्यों के लक्षण शास्त्र में कही हुई क्रिया को यत्नपूर्वक करना चाहिए। चाहें अभिनय हो या नाट्यमंडप का निर्माण दोनों में सावधानी अपेक्षित होती है क्योंकि दोनों ही नाट्यरूप से संबंधित हैं। दोनों का कार्य रंजन ही है।

भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में नाट्यमंडप /प्रेक्षागृह के निर्माण विधि को विस्तारित करते हुए स्पष्ट किया है कि रंगमंच निर्माण में अनेक कर्मों की सावधानी अपेक्षित होती है ताकि नाटक संचालन में किसी प्रकार की कोई समस्या ना आ पाए। इसके लिए ध्वनि, प्रकाश, नेपथ्य, कारण विधि, भित्ति कर्म, सुधाकर्म का वर्णन किया है। साथ ही नाट्यमंडप हेतु उपयुक्त भूमि के लिए कहते हैं—

“समा स्थिरा तु कठिना कृशणा गौरी च या भवेत्।

भूमिस्तत्रैव कर्तव्यः कर्तुर्भिर्नाट्यमण्डपः”।।

इसके लिए मिट्टी काली या पीली ही होनी चाहिए। साथ ही मण्डप स्तंभ हेतु तीन प्रकार के मण्डप का वर्णन किया है—

1. ब्राह्मण स्तंभ - वेतवर्ण विधि, चंदन की लकड़ी
2. क्षत्रिय स्तंभ - रक्तवर्ण, खादिर की लकड़ी
3. वैश्य स्तंभ - पीतवर्ण, धाय की लकड़ी, वायव्य कोण
4. शूद्र स्तंभ - नीलवर्ण, कोई भी लकड़ी, ईशान कोण

इस प्रकार प्रेक्षागृह के आधारभूत विषयों के वर्णन के साथ भरतमुनि इसके विभिन्न प्रकार का वर्णन कुछ इस प्रकार करते हैं—

‘विकृष्टश्चतुरश्रश्च त्रयश्रश्चैव तु मण्डपः।

तेशां त्रीणि प्रमाणानि ज्येष्ठं मध्यं तथावरम्’।। -ना. शा. 2/8

अर्थात् विकृष्ट (आयताकार), चतुर्ष्र (वर्गाकार), और त्रयश्र (त्रिभुजाकार) ये तीन प्रकार के नाट्यमंडप होते हैं। नाट्यमंडप के ज्येष्ठ, मध्यम और अवर ये तीन प्रकार हैं। कहने का भाव है कि, नाट्यमंडप का निर्माण आकार तथा परिणाम के आधार पर किया जाता है। आकार की दृष्टि से नाट्यमंडप विकृष्ट, चतुर्ष्र, त्रयश्र भेद से तीन प्रकार के हैं। परिणाम की दृष्टि से तीन भेद हैं— ज्येष्ठ, मध्यम और अवर। भरत ने माप के रूप में हस्तदण्ड, हाथभर को मानक माना है।

1. विकृष्ट अथवा आयत नाट्यमंडप- “विभागेन कृष्टः दीर्घः इति विकृष्टः” अर्थात् लंबाई चौड़ाई, चारों दिशाओं में विभागेन अर्थात् अलग-अलग खींचा गया हों, चारों कोने बराबर न हों उसे विकृष्ट नाट्यमंडप कहते हैं। आमने-सामने बराबर और चौड़ाई से लंबाई अधिक इसकी विशेषता है। परिणाम की दृष्टि से इसके तीन भेद हैं—

क. ज्येष्ठविकृष्ट नाट्यमंडप- इसकी लंबाई 108 हाथ और चौड़ाई 64 हाथ होती है। इसके तीन भाग होते हैं। जिसमें नेपथ्यगृह- 27×64 हाथ, रंगशीर्ष - 27×64 हाथ, प्रेक्षकों के बैठने का स्थान - 54×64 हाथ निर्धारित होता है।

ख. मध्यमविकृष्ट नाट्यमंडप- इसकी लंबाई 64 हाथ और चौड़ाई 32 हाथ होती है। इसके तीन भाग होते हैं। जिसमें नेपथ्यगृह- 16×32 हाथ, रंगशीर्ष - 16×32 हाथ, प्रेक्षकों के बैठने का स्थान- 32×32 हाथ निर्धारित होता है।

ग. अवरविकृष्ट नाट्यमंडप- इसकी लंबाई 4 हाथ और चौड़ाई 16 हाथ होती है। इसके तीन भाग होते हैं। जिसमें नेपथ्यगृह- 4×16 हाथ, रंगशीर्ष - 4×16 हाथ, प्रेक्षकों के बैठने का स्थान- 8×16 हाथ निर्धारित होता है।

इन तीनों में अभिनय की दृष्टि से ‘मध्यमविकृष्ट नाट्यमंडप’ सर्वोत्तम माना गया है। क्योंकि इसके पूरे क्षेत्र के आधे में दर्शक बैठने की व्यवस्था तथा आधे में पूरा रंगमंच रहता है। इस विषय में भरत मुनि कहते हैं—

‘देवानां तु भवेज्ज्येष्ठं नृपाणां मध्यमं भवेत्।

शेशाणां प्रकृतीनां तु कनीय संविधीयते’।। ना. शा. 2/11

अर्थात् देवताओं के लिए ज्येष्ठ नाट्यमंडप, राजाओं के लिए मध्यम, तथा प्रजा के लिए कनिष्ठ नाट्यमंडप होना चाहिए।

2. चतुस्त्र नाट्यमंडप - “चतुसृशु दिक्षु साभ्येन कृष्टः इति चतुस्त्रः”। अर्थात् जिसकी चारों भुजाएँ समान हों ऐसा वर्गाकार क्षेत्र वाला मण्डप चतुस्त्र नाट्यमंडप कहलाता है। इसे मध्यम नाट्यमंडप भी कहते हैं। परिणाम की दृष्टि से इसके भी तीन भेद हैं—

क. ज्येष्ठचतुस्त्र नाट्यमंडप- इसकी लंबाई 108 हाथ और चौड़ाई 108 हाथ होती है। इसके तीन भाग होते हैं। जिसमें नेपथ्यगृह- 27×108 हाथ, रंगशीर्ष - 27×108 हाथ, प्रेक्षकों के बैठने का स्थान - 54 ×108 हाथ निर्धारित होता है।

ख. मध्यमचतुस्त्र नाट्यमंडप- इसकी लंबाई 64 हाथ और चौड़ाई 64 हाथ होती है। इसके तीन भाग होते हैं। जिसमें नेपथ्यगृह- 16×64 हाथ, रंगशीर्ष - 16×64 हाथ, प्रेक्षकों के बैठने का स्थान - 32 ×64 हाथ निर्धारित होता है।

ग. अवरचतुस्त्र नाट्यमंडप- इसकी लंबाई 32 हाथ और चौड़ाई 32 हाथ होती है। इसके तीन भाग होते हैं। जिसमें नेपथ्यगृह- 16×64 हाथ, रंगशीर्ष - 16×64 हाथ, प्रेक्षकों के बैठने का स्थान - 32×64 हाथ निर्धारित होता है।

3. त्र्यस्त्रनाट्यमंडप - “तिस्त्रः अश्रयः अस्मिन्निति त्र्यस्त्रः”। अर्थात् जिसके तीनों कोण त्रिभुजाकार, बराबर हों उसे त्र्यस्त्रनाट्यमंडप कहते हैं। इसे समत्रिबाहु एवं कनिष्ठ नाट्यमंडप भी कहते हैं। परिणाम के आधार पर यह भी तीन प्रकार का है—

क. ज्येष्ठत्र्यस्त्र नाट्यमंडप- इसकी तीनों भुजाएँ 108 हाथ होती हैं। जों कि नेपथ्यगृह, रंगशीर्ष तथा प्रेक्षकों के लिए तीन भागों में विभक्त होती है।

ख. मध्यमत्र्यस्त्र नाट्यमंडप- इसकी तीनों भुजाएँ 64 हाथ होती हैं। जों कि नेपथ्यगृह, रंगशीर्ष तथा प्रेक्षकों के लिए तीन भागों में विभक्त होती है।

ग. अवरत्र्यस्त्र नाट्यमंडप- इसकी तीनों भुजाएँ 32 हाथ होती हैं। जों कि नेपथ्यगृह, रंगशीर्ष तथा प्रेक्षकों के लिए तीन भागों में विभक्त होती है।

निष्कर्ष

‘नाट्यशास्त्र’ नाट्य और शास्त्र शब्द के संयोग से बना है। जिसमें नाट्य का संबंध नृत्य और नाटक से है वहीं शास्त्र विज्ञान को संदर्भित करता है। अथवा नाट्यशास्त्र, नाट्य तथा रंग से संबंधित काव्य, शिल्प, गीत, नृत्य, आदि ललित कलाओं के साथ ; शास्त्रों, शिल्पों, कलाओं तथा विभिन्न प्रयोगों का कोश है। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र ठीक वैसा ही है जैसे पाणिनी का संस्कृत ग्रंथ। जिसके बिना इन विषयों को आम जन को समझना आसान नहीं जान पड़ता है।

भारतीय मूल साहित्यों में शायद ही ऐसा कोई साहित्य है जिसमें धर्म और नैतिकता का समावेश ना हों। हालांकि समय के साथ धर्म में आई जटिलता तथा आचार नैतिकता के बंधन ने नीरसता को जन्म दिया। अतः पंचम वेद के रूप में ब्रह्म के द्वारा भरत मुनि के माध्यम से पृथ्वी पर ‘नाट्यशास्त्र’ का प्रारुर्भाव हुआ। भरत मुनि कृत नाट्यवेद का आधार भी मूलतः धर्म ही हैं; जिस पर द्विजों के साथ आम जन का भी उतना ही अधिकार रहा। नाट्यवेद रूढ़िवादिता विरोधी समानता स्थापित करने के लिए एक उचित माध्यम के रूप में संसार के सामने प्रस्तुत हुआ। जिसका उद्देश्य निश्चित ही व्यक्ति के जीवन को मार्गदर्शन प्रदान करना है; जिसका स्वरूप नृत्य, नाटक, अभिनय, रस, भाव, मूर्तिकला, चित्रकला, अनेक प्रकार के दृश्य एवं श्रव्य कला हो सकते हैं। जिसकी संपूर्ण विस्तृत व्याख्या ‘नाट्यशास्त्र’ जो कि 36 अध्याय में विभक्त है ; के द्वारा संपूर्ण विश्व को प्राप्त हो जाती है। वही भारतीय नाटकों में सुखांत की अवधारणा मानव जीवन में आनंद के साथ सकारात्मक भाव को भी उत्पन्न करता है, जिससे नाट्यशास्त्र का औचित्य सामान्य जीवन में अपनी सार्थकता स्वतः सिद्ध करता है। नाट्यशास्त्र फलागम को अनिवार्य मानता है तथा तदानुरूप व्यवहार को सहजता से अपनाने के लिए प्रेरित करता है। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र काव्य, नाट्य, शिल्प तथा ललित कलाओं से संबंधित संपूर्ण विश्व को हमेशा से मार्गदर्शित करता रहा है और करता रहेगा।

संदर्भ सूची

1. नाट्यशास्त्र, सं. डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2015
2. नाट्यशास्त्रविश्वकोश, राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1999
3. भरत और भारतीय नाट्यकला, सुरेंद्रनाथ दीक्षित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2009.
4. नाट्यशासन, रेवाप्रसाद द्विवेदी, कालिदाससंस्कृतसंस्थानम्, वाराणसी, 2008.
5. बाबूलाल शुक्लशास्त्री, हिंदी नाट्य साहित्य
6. डॉ. ब्रजवल्लभ मिश्र, भरत और उनका नाट्यशास्त्र
7. डॉ. रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य
8. पारसनाथ द्विवेदी, भरतमुनि नाट्यशास्त्र, संपूर्णानंद संस्कृत विश्व विद्यालय वाराणसी।
9. अग्निपुराण का नाट्यदर्शन, डॉ. संजय कुमार, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 2018
10. नाट्यम् अंक 80, नाट्यशास्त्र विशेषांक, नाट्यपरिषद् संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर, मार्च 2017



प्राकृतिक आपदा नियंत्रण एवं जन जागरण में मीडिया की भूमिका

डॉ. अभिषेक अग्रवाल

सहायक प्राध्यापक (इतिहास विभाग)
कलिंगा विश्वविद्यालय, कोटनी
नया रायपुर (छ.ग.)

डॉ. श्रद्धा गर्ग

सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान विभाग)
शासकीय नवीन महाविद्यालय रीठी,
जिला कटनी (म.प्र.)

प्राकृतिक आपदाएँ अग्रिम रूप से विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास से पूर्व ज्ञात की जा सकती हैं। आपदाओं की उचित समय पर और सही सूचना की सहायता से हम मानवीय जीवन और सम्पत्ति की क्षति को कम कर सकते हैं। आपदा नियंत्रण के प्रभावी होने के लिए यह आवश्यक है कि आपदा प्रभावित क्षेत्रों में उपलब्ध सूचनाएँ पूर्णतया स्पष्ट तथा लोगों के पहुँच के भीतर हों। आधुनिक मीडिया के माध्यम से आपदाओं के लोगों पर प्रभाव की जानकारी और संचार व्यवस्था, आपदाओं के पूर्व तैयारी, जान-माल के नुकसान को कम किया जा सकता है।

आधुनिक मीडिया आपदा की स्थितियों में एक प्रभावी भूमिका निभा सकता है किन्तु इसके लिए उसका पारदर्शी, प्रभावी, निष्पक्ष, संवेदनशील और तेज होना आवश्यक है। मीडिया आपदा के प्रत्येक स्तर पर एक निरीक्षक एवं सजग प्रहरी की भूमिका निभा सकता है। विध्वंसक आपदा के बाद राहत एवं पुर्नवास कार्य में भी मीडिया प्रभावी मदद कर सकता है। मीडिया जनता और आपातकालीन संगठनों (जैसे एन.डी.आर.एफ.) के बीच एक सीधा संबंध बनाता है, और आपदाओं से पहले, इसके दौरान और बाद में जनता को महत्वपूर्ण सूचना प्रसारित करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मीडिया द्वारा (प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया), मानवीय गलतियों और विनाश का चित्रण, कई बार स्वयं एक अपील का काम करता है जिसके प्रभावस्वरूप लोग कई तरह से सामने आकर पीड़ितों की मदद के लिए तैयार होते हैं। आधुनिक मीडिया महत्वपूर्ण ढंग से आपदा नुकसान से निपटने, अफवाहों की रोकथाम और नकारात्मक रिपोर्टिंग में मदद कर सकता है।

इस प्रकार मीडिया द्वारा सभी मानव निर्मित आपदाओं और प्राकृतिक आपदाओं को रोका जा सकता है। मीडिया जन लोगों को प्राकृतिक परिवेश के साथ तालमेल व सामंजस्य स्थापित करने के परिणामों के बारे में शिक्षित और पूर्ण जानकारी दे सकते हैं। प्रिंट मीडिया ने इस सम्बन्ध में बीते दशकों में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और अब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अधिक आसान और तेज साधन के रूप में सामने आया है।

लोकतांत्रिक देशों में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के क्रियाकलापों पर नजर रखने के लिये मीडिया को “चौथे स्तंभ” के रूप में जाना जाता है। 18 वीं शताब्दी के बाद से, खासकर अमेरिकी स्वतंत्रता आंदोलन और फ्रांसीसी क्रांति के समय से जनता तक पहुँचने और उसे जागरूक कर सक्षम बनाने में मीडिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मीडिया अगर सकारात्मक भूमिका अदा करें तो किसी भी व्यक्ति, संस्था, समूह और देश को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक

रूप से समृद्ध बनाया जा सकता है।

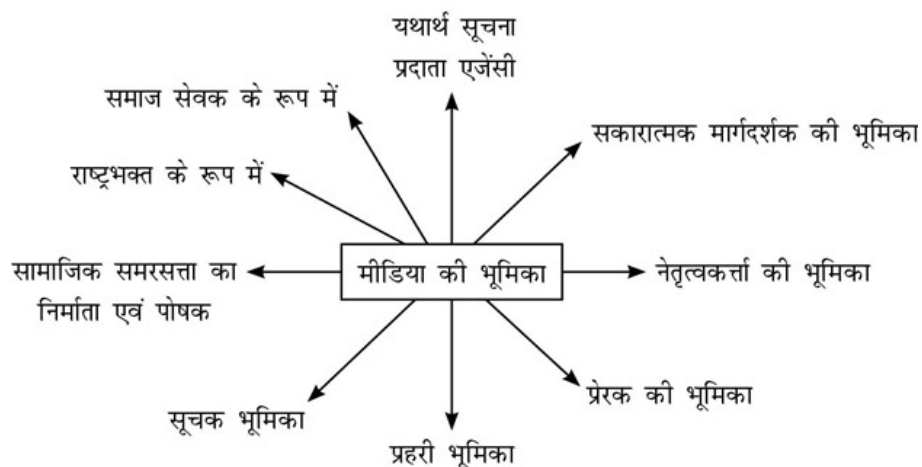
वर्तमान समय में मीडिया की उपयोगिता, महत्त्व एवं भूमिका निरंतर बढ़ती जा रही है। कोई भी समाज, सरकार, वर्ग, संस्था, समूह व्यक्ति मीडिया की उपेक्षा कर आगे नहीं बढ़ सकता। आज के जीवन में मीडिया एक अपरिहार्य आवश्यकता बन गया है। अगर हम देखें कि समाज किसे कहते हैं तो यह तथ्य सामने आता है कि लोगों की भीड़ या असंबद्ध मनुष्य को हम समाज नहीं कह सकते हैं। समाज का अर्थ होता है संबंधों का परस्पर ताना-बाना, जिसमें विवेकवान और विचारशील मनुष्यों वाले समुदायों का अस्तित्व होता है।

मीडिया एक समग्र तंत्र है जिसमें प्रिंटिंग प्रेस, पत्रकार, इलेक्ट्रॉनिक माध्यम, रेडियो, सिनेमा, इंटरनेट आदि सूचना के माध्यम सम्मिलित होते हैं। अगर समाज में मीडिया की भूमिका की बात करें तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि समाज में मीडिया प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से क्या योगदान दे रहा है एवं उसके उत्तरदायित्वों के निर्वहन के दौरान समाज पर उसका क्या सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

प्रभाव पर गौर करने पर स्पष्ट होता है कि मीडिया की समाज में शक्ति, महत्ता एवं उपयोगिता में वृद्धि से इसके सकारात्मक प्रभावों में काफी अभिवृद्धि हुई है लेकिन साथ-साथ इसके नकारात्मक प्रभाव भी उभर कर सामने आए हैं।

मीडिया ने जहाँ जनता को निर्भीकता पूर्वक जागरूक करने, भ्रष्टाचार को उजागर करने, सत्ता पर तार्किक नियंत्रण एवं जनहित कार्यों की अभिवृद्धि में योगदान दिया है, वहीं लालच, भय, द्वेष, स्पृद्धा, दुर्भावना एवं राजनैतिक कुचक्र के जाल में फँसकर अपनी भूमिका को कलंकित भी किया है। व्यक्तिगत या संस्थागत निहित स्वार्थों के लिये यत्नोर्जितलिङ्ग को अपनाना, ब्लैकमेल द्वारा दूसरों का शोषण करना, चटपटी खबरों को तवज्जों देना और खबरों को तोड़-मरोड़कर पेश करना, दंगे भड़काने वाली खबरे प्रकाशित करना, घटनाओं एवं कथनों को द्विअर्थी रूप प्रदान करना, भय या लालच में सत्तारूढ़ दल की चापलूसी करना, अनावश्यक रूप से किसी की प्रशंसा और महिमामंडन करना और किसी दूसरे की आलोचना करना जैसे अनेक अनुचित कार्य आजकल मीडिया द्वारा किये जा रहे हैं। दुर्घटना एवं संवेदनशील मुद्दों को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करना, ईमानदारी, नैतिकता, कर्तव्यनिष्ठा और साहस से संबंधित खबरों को नजरअंदाज करना आजकल मीडिया का एक सामान्य लक्षण हो गया है। मीडिया के इस व्यवहार से समाज में अव्यवस्था और असंतुलन की स्थिति पैदा होती है।

इंटरनेट के माध्यम से असामाजिक क्रियाकलाप युवाओं तक पहुंच रहे हैं जिससे उनमें नैतिकता, संस्कृति और सभ्यता की लगातार कमी आती जा रही है। इन सबको देखते हुए मीडिया की भूमिका पर चर्चा करना आज आवश्यक हो गया है।



मीडिया की भूमिका यथार्थ सूचना प्रदायक एजेंसी के रूप में होनी चाहिये। मीडिया द्वारा समाज को संपूर्ण विश्व में होने वाली घटनाओं की जानकारी मिलती है। इसलिये मीडिया का यह प्रयास होना चाहिये कि ये जानकारीयों यथार्थपरक हो। सूचनाओं को तोड़-मरोड़कर या दूषित कर प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं होना चाहिये। समाज के हित एवं जानकारी के लिये सूचनाओं को यथावत एवं विशुद्ध रूप में जनता के समक्ष पेश करना चाहिये। मीडिया का प्रस्तुतीकरण ऐसा होना चाहिये जो समाज का मार्गदर्शन कर सके। खबरों और घटनाओं का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार हो जिससे जनता का मागदर्शन हो सके। उत्तम लेख, संपादकीय, ज्ञानवर्धक सूचनाएँ, श्रेष्ठ मनोरंजन आदि सामग्रियों का खबरों में समावेश होना चाहिये तभी समाज को सही दिशा प्रदान की जा सकेगी।

मीडिया समाज को अनेक प्रकार से नेतृत्व प्रदान करता है। इससे समाज की विचारधारा प्रभावित होती है। मीडिया को प्रेरक की भूमिका में भी उपस्थित होना चाहिये जिससे समाज एवं सरकारों को प्रेरणा व मार्गदर्शन प्राप्त हो। मीडिया समाज के विभिन्न वर्गों के हितों का रक्षक भी होता है। वह समाज की नीति, परंपराओं, मान्यताओं तथा सभ्यता एवं संस्कृति के प्रहरी के रूप में भी भूमिका निभाता है। पूरे विश्व में घटित विभिन्न घटनाओं की जानकारी समाज के विभिन्न वर्गों को मीडिया के माध्यम से ही मिलती है। अतः उसे सूचनाएँ निष्पक्ष रूप से सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करनी चाहिये।

मीडिया अपनी खबरों द्वारा समाज के असंतुलन एवं संतुलन में भी बड़ी भूमिका निभाता है। मीडिया अपनी भूमिका द्वारा समाज में शांति, सौहार्द, समरसता और सौजन्य की भावना विकसित कर सकता है। सामाजिक तनाव, संघर्ष, मतभेद, युद्ध एवं दंगों के समय मीडिया को बहुत ही संयमित तरीके से कार्य करना चाहिये। राष्ट्र के प्रति भक्ति एवं एकता की भावना को उभरने में भी मीडिया की अहम भूमिका होती है। शहीदों के सम्मान में प्रेरक उत्साहवर्द्धक खबरों के प्रसारण में मीडिया को बढ़-चढ़कर हिस्सा लेना चाहिये। मीडिया विभिन्न सामाजिक कार्यों द्वारा समाज सेवक की भूमिका भी निभा सकता है। भूकंप, बाढ़ या अन्य प्राकृतिक या मानवकृत आपदाओं के समय जनसहयोग उपलब्ध कराकर मानवता की बहुत बड़ी सेवा कर सकता है। मीडिया को सद्व्यवृत्तियों के अभिवर्द्धन हेतु भी आगे आना चाहिये।

मीडिया की भूमिका यथार्थ सूचना प्रदायक एजेंसी के रूप में होनी चाहिये। मीडिया द्वारा समाज को संपूर्ण विश्व में होने वाली घटनाओं की जानकारी मिलती है। इसलिये मीडिया का यह प्रयास होना चाहिये कि ये जानकारीयों यथार्थपरक हो। सूचनाओं को तोड़-मरोड़कर या दूषित कर प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं होना चाहिये। समाज के हित एवं जानकारी के लिये सूचनाओं को यथावत एवं विशुद्ध रूप में जनता के समक्ष पेश करना चाहिये। मीडिया का प्रस्तुतीकरण ऐसा होना चाहिये जो समाज का मार्गदर्शन कर सके। खबरों और घटनाओं का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार हो जिससे जनता का मागदर्शन हो सके। उत्तम लेख, संपादकीय, ज्ञानवर्धक सूचनाएँ, श्रेष्ठ मनोरंजन आदि सामग्रियों का खबरों में समावेश होना चाहिये तभी समाज को सही दिशा प्रदान की जा सकेगी।

मीडिया अपनी खबरों द्वारा समाज के असंतुलन एवं संतुलन में भी बड़ी भूमिका निभाता है। मीडिया अपनी भूमिका द्वारा समाज में शांति, सौहार्द, समरसता और सौजन्य की भावना विकसित कर सकता है। सामाजिक तनाव, संघर्ष, मतभेद, युद्ध एवं दंगों के समय मीडिया को बहुत ही संयमित तरीके से कार्य करना चाहिये। राष्ट्र के प्रति भक्ति एवं एकता की भावना को उभरने में भी मीडिया की अहम भूमिका होती है। शहीदों के सम्मान में प्रेरक उत्साहवर्द्धक खबरों के प्रसारण में मीडिया को बढ़-चढ़कर हिस्सा लेना चाहिये। मीडिया विभिन्न सामाजिक कार्यों द्वारा समाज सेवक की भूमिका भी निभा सकता है। भूकंप, बाढ़ या अन्य प्राकृतिक या मानवकृत आपदाओं के समय जनसहयोग उपलब्ध कराकर मानवता की बहुत बड़ी सेवा कर सकता है। मीडिया को सद्व्यवृत्तियों के अभिवर्द्धन हेतु भी आगे आना चाहिये।

मीडिया की बहुआयामी भूमिका को देखते हुए कहा जा सकता है कि मीडिया आज विनाशक एवं हितैषी दोनों भूमिकाओं में सामने आया है। अब समय आ गया है कि मीडिया अपनी शक्ति का सदुपयोग जनहित में करे और समाज का मागदर्शन करे ताकि वह भविष्य में भस्मासुर न बन सके।

संदर्भ सूची

1. चौहान, ज्ञानेन्द्र सिंह एवं पाहवा, एस.के. (2013) भारत में आपदा प्रबन्धन, रिसर्च जनरल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेंट एंड सोशल साइंसेज ।
2. रामजी एवं शर्मा, शिवानाथ, प्राकृतिक आपदा-सूखा एवं बाढ़ की समस्या ।
3. मामोरिया, चतुर्भुज, (2024), भौगोलिक चिन्तन का विकास, साहित्य भवन, आगरा ।
4. नेगी, पी.एस., (2014), पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण भूगोल, रस्तोगी पब्लिकेसन्स, मेरठ ।
5. पाल, अजय कुमार, आपदा एवं आपदा प्रबन्धन ।
6. आपदा प्रबन्धन राष्ट्रीय नीति-(2005) भारत सरकार ।
7. बवेजा, दर्शन, आपदा प्रबन्धन ।
8. अवस्थी, एन.एम., पर्यावरणीय अध्ययन ।



जनपद शाहजहाँपुर का ऐतिहासिक अध्ययन

मोहित कुमार शर्मा

शोध छात्र, इतिहास विभाग
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

विवेक कुमार

शोध छात्र, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

ज्योत्सना भट्ट

शोध छात्रा, इतिहास विभाग
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

सारांश

शाहजहाँपुर प्राचीन काल से ही ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक दृष्टि से भारतवर्ष का एक महत्वपूर्ण भू-भाग रहा है, अनेक नदियों के बीच बसा यह शहर प्राकृतिक दृष्टि से रमणीय स्थान रहा है। इस जनपद में अनेक ऐसे स्थल हैं, जो अतीत के समाज, राजनीति एवं धर्म पर प्रकाश डालते हैं। यह जनपद प्राचीन काल से अब तक एक जैसा नहीं रहा है। समय-समय पर इसके नाम, सीमा व स्वरूप आदि में परिवर्तन होता रहा है। कला व साहित्य की दृष्टि से यह भू-भाग काफी महत्वपूर्ण रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से शाहजहाँपुर जनपद का इतिहास काफी पुराना है। यहाँ के ऐतिहासिक स्थल, यहाँ के इतिहास का सजीव चित्रण प्रस्तुत करते हैं। यहाँ पर पाये जाने वाले पुरातात्विक स्त्रोतों में माती (मैत्रीपुरा), कसरक ताम्रपात्र अभिलेख, देवरा का स्तूप तथा अनेक स्थानों पर पाये जाने वाले सिक्के तथा ऐतिहासिक स्थल इसके इतिहास जानने के लिए काफी उपयोगी हैं।

आजादी के अमृत काल में इस शोधपत्र के माध्यम से शाहजहाँपुर का विभिन्न कालों जैसे रामायण काल, महाभारत काल, महाजनपद काल, मौर्य काल, मौर्योत्तर काल, राजपूत काल, सल्तनत काल, मुगल काल, ब्रिटिश काल, के दौरान क्या स्थिति रही है, और शाहजहाँपुर की महान विभूतियों का स्वतन्त्रता संग्राम में क्या योगदान रहा है, का तार्किक रूप से विश्लेषण किया गया है।

शब्द कुजियाँ :- रूहेलखंड, रामायण काल, महाभारत काल, वैदिक काल, महाजनपद काल, नंद काल, मौर्यकाल, राजपूत, सल्तनत, मुगल काल, आधुनिक काल।

परिचय

किसी भी जनपद की भौगोलिक स्थिति जानकर उस पर तार्किक दृष्टि से अध्ययन किया जा सकता है। जनपद शाहजहाँपुर अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण उत्तर प्रदेश में विशिष्ट है। यहाँ का रहन-सहन, खान-पान, बोली-भाषा, मेल-मिलाप, परम्पराएँ, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, भौगोलिक व ऐतिहासिक विशेषताएँ मिलकर इसे ऐसा विशिष्ट चरित्र प्रदान करती हैं कि यह जनपद रूहेलखण्ड मण्डल में नहीं, बल्कि पूरे भारत में अपनी विशिष्ट पहचान कायम करता

दिखाई देता है। यह उत्तर-प्रदेश के पश्चिमी क्षेत्र का अन्तिम पूर्वी जनपद है। जनपद का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 4575 वर्ग किमी० है।¹ उत्तर वैदिक काल से लेकर हिन्दू शासकों के पराभव के समय तक यह उत्तरी पांचाल का महत्वपूर्ण भाग रहा है। जनपद को 14 विकासखण्डों में विभाजित किया गया है, जिनमें कटरा, तिलहर, जैतीपुर, जलालपुर, निगोही, ददरौल, भावलखेड़ा, मिर्जापुर, कलॉन, जलालाबाद, पुवायॉ, सिधौली, बण्डा तथा जामौर है। वर्तमान समय में शाहजहाँपुर जनपद की चार तहसीलों जलालाबाद, तिलहर, पुवायॉ तथा शाहजहाँपुर (सदर) है।² इस जनपद की प्रत्येक तहसीलों में ऐतिहासिक पुरातात्विक साक्ष्य मिले हैं, जो इस क्षेत्र के महत्व को दर्शाते हैं।

जनपद शाहजहाँपुर का प्रारंभ से आजादी तक का ऐतिहासिक अध्ययन

शाहजहाँपुर जनपद का परम्परागत प्राचीन इतिहास मनु की बेटा इला के पुत्र ऐल से प्रारम्भ होता है। ऐल पहले सम्राट हुए, जिन्होंने इस संपूर्ण क्षेत्र को अपने अधीन बनाया। पुरुरवस का प्रपौत्र और नहुष का पुत्र ययाति (3000-2750 ई०पू०) एक प्रख्यात विजेता हुआ। पार्जितर के अनुसार ययाति ने इस जनपद सहित सम्पूर्ण मध्यदेश अपने आधीन कर लिया। रामायण काल में पांचाल जनपद के बारे में आर. सी. मजूमदार ने लिखा है कि “दशरथ के शासनकाल में उत्तरी पांचाल में यादवों का शासकीय साम्राज्य था। गंगा यमुना दोआब के उत्तरी हिस्से में चार राज्य थे, जिनमें उत्तरी पांचाल महत्वपूर्ण था।”³ शाहजहाँपुर गजेटियर के अनुसार “जनपद शाहजहाँपुर में पाये गये क्षत्रिय राजा अपने आप को द्रुपद के वंशज बताते हैं।”⁴

महाभारत के बाद उत्तरी पांचाल तथा उसकी राजधानी अहिच्छत्र के बारे में विशेष जानकारी नहीं मिलती है। सम्भवतः यह क्षेत्र उस समय पाण्डवों के अधीन रहा होगा। अंगुत्तर निकाय में वर्णित 16 महाजनपदों में पांचाल अत्यंत महत्वपूर्ण जनपद था, जो उत्तर प्रदेश के वर्तमान भू-भाग रुहेलखण्ड में गंगा नदी के तट पर स्थित था। गंगा नदी इसको दो भागों में विभक्त करती थी, जिन्हें उत्तरी पांचाल एवं दक्षिणी पांचाल कहा जाता था, इनकी राजधानी क्रमशः अहिच्छत्र एवं काम्पित्य थी। उत्तरी पांचाल क्षेत्र वर्तमान उत्तर प्रदेश के रुहेलखण्ड क्षेत्र में आता था। जिसमें वर्तमान बरेली, बदायूँ, शाहजहाँपुर, फर्रुखाबाद तथा उत्तर प्रदेश के दोआब का क्षेत्र सम्मिलित था।⁵

छठी शताब्दी ई.पू. में शाहजहाँपुर उत्तरी पांचाल क्षेत्र के अन्तर्गत था तथा यहाँ पर द्वितीय नगरीकरण हो चुका था। पुरातात्विक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माने जाने वाले उत्तरी कृष्ण मार्जित मृदभाण्ड, जो कुछ बुद्धकालीन तथा छठी शताब्दी ई. पू. से प्रारम्भ हुए माने जाते हैं। शाहजहाँपुर के पुरातात्विक सर्वेक्षण में निगोही, पोसिल, चिनौर, बुधआना, जेमा-तपेमानपुर तथा आयाँ आदि पुरास्थलों से प्राप्त हुए हैं। यह दर्शाता है कि यह क्षेत्र सांस्कृतिक रूप से काफी समृद्ध था। छठी शताब्दी ई.पू. महाजनपदों के बीच संघर्ष का समय था, इसलिए उनकी भौगोलिक सीमाएं लगातार बदलती रही थी। इस समय के अधिकांश राज्य एक दूसरे पर आक्रमण करके विजित क्षेत्र को अपने राज्य में मिलकर अपनी सीमा का विस्तार कर रहे थे। बुद्ध की मृत्यु के सौ वर्ष बाद तक पांचाल राज्य स्वतंत्र रहा और उसके बाद नन्दवंशी महापदमनन्द ने इसे मगध साम्राज्य में मिला लिया और लम्बे समय तक सम्पूर्ण पांचाल के साथ वर्तमान शाहजहाँपुर का क्षेत्र भी महापदमनन्द के मगध साम्राज्य के अन्तर्गत रहा।⁶

नंद वंश के पतन के बाद मौर्य वंश का उदय हुआ, जिनका इस क्षेत्र पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण था, क्योंकि कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में पांचाल का उल्लेख एक संघ के रूप में किया है। इससे स्पष्ट होता है कि मौर्यकाल में पांचाल प्रत्यक्ष रूप से मौर्य शासकों द्वारा शासित नहीं होता था, बल्कि इसका स्वरूप गणतंत्रीय था। मौर्य वंश के सम्राट अशोक ने पांचाल में अनेक स्तूपों का निर्माण कराया।⁷ कुछ इतिहासकार ऐसा भी कहते हैं कि जब मौर्य शासन की शक्ति क्षीण होने लगी, तो यहाँ के कुछ सैन्य अधिकारी यहाँ के शासक बन बैठे। शाहजहाँपुर जनपद के विकासखण्ड खुटार के अन्तर्गत कुरिया रेलवे स्टेशन से 3 किमी दूर माती नामक स्थान की खुदाई से प्राचीन सिक्के मिले हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि यहाँ पर मित्र नाम के बहुसंख्यक राजाओं का राज्य था। जनपद शाहजहाँपुर सहित रुहेलखण्ड के विभिन्न स्थानों से जिन राजाओं के सिक्के मिले हैं। वह है अग्निमित्र, अणुमित्र, प्रजापति मित्र, आयु मित्र, इन्द्रमित्र, जयमित्र, भूमि मित्र आदि। मौर्यवंश के अन्तिम शासक

बृहद्रथ का उसके सेनपति पुष्पमित्र शुंग ने कत्ल कर 185 ई.पू. में शुंग साम्राज्य की स्थापना की।⁸

शुंग काल में वर्तमान शाहजहाँपुर गजेटियर-1988 से भी इस बात की पुष्टि होती है कि पुष्पमित्र शुंग इस वर्तमान जनपद सहित सम्पूर्ण पांचाल का शासक था।⁹ शुंग कालीन राजाओं के अनेक सिक्के शाहजहाँपुर की पुवायों तहसील के माती नामक पुरा स्थल से प्राप्त हुए हैं और जनपद के पुरातात्विक सर्वेक्षण में खेड़ा-बड़ोड़ा, आयां व अन्य पुरास्थलों से प्राप्त शुंगकालीन नारी मृणमूर्तियाँ, मृद्रभाण्डों व अन्य पुरावशेषों की प्राप्ति से यह स्पष्ट होता है कि यह क्षेत्र निश्चित रूप से शुंग साम्राज्य के अधिपत्य में रहा।

शुंग- सातवाहन काल के अन्तिम दिनों में भारत में शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता का अभाव रहा, जिसके विदेशी शक्तियाँ जैसे- यूनानी, शक, कुषाण आदि, भारत पर पुनः आक्रमण करने लगे।¹⁰ कुषाणों ने भारत में लगभग तीन शताब्दी तक शासन किया। इस वंश के सम्राट कनिष्क तृतीय के नेतृत्व में पूर्वी और उत्तर भारत में आक्रमण किए गए और विजित क्षेत्र को अपने साम्राज्य में मिलाया, उन क्षेत्रों में पांचाल का क्षेत्र भी था। शाहजहाँपुर के पासिल, खेड़ा-बड़ोड़ा, कुतुबापुर व गन्धरपुर से कुषाणकालीन सिक्के प्राप्त हुए हैं, जो क्रमशः विम कैडफिसस, कनिष्क, हुविष्क तथा एवं अन्य कुषाण शासक के हैं।¹¹ द्वितीय शताब्दी ई. के अन्त में जब कुषाणों की शक्ति दुर्बल हो गई। तब अन्य क्षेत्रों की भाँति पांचाल के स्थानीय शासकों ने भी अपनी शक्ति में वृद्धि की तथा स्वयं को स्वतंत्र कर लिया।¹²

चौथी सदी के आरम्भ में गुप्त वंश का उदय हुआ, जिसका संस्थापक श्रीगुप्त था। 319 ई. में उसका पौत्र चन्द्रगुप्त प्रथम गद्दी पर बैठा।¹³ उसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया और लगभग सम्पूर्ण भारत पर गुप्त वंश ने शासन किया, जिसमें पांचाल जनपद के अन्तर्गत शाहजहाँपुर भी था। शाहजहाँपुर जनपद के अनेक स्थलों से गुप्तकालीन प्रस्तर एवं मृणमूर्तियों, ईंटों, मृद्रभाण्डों व अन्य पुरावशेषों की प्राप्ति हुई है, जिससे यह सिद्ध होता है कि यह क्षेत्र गुप्त सम्राट के अंतर्गत आता था। सम्राट स्कन्दगुप्त के बाद हूणों के आक्रमणों और प्रत्याघातों के फलस्वरूप गुप्त साम्राज्य का पतन प्रारंभ हो गया।¹⁴ परिणामस्वरूप भारत में अनेक प्रादेशिक राज्य पुनः उत्पन्न होने लगे। जिसमें कन्नौज के मौखरी एवं पुष्यभूति राजवंश प्रमुख थे। मौखरी वंश के विभिन्न सिक्के अहिच्छत्र व इस क्षेत्र के विभिन्न स्थलों से प्राप्त हुए हैं।¹⁵

उत्तर प्रदेश में पुष्यभूति राजवंश के हर्षवर्धन के शासनकाल के दो अभिलेख बांसखेड़ा (शाहजहाँपुर) तथा मधुवन (आजमगढ़) में मिले हैं। तिथि की दृष्टि से बांसखेड़ा ताम्रपत्र अभिलेख प्रथम है। जो सन् 1894 में शाहजहाँपुर जिले में मिला था। हस्ताक्षर सहित यह अभिलेख हर्ष संवत् 22 अर्थात् 628 ई. का है, जबकि मधुवन का अभिलेख हर्ष संवत् 25 अर्थात् 631 ई. का है। बांसखेड़ा के ताम्रपत्र अभिलेख से ज्ञात जाता है कि हर्ष ने 'अहिच्छत्र भुक्ति' के अंगदीया विषय के 'मर्कटसागर' ग्राम को सब करों से मुक्त कर भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मणों- बालचन्द्र और भट्टस्वामी को दान में देने का उल्लेख है।

आठवीं सदी के अन्तिम चरण में भारत में तीन बड़े शक्तिशाली राजवंशों दक्षिण में राष्ट्रकूट, पूर्व में पाल तथा उत्तर पश्चिम में प्रतिहार वंश का उदय हुआ। यह तीनों राजवंश अपना-अपना राज्य विस्तार में लगे हुए थे जिससे संपूर्ण पांचाल क्षेत्र इन तीनों शक्तियों का संघर्ष का केंद्र बन गया। प्रतिहारों के पतन के बाद इस क्षेत्र में अराजकता रही। परन्तु गहड़वाल वंश के उदय के साथ पुनः व्यवस्था स्थापित हो गयी। पांचाल क्षेत्र में गहड़वाल वंश के सिक्के पाये गए हैं।

सलतनत काल में शाहजहाँपुर जनपद रुहेलखण्ड कमिश्नरी के अन्तर्गत सम्मिलित था। इस समय यह कटेहर के नाम से जाना जाता था। इसके नाम के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण प्रचलित हैं। प्रथम, कटेहर, राजपूत बनारस तथा बिहार क्षेत्र के रहने वाले थे। जो दोआब क्षेत्र में आकर बस गये।¹⁶ शाहजहाँपुर गजेटियर के अनुसार कुतुबुद्दीन ऐबक ने 1196 ई. में बदायूँ पर अधिकार कर लिया।¹⁷ खिलजी वंश के जलालुद्दीन के पुत्र अर्कली खॉ के नेतृत्व में उसकी एक सेना अग्रगामी दस्ते ने बदायूँ के निकट विद्रोहियों को पराजित किया। कटेहर पर भी हमला किया गया, ताकि यहाँ के विद्रोही कटेहरिया राजपूत सिर न उठा सकें। अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में राजस्व की वसूली में हिन्दुओं के साथ कठोर व्यवहार किया जाता था। खिलजी के शासनकाल में कुछ दबने के बाद फिरोजशाह तुगलक के शासनकाल (1351-1388) में कटेहरिया राजपूत पुनः शक्तिशाली बन गये। सन् 1388 में फिरोज तुगलक की मृत्यु हो गई, परन्तु उसकी मृत्यु के बाद उसका भाई योग्य

उत्तराधिकारी न निकला। जगह-जगह पर मुसलमान एवं हिन्दू अपने को सामन्त के प्रभुत्व से पुनः मुक्त कर रहे थे।

सन् 1451 में बहलोल लोदी दिल्ली का शासक बना।¹⁸ बहलोल लोदी के समय जौनपुर के क्षेत्र को केन्द्र मानकर हुसैन शाह ने शासन किया। उन्होंने शकी राजवंश की नींव रखी। इस राजवंश ने बदायूँ के कुछ प्रदेशों पर अधिकार किया था। शाहजहाँपुर गजेटियर के अनुसार उसके शासनकाल में वर्तमान जलालाबाद के रास्ते से मुस्लिम सेना अनेक बार गई।

मुगलकाल में आइने-अकबरी के अनुसार अकबर के समय में काँट-ओ-गोला बदायूँ सरकार के अधीन था। इसके अतिरिक्त आइने अकबरी के अनुसार जलालाबाद शमसाबाद (महाल) के अन्तर्गत कन्नौज (सरकार) का भाग था। शाहजहाँपुर के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण काल शाहजहाँ का काल था। मुगल काल में शाहजहाँ के समय में कटेहरिया राजपूत मुस्लिम सत्ता के लिए चुनौती के रूप में जाने जाते थे। शाहजहाँ ने अपने दो वरिष्ठ सेनानायकों बहादुर खाँ व दिलेर खाँ जो कि जहाँगीर व शाहजहाँ के सेनानायक दरिया खाँ के पुत्र थे, के नेतृत्व में बागियों का दमन करने हेतु यहाँ फौजी टुकड़ी भेजी गई। शाही फौज और स्थानीय लड़ाकू दलों में घमासान संघर्ष हुआ और परिणामस्वरूप शाही फौज ने विरोधियों का पूर्ण दमन करके शाही आधिपत्य स्थापित कर लिया।¹⁹ बहादुर खाँ और दिलेर खाँ की इस विजय से प्रसन्न होकर शाहजहाँ ने दोनों भाईयों को 'हफ्त हजारी' के उच्च सैनिक मनसब से सम्मानित किया। गर्रा और खन्नौत के मध्य का स्थान अत्यन्त ही रमणीक होने के कारण सन् 1647 में बहादुर खाँ और दिलेर खाँ ने शाही स्वीकृति के उपरान्त इसे बादशाह के नाम व उनके सम्मान और स्मृति में इस नगर का नाम "शाहजहाँपुर" रखा। बहादुर खाँ के आदेश पर दिलेर खाँ ने खन्नौत नदी के किनारे एक किले का निर्माण करवाया तथा जलालनगर व बहादुर गढ़ी की स्थापना की।

17वीं शताब्दी में इस क्षेत्र में अफगान अप्रवासी आकर बस गये। कुछ समय के बाद यह क्षेत्र रुहेलखण्ड के नाम से प्रख्यात हो गया और अप्रवासी रुहेला कहे जाने लगे।²⁰ नवाब मोहम्मद खाँ द्वारा रुहेलखण्ड रियासत की स्थापना के समय शाहजहाँपुर पर बहादुर खाँ के वंशजों का नाममात्र का शासन था। सन् 1757 में अहमदशाह अब्दाली ने याकूब अली खाँ को शाहजहाँपुर में सुबेदार किलेदार नियुक्त किया। उन्होंने खन्नौत नदी के किनारे एक शानदार महल बनाया।²¹ सन् 1801 में शाहजहाँपुर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकार में आ गया। सन् 1813-14 में शाहजहाँपुर को एक नये जिले के रूप में मान्यता मिली।

ब्रिटिश काल के दौरान भारत की स्वतंत्रता के लिए शाहजहाँपुर के वीरों का योगदान महत्वपूर्ण है। 1857 की क्रांति में शाहजहाँपुर ने जिला बरेली और लखनऊ के बीच स्वतंत्रता आंदोलन में एक बड़ी भूमिका निभाई। 1857 की क्रांति में खान बहादुर खान ने बरेली में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मौलवी अहमद उल्लाह शाह ने फैजाबाद (यूपी.) से अपना संघर्ष शुरू किया। वहाँ से वह शाहजहाँपुर में आए। दुर्भाग्यवश, मौलवी अहमद उल्लाह शाह की मृत्यु ब्रिटिश सरकार ने पोवायन में की थी। बाद में शाहजहाँपुर से शहीद रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खान और रोशन सिंह ने "स्वतंत्रता आंदोलन" में अपना बड़ा योगदान दिया। रामप्रसाद बिस्मिल ने अपने दोस्तों के साथ श्री गेंदालाल दीक्षित के नेतृत्व में एक समाज "मातृवेदी संघ" बनाया।²² इसका मुख्य उद्देश्य संघर्ष के लिए धन इकट्ठा करना था लेकिन धन की कमी थी। "चौरी-चौरा कांड" के बाद महात्मा गांधी ने आंदोलन स्थगित कर दिया।²³ तब रामप्रसाद बिस्मिल ने "हिंदुस्तान एसोसिएशन" को श्री योगेश चटर्जी के साथ बनाया। योजना को लागू करने के लिए, फंड की आवश्यकता थी। इसलिए 9 अगस्त, 1925 को चंद्रशेखर आजाद, बिस्मिल, अशफाकउल्ला खान और राजेन्द्र सिंह लाहिरी ने "काकोरी" रेलवे स्टेशन के निकट सरकारी फंड को लूट लिया।²⁴ 26 दिसंबर, 1925, को 40 व्यक्तियों को इस मामले में गिरफ्तार किया गया। रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खान, रोशन सिंह, प्रेमकिशन खन्ना, बनवारी लाल, हरगोविंद, इंद्र भूषण, जगदीश और बनारसी शाहजहाँपुर से थे। ब्रिटिश सरकार ने 19 दिसंबर, 1927 को यह मामला तय किया।²⁵ श्री रामप्रसाद बिस्मिल को गोरखपुर की जेल में लटका दिया गया, श्री अशफाकुल्ला खान को फैजाबाद की जेल में लटका दिया गया और श्री रोशन सिंह को मलका (इलाहाबाद) की जेल में फांसी दी। यह स्वतंत्रता सेनानियों के एक महान प्रतिपादक थे, जो "स्वतंत्रता आंदोलन" में शाहजहाँपुर के थे। 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान शहर से सटे अजीजगंज में नमक कानून तोड़ने के लिए विशेष प्रयास किए

गए। महिलाएं भी इस आंदोलन में बढ़ चढ़कर प्रतिभाग कर रहीं थीं। इस आंदोलन में 80 से ज्यादा लोगों को सजा मिली। 1942 में जब भारत छोड़ो आंदोलन प्रारंभ हुआ। तब शहर में पं. शिवकुमार मिश्रा, पुरुषोत्तम दास टंडन, लाखन दास नेता थे। उनकी गिरफ्तारी के बाद आंदोलन भूमिगत हो गया और इसकी कमान मनीलाल खन्ना, उनके भाई बसंत लाल खन्ना, मुन्नालाल गुप्ता, उमा देवी, मुक्ता प्रसाद, गार्गी दीन, विशंभर दयाल अवस्थी, जानकी प्रसाद ने संभाल ली। तिलहर, रोजा, में रेल की पटरियां उखाड़ दी गई।²⁶ सिगनल तोड़ डाले। बहादुरगंज में युवाओं, स्कूली छात्रों से पुलिस की मुठभेड़ हुई। बड़ागांव, तिलहर, पुवायां भी बेहद अशांत थे। इस प्रकार उत्तर प्रदेश में जनपद शाहजहाँपुर की सभी कालखंड में महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

निष्कर्ष

ऐतिहासिक साक्ष्यों और तथ्यों के आधार पर जनपद शाहजहाँपुर का एक गौरवमय इतिहास रहा है, जो ऐतिहासिक व पुरातात्विक स्रोतों से प्रमाणित होता है। किंतु इस जनपद का इतिहास इतिहासकारों की उदासीनता के कारण धुंधला सा हो गया है। यद्यपि जनपद का ऐतिहासिक महत्व अविस्मरणीय है। शाहजहाँपुर जनपद का महाभारत काल, रामायण काल, वैदिक काल, महाजनपद काल, मौर्य काल से वर्तमान समय तक इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आज भी जनपद में धातु एवं काष्ठ कला, कालीन, मिट्टी के बर्तन बनाना, खजूर की चटाई बनाना, पंखे बनाना जैसे उद्योगों²⁷ में लाखों लोगों को रोजगार देकर महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। अतः आत्मनिर्भर भारत के सपने को साकार करने में भी शाहजहाँपुर महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ

1. सांख्यिकीय पत्रिका, जनपद शाहजहाँपुर. अर्थ एवं संख्या प्रभाग, उत्तर प्रदेश (1998), पृ.सं. -01.
2. <https://shahjahanpur.nic.in/hi/%E0%A4%A4%E0%A4%B9%E0%A4%B8%E0%A5%80%E0%A4%B2/>
3. पार्जिटर, एफ.ई. “इंशियंट हिस्टोरिकल ट्रेडिशनस”. दिल्ली (1962), पृ. सं. -258
4. शाहजहाँपुर गजेटियर (1910), पृ. सं. -26
5. त्रिवेदी, आर. के.. “उपनिषदकालीन समाज एवं संस्कृति”, पृ. सं. - 29
6. मजूमदार, आर. सी. एवं पुसलकर : ए. डी. “हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल दि वैदिक एज” भाग - 1. पृ. सं. -298
7. वही, पृ0-298
8. चौबे, सौरभ . “प्राचीन भारत“ प्रथम संस्करण यूनिवर्सल प्रकाशन, प्रयागराज, 2021. पृ. सं. -381
9. पाण्डेय, के. एन. (सम्पादित), “डिस्ट्रिक्ट गजेटियर”, शाहजहाँपुर (1988), पृ. सं. - 20
10. शास्त्री, के. एन. (सम्पादित), “कम्प्रीनेसिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया“ भाग 2, पृ. सं. -107
11. सिंह, केडी. “प्राचीन भारत का इतिहास”, प्रथम संस्करण. प्रिया प्रकाशन, प्रयागराज 2021. पृ. सं. -209
12. शास्त्री, के. एन. (सम्पादित), “कम्प्रीनेसिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया”, भाग 2. पृ. सं. -108
13. चौबे, सौरभ . “प्राचीन भारत”, प्रथम संस्करण यूनिवर्सल प्रकाशन, प्रयागराज, 2021 पृष्ठ सं. -457
14. सिंह, केडी. “प्राचीन भारत का इतिहास”, प्रथम संस्करण. प्रिया प्रकाशन, प्रयागराज . 2021. पृष्ठ सं. -255
15. मजूमदार, आर.सी.. “प्राचीन भारत”, पृ. सं. 213
16. फिशर. “शाहजहाँपुर गजेटियर (1883)”, भाग 9, इलाहाबाद (1883), पृ. सं. -72
17. चौबे, सौरभ . “मध्यकालीन भारत का इतिहास”, प्रथम संस्करण यूनिवर्सल प्रकाशन, प्रयागराज, 2021. पृष्ठ सं.-104
18. वही, पृष्ठ सं.-165

19. शाहजहाँपुर गजेटियर (1910), पृ. सं. -3
20. खॉ, मोहम्मद जमा. “स्वतंत्रता संग्राम में शाहजहाँपुर का योगदान”, शोध ग्रन्थ, पृ. सं. - 28
21. नन्दन, गिरिराज. “रुहेलखण्ड इतिहास एवं संस्कृति”, पृ. सं. 235
22. वर्मा, मदनलाल “स्वाधीनता संग्राम के क्रांतिकारी साहित्य का इतिहास” द्वितीय संस्करण, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली. 2018. पृ. सं. -205
23. कुशवाहा, सुभाषचंद्र. “चौरी चौरा विद्रोह और स्वाधीनता आंदोलन”, प्रथम संस्करण, पेंगुइन बुक्स, दिल्ली, पृ. सं. -18
24. चतुर्वेदी, बनारसी दास. “आत्मकथा राम प्रसाद बिस्मिल”, प्रथम संस्करण आत्माराम एंड संस प्रकाशन, दिल्ली. 2009. पृ. सं. -50
25. सोनी, वेदप्रकाश. “दस्ताने आजादी”. प्रथम संस्करण. एस. के. प्रकाशन, दिल्ली. 2008. पृ. सं. -15
26. कहकशा. “शाहजहाँपुर का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास एक ऐतिहासिक अध्ययन” शोध ग्रंथ. 2022. पृ. सं. -7



श्री अरबिन्दो की दृष्टि में राष्ट्रीय, अध्यात्म व मानवता का सम्बन्ध

काजल पौनियाँ

शोधार्थी, हिन्दी विभाग

वर्धमान कॉलेज

महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

डॉ. अंजू बंसल

शोध निर्देशक

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

वर्धमान कॉलेज बिजनौर

बीज शब्द- अध्यात्मिक, राष्ट्रवादी, मानस, राजनीति, सनातन, राष्ट्रीयता, क्रान्तिकारी।

शोध सार

श्री अरबिन्दों घोष भारतीय महान दार्शनिकों में से एक हैं। जिन्होंने अपने योग और अध्यात्म से समस्त संसार को ईश्वरीय ज्ञान का संदेश दिया। श्री अरबिन्दों महान क्रान्तिकारी, राष्ट्रवादी एवं योगी पुरुष थे। उन्होंने मानवीय मूल्यों को मनुष्य के जीवन का सार कहा है। उनके विचारों से समग्र समाज में शैक्षिक एवं नैतिकता का संदेश जाता है। महान कर्मयोगी, हठयोगी एवं राष्ट्र योगी व राष्ट्रवादी विचारक कहे जाने वाले श्री अरबिन्दों ने समाज की यथार्थ की सत्ता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास की ओर ध्यान केन्द्रित किया। जो मानव के मानवीय मूल्यों, जीवन आत्मा व परमात्मा, अस्तित्व एवं सम्पूर्ण अस्तित्व के सार की गूढ़ता के भाव एवं अध्यात्म को प्रदर्शित करता है। श्री अरबिन्दों 20वीं शताब्दी के ओजपूर्ण एवं पुनर्जागरण के विचारक माने जाते हैं। श्री अरबिन्दों के विचार वर्तमान परिप्रेक्ष्य में योग एवं शिक्षा की ओर प्रेरित करते हैं। वे शिक्षा, शिक्षक एवं शिक्षार्थी तीनों को शिक्षण विधि, पाठ्यक्रम व अनुशासन की ओर अग्रसर करते हैं। श्री अरबिन्दों ईश्वरीय ज्ञान, शक्ति पर विश्वास करते थे। उन्होंने साक्षात् ईश्वर के दर्शन किये। गीता, उपनिषद्, पुराण एवं अध्यात्म, योग आदि पर श्री अरबिन्दों ने ध्यान केन्द्रित किया। वे प्रकृति प्रेमी थे। उनके लिये मानवता पहले थी। श्री अरबिन्दों महात्मा गांधी और भगतसिंह दोनों से प्रेरित थे। श्री अरबिन्दों इस लिये अरबिन्दों थे क्योंकि उन्होंने जीवन की जीने की कला से एक कली की भाँति सुगंध लेते हुए समस्त संसार को सम्पूर्ण मानवता को सुगंध का सूत्र सौंप दिया। श्री अरबिन्दों ने इस संसार की दौड़ में जो व्यक्ति अपना प्रेय और श्रेय तलाश कर वर्तमान की जड़ता में गहराई से धसता जाता था, उसे जड़ता से मुक्त अपनी क्षमताओं की आखिरी साँस तक जीने का तरीका बताया है। श्री अरबिन्दों महान कवि, लेखक, क्रान्तिकारी एवं ऋषि थे। श्री अरबिन्दों मात्र एक व्यक्ति नहीं वरन् वह एक प्रचंड आध्यात्मिक शक्ति थे। श्री अरबिन्दों ने भारतीय संस्कृति, सभ्यता व धर्म को समाज में सर्वोपरि रखा। श्री अरबिन्दों ने भारतीय संस्कृति को उच्चतम शिखर पर रखा है। और उस शिखर पर पहुँचने के लिये धर्म को आवश्यक मानते हुए भारत को भविष्य का विश्व गुरु बनने का सपना देखा था। आज वर्तमान में भारतीय संस्कृति एवं सनातन धर्म का सम्पूर्ण विश्व में डंका बज रहा है। भारत का विश्व गुरु बनने का सपना सच हो रहा है।

प्रस्तावना

श्री अरबिन्दों आधुनिक और समकालीन दर्शन व अध्यात्म के महापुरुषों में से एक योगी पुरुष थे। वे एक अद्वितीय विचारक, कवि, एक सशक्त राजनीतिज्ञ, एक उत्कृष्ट देश प्रेमी, एक स्नेहशील शिक्षक, एक गम्भीर मनीषी एवं सम्मोहक वक्ता थे। श्री अरबिन्दों का जन्म 15 अगस्त 1872 को कोलकाता (तत्कालीन कलकत्ता) भारत में हुआ था। इनके पिता डॉक्टर कृष्णाधन घोष और माता स्वर्णलता थी। श्री अरबिन्दों कृष्णाधन के तीसरे पुत्र थे। उनका जन्म ऐसे परिवार में हुआ था जो पहले से ही विद्वान था। उनके पिता अंग्रेजी पद्धति से प्रभावित थे। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के परम भक्त थे। इसलिये उनका दृढ़-निश्चय था कि उनके बच्चों का पालन-पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा पूर्णतः अंग्रेजी जैसी हो। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा कैम्ब्रिज स्कूल दार्जिलिंग में हुई। सन् 1879 में उन्हें इंग्लैंड भेज दिया गया। वहाँ उन्होंने शिक्षा पूरी की। और 14 वर्षों तक विदेश में रहकर विशुद्ध पढ़ाई की। श्री अरबिन्दों ने अपने पिता की खुशी के लिये न चाहते हुए भी सन् 1890 ई. में सिविल परीक्षा दी। किन्तु घुड़सवारी न आने के कारण उनको निकाल दिया गया। श्री अरबिन्दों को 12 भाषाओं का ज्ञान था।

सन् 1893 ई. में श्री अरबिन्दो भारत आ गये। भारत आने के बाद उन्होंने बड़ौदा के गायकवाड़ के यहाँ 13 वर्षों तक नौकरी की। इसी बीच उन्होंने संस्कृत एवं अन्य भाषाओं का भी अध्ययन किया। अपने जीवन में कार्यों के माध्यम से मानव व समाज को उत्थान एवं आध्यात्मिक विकास के लिये प्रेरित किया। श्री अरबिन्दों ने राष्ट्रवाद की चेतना को जाग्रत करने के लिये योग एवं आत्मशक्ति के द्वारा हृदय परिवर्तन की चेतना जाग्रत की।

श्री अरबिन्दों ने विदेश में पश्चिमी सभ्यता में रहते हुए भी अनेकों ग्रंथों, किताबों एवं ढेर सारे साहित्य को पढ़ा। हीगल और कांट को पढ़ा किन्तु उनका कृतित्व उन्हें आकर्षित नहीं कर सका। श्री अरबिन्दों ने दांते, वर्जिल, टेनीसन, शेक्सपीयर, मिल्टन आदि विख्यात लेखकों के साहित्य को पढ़ा। अनुपमा 'ऋतु' अपनी अनुवादक पुस्तक में लिखती हैं कि “श्री अरबिन्दों ने खासतौर पर उन्हें रोमांटिक काल के कवि वायरन, शैली, कीट्स आदि पसन्द आए, 1889 में ‘सांग्स टू मायर-टिला’ (Songs to Myrtuilla) शीर्षक से प्रकाशित उनकी कविताओं की जड़े इसी काल में दिखाई देती हैं। अमूर्त तर्क या दर्शन के बजाय उनकी अभिरुचि जीवन से जुड़ी प्रेरक कविताओं और विचारों में थी।”

श्री अरबिन्दों का विवाह सन् 1901 ई. में मृणालिनी बोस से हुआ। उनका वैवाहिक जीवन ज्यादा कुशल नहीं रहा क्योंकि श्री अरबिन्दों क्रान्तिकारी एवं राजनीति में रहे। उनका वैवाहिक संबंध निःसन्तान रहा। श्री अरबिन्दो रुढ़िवादी विचारधारा से अप्रभावित थे। श्री अरबिन्दो ने अपने श्वसुर को एक बार एक पत्र में लिखा था। वह मनोजदास द्वारा दस्तावेज में प्रकाशित हुआ था। जो मनमोहन गंगोपाध्याय के बांग्ला लेख की एक श्रुति या स्मृति का संदर्भ है। इसमें लिखा है कि “मुझे भय है कि घरेलू जीवन के लिए बहुत बेहतर साबित नहीं हो पाऊँगा। मैंने पुत्र भाई और पति के रूप में अपने दायित्वों को निभाने का निष्फल कोशिश की, लेकिन मेरे भीतर कोई चीज इतनी प्रबल है कि वह गौण बना देती है।” इस प्रकार श्री अरबिन्दों का घरेलू एवं वैवाहिक जीवन सही नहीं रहा। उन्होंने अपनी पत्नी को देशभक्ति एवं अध्यात्म में लाने की कोशिश की परन्तु उनकी अपनी सहमति से कभी दबाव नहीं डाला। श्री अरबिन्दों से एक बार किसी ने प्रश्न किया था कि आध्यात्मिक व्यक्तियों को विवाह क्यों नहीं करना चाहिए। जीवन की कठिन परिस्थितियों को अनुभव करने के बाद श्री अरबिन्दों ने करेस्पोडेंस से कहा कि “बहुत स्वाभाविक है वे परिवर्तन से पूर्व विवाह कर लें और जब परिवर्तन घटित हो, तब विवाह भी अतीत हो चुके ‘स्व’ से जुड़ जाए, नए से न जुड़े। आपको क्या लगता है? बुद्ध, कंप्यूशियस और खुद मैं इस पूर्व दृष्टि के साथ पैदा हुए हैं कि उन्हें या मुझे आध्यात्मिक जीवन से जुड़ना है? जब तक कोई सामान्य चेतना के साथ है, वह सामान्य जीवन ही जीता है। परन्तु जब जागरण और नवीन चेतना प्रकट होती है तब वह पीछे छूट जाता है। इसमें कुछ भी परेशान होने जैसा नहीं है।”

श्री अरबिन्दों ने गायकवाड़ के यहाँ नौकरी करते समय राष्ट्रीयवादी चेतना के लिये लेख एवं भाषण लिखे। गायकवाड़ ने जब इलाहाबाद में भाषण दिया था। तब उसकी कुछ लाइन श्री अरबिन्दों ने लिखी थी। अनुपमा 'ऋतु' ने अपनी अनुवादक

पुस्तक श्री अरबिन्दों भारतीय महर्षि की गाथा में बताया है कि (जिसके कुछ हिस्से श्री अरविंदों घोष ने लिखे थे) गायकवाड़ ने लिखा, 'यदि भारत विश्व में अपना समुचित स्थान पाना चाहता है तो उसे एक ऐसे आन्दोलन की जरूरत पड़ेगी, जहाँ हर व्यक्ति देश के लिए काम करे न कि अपने या अपनी जाति के लिए, इस उद्देश्य के लिए कर्म की आवश्यकता होगी।' इस प्रकार मासूम जनता की जाति-धर्म के लिये भड़काया जा रहा था। इस जनता को उन्होंने स्वतंत्रता के लिये प्रोत्साहित किया। अली कल्चर राइटिंग में लिखा है कि "जब तक आप इस बात को अनुभव नहीं करते कि अंतिम उपचार आपके ही हाथ में है और इसे आप को ही करना होगा, कोई भी बाह्य सहायता आपकी मदद नहीं करती।" श्री अरबिन्दों ने भारतीय नागरिकों के अन्दर की शक्ति को जगाया और राष्ट्र की भावना की ओर प्रेरित किया। श्री अरविंदों राष्ट्र और प्रेम की भावना से ओत-प्रोत थे। इस प्रकार श्री अरबिन्दों ने भारतीयों को राष्ट्रीयता और गुलामी के बीच का अन्तर समझाया। श्री अरबिन्दों ने गाँव तथा बुजुर्गों से आर्थिक सहायता व सहानुभूति की मदद ली।

सन् 1905 ई. में बंग-भंग आन्दोलन में कूद पड़े और राजनीति में प्रवेश कर गये। श्री अरबिन्दों ने नौकरी और घर दोनों छोड़ दिए। श्री अरबिन्दों को षड्यंत्र और जनता को भड़काने के कारण अलीपुर जेल में बन्द कर दिया गया। उन्होंने अलीपुर जेल से अपनी पत्नी को पत्र लिखा किन्तु कोर्ट ने जब्त कर लिया था। अयंगर द्वारा बताया गया है कि, "वे इस सब को पागलपन कहते हैं लेकिन यदि व्यक्ति अपने कामों में सफल रहता है तो वे उसे पागल नहीं कहते, वे उसे महान और प्रतिभाशाली कहते हैं।" उसमें लिखा था कि सामान्य मनुष्य जाति में वे पागल है। क्योंकि उनके लक्ष्य और कार्य असाधारण व असामान्य हैं। श्री अरबिन्दों ने पहली बार 'इंदू' पत्रिका में अपना आलेख लिख कर भारतीय राजनीति पर बहस की और कांग्रेस के बेमतलब की घोषणा की अवहेलना की। उन्होंने भारतीय राजनीति में व्यर्थ के हो रहे संकल्पों की अवहेलना की। श्री अरबिन्दों घोष का एकमात्र लक्ष्य भारतीय जन आन्दोलन एवं न स्वतंत्रता की प्राप्ति के आदर्शों की विजय प्राप्ति थी। श्री अरविंदों ने 'वन्दे मातरम्', 'कर्मयोगी', 'धर्म' आदि पत्रिकाओं में अपना कार्यभार संभाला एवं लेख लिखे।

सन् 1907 ई. में रविन्द्र नाथ ठाकुर ने बंगाली में प्रशंसा की। कुछ पंक्तियाँ लिखी थीं जो कि सितम्बर में 'वन्देमातरम्' में प्रकाशित हुई एवं लोकप्रियता भी मिली। लोकप्रिय हुई। श्री अरबिन्दों सोसाइटी डॉट आर्न डॉट इन पर इस प्रकार थी—

“हे अरविंदो, तुम्हे रविन्द्रनाथ का नमन!

हे मित्र! मेरे राष्ट्र बंधु,

हे संदेह वाणी, भारत की आत्मा हो मुक्त

वह जाज्वल्यवान दूत जो ईश्वर का दीप लिए आया है

हे अरविंदो, तुम्हे रविन्द्रनाथ का नमन।”

श्री अरबिन्दों ने राष्ट्रवादी आन्दोलन का समर्थन कर राष्ट्र की प्रेम-भावना को मानवता के समक्ष रखा। श्री अरबिन्दों ने स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन किया। साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं में अपने लेखों से लोगों की राष्ट्रीय चेतना के लिए जाग्रत किया। उन्होंने राष्ट्र को आत्मनिर्भरता के लिये जाग्रत किया। ताकि भारत को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति मिल सके।

श्री अरबिन्दों "नरमपंथी" की बजाय "उग्र राष्ट्रवादी" नेताओं एवं विचार धारा के समर्थ थे। श्री अरबिन्दों का मानना था कि आजादी आज बातचीत या पत्रिकाओं से नहीं मिलती, उनके लिये बलिदान एवं संघर्ष और आन्दोलन की आवश्यकता पड़ती है। श्री अरबिन्दों ने ब्रिटिश शासक के खिलाफ सशस्त्र क्रान्ति की आवश्यकता पर जोर दिया। सन् 1907-1908 में 'वन्दे मातरम्' समाचार पत्र में सम्पादन किया। तथा स्वतंत्रता आन्दोलन में ब्रिटिश शासन के खिलाफ लेख लिखे। यह समाजचार पत्र राष्ट्रवादी विचारों का प्रमुख माध्यम बना। इसमें देशभक्ति की भावना को जागृत किया, और अंग्रेजों के खिलाफ आवाज उठायी। श्री अरविंदों ने राष्ट्रीय एवं संगठन गतिविधियों में भाग लिया। उन संगठनों के साथ मिलकर स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी। उनका उद्देश्य भारत को ब्रिटिश शासन से मुक्ति दिलाना था। सन् 1908 ई. में बंगाल षड्यन्त्रों के संबंध में उनकी गिरफ्तारी हो गई। लेकिन न्यायधीश मिस्टर ब्रीकोस्ट ने जो कि केम्ब्रिज में श्री अरबिन्दों के सहापाठी थे उन्होंने निर्दोश मानते हुए आरोपों से मुक्त कर दिया। एक बार जेल में उन्हें ईश्वरीय शक्ति श्रीकृष्ण के दर्शन हुए। ऐसा माना जाता है कि

श्री अरबिन्दों को भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिये। इस अलीपुर जेल काण्ड के बाद श्री अरबिन्दों भारतीय क्रान्तिकारी व राजनीतिक गतिविधियों का प्रमुख चेहरा बन गये थे। इसी अलीपुर काण्ड के बाद ही श्री अरबिन्दों ने भारतीय राजनीति से किनारा कर लिया था। और अध्यात्म में, ईश्वर की प्रार्थना में लग गये।

श्री अरबिन्दों ने राष्ट्रवादी विचारक के साथ-साथ वेद, पुराण एवं गीता में हिन्दू धर्म के प्रति मनुष्य के हृदय को परिवर्तित एवं आकर्षित किया। श्री अरबिन्दों कर्मयोगी एवं धर्मयोगी विद्वान थे। श्री अरबिन्दों ने अलीपुर जेल में साक्षात् श्रीकृष्ण भगवान के दर्शन किए। उन्हें ईश्वरीय शक्ति का एहसास हुआ और इससे लोगों को अध्यात्म एवं योग के लिये प्रेरित किया। श्री अरबिन्दों सनातन धर्म, शाश्वत ज्ञान व हिन्दू धर्म को मानते थे। श्री अरबिन्दों ने 'द सिंथेसिस ऑफ योग' में सविस्तार योग को वर्णित किया है। श्री अरबिन्दों पुनर्जन्म पर विश्वास करते थे। श्री अरबिन्दों की पुस्त 'द सिंथेसिस ऑफ योग' को योग-दर्शन की श्रेणी में रखा जा सकता है। यह पुस्तक साहित्य की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है। इसके चार भाग हैं। और सभी भागों का सार एवं रहस्य बड़ी स्पष्टता से किया है। प्रथम भाग में तीन भाग है। (कर्म, ज्ञान और शान्ति है) भगवत् गीता है। ज्ञान खण्ड में हठयोग, राजयोग का वर्णन है। चौथे भाग में सर्वांग योग है। अन्तिम अध्याय चेतना का वर्णन करता है। इन सभी को जानकर मनुष्य ईश्वरीय वैचारिक समर्पण मनुष्य को अपने समस्त जीवन को आध्यात्मिकता की ओर ले जाने को प्रोत्साहित करता है। जो व्यक्ति प्रकृति हर कण में ईश्वरीय शान्ति को देखता है वह जीव-जन्तुओं आदि को प्रेम करता है। इस प्रकार योग अपनी सीमितता या एकांगिकता से सामूहिक योग की दिव्य प्रकृति की ओर प्रवृत्त होता है। दिव्यता के साथ एकाकार हुए मुक्त प्राणी आत्मपूर्णता के साथ समर्पण कर समर्पित होता है।

श्री अरबिन्दों ने अपनी पाँचवी स्थिति में आत्मनिष्ठावादी युग को देखा है द ह्यूमन साकाल में अरबिन्दों ने कहा है, "जिसमें मनुष्य गहराई से देखने और यह जानने की कोशिश करते हैं कि तल के परे क्या है? यह आत्मज्ञान की ओर एक कदम है। आत्मा तथा जीवन की ओर सब-कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि वह कदम कैसे उठाये जाते हैं? हम किस प्रकार की आत्मनिष्ठा की ओर बढ़ते हैं? कितनी दूर पहुँचते हैं? क्योंकि यहाँ त्रुटि होने के खतरे बहुत हैं, हमारी यात्रा जितनी लंबी होगी, परिणाम उतने ही सटीक होंगे।" श्री अरबिन्दों ने इस भाग में जर्मन के निवासियों का सांस्कृतिक विश्लेषण भी किया। उनकी गलतियों की चर्चा की है। जो बीसवीं सदी में उनको त्रासदी की ओर ले गई थी। उन्होंने कहा था कि प्रत्येक समाज का वास्तविक लक्ष्य यह होना चाहिए कि, "द ह्यूमन सायकाल में कहा कि "सर्वप्रथम जीवन और विकास की ऐसी परिस्थितियाँ उपलब्ध कराएँ। जिनमें कोई एक व्यक्ति, वर्ग या नस्ल नहीं, सभी अपनी क्षमतानुसार विकसित हो और क्षेत्रीय पूर्णता की यात्रा करें।" श्री अरबिन्दों ने यहाँ विकास और भगवान की दैवीय शक्ति, अध्याय में ध्यान करने को कहा है। अरविंदो महर्षि की गाथा में अनुपना 'ऋतु' कहती है कि "यहाँ हम उस बिन्दु पर विचार कर सकते हैं कि अरविंदो एक बार फिर अपने आधारभूत ध्येय, दिव्यता की ओर विकासशील प्रगति" की ओर लौट आते हैं। आत्मनिष्ठावादी युग, आध्यात्मिक तथा आत्मज्ञानी युग की ओर प्रवृत्त होगा, इसे अति मानसिक विकास कहा जा सकता है। जहाँ प्रत्येक क्रिया और विचार दिव्य प्रकाश से निर्देशित होने की क्षमता का विकास करेगा।"

श्री अरबिन्दों ने अपने विचारों से समस्त मनुष्य प्राणी को अध्यात्म और ईश्वर की ओर ध्यान केन्द्रित करने को कहा। श्री अरबिन्दों ने 'गीता' को अपने विचारों तथा मतों से एक साधक के रूप में देखा है। अनुपमा 'ऋतु' अरबिन्दों भारतीय महर्षि की गाथा : में कहा है कि गीता कर्म की वकालत करती है तो दूसरी ओर प्रेम, ज्ञान, कर्म के मार्ग को एक करती है।" प्रेम और भक्ति के बीच ज्ञान को मार्ग बनाया है। श्री अरबिन्दों अंतिम अध्याय में परम सत्य तथा सर्वोच्च संसार व सबसे गोपन तत्व को सम्बोधित करते हुए, ऐसेज, ऑन गीता में कहते हैं कि "चेतना और परमात्मा सभी धर्मों से मुक्त व असीमित है, यद्यपि वह (ईश्वर) संसार को एक निश्चित नियम के अनुसार संचालित करता है। मनुष्य को ज्ञान- अज्ञान, पाप-पुण्य, नैतिक-अनैतिक की ओर प्रवृत्त करता है। वही इन सभी परिस्थितियों का अतिक्रमण भी करता है। यदि हम भी धर्म पर निर्भरता त्याग सकें। इस मुक्त और आंतरिक चेतना के समझ समर्पण कर सकें, तो हमारी मुक्ति वास्तविक और महान होगी।" श्री अरबिन्दों ने आंतरिक चेतना का समर्पण करते हुए ज्ञान-अज्ञान, पुण्य-पाप तथा धर्म को त्याग कर बस नैतिक मूल्यों और

ईश्वर पर ध्यान केन्द्रित करने को कहा। श्री अरबिन्दों एक अलौकिक शक्ति के ज्ञाता थे। जिन में सभी शक्तियों का वास दिखता था। श्री अरबिन्दों ने आत्मा, शारीरिक योग, अतिमानस एवं दैवीय जीवन के बारे में अवगत कराया। श्री अरबिन्दों के सभी सात आलेख बाद में 'द सुपरमेटल मेनीफेस्टेशन' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए थे। 'लाइक डिवाइट' की सहायक कुंजी इस पुस्तक को माना जाता है। श्री अरबिन्दों ने इसमें 'द माइंड ऑफ लाइट' की अवधारणा को प्रतिपादित किया है। इसमें मनुष्य ज्ञान से अज्ञान की ओर बंधा होता है। वह सत्-चेतना की योग्यता रखते हुए सत्य के साथ रहने की सामर्थ्यता को तोलता है। ऐसेज इन फिलॉसफी एण्ड योग में श्री अरबिन्दों कहते हैं— "हम जिसे 'माइंड ऑफ लाइट' कहते हैं वह वास्तव में चेतना के प्राकट्य की शृंखला है, जिसमें अतिमानस स्व-चयनित सीमाओं द्वारा स्वयं को एक ओट में छिपा लेता है।"

सन् 1910 ई. में श्री अरबिन्दों पाण्डिचेरी चले गये। इसी बीच सहयोगियों से उनका केवल पत्र व्यवहार का क्रम चलता रहा। एकान्तवास में उन्होंने योग और ध्यान में ही अपना समय व्यतीत किया। विशेष अवसरों पर, समय-समय पर भारत व संसार को यथोचित संदेश भी देते रहे। पाण्डिचेरी में उन्होंने आश्रम की स्थापना की जो कि आज विष्व विख्यात है। जहाँ आध्यात्मिक साधना, योग एवं ब्रह्मचर्य का पालन कर जीवन बिताया। सन् 1914 ई. में श्री अरबिन्दों ने 'आर्य' नामक अंग्रेजी भाषा की मासिक पत्रिका निकालना आरम्भ किया। जिसमें उन्होंने वेद, उपनिषद्, गीता, योग, भारतीय जागृति और दैवीय जीवन आदि विषयों पर बहुत गंभीर और मननशील लेख प्रकाशित किये। साल में एक बार अपने आश्रम से बाहर निकलकर अपने अनुयायियों को दर्शन देने आते थे। इसके अतिरिक्त लोगों से मिलना बाहर निकलना बन्द कर दिया था। श्री अरबिन्दों ने 5 दिसम्बर, 1950 ई. को 1 बजकर, 26 मिनट पर रात्रि में महा समाधि ले ली।

श्री माताश्री अरबिन्दों की शिष्या ने 7 दिसम्बर को एक संदेश में बताया कि जब तक श्री अरबिन्दों का कार्य पूरा न होगा तब तक वह पृथ्वी नहीं छोड़ेंगे। पूरे तीन घण्टे तक गुरु जी के शरीर में दिव्य ज्योति का प्रभाव बना रहा। मालूम होता था कि मृत्यु में अमृत्यु उतर आया है। शरीर कंचन की तरह अपनी-अपनी सहज आभा बनाए हुए था। उसमें किसी भी प्रकार का विकार हुआ ही नहीं था। माता जी ने 14 दिसम्बर को जो संदेश दिया उसमें कहा- "श्री अरबिन्दों के लिए दुःखी होना श्री अरबिन्दों का अपमान करना है। श्री अरबिन्दों हम लोगों के साथ हैं, पहले की तरह संजीव और सचेतन, वे हम लोगों को छोड़कर जा नहीं सकेंगे। हम उनकी उपस्थिति को पहले की तरह पहले से भी अधिक जागृत और जाज्वाल्यमान अनुभव करते हैं। वे सदा हमारे साथ हैं, जो कुछ हम कर रहे हैं, सोच रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं सब के दृष्टा के रूप में।"

अर्थात् किसी योगी पुरुष की मृत्यु होती ही नहीं जिसे हम सामान्यतः 'मृत्यु' कहते हैं। उसकी चेतना भौतिक शरीर की मर्यादा से अधिक होती है। वह जब सषरीर होता है तब वह दैहिक आवरण से अधिक महान होता है। जो वह मानव जीवन के लिए कार्य कर रहा होता है वह मूलतः उसकी स्वतंत्रता एवं विषाल आत्मा का कार्य होता है। उसे आत्मा का जो सनातन भगवान की असीम एकता के साथ पूर्णतया सजग रूप से अमृत्यु का भोग करती है। और एक महंत, योगी पुरुष के लिए वास्तव में जीवन और मृत्यु दोनों स्वांग मात्र हैं। श्री अरबिन्दों जैसे योगी पुरुष के संबंध में तो 'मृत्यु' शब्द का प्रयोग असंगत होगा क्योंकि वे सब जानते थे कि अति-मानस की रूपांतरकारी शक्ति उनके शरीर के प्रत्येक अणु में कार्य कर रही थी और उसका प्रभाव सम्पूर्ण विष्व पर हो रहा था वे एक विद्वान थे। उन्होंने संसार को यथोचित संदेश दिया।

श्री अरबिन्दों एक कर्मयोग, धर्मयोगी, राष्ट्रवादी थे। उन्होंने संसार को वेद पुराण, उपनिषद् एवं गीता में हिंदू धर्म के प्रति जागृत किया। भगवान श्री कृष्ण के साक्षात् दर्शन कर तथा एक बार उन्हें दुर्घटना का भी आभास पहले से हो गया था उनके अन्दर एक शान्ति का वास था। श्री अरबिन्दों सनातन धर्म को मानने वाले थे। श्री अरबिन्दों आध्यात्मिक दर्शन का आरंभ से अंत तक गहरा संबंध था- अनुवादक अनुपमा 'ऋतु; ने अपनी पुस्तक अरबिन्दों : भारतीय महर्षि की गाथा में लिखा है— "उदाहरण के लिए अरबिन्दों अवतारवाद या पुनर्जन्म में विष्वास जगाने की स्थितियां रचते हैं, वे मानते हैं कि आत्मा बार-बार जन्म लेती है और अनेकानेक जन्मों व विविध उपस्थितियों के माध्यम से अपना परिष्कार करती है। श्री अरबिन्दों ऐसे ही बहुत से दूसरे बिंदुओं पर जो स्टैंड लेते हैं, वह पश्चिमी ज्ञान, दर्शन एवं पद्धतियों के लिए सर्वथा अपरिचित हैं।"

श्री अरबिन्दों का कहना था कि समस्त विश्व में हिन्दू धर्म की क्रान्ति लाना है। उन्होंने सनातन धर्म और ईश्वर की प्रार्थना, ध्यान एवं योग को प्राथमिकता दी। उन्होंने शाश्वत ज्ञान को व सनातन धर्म को माना था। इस पर श्री अरबिन्दों का वक्तव्य था। और उन्होंने कर्मयोगी में बताया है कि “आदि का उल्लेख किया ओर इस अवधारणा की विसृत आध्यात्मिक व्याख्या की। यह सिद्धान्त हिन्दुत्व के करीब हैं, क्योंकि समुद्र और पर्वतों से घिरे भारतीय उप-महाद्वीप में ये विचार प्राचीनकाल से अब तक मौजूद रहे हैं। इन सिद्धान्तों को कायम रखना भारतीयों का विशेष उद्देश्य रहा है। उनका विष्वास था कि हिन्दू-धर्म मूलतः किसी एक देश से परिगत (बंध हुआ) नहीं है। यह हमेषा के लिए विश्व के किसी एक हिस्से से जुड़कर नहीं रह सकता।” इस प्रकार श्री अरबिन्दों विश्व में धर्म की क्रान्ति लाना चाहते हैं।

उनका मानना था कि सभी धर्मों में ईश्वरीय आध्यात्मिकता का ज्ञान वर्णित है। जैसे- गीता, उपनिषद् में आध्यात्मिकता अनिवार्य तत्व वर्णित हैं वैसे ही कुरान, बाइबिल आदि में ग्रन्थों में भी वर्णित है। सभी का कथ्य व शिल्प भिन्न होता है परन्तु मूल स्वर एक ही है।.....“कर्मयोगी का पुराणी, ईवनिंग टॉम्स जून 1926 में छपा था कि ‘ईसायत कहती है कि हम सब भाई हैं, ईश्वर की सन्तान हैं। इस्लाम कहता है कि हम सब खुदा की रियाया और गुलाम हैं। हम सब उस की नजरों में एक बराबर हैं। हिंदुत्व कहता है यहाँ केवल एक ही हैं, दूसरा कोई नहीं। ऊँचे और नीचे में, ब्राह्मण और शुद्ध में, साधु और शैतान में एक ही नारायण है, वहीं सबकी आत्मा है।”

श्री अरबिन्दों ने ‘कर्मयोगी’ पत्रिका में मानस के उद्देश्य को समझाया है। मनुष्य का क्यों जनम-मरण होता है। जो भी हम इस संसार में कार्य कर रहे हैं वह ईश्वर के द्वारा हो रहा है हम तो मात्र एक बिन्दु हैं। उन्होंने कर्मयोगी में मानस से अतिमानस की व्याख्या की है। श्री अरबिन्दों ने कर्मयोगी का उद्देश्य समझाने में सहायता की है और बताया है कि- “अभी हमें स्वयं को जानना है, हम क्या थे, क्या हैं और क्या होंगे। हमने अतीत में क्या किया और भविष्य में हम क्या करने में समर्थ हैं। हमारा इतिहास और हमारा उद्देश्य क्या है। इसका ज्ञान सबसे प्रथम व महत्वपूर्ण काम है। जो ‘कर्मयोगी’ ने अपने लिये तय किया है।”

इस प्रकार श्री अरबिन्दों ने सम्पूर्ण मानव जाति को मानस और अतिमानस को कर्म और अध्यात्म की ओर अग्रसर किया। उनका उद्देश्य भौतिक विकास प्राणिक एवं मानसिक विकास व अन्तरात्मिक विकास का उद्देश्य रहा है। उनके विचार, उनके दर्शन में राष्ट्रीयता मूल रूप से अध्यात्म की ओर ले जाती है। श्री अरबिन्दों ने राष्ट्रवाद को ही धर्म मानते हुए राजनीतिक स्वतंत्रता को ईश्वरीय कार्य की संज्ञा दी हैं उनके अनुसार राष्ट्रवाद में किसी प्रकार की कड़वाहट, देश व आक्रामकता नहीं है। उन्होंने स्वराज हेतु सेवा और देश प्रेम के लिए बलिदान की आवश्यकता को अनिवार्य माना है। उन्होंने राष्ट्रवाद, धर्म को ईश्वर का श्रोत कहा है। श्री अरबिन्दों ने मानस से अतिमानस के अंधकारमय रूप का विभाजन किया है। श्री अरबिन्दों एक महान व्यक्तित्व एवं ईश्वरीय शक्ति की देन थे।

श्री अरबिन्दों ने ईश्वर व मनुष्य के बीच प्राकृतिक सम्बन्ध माना है। उन्होंने अपनी पुस्तक द लाइक डिवाइन में ईश्वर, मनुष्य और प्रकृति की संक्षिप्त रूप से चर्चा की है। श्री अरबिन्दों ने द लाइक डिवाइन (दिव्य जीवन) के 17वां भाग यही बताता है कि ईश्वर और प्रकृति के बीच मनुष्य का उद्देश्य, प्रारब्ध क्या होना चाहिए। इस अध्याय में श्री अरबिन्दों ने ईश्वर, प्रकृति, मानव इन तीनों के सम्बन्धों की व्याख्या की है। श्री अरबिन्दों योग, आध्यात्म, ईश्वर तथा दर्शन की बात कहते थे। उन्होंने अपने जीवन में आत्मा और परमात्मा के बीच जो बिन्दु है उसको जानकर समाज में यह संदेश दिया कि परमात्मा और आत्मा का प्राकृतिक संबंध है। अचेतन मन ही ईश्वर से बातें करता है। और यह सब प्राकृतिक है। व्यक्ति अपने मन, शरीर और प्राण के भीतर आत्मा के सत्य स्वरूप को न जानने के कारण वह अन्दर के सत्य स्वरूप को न जानने के कारण वह अन्दर से विभाजित, बिखरा व खण्डित हो रहा है। डॉ. नन्दिनी सिंह की पुस्तक आधुनिक एवं समकालीन भारतीय दार्शनिक चिन्तन के अध्याय में श्री अरविन्द की दृष्टि में ईश्वर, मनुष्य और प्रकृति का सम्बन्ध में : डॉ. अंजनी कुमार सिंह ने लिखा है कि- “श्री अरबिन्दों एक परम तत्व में विश्वास करते हैं जो निरपेक्ष होते हुये भी पाश्चात्य निरपेक्षतावाद की संकल्पनाओं से भिन्न है क्योंकि वह अपनी असीम सम्भावनाओं और सभ्यताओं के साथ न केवल गोचर और अगोचर सृष्टियों को अभिव्यक्ति

करने में सक्षम हैं, उनमें व्यक्त और उनका अन्तर्वर्ती है बल्कि उनसे परे, उनसे तटस्थ और उनसे असंग तथा निरपेक्ष भी है। वह अतिवर्ती परम सत्ता है, परम पुरुषार्थ है, परम परमार्थ-तत्त्व है, वह एक अद्वितीय, अखण्ड और शाश्वत सत्ता है।”

निष्कर्ष

इन सब दृष्टिकोणों के माध्यम से श्री अरविन्दों ने संसार में मानव जाति को, मानवता को उच्चतर मूल्यों की ओर अग्रसर किया। श्री अरविन्दों ने अपने जीवन को तीन स्तरों पर बांटा था। पहला राष्ट्रवाद, दूसरा राजनीतिक, तीसरा बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास। उन्होंने क्रान्तिकारी और राजनीतिक जीवन में अपने आप को सर्वोपरि रखा। उन्होंने अपने बौद्धिक विकास के लिये साहित्य को पढ़ा और अन्त में ईश्वर की उपासना, योग एवं अध्यात्म में अपना जीवन सौंप दिया। आध्यात्मिक उत्थान और साधना में लग गये। श्री अरविन्दों ने वेदों, पुराणों एवं गीता को अपने जीवन का सार मान लिया। और श्री कृष्ण को ईश्वरी आधार मानकर उन्होंने एक शक्ति जो अदृश्य है जिसने दुनिया को रचा है उसको जाना। श्री अरविन्दों ने अपने अध्यात्म से मानस से अतिमानस का अंधकार रूप है, का एक विभाजन करता है। मानस के गुणों का विशेषण किया है। मानस वस्तुओं को जानता है और वस्तुओं से प्राप्त संवेदनाओं विचारों आदि पर निर्भर रहता है। उनके द्वारा मानस में निहित शक्तियों को पहचानना अतिमानस का चरम लक्ष्य होना चाहिए। ज्ञान-अज्ञान के स्वरूप से लेकर ज्ञान की उत्पत्ति तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए, अपितु अज्ञान की चित्त शक्ति को आत्म-केन्द्रित कर उसका परिणाम जानना चाहिए। अज्ञान का अंत परम ब्रह्मा की गति और उसकी चेतना का परिणाम हो सकता है। श्री अरविन्दों ने मनुष्य के सात सोपान बताए हैं—द्रव, प्राण, मानस, अतिमानस, आनन्द, चित्, सत्। इन सब पर मानव को ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। श्री अरविन्दों ज्ञान और अध्यात्म के ज्ञाता थे। महान व्यक्तित्व के धनी श्री अरविन्दों ने राष्ट्र और मानवता को साथ लेकर चलने का संदेश दिया है। इस प्रकार श्री अरविन्दों ने मानवता, राष्ट्रीयता व आत्मा-परमात्मा के बीच एक प्राकृतिक संदेश दिया है।

सन्दर्भ सूची

1. अरविंदों : भारतीय महर्षि की गाथा, बिल्फ्रेड ह्यूजेर मेयर, अनुवाद, अनुपमा ‘ऋतु’, पृ0 22,
2. ऑटोबायोग्राफिकल नोट्स, 17, श्री अरविंदो : लाइफ एंड टाइम ऑफ महायोगी शृंखला (मद इंडिया, नवंबर 2012, पृ0 802) में मनोजदास का एक नया दस्तावेज प्रकाशित हुआ है। वे मनमोहन गंगोपाध्याय के बांग्ला लेख ऋतु-स्तुति का सन्दर्भ देते हैं, जिसमें श्री अरविंदों से लेखन ने अलीपुर केस के बाद मुलाकात का जिक्र किया है। इस मुलाकात के दौरान उन्होंने चर्चा की क्या वैवाहिक जीवन में ब्रह्मचर्य सम्भव है? तब अरविंदों ने स्पष्ट रूप से कहा कि वे हमेशा ब्रह्मचर्य का पालन करते रहे हैं।
3. निरोदवरन, करेस्पोडेंस विद श्री अरविंदो, पृ0 576
4. श्री अरविंदो: भारतीय महर्षि की गाथा, बिल्फ्रेड ह्यूजेर मेयर, अनुवादक-अनुपमा, ‘ऋतु’, पृ0 35
5. अर्ली कल्चरल राइटिंग, पृ0 718-720
6. श्री अरविंदो मन्दिर एनुएल, 1967, अयंगर, श्री अरविंदों, पृ0 198-200
7. श्री अरविंदो सोसाइटी डॉट आर्न डॉट इन/श्री अरो/अरो लाइफ डॉट एच0टी0एस0एल0
8. द ह्यूमन सांयकाल, पृष्ठ
9. द ह्यूमन सांयकाल, पृष्ठ 10-11
10. द ह्यूमन सांयकाल, पृष्ठ 10-11
11. अरविंदाः भारतीय महर्षि की गाथा, बिल्फ्रेड ह्यूजेरमेयर, अनुवादक ‘ऋतु, पृष्ठ
12. ऐसेज, ऑन गीता,

13. ऐसेज, : इन फिलॉसफी एण्ड योग : द सुपर मेंटल मेनीफेस्टेशन, पृष्ठ 589
14. रवीन्द्र श्री अरविंद की राजनीति जीवन और दर्शन पाण्डिचेरी
15. अरविंदाः भारतीय महर्षि की गाथा, बिल्फ्रेड ह्यूजेरमेयर, अनुवादक 'ऋतु, पृष्ठ 134
16. कर्मयोगी
17. कर्मयोगी, 70, हालांकि बाद में श्री अरविंदों धर्म और उसके अनुयायियों के प्रति आलोचनात्मक दिखाई देते हैं। देखे-पुराणी, ईवनिंग टॉम्स, 295 (29 जून, 1926)
18. कर्मयोगी, 20
19. आधुनिक एवं समकालीन भारतीय दार्शनिक चिन्तन : डॉ. नन्दिनी सिंह, अध्याय श्री अरविन्द की दृष्टि में ईश्वर, मनुष्य और प्रकृति का सम्बन्ध में, डॉ. अंजनी कुमार सिंह, पृष्ठ 26



पितृसत्तात्मक भारतीय समाज में सूफीवाद और महिलाओं की भूमिका का विश्लेषण

सुमन बिष्ट

रिसर्च स्कॉलर (इतिहास)

पी.एन.जी.पी.जी. कॉलेज, रामनगर, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

सारांश

यह अध्ययन, “पितृसत्तात्मक भारतीय समाज में सूफीवाद और महिलाओं की भूमिका का विश्लेषण” ऐतिहासिक, सामाजिक और धार्मिक संदर्भों की पृष्ठभूमि में भारतीय सूफीवाद में महिलाओं की बहुमुखी भूमिकाओं की जांच करता है। यह इस बात की पड़ताल करता है कि कैसे महिला सूफी संतों और विद्वानों ने पितृसत्तात्मक संस्कृति द्वारा लगाए गए सामाजिक बाधाओं के साथ अपनी आध्यात्मिक खोज को संतुलित किया है। भारतीय सामाजिक इतिहास पर केन्द्रित यह शोध एक आलोचनात्मक पड़ताल है जो सूफीवाद में महिलाओं की भूमिकाओं का समर्थन और सीमित दोनों करता है, इन गतिशीलता को आकार देने वाले प्रमुख ग्रंथों और शिक्षाओं की व्याख्याओं पर प्रकाश डालता है। राबिया बसरी, बीबी फातिमा सैम और जहाँआरा बेगम जैसी प्रमुख हस्तियों के जीवन और विरासत के माध्यम से, यह शोध यह समीक्षा करता है कि इन महिलाओं ने आध्यात्मिक अधिकार कैसे हासिल किया है और अपने समुदायों के भीतर लैंगिक मानदंडों, सामाजिक प्रथाओं और आध्यात्मिक आयामों को कैसे प्रभावित किया है। यह अध्ययन इन आंकड़ों की समकालीन प्रासंगिकता को रेखांकित करता है, आधुनिक सूफी प्रथाओं के भीतर महिलाओं के आध्यात्मिक नेतृत्व की धारणा में चल रही चुनौतियों और बदलावों की जांच करता है।

कुंजी शब्द - महिला सूफी संत, आध्यात्मिक नेतृत्व, लैंगिक मानदंड, भारतीय सूफीवाद, धार्मिक व्याख्याएं।

परिचय

भारतीय सूफीवाद के समृद्ध चित्रपट में, महिलाओं ने ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाई हैं जो सामाजिक मानदंडों के जटिल ताने-बाने के साथ आध्यात्मिक गहराई को जोड़ती हैं। “पितृसत्तात्मक भारतीय समाज में सूफीवाद और महिलाओं की भूमिका का विश्लेषण” शीर्षक वाले अध्ययन का उद्देश्य मुख्य रूप से पितृसत्तात्मक समाज की पृष्ठभूमि में, इन रहस्यमय परंपराओं के भीतर महिलाओं के योगदान का पता लगाना है। यह शोध प्रमुख महिला सूफी संतों और विद्वानों के जीवन की समीक्षा करता है, जिन्होंने महत्वपूर्ण आध्यात्मिक और सामाजिक योगदान दिया है, जो अक्सर अपने समय के लैंगिक मानदंडों द्वारा लगाए गए बाधाओं को चुनौती देते हैं और उनका अतिक्रमण करते हैं। धार्मिक ग्रंथों, ऐतिहासिक आख्यानों और इन महिलाओं की विरासतों की जांच करके, अध्ययन इस बात पर प्रकाश डालना चाहता है कि उन्होंने

आध्यात्मिक नेतृत्व और पितृसत्तात्मक संरचनाओं के विषयों में अपनी दोहरी भूमिकाओं का निर्वहन कैसे किया है। इस दृष्टिकोण से यह अध्ययन न केवल आध्यात्मिक अधिकार और स्वायत्तता को उजागर करेगी जो इन महिलाओं के पास है, बल्कि यह भी विचार करेगी कि उनकी विरासत भारत में धार्मिक क्षेत्रों के भीतर समकालीन सूफी प्रथाओं और लैंगिक गतिशीलता को कैसे प्रभावित करती है। यह अन्वेषण सामाजिक मानदंडों और आध्यात्मिक प्रथाओं को आकार देने और पुनः आकार देने में महिला आध्यात्मिक नेतृत्व के व्यापक प्रभावों को समझने के लिए महत्वपूर्ण है।

ऐतिहासिक संदर्भ

भारत की सूफी परंपराओं में महिलाओं का ऐतिहासिक संदर्भ आध्यात्मिक उत्थान और सामाजिक बाधाओं के बीच परस्पर क्रिया का एक सम्मोहक प्रतिबिंब है। प्रारंभिक मध्ययुगीन काल से, सूफीवाद ने भारतीय उपमहाद्वीप में प्रवेश करना शुरू कर दिया, अपने साथ रहस्यमय इस्लाम का एक अनूठा मिश्रण लाया जिसने आंतरिक शुद्धता, प्रेम और परमात्मा के साथ सीधे संवाद पर जोर दिया। महिलाओं को, हालांकि अक्सर मुख्यधारा के धार्मिक पदानुक्रम में दरकिनार कर दिया जाता है, सूफीवाद में एक आध्यात्मिक आयाम और धार्मिक अभिव्यक्ति और नेतृत्व के लिए एक व्यापक भूमिका भी पायी जाती है।

इन परंपराओं में महिलाओं की भूमिकाओं को सूफीवाद के समावेशी दर्शन द्वारा आकार दिया गया था, जो अक्सर भगवान के सामने सभी आत्माओं की समानता का प्रचार करते थे, और पितृसत्तात्मक समाजों की कठोर संरचनाएं जिनमें वे रहते थे को भी चुनौती देते थे। इस ऐतिहासिक जुगलबंदी ने महिला सूफी संतों और कवियों के उद्भव को अनुमति दी, जिन्होंने महत्वपूर्ण आध्यात्मिक प्रभाव डाला, फिर भी अक्सर सामाजिक प्रतिबंधों का सामना भी करना पड़ा। बसरा की राबिया जैसी हस्तियां, हालांकि भारतीय नहीं थीं, फिर भी उन्होंने अपनी भक्ति कविता के साथ भारत सहित विश्व स्तर पर सूफी प्रथाओं को प्रभावित किया, जिसने प्रेम और सांसारिक अनुलग्नकों और अहंकार के त्याग पर जोर दिया।

भारत में, भक्ति आंदोलन, (सूफीवाद के उदय के साथ समकालीन) ने पारंपरिक धार्मिक पदानुक्रम और अनुष्ठानों को दरकिनार करने के विचार का भी समर्थन किया, जो परमात्मा के साथ सीधे व्यक्तिगत संबंध की वकालत करता है। मीरा बाई और अक्का महादेवी जैसी भक्ति आंदोलन की महिला संतों ने अपने सूफी समकक्षों के समान आध्यात्मिक लक्ष्यों को साझा किया, और इन आंदोलनों के बीच ऐसे समन्वय ने भारत के आध्यात्मिक परिदृश्य को और भी समृद्ध किया। इन समूहों के बीच विचारों के परस्पर संक्रमण ने महिलाओं की धार्मिक भागीदारी के लिए कहीं अधिक स्वीकार्य वातावरण बनाने में सहायता की, हालांकि इसकी पूर्ण स्वीकृति भिन्न-भिन्न क्षेत्रों और समुदायों में बहुत भिन्न थी।

मुगल काल के दौरान, सूफीवाद भारत में अपने चरम पर पहुंच गया, मुगल शासकों ने सूफीवाद को संरक्षण प्रदान किया जिसने तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया। इस अवधि के दौरान सूफी परंपराओं में महिलाएं, जैसे शाहजहाँ की बेटी जहाँआरा बेगम ने न केवल सूफीवाद का अभ्यास किया, बल्कि सूफी संस्थानों को बढ़ावा देने और संरक्षण देने में भी भूमिका निभाई। उनका जीवन सूफीवाद में महिलाओं की दोहरी भूमिका को दर्शाता है अनुयायी और संरक्षक दोनों रूप में, शाही दरबार में अपनी भूमिकाओं की सीमाओं के भीतर अपने आध्यात्मिक कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए। इन महिलाओं की ऐतिहासिक यात्रा की जांच करके, अध्ययन न केवल उनके आध्यात्मिक योगदान पर प्रकाश डालता है, बल्कि उनके सामने आने वाली सामाजिक चुनौतियों पर भी प्रकाश डालता है, उनके लचीलेपन और उनके समय के धार्मिक और सांस्कृतिक ताने-बाने को आकार देने के तरीकों को प्रदर्शित करता है। यह संदर्भ भारतीय आध्यात्मिकता के क्षेत्र में समकालीन सूफी प्रथाओं और लैंगिक गतिशीलता पर इन शुरुआती आंकड़ों के चल रहे प्रभाव को समझने के लिए मंच तैयार करता है।

धार्मिक नींव

भारत में सूफीवाद में महिलाओं की भूमिकाओं की धार्मिक नींव धार्मिक सिद्धांतों, सामाजिक मानदंडों और व्यक्तिगत

व्याख्या के बीच गतिशील परस्पर क्रिया में एक आकर्षक अंतर्हीष्ट प्रदान करती है। सूफी विचार के भीतर, प्राथमिक ध्यान अक्सर परमात्मा के प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अनुभव पर होता है, जो सैद्धांतिक रूप से लैंगिक सीमाओं को पार कर सकता है। हालांकि, प्रमुख ग्रंथों और शिक्षाओं की व्याख्या, साथ ही प्रचलित सांस्कृतिक संदर्भ के परिणामस्वरूप सूफीवाद में महिलाओं की भूमिकाओं पर विविध प्रकार के दृष्टिकोण सामने आए हैं।

एक ओर, सूफी शिक्षाएं परमात्मा के साथ मिलन की ओर आत्मा की यात्रा की सार्वभौमिकता पर जोर देती हैं, यह सुझाव देती हैं कि आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में लैंगिक भेद अंततः अप्रासंगिक हैं। इस परिप्रेक्ष्य का उपयोग सूफी अभ्यास के विभिन्न पहलुओं में महिलाओं को शामिल करने का समर्थन करने के लिए किया गया है, जिसमें शिक्षक, मार्गदर्शक और आध्यात्मिक नेता शामिल हैं। बीबी फातिमा सैम और राबिया बसरी जैसे महिला सूफी संतों और विद्वानों के उदाहरण इस व्याख्या की वैधता को प्रमाणित करते हैं, क्योंकि वे सूफी विचारों में अपने ज्ञान, धर्मपरायणता और योगदान के लिए सम्मानित थे।

हालांकि, सूफीवाद में महिलाओं की भूमिकाओं को सीमित करने के लिए धार्मिक औचित्य भी मौजूद हैं, जो अक्सर इस्लामी धर्मग्रंथों और न्यायशास्त्र की पारंपरिक व्याख्याओं से उपजी हैं। कुछ हदीसों और कानूनी फैसलों की व्याख्या विशिष्ट लैंगिक भूमिकाओं और सार्वजनिक धार्मिक गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी पर सीमाओं को निर्धारित करने के लिए की गई है। नतीजतन, कुछ सूफी आदेशों और समुदायों ने पितृसत्तात्मक संरचनाओं को बनाए रखा है जो महिलाओं को अधिकार के पदों से बाहर करते हैं या कुछ अनुष्ठानों और प्रथाओं में उनकी भागीदारी को प्रतिबंधित करते हैं।

इसके अलावा, जिस सांस्कृतिक संदर्भ में भारत में सूफीवाद का विकास हुआ, उसने महिलाओं की भूमिकाओं के संबंध में धार्मिक सिद्धांतों की व्याख्या और कार्यान्वयन को प्रभावित किया है। लैंगिक भूमिकाओं के संबंध में सामाजिक मानदंड और अपेक्षाएं सूफी समुदायों के भीतर महिलाओं के लिए उपलब्ध अवसरों को आकार देने के लिए धार्मिक शिक्षाओं के साथ जुड़ गई हैं। कुछ मामलों में, महिलाएँ सूफी हलकों में अपने लिए जगह बनाने में सक्षम रही हैं, जबकि अन्य में, उन्हें पूर्ण भागीदारी के लिए महत्वपूर्ण बाधाओं का सामना करना पड़ा है।

प्रमुख महिला सूफी संत

भारत में सूफीवाद का परिदृश्य महिला सूफी संतों के उल्लेखनीय योगदान से भरा हुआ है जिन्होंने आध्यात्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र पर अमिट छाप छोड़ी। उनकी शिक्षाएँ, कविताएँ और विरासतें उनके आध्यात्मिक अधिकार और उनके जीवनकाल के दौरान और मरणोपरांत उन्हें मिले महत्व के सन्दर्भ में गहन अंतर्हीष्ट प्रदान करती हैं। यहाँ तीन महत्वपूर्ण महिला सूफी शख्सियतों के योगदानों का विश्लेषण किया गया है :

1. राबिया बसरी (राबिया अल-अदाविया)

हालांकि राबिया बसरी भारतीय नहीं थीं, लेकिन उनका प्रभाव भारत सहित दुनिया भर की सूफी परंपराओं में व्याप्त था। 8वीं शताब्दी में इराक के बसरा में जन्मी राबिया पहले सूफी संतों और कवियों में से एक हैं, जो अपनी गहन भक्ति और तपस्वी जीवनशैली के लिए जानी जाती हैं। उनकी शिक्षाओं में प्रेम, पश्चाताप और ईश्वर पर निर्भरता पर जोर दिया गया था, जो भय-आधारित अनुपालन से दूर था जो उनके समय के धार्मिक दृष्टिकोण की विशेषता थी। राबिया ने दिव्य प्रेम की अवधारणा प्रस्तुत की, जो बाद में सूफी रहस्यवाद की आधारशिला बन गया। आध्यात्मिक लालसा और ईश्वर के प्रति परमानंद प्रेम से भरपूर उनकी कविता ने सूफियों की पीढ़ियों को प्रेरित किया है। उनके आध्यात्मिक अधिकार को उनके जीवनकाल के दौरान पहचाना और सम्मानित किया गया, और वह आज भी रहस्यमय सूफी भक्ति का प्रतीक बनी हुई हैं।

2. बीबी फातिमा सैम

बीबी फातिमा सैम के बारे में बहुत कम दस्तावेज उपलब्ध हैं, फिर भी वह दक्षिण एशियाई सूफीवाद में एक दिलचस्प

श्रद्धावन्त बनी हुई हैं। माना जाता है कि वह 17वीं शताब्दी में रहीं, उनके योगदान को ज्यादातर स्थानीय परंपराओं और मौखिक इतिहास में मनाया जाता है। वह अपनी गहरी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि और दृष्टान्तों के माध्यम से सिखाने की क्षमता के लिए जानी जाती थीं। सूफीवाद के प्रति उनका दृष्टिकोण समावेशी था, जिसमें कर्मकांड के पालन पर दैवीय संबंध की सार्वभौमिक खोज पर जोर दिया गया था। अपने जीवनकाल के दौरान उन्हें जो सम्मान मिला, उसने क्षेत्रीय सूफी प्रथाओं में महिलाओं के आध्यात्मिक अधिकार के लिए एक मिसाल कायम की।

3. जहाँआरा बेगम

मुगल साम्राज्य की एक प्रमुख राजकुमारी और सम्राट शाहजहाँ की बेटी, जहाँआरा बेगम (1614-1681) न केवल एक राजनीतिक हस्ती थीं, बल्कि सूफीवाद की एक महत्वपूर्ण संरक्षक और अभ्यासिका भी थीं। सूफीवाद के कादिरिया आदेश से गहराई से प्रभावित होकर, उन्होंने इस विषय पर कई रचनाएँ लिखीं, जिनमें संत मुइनुद्दीन चिश्ती की जीवनी और सूफीवाद पर एक ग्रंथ, 'रिसाला-ए-साहिबिया' शामिल है। उनकी स्थिति ने उन्हें इस्लामी आध्यात्मिकता और शाही संरक्षण के संश्लेषण को बढ़ावा देने, मुगल दरबार में सूफी सिद्धांतों को बढ़ावा देने की अनुमति दी। जहाँआरा का आध्यात्मिक अधिकार उनकी शाही स्थिति से निकटता से जुड़ा हुआ था, लेकिन उनकी बौद्धिक और भक्ति प्रतिबद्धताओं ने उन्हें भारत में सूफी इतिहास के इतिहास में एक स्थायी विरासत सुनिश्चित की।

ये महिलाएँ इस बात का उदाहरण देती हैं कि कैसे सूफीवाद में आध्यात्मिक अधिकार का निर्माण व्यक्तिगत धर्मपरायणता, बौद्धिक योगदान और अनुयायियों को प्रेरित करने और नेतृत्व करने की क्षमता के आसपास किया गया था।

उनकी शिक्षाएँ और जीवन सूफी समुदायों और उसके बाहर भी गूँजते रहते हैं, जो अक्सर पुरुष-प्रधान मानी जाने वाली परंपरा में महिला आध्यात्मिक नेतृत्व के स्थायी प्रभाव को दर्शाते हैं। उनके जीवनकाल के दौरान और मरणोपरान्त उनका स्वागत ऐतिहासिक और समकालीन सूफीवाद में लैंगिक, आध्यात्मिकता और सामाजिक प्रभाव की जटिल गतिशीलता को उजागर करता है।

सांस्कृतिक और सामाजिक प्रभाव

महिला सूफी संतों का सांस्कृतिक और सामाजिक क्षेत्रों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है, विशेष रूप से उन तरीकों से जिन्होंने अपने समुदायों के भीतर लैंगिक मानदंडों, सामाजिक प्रथाओं और आध्यात्मिक आयामों को प्रभावित किया है। इन महिलाओं ने न केवल अपनी परंपराओं की आध्यात्मिक समृद्धि में योगदान दिया, बल्कि लैंगिक भूमिकाओं और धार्मिक अधिकार के बारे में सामाजिक अपेक्षाओं को चुनौती दी और फिर से आकार दिया। यहाँ उनके व्यापक प्रभावों का आकलन किया गया है—

लैंगिक मानदंडों पर प्रभाव

राबिया बसरी और अन्य इनकी जैसे महिला सूफी संतों ने आध्यात्मिक नेतृत्व का एक ऐसा रूप तैयार किया जो लैंगिक द्वारा सीमित नहीं था। आध्यात्मिक मामलों में अपने अधिकार का दावा करके, उन्होंने अपने समय के प्रचलित लैंगिक मानदंडों के लिए एक शक्तिशाली प्रति-कथा प्रदान की। उन समाजों में जहाँ महिलाओं की भूमिकाएँ अक्सर घरेलू क्षेत्र तक ही सीमित थीं, इन महिलाओं द्वारा की गई सार्वजनिक धार्मिक और नेतृत्व की भूमिकाओं ने महिलाओं की स्वायत्तता के लिए वैकल्पिक संभावनाओं का प्रदर्शन किया। उनका जीवन और विरासत लैंगिक समानता और धार्मिक नेतृत्व में महिलाओं की भूमिका के बारे में बहस को प्रेरित करना जारी रखता है, यह दर्शाता है कि आध्यात्मिक गहराई लैंगिक प्रतिबंधों द्वारा सीमित नहीं है।

सामाजिक प्रथाओं पर प्रभाव

महिला सूफी संतों की शिक्षाओं और जीवन ने अक्सर करुणा, सहिष्णुता और सामाजिक समानता जैसे मूल्यों को बढ़ावा

दिया, जिसका उनके समुदायों के भीतर सामाजिक प्रथाओं पर ठोस प्रभाव पड़ा। उदाहरण के लिए, व्यक्तिगत धर्मपरायणता और परमात्मा के साथ सीधे संबंध पर उनके जोर ने कठोर पदानुक्रमों और संगठित धर्मों के स्थापित मूल्यों व उनके ठेकेदारों को चुनौती दी। आध्यात्मिक साधना के इस लोकतंत्रीकरण ने व्यापक सामाजिक संबंधों को प्रभावित किया, समावेशिता को बढ़ावा दिया और आध्यात्मिक समुदायों के भीतर वर्ग और लिंग बाधाओं को कम किया।

आध्यात्मिक प्रवचनों में योगदान

महिला सूफी संतों ने कविता, शिक्षाओं और व्यक्तिगत उदाहरण के माध्यम से अपने समय के आध्यात्मिक प्रवचनों में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके लेखन और कहावतों, अक्सर दिव्य प्रेम और रहस्यमय अनुभव के विषयों से भरे हुए, सूफीवाद के आध्यात्मिक साहित्य को समृद्ध करते हैं। उदाहरण के लिए, राबिया बसरी की कविता, जो नरक के डर पर भगवान के प्रेम पर जोर देती है, ने भक्ति की प्रकृति पर प्रवचन को स्थानांतरित कर दिया और सूफी कवियों और धर्मशास्त्रियों की बाद की पीढ़ियों को प्रभावित किया।

ये योगदान इस्लाम के रहस्यमय आयामों को आकार देने में सहायक रहे हैं, अक्सर धार्मिक चर्चाओं में अधिक समावेशी और दयालु परिप्रेक्ष्य को समाहित करते हैं। उन्होंने विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक समूहों के बीच समन्वय में मदद की है, प्रेम, मानवता और दिव्य खोज के सार्वभौमिक विषयों को प्रदर्शित किया है जो व्यक्तिगत धार्मिक सीमाओं से परे हैं।

महिला सूफी संतों के सांस्कृतिक और सामाजिक प्रभाव गहरा और बहुआयामी हैं। उन्होंने न केवल आध्यात्मिक और सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं के लिए उपलब्ध भूमिकाओं को चुनौती दी है और विस्तार किया है, बल्कि अपने समुदायों के सांस्कृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक परिदृश्य पर भी एक स्थायी छाप छोड़ी है। उनकी विरासत उनके समुदायों के भीतर और बाहर आध्यात्मिकता, लिंग और सामाजिक न्याय के बारे में समकालीन चर्चाओं को प्रभावित करना जारी रखती है।

समकालीन प्रासंगिकता

भारतीय समाज में और आधुनिक सूफी प्रथाओं के भीतर महिला सूफी आंकड़ों की समकालीन प्रासंगिकता महत्वपूर्ण है, जो महिलाओं के आध्यात्मिक नेतृत्व की धारणा में चल रही चुनौतियों और बदलावों दोनों को दर्शाती है। उनकी ऐतिहासिक और आध्यात्मिक विरासत आज के संदर्भों को विभिन्न तरीकों से प्रेरित और प्रभावित करती है।

आध्यात्मिक प्रथाओं में समकालीन प्रासंगिकता

महिला सूफी आंकड़े सूफी समुदायों के भीतर कई लोगों के आध्यात्मिक जीवन में केंद्रीय बनी हुई हैं। उनकी शिक्षाओं और कविताओं का अध्ययन, पाठ और सम्मान जारी है, प्रेरणा और आध्यात्मिक मार्गदर्शन के स्रोत के रूप में सेवा करते हैं। आधुनिक सूफी प्रथाओं में, परमात्मा के प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अनुभव पर जोर, जैसा कि इन महिलाओं द्वारा चौंपियन है, समावेशिता और आंतरिक परिवर्तन पर निरंतर ध्यान केंद्रित करने का समर्थन करता है। सूफीवाद का यह पहलू समकालीन साधकों से अपील कर सकता है जो अक्सर आध्यात्मिकता की तलाश में रहते हैं जो औपचारिक धार्मिक संरचनाओं और हठधर्मिता से परे है, जो व्यक्तिगत आध्यात्मिक प्रामाणिकता की दिशा में वैश्विक आंदोलनों के साथ गूंजता है।

लिंग गतिशीलता पर प्रभाव

महिला सूफी संतों की विरासत धार्मिक और आध्यात्मिक संदर्भों के भीतर लिंग भूमिकाओं की धारणाओं को चुनौती देना और उन्हें नया रूप देना जारी रखती है। वे नेताओं और रहस्यवादियों के रूप में महिलाओं की क्षमताओं के उदाहरण के रूप में काम करते हैं, न केवल आध्यात्मिकता में बल्कि समाज में बड़े पैमाने पर महिलाओं की भूमिकाओं के बारे में चल रही रुढ़ियों को चुनौती देते हैं। हालांकि, इन शक्तिशाली उदाहरणों के बावजूद, महिलाओं को अभी भी सूफी सहित कई धार्मिक

समुदायों के भीतर मान्यता प्राप्त नेतृत्व पदों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण बाधाओं का सामना करना पड़ता है। धार्मिक नेतृत्व में स्वीकृति और समानता के लिए संघर्ष एक दबाव वाला मुद्दा बना हुआ है।

सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव

व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में, महिला सूफी संतों की कहानियां और शिक्षाएं महिला सशक्तिकरण और आध्यात्मिक अधिकार के बारे में संवाद में योगदान करती हैं। उनके इतिहास प्रचलित पितृसत्तात्मक मानदंडों के लिए शक्तिशाली प्रति-कथा प्रदान करते हैं और लैंगिक न्याय के लिए वकालत के साथ आध्यात्मिकता को एकीकृत करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करते हैं। एक ऐसे समाज में जहाँ लिंग आधारित असमानताएं प्रचलित हैं, इन महिलाओं के आख्यान आशा और आध्यात्मिक स्थानों के अधिक समावेशी और न्यायसंगत होने की क्षमता पर एक महत्वपूर्ण प्रतिबिंब दोनों प्रदान करते हैं।

आगामी चुनौतियां

उनके ऐतिहासिक और आध्यात्मिक महत्व के बावजूद, महिला सूफी आंकड़े अक्सर मुख्यधारा के धार्मिक आख्यानो में हाशिए पर रहते हैं। अकादमिक हलकों और सूफी समुदायों दोनों में उनके योगदान की निरंतर स्वीकृति और अधिक स्वीकृति की आवश्यकता है। व्यापक सामाजिक संरचनाएं, जो अक्सर अभी भी पितृसत्तात्मक मूल्यों को दर्शाती हैं, इस पुनर्मिलन के लिए चुनौतियां पैदा करती हैं, जिससे यह एक क्रमिक और अक्सर विवादित प्रक्रिया बन जाती है।

धारणा में बदलाव

आध्यात्मिक और धार्मिक नेतृत्व में महिलाओं की भूमिकाओं की अधिक स्वीकृति की दिशा में, विशेष रूप से युवा पीढ़ियों और शहरी सेटिंग्स में एक उल्लेखनीय बदलाव है। इस बदलाव को डिजिटल मीडिया और अकादमिक अध्ययनों के माध्यम से इन महिलाओं के इतिहास और शिक्षाओं तक पहुंच बढ़ाने से सुविधा हुई है। जैसे-जैसे जागरूकता बढ़ती है, वैसे-वैसे सूफीवाद जैसी परंपराओं के भीतर आध्यात्मिक अभिव्यक्तियों और नेतृत्व मॉडल की विविधता की सराहना भी होती है।

समकालीन भारतीय समाज में महिला सूफी आंकड़ों की प्रासंगिकता ऐतिहासिक विरासत, चल रही लिंग गतिशीलता और विकसित आध्यात्मिक प्रथाओं के एक जटिल परस्पर क्रिया को रेखांकित करती है। जबकि वे लिंग और आध्यात्मिकता के बारे में वर्तमान बहस को प्रेरित और सूचित करते हैं, मुख्यधारा के आध्यात्मिक और सांस्कृतिक प्रवचनों में उनके योगदान को पूरी तरह से सम्मान और एकीकृत करने के लिए महत्वपूर्ण कार्य रहता है।

तुलनात्मक विश्लेषण

भारत में विभिन्न धार्मिक परंपराओं में महिला आध्यात्मिक आंकड़ों का तुलनात्मक विश्लेषण महिला आध्यात्मिक प्राधिकरण और सामाजिक भूमिकाओं के व्यापक पैटर्न को उजागर करता है। हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म और अन्य भारतीय आध्यात्मिक परंपराओं के साथ-साथ सूफीवाद में महिलाओं के जीवन और विरासतों की जांच करके, हम समानताओं और मतभेदों में गहरी अंतर्दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं कि कैसे महिला आध्यात्मिक नेतृत्व को सांस्कृतिक और धार्मिक संदर्भों में माना और एकीकृत किया गया है।

सूफीवाद और हिंदू धर्म

हिंदू धर्म में, भक्ति आंदोलन सूफीवाद के साथ तुलना के लिए एक समृद्ध संदर्भप्रदान करता है। दोनों आंदोलन व्यक्तिगत भक्ति और परमात्मा के साथ एक प्रत्यक्ष, भावनात्मक संबंध पर जोर देते हैं, अक्सर कठोर लिपिक पदानुक्रम और रूढ़िवादी

प्रथाओं को दरकिनार करते हैं। मीराबाई, एक राजपूत राजकुमारी से संत बनीं, और कर्नाटक की एक प्रमुख कवयित्री संत अक्का महादेवी जैसी महिला हस्तियों ने अपनी अटूट भक्ति और पारंपरिक वैवाहिक और पारिवारिक भूमिकाओं की अस्वीकृति के माध्यम से सामाजिक मानदंडों को चुनौती दी। राबिया बसरी जैसी सूफी महिलाओं के समान, इन महिलाओं ने अपनी आध्यात्मिक दृष्टि को व्यक्त करने और अपने धार्मिक अधिकार का दावा करने के लिए कविता और गीत का इस्तेमाल किया, अक्सर सामाजिक धक्का-मुक्की का सामना करना पड़ता है, लेकिन एक समर्पित अनुयायी भी प्राप्त होता है।

सूफीवाद और बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म में, विशेष रूप से वज्रयान परंपरा के भीतर, येथे त्सोग्याल, एक तिब्बती राजकुमारी और पत्नी जैसी महिलाएं, जो तिब्बती बौद्ध धर्म में एक मूलभूत व्यक्ति बन गईं, मजबूत महिला आध्यात्मिक अधिकार का उदाहरण देती हैं। अपने सूफी समकक्षों की तरह, इन महिलाओं ने अक्सर अपनी परंपराओं के प्रसार और अभ्यास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, शिक्षकों, आध्यात्मिक नेताओं और प्रमुख शिक्षाओं के संरक्षक के रूप में कार्य किया। सूफी संतों के समान इन बौद्ध महिलाओं के आख्यान में आत्मज्ञान और आध्यात्मिक सेवा को आगे बढ़ाने के लिए व्यक्तिगत और सामाजिक बाधाओं पर काबू पाने के विषय शामिल हैं।

परंपराओं में सामान्य विषय

इन परंपराओं में, कई सामान्य विषय सामने आते हैं।

1. आध्यात्मिक स्वायत्तता - प्रचलित सामाजिक प्रतिबंधों के बावजूद, इन परंपराओं में महिलाओं ने आध्यात्मिक स्वायत्तता और नेतृत्व के लिए स्थान बनाया। उनका जीवन आध्यात्मिक अभ्यास के लिए एक गहन प्रतिबद्धता प्रदर्शित करता है जो अक्सर उनकी संबंधित परंपराओं के भीतर मूलभूत परिवर्तन का कारण बनता है।

2. सामाजिक मानदंडों को चुनौती - राबिया बसरी, मीराबाई और येथे त्सोग्याल जैसी महिलाओं ने न केवल आध्यात्मिक पथ का अनुसरण किया, बल्कि सार्वजनिक और धार्मिक जीवन में महिलाओं की भूमिकाओं को प्रतिबंधित करने वाले सामाजिक मानदंडों को भी चुनौती दी। उनकी कहानियों को उनके समुदायों द्वारा प्रतिरोध और स्वीकृति दोनों द्वारा चिह्नित किया जाता है।

3. विरासत और प्रभाव - इन महिलाओं की विरासत ने अपने समुदायों के भीतर आध्यात्मिक प्रथाओं और लिंग गतिशीलता दोनों को प्रभावित करना जारी रखा है। वे टोल मॉडल और प्रतीकों के रूप में कार्य करते हैं कि महिलाएं आध्यात्मिक क्षेत्र में क्या हासिल कर सकती हैं, आध्यात्मिक नेतृत्व में लैंगिक समानता के बारे में चल रही चर्चाओं को प्रेरित करती हैं।

रिसेप्शन और एकीकरण में अंतर

जबकि इन महिला आध्यात्मिक आंकड़ों की भूमिकाओं और प्रभावों में कई समानताएं हैं, उनके योगदान को मुख्यधारा के धार्मिक जीवन में कैसे पहचाना और एकीकृत किया जाता है, इसमें अंतर भी मौजूद है। उदाहरण के लिए, कुछ बौद्ध और हिंदू संदर्भों में, महिला आध्यात्मिक आंकड़ों को अक्सर देवताओं या अर्ध-दिव्य प्राणियों के रूप में सम्मानित किया जाता है, जो कभी-कभी उन्हें रोजमर्रा की धार्मिक प्रथाओं से ऊपर उठाने और अलग करने के लिए सेवा कर सकते हैं। इसके विपरीत, महिला सूफी संतों को आम तौर पर उनकी धर्मपरायणता और ज्ञान के लिए मनाया जाता है, लेकिन उन्हें हमेशा अपने पुरुष समकक्षों के समान संस्थागत मान्यता नहीं दी जा सकती है।

विभिन्न भारतीय आध्यात्मिक परंपराओं में महिला आंकड़ों का तुलनात्मक विश्लेषण महिलाओं के आध्यात्मिक अधिकार के लिए संभावनाओं और सीमाओं को आकार देने में व्यक्तिगत एजेंसी और सांस्कृतिक संदर्भ के बीच गतिशील परस्पर क्रिया पर प्रकाश डालता है। ये तुलनाएं न केवल प्रत्येक परंपरा की हमारी समझ को समृद्ध करती हैं बल्कि भारतीय समाज में लिंग

और आध्यात्मिकता के व्यापक पैटर्न में मूल्यवान् अंतर्दृष्टि भी प्रदान करती हैं।

निष्कर्ष

भारत में सूफी परंपरा के भीतर महिलाओं की भूमिकाओं की खोज, अन्य भारतीय आध्यात्मिक परंपराओं में महिला आंकड़ों के साथ तुलनात्मक विश्लेषण के साथ, लिंग, आध्यात्मिकता और सामाजिक परिवर्तन के बारे में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि पर प्रकाश डालती है। महिला सूफी संतों ने हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म और अन्य धार्मिक प्रथाओं में अपने समकक्षों के साथ, न केवल आध्यात्मिक प्रवचन को समृद्ध किया है, बल्कि लिंग भूमिकाओं और आध्यात्मिक अधिकार से संबंधित सामाजिक मानदंडों को भी चुनौती दी है और उन्हें नया रूप दिया है।

ये महिलाएं आध्यात्मिक नेतृत्व की क्षमता का उदाहरण देती हैं जो पारंपरिक लिंग सीमाओं को पार करती हैं, परमात्मा के साथ अधिक समावेशी और प्रत्यक्ष संबंध की वकालत करती हैं। उनकी कहानियां और विरासत लचीलापन, भक्ति और आध्यात्मिक सत्य की खोज के शक्तिशाली प्रतीकों के रूप में सेवा करते हुए प्रेरित और चुनौती देना जारी रखती हैं।

इन ऐतिहासिक आंकड़ों से प्राप्त प्रगति और प्रेरणा के बावजूद, धार्मिक नेतृत्व में महिलाओं की पूर्ण मान्यता और एकीकरण की दिशा में यात्रा जारी है। संस्थागत पूर्वाग्रह, सांस्कृतिक प्रतिरोध और आधिकारिक भूमिकाओं में सीमित प्रतिनिधित्व जैसी वर्तमान चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं, जो निरंतर वकालत और सुधार की आवश्यकता को दर्शाती हैं।

सूफीवाद और अन्य भारतीय धर्मों में महिला आध्यात्मिक आंकड़ों का अध्ययन न केवल उनकी संबंधित परंपराओं पर उनके गहरे प्रभाव के लिए एक वसीयतनामा प्रदान करता है, बल्कि एक महत्वपूर्ण लेंस भी है जिसके माध्यम से आध्यात्मिक और सामाजिक संदर्भों में लैंगिक समानता के चल रहे मुद्दों को देखना है। उनकी विरासत, आध्यात्मिक गहराई और सामाजिक बाधाओं के लिए एक अथक चुनौती दोनों की विशेषता है, भविष्य की पीढ़ियों के निर्माण के लिए एक नींव प्रदान करती है, जो एक अधिक समावेशी और न्यायसंगत आध्यात्मिक और सामाजिक परिदृश्य की ओर प्रयास करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अन्स्ट, सी0डब्ल्यू0 (1997) दि संभाला गाइड टू सूफीज्म, बोस्टन, एमए : सम्भाला पब्लिकेशन।
2. कुर्ले, एस0एस0 (2007), सूफीज एण्ड सेंट्स बॉडीज : मिस्टिसिज्म, कार्पोरियलटाइम, एण्ड सेक्रेड, पॉवर इन इस्लाम, चैपल हिल : यूनिवर्सिटी ऑफ नॉर्थ कैरोलिना प्रेस।
3. मर्निस्सी फेमिनिस्ट एफ0 (1991), द वील एंड द मेल एलीट : ए फेमिनिस्ट इण्टरप्रेटेशन ऑफ विमेन्स राइट्स इन इस्लाम. रीडिंग, एमए : एडिसन-वेस्ली।
4. शिम्मेल, ए0 (1994) . मिस्टिकल डायमंण्ड्स ऑफ इस्लाम चौपल हिल : यूनिवर्सिटी ऑफ नॉर्थ कैरोलिना प्रेस।
5. शर्मा, ए, एंड यंग, के.के. (संपा0) (1999) . फेमिनिज्म एण्ड वर्ल्ड रिलीजनज़. ऑल्बनी : स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क प्रेस।
6. स्थिम, एम0 (1994), राबिया द मिस्टिक एंड हर फेलो - सेंट्स इन इस्लाम . कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।



छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति में लोकगीत और लोकनृत्य

अविनाश बनर्जी

शोधार्थी

हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

छत्तीसगढ़ की संस्कृति को समझने के लिए, यहाँ के लोक साहित्य, विशेषकर वाचिक साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। लोकगीत, लोकनृत्य, कथाएँ, कहावतें और लोक नाट्य, यहाँ की संस्कृति के मूल तत्वों को दर्शाते हैं। यह वाचिक परंपरा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है और आज भी जीवित है। इसमें आदि काल से लेकर वर्तमान समय तक की सांस्कृतिक यात्रा समाहित है। यह साहित्य न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि यह यहाँ के लोगों के जीवन दर्शन, उनके मूल्यों और उनकी आस्थाओं को भी प्रकट करता है। इसके माध्यम से हम छत्तीसगढ़ की संस्कृति की गहराई को समझ सकते हैं और उसकी समृद्धि का अनुभव कर सकते हैं।

छत्तीसगढ़ की धरती लोक साहित्य के अनमोल रत्नों से सजी हुई है। यह धरा लोक साहित्य की समस्त विधाओं का अद्भुत संगम स्थल है, जहाँ लोकगीतों की मधुर ध्वनियाँ, लोकगाथाओं के वीर रस से भरे किस्से, लोककथाओं की शिक्षाप्रद कहानियाँ, लोकनाट्य, लोकनृत्य का मनोरंजक प्रदर्शन और लोक सुभाषितों की ज्ञानवर्धक बातें प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य अपने बहुरंगी और बहुआयामी स्वरूप से मन को मोह लेता है। इसमें आदि मानव की सहज और अनगढ़ भावनाओं की झलक तो मिलती ही है, साथ ही वैदिक काल, महाभारत और रामायण काल से लेकर विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं के उतार-चढ़ाव की छाप भी स्पष्ट दिखाई देती है। यह लोक साहित्य समय के साथ बदलता रहा है, इसमें आधुनिक भावनाओं और युगीन संवेदनाओं का समावेश भी हुआ है, जिससे यह और भी समृद्ध और जीवंत बन गया है।

बीज शब्द - छत्तीसगढ़ी संस्कृति, लोकगीत, लोकनृत्य, लोकसाहित्य

प्रस्तावना

छत्तीसगढ़, जिसे 'धान का कटोरा' कहा जाता है। छत्तीसगढ़ की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति रही है। यद्यपि इस क्षेत्र ने ऐतिहासिक काल में अनेक उथल-पुथल देखे हैं, फिर भी इसकी भौगोलिक और सांस्कृतिक विशिष्टता आज भी विद्यमान है। "छत्तीसगढ़ महज एक राज्य नहीं, बल्कि संस्कृति और समाज की जीवंत परंपरा का संवाहक प्रदेश भी है। छत्तीसगढ़ भले ही भारत के नक्शे पर नया राज्य हो, पर उसके अतीत और परंपरा की जड़ें अनादिकाल से जाकर जुड़ती हैं। प्राचीन काल में छत्तीसगढ़ के इस भू-भाग को विभिन्न नामों से पहचान मिली। इनमें दक्षिण कोसल और दंडकारण्य के नाम भी शरीक हैं। जनश्रुतियों के अनुसार, दक्षिण कोसल माता सीता का मायका और भगवान राम का ननिहाल रहा है। इस क्षेत्र की वर्तमान पहचान यहाँ के गढ़ों से मिली है। इस भू-भाग पर 36 गढ़ थे, इसलिए इस क्षेत्र को छत्तीसगढ़ के तौर पर लोकप्रिय पहचान

मिली। छत्तीसगढ़ राज्य के प्रतीक चिह्न में भी इन्हीं 36 गढ़ों को प्रतीकात्मक रूप में गोलाकार में अंकित किया गया है। छत्तीसगढ़ का बस्तर क्षेत्र सदैव से ही मानव विज्ञानियों और समाजशास्त्रियों समेत दूसरे अध्येताओं का आकर्षण केंद्र रहा है। बस्तर का अबूझमाड़ इलाका आज भी बहुत कुछ अपनी परंपराओं व जनजातियों को उनके मूल स्वरूप में सहेजे हुए है।”

छत्तीसगढ़, भारत का एक हृदय प्रदेश, अपनी ग्रामीण और नगरीय बस्तियों के विशाल विस्तार के लिए जाना जाता है। इसकी संस्कृति को सही मायने में लोक संस्कृति के रूप में समझना चाहिए, क्योंकि यहाँ की जीवन शैली, रीति-रिवाज और परंपराएं जन-मानस से जुड़ी हैं। छत्तीसगढ़ की संस्कृति वास्तव में ‘लोक’ की संस्कृति है, जो विशेष रूप से जनजातीय क्षेत्रों में अपनी अनूठी पहचान और गौरव के साथ जीवित है। यह संस्कृति केवल दिखावटी या बनावटी नहीं है, बल्कि लोगों के जीवन का अभिन्न अंग है। यह उनके दैनिक जीवन, उनके उत्सवों, उनके दुखों और सुखों में सांस लेती है। छत्तीसगढ़ी संस्कृति की जड़ें गहरी हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती आ रही हैं। यह एक समृद्ध और जीवंत संस्कृति है जो अपने आचार-विचार, रीति-रिवाज, त्योहारों, मूल्यों और मान्यताओं, जीवन शैली, भाषा, कहानियों, लोकगाथाओं, लोकनृत्य, लोकगीत, लोक संगीत, लोक नाट्य, लोकाचार, लोक देवताओं, लोक शिल्प और लोक चित्रकला के विशाल संसार को समेटे हुए है। ये सभी तत्व मिलकर छत्तीसगढ़ की समग्र और विशाल सांस्कृतिक पहचान को गढ़ते हैं। यहाँ के त्योहार रंग-बिरंगे और जीवंत होते हैं, जो लोगों को एक साथ लाते हैं और सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा देते हैं।

लोकगीत और लोकनृत्य, स्थानीय भाषा और बोली में, जीवन के विभिन्न पहलुओं को दर्शाते हैं, प्रेम, श्रम, प्रकृति और देवी-देवताओं की कहानियों को जीवंत करते हैं। लोक कला और शिल्प, स्थानीय कारीगरों की कुशलता और रचनात्मकता का प्रमाण हैं, जो पीढ़ियों से चली आ रही परंपराओं को जीवित रखते हैं। छत्तीसगढ़ की संस्कृति एक बहुआयामी और गतिशील है, जो लगातार विकसित हो रही है, फिर भी अपनी जड़ों से जुड़ी हुई है। यह एक ऐसी संस्कृति है जो विविधता में एकता का उत्सव मनाती है और आने वाली पीढ़ियों के लिए एक समृद्ध विरासत छोड़ती है।

लोकगीत

छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य की सबसे समृद्ध और लोकप्रिय विधा लोकगीत है। ये गीत छत्तीसगढ़ की जनता के हृदय की धड़कन हैं। इनमें जीवन के विभिन्न पहलुओं, सुख-दुख, हर्ष-विषाद, प्रेम-विरह, उत्सव-त्योहार, रीति-रिवाज, कृषि-कार्य, और जीवन के हर छोटे-बड़े अनुभव की अभिव्यक्ति मिलती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक, जीवन के हर पड़ाव पर गाये जाने वाले ये गीत छत्तीसगढ़ी संस्कृति की पहचान हैं। मानव हृदय की विकास यात्रा, उसकी आशाएं, निराशाएं, संघर्ष और सफलताएं, ये सब इन लोकगीतों में बखूबी झलकते हैं। इन गीतों में शृंगार, हास्य, करुणा, वीरता, भक्ति आदि सभी रसों का समावेश है, जो इन्हें और भी आकर्षक बनाता है।

छत्तीसगढ़ी लोकगीत, श्रम और साधना के जीवंत स्वर हैं, जो इस धरती की माटी की सोंधी खुशबू से सराबोर हैं। ये गीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि छत्तीसगढ़ी जनजीवन का दर्पण हैं, जो उनकी संस्कृति, परंपराओं, रीति-रिवाजों, और जीवन के विभिन्न पहलुओं को बखूबी प्रदर्शित करते हैं। छत्तीसगढ़ मूलतः लोकगीत और आख्यानों की धरती है, जहाँ की भाषा में गीतों की मिठास घुली हुई है। यहाँ की लोककथाएँ, पौराणिक गाथाएँ, और जनश्रुतियों ने लोकगीतों को एक अनूठा रूप प्रदान किया है। पंडवानी, भरथरी, चंदैनी, ढोला मारू, बाँस गीत जैसे आख्यान गीतों में वीर रस, शृंगार रस, और करुण रस का सुंदर समावेश मिलता है।

इनके अलावा, जीवन के विभिन्न संस्कारों, पर्व-त्योहारों, अनुष्ठानों, और ऋतुओं से जुड़े गीत भी छत्तीसगढ़ी संस्कृति का अभिन्न अंग हैं। बारहमासा, सुआ गीत, ददरिया, बच्चों के खेल गीत, धनकुल, लक्ष्मी जगार आदि लोकगीतों में लोक कविता और लोक स्वर की अनुपम छटा देखने को मिलती है। ये गीत न केवल मनोरंजन करते हैं, बल्कि सामाजिक मूल्यों, नैतिक शिक्षा, और जीवन के गूढ़ रहस्यों को भी उजागर करते हैं। छत्तीसगढ़ी लोकगीतों की गायन शैली में भी अद्भुत विविधता पाई जाती है। गायकी के विभिन्न अंदाज़, वाद्य यंत्रों का प्रयोग, और लय-ताल का सम्मिश्रण इन गीतों को और भी मनमोहक

बना देता है।

डॉ. शकुंतला वर्मा ने छत्तीसगढ़ी लोकगीतों की विशेषताओं को इस प्रकार रेखांकित किया है—“छत्तीसगढ़ी के लोकगीतों में वहाँ का सरस जीवन प्रतिबिंबित होता है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर मानव मन की विभिन्न परतें खोल कर उसमें रख दी गई है, सामाजिक दृष्टि से उनमें रीति रिवाजों का उल्लेख और आर्थिक स्थिति का चित्रण होता है। भाषा, छंद, अलंकार और रस इन अनगढ़ गीतों में भी है। रस की प्रतिष्ठा लोकगीतों में खूब मिलती है। संगीतात्मकता उसका एक अनिवार्य तत्व होता है। गीत के लहरों की उद्दाम गति उसमें पाई जाती है। एक विशिष्ट वर्णनात्मकता और एक अनिर्वचनीय उल्लास उसमें रहता है, साथ ही एक विस्मय एक भोली जिज्ञासा, एक अबाध उल्लास से युक्त होते हैं। उल्लास, ओज और क्षोभ तीन प्रमुख वृत्तियों के रूप में विभिन्न सूक्ष्म स्थूल भावों के संचार से पुष्ट होते हुए रख का आनंद प्राप्त करते हैं।”²

इस प्रकार, छत्तीसगढ़ी लोकगीत अपनी विविधता और समृद्धि के लिए प्रसिद्ध हैं। यहाँ छत्तीसगढ़ की कुछ लोकप्रिय गीत शैलियों का वर्णन किया जा रहा है

पंडवानी - पंडवानी, महाभारत के पांडवों की कथा का छत्तीसगढ़ी लोकगीत रूप है। इसमें किस्सागोई, संगीत और अभिनय का अद्भुत समावेश है। महाभारत की तरह पंडवानी में भी साहस, जोश, धर्म, अध्यात्म और शृंगार रस समाहित हैं। पंडवानी गायक सामान्यतः लिखित महाभारत से अपरिचित होते हैं, उनके गायन में लोकवाणी प्रमुख होती है, साहित्यिक परिष्कार नहीं। पंडवानी के लिए किसी विशेष अवसर, ऋतु या अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं। इसका प्रमुख वाद्ययंत्र तम्बूरा है। पद्मश्री तीजनबाई और झाड़ूराम देवांगन जैसे कलाकारों ने इसे विश्व स्तर पर ख्याति दिलाई।

पंथी गीत - सतनामी पंथ का पारंपरिक नृत्य पंथी है, जहाँ ‘जैतखाम’ स्थापित कर गोल घरे में नृत्य किया जाता है, गुरु वंदना से शुरुआत होती है और सतनाम पंथ के प्रवर्तक संत शिरोमणि गुरु घासीदास के चरित्र का गायन होता है। पंथी गीतों में विशिष्ट धुन, संदेश, सत्कार्य की प्रेरणा, गुरु की स्तुति और मुक्ति मार्ग के विचार होते हैं। पंथी नृत्य आध्यात्मिक संदेश और जीवन की महत्ता दर्शाता है, मांदर और झांझ मुख्य वाद्य हैं।

चंदैनी / चंदयनी गीत (लोरिक-चंदा) - चंदैनी छत्तीसगढ़ की लोकप्रिय प्रेम लोकगाथा है। यह लोक साहित्य, लोक गीत और लोककथाओं में ‘प्रसिद्ध प्रेमी’ युगल लोरिक और चंदा के प्रेम प्रसंग को क्षेत्रीय विशिष्टता के साथ गाया जाता है। इसका गेय रूप चंदैनी कहा जाता है छत्तीसगढ़ में चिन्तादास चंदैनी के श्रेष्ठ एवं वरिष्ठ गायकों में है।

भरथरी - भरथरी एक लोक गाथा है। इसमें राजा भरथरी और रानी पिंगला की कथा का गायन होता है। छत्तीसगढ़ में भरथरी की विशिष्ट परम्परागत लोक शैली है। नाथ एवं पंथी प्रभाव के कारण इसकी विशिष्ट पहचान है। सारंगी या इकतारा बजाते हुए भरथरी गाते योगियों को अक्सर देखा जा सकता है। बिलापुर की सुरुज बाई खांडे भरथरी की शीर्ष गायिका हैं। इनकी भरथरी गायन की नितान्त निजी शैली है, जिसमें मौलिक स्वर माधुर्य और आकर्षण मौजूद है। यहाँ महिला कंठों के माध्यम से इसने एक नया स्वरूप ग्रहण किया है।

ददरिया—ये मूलतः प्रेम गीत हैं, जिनमें शृंगार रस अर्थात् प्रेम की प्रधानता होती है। छत्तीसगढ़ के लोक गीतों में ददरिया युवा मन की अभिव्यक्ति का अत्यंत सशक्त माध्यम है। ददरिया की स्वीकृति छत्तीसगढ़ी लोक जीवन और साहित्य में ‘प्रेम काव्य’ के रूप में हुई है। इसे प्रेमगीत के साथ-साथ छत्तीसगढ़ कि कव्वाली भी कहा जाता है।

बाँस गीत - यह मूलतः एक गाथा गायन है, जिसमें गायक, रागी और वादक प्रमुख होते हैं। गायक कथा को गाता है रागी हुँकारी भरता है और वादक बाँस बजाता है। वादक अपने बाँस वादक को खूब सजा के रखते हैं। इसमें मोटे बाँस के लगभग एक मीटर लम्बे वाद्य को बजाया जाता है इसी कारण इसे ‘बाँस गीत’ कहा जाता है। छत्तीसगढ़ में इसे प्रायः राऊत जाति के लोग गाते हैं। इसके माध्यम से करुण गाथा गाई जाती है। ग्राम बाँसिन के श्री केजुराम यादव, खैरागढ़ के नुकुल याद बाँस गीत के श्रेष्ठ गायकों में से हैं।

ढोलामारू—ढोलामारू मूलतः राजस्थान की लोककथा है, पर पूरे उत्तर भारत में प्रचलित है। इसमें ढोला और मारू की प्रेम कथा को जादुई चमत्कार और ग्रामीण यंत्र-तंत्र की रहस्यात्मकता के साथ लोक शैली में गाया जाता है। छत्तीसगढ़ में

ढोलामारू कथा को प्रेम गीत के रूप में देखा जाता है। छत्तीसगढ़ी ढोलामारू कथा में मारू का वर्णन अधिक होता है। छत्तीसगढ़ की सूरजबाई खांडे प्रमुख गायिका एवं जगन्नाथ कुम्हार महत्वपूर्ण गायक हैं।

घोटुल पाटा - अनेक आदिवासी क्षेत्रों में मृत्यु गीत गाने की परम्परा है। मृत्यु के अवसर पर मुड़िया आदिवासियों में 'घोटुल पाटा' के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है। इसे बुजुर्ग व्यक्ति गाते हैं, जो मुख्यतः राजा 'जोलोंग साय' की कथा के साथ प्रकृति के अनेक जटिल रहस्यों का समाधान प्रस्तुत करते हैं।

छत्तीसगढ़ के अन्य लोक गीतों में - वैवाहिक गीत - विवाह के विभिन्न रस्मों के अवसर पर ये गीत महिलाओं द्वारा सामूहिक रूप से गाए जाते हैं। इसमें तेल गीत - कन्या को हल्दी-तेल चढ़ने के समय, भाँवर गीत - सात फेरों के समय, परगहनी गीत - बारात स्वागत के समय, भड़वनी - बारातियों के भोजन के समय हास-परिहास से परिपूर्ण एवं समधी गीत, विदाई गीत आदि प्रमुख हैं। जवांरा गीत - यह महिलाओं द्वारा चैत्र नवरात्र के अवसर पर जवांरा निकालने के अवसर पर सामूहिक रूप से गाया जाता है। जिसे भोजली गीत भी कहा जाता है। लोरी गीत - यह एकल गीत होता है, जो गृहणियों द्वारा बच्चों को सुलाने हेतु गाया जाता है। देवार गीत - देवार छत्तीसगढ़ की खानाबदोश जाति है। नृत्य और गीत इनकी जीविका के साधन हैं। व्यंग और हास्य का पुट इनके गीतों की विशेषता है।

लोक नृत्य

लोक कलाओं का एक अभिन्न अंग लोकनृत्य, जनमानस के सामाजिक और सामूहिक सौन्दर्य बोध का जीवंत प्रतीक होते हैं। ये नृत्य केवल शारीरिक गतिविधियाँ नहीं, बल्कि समाज की भावनाओं, रीति-रिवाजों, और सांस्कृतिक विरासत का प्रतिबिंब होते हैं। नृत्य आनंद और उल्लास का प्रतीक है, जो मानव हृदय की गहराइयों से उमड़ता है। छत्तीसगढ़ी लोकनृत्य अपनी विविधता और विशिष्टता के लिए प्रसिद्ध हैं। यहाँ का जनजातीय क्षेत्र, अपनी समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं और अनूठे लोकनृत्यों के लिए विश्व भर में पहचान रखता है। इस क्षेत्र में अनेक प्रकार के लोकनृत्य प्रचलित हैं, जो विभिन्न अवसरों, त्योहारों, और ऋतुओं से जुड़े होते हैं। ये नृत्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक एकता और सामूहिक भावना का प्रतीक भी हैं। इन नृत्यों में स्त्री-पुरुष समान रूप से भाग लेते हैं, और अपनी कलात्मकता का प्रदर्शन करते हैं। छत्तीसगढ़ के प्रमुख नृत्यों में कर्मा, सुआ, पंथी, राउत नाचा, गौर मारिया, जैसे नृत्य शामिल हैं। सभी नृत्यों की अपनी अलग-अलग विशेषताएं और महत्व हैं, जो छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध बनाते हैं। छत्तीसगढ़ के प्रमुख नृत्यों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

सुआ नृत्य - छत्तीसगढ़ में सुआ नृत्य मुख्यतः महिलाओं और युवतियों का त्यौहार है, सभी वर्गों की महिलाएँ इसमें भाग लेती हैं। दीपावली से पहले धान की फसल कटने के बाद यह नृत्य शुरू होता है और दीपावली की रात शिव-पार्वती विवाह के साथ समाप्त होता है, इसे गौरी नृत्य भी कहते हैं। एक टोकरी में धान, मिट्टी के दो सुआ (तोते) रखती है जो शिव-पार्वती के प्रतीक हैं। टोकरी को बीच में रखकर महिलाएँ सुआ गीत गाती, ताली बजाती और नाचती हैं।

पंथी नृत्य - पंथी नृत्य सतनाम-पंथ का एक आध्यात्मिक और धार्मिक नृत्य होने के साथ-साथ एक अनुष्ठान भी है। सामूहिक अराधना है। यह वाह्य-स्वरूप में मनोरंजन एवं अन्तःस्वरूप में आध्यात्मिक साधना है। पंथी नृत्य प्रायः सामूहिक होते हैं। पंथी नृत्य पुरुष प्रधान नृत्य है। यह सतनामियों में बारहों माह प्रतिदिन सायंकालीन जैतखाम व गुरुगद्दी गुड़ी के समक्ष किया जाने वाला अनुष्ठानिक नृत्य है। इसके द्वारा आध्यात्मिक उत्कर्ष और सामूहिक साधना द्वारा परमानंद की प्राप्ति होती है।

राउत नाच - यह नृत्य छत्तीसगढ़ में यादव समुदाय द्वारा किया जाता है। इसे 'गहिरा नाच' के नाम से भी जाना जाता है और यह राउतों से जुड़ा है, जो भगवान कृष्ण को अपना पूर्वज मानते हैं। यह नृत्य वीरता की कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में कार्य करता है। पौराणिक कथाओं के अनुसार, यह श्री कृष्ण द्वारा अपने अन्यायी मामा कंस को हराने के बाद विजय के प्रतीक के रूप में उत्पन्न हुआ था। रंग-बिरंगे कपड़े पहने हुए राउत एक हाथ में लाठी और दूसरे हाथ में हथियार लेकर

समूह नृत्य करते हैं। प्रदर्शन के दौरान, एक नर्तक एक दोहा पढ़ता है, और सभी लोग 'गड़वा बाजा' की लय पर नाचते हैं, उसी पद को दोहराते हैं। इसके अतिरिक्त, पुरुष कलाकारों द्वारा महिला पोशाक में नृत्य करने की परंपरा भी है।

प्रमुख जनजातीय नृत्य

करमा—करमा नृत्य 'करमा देवता' को प्रसन्न करने के लिए किया जाता है। करमा नृत्य, करमा देवता की पूजा है, जो ग्रामीण जीवन और कृषि पर आधारित है। इसमें स्त्री-पुरुष, पगड़ी और मयूर पंख से सजे, नाचते हैं। क्षेत्रानुसार गीत, लय, ताल में अंतर होता है। बैगाओं का करमा 'बैगानी करमा' कहलाता है। ताल-लय से करमा खाप, लहकी, खरी, झुलनी होते हैं। मांदर, टिमकी, ढोल, झाँझ प्रमुख वाद्य हैं।

ककसार (मुड़िया नृत्य) - यह बस्तर की मुड़िया जनजाति का लोक नृत्य है। यह मूलतः पूजा नृत्य है। जिसमें मुड़िया जनजाति के लोग 'लिंगादेव' को प्रसन्न करने के लिए रात भर नृत्य गायन करते हैं।

गौर नृत्य (माड़िया नृत्य) - बस्तर में माड़िया जनजाति 'जात्रा' के नाम से वार्षिक पर्व मनाती है। जात्रा के दौरान गाँव के युवक-युवतियाँ रातभर नृत्य करते हैं। यह बस्तर के माड़िया जनजाति का लोकप्रिय नृत्य है। इस नृत्य को मानवशास्त्री 'वेरियर एल्विन' ने संसार का सबसे सुन्दर नृत्य निरूपित किया है।

गेंड़ी नृत्य - गेंड़ी मुड़िया जनजाति का प्रिय नृत्य है जिसमें पुरुष लकड़ी की बनी हुई ऊँची गेंड़ी पर चढ़कर तेज गति से नृत्य करते हैं, जिसे 'डिटोंग' कहा जाता है। छत्तीसगढ़ के इस लोक नृत्य में शारीरिक कौशल व संतुलन के महत्त्व को प्रदर्शित किया जाता है। सामान्यतः घोटुल के अंदर व बाहर इस नृत्य को विशेष आनंद के साथ किया जाता है। गेंड़ी लोक नृत्य के समय दो प्रमुख लोक वाद्य यंत्र, मोहरी और तुडबुड़ी बजाये जाते हैं। मुड़िया आदिवासी इसमें अत्यंत दक्ष होते हैं।

दोरला - 'दोरला' बस्तर की एक जनजाति का नाम है। इसी के नाम से नृत्य का नाम दोरला नृत्य पड़ा। दोरला जनजाति अपने विभिन्न पर्व-त्यौहार विवाह आदि में पारम्परिक नृत्यों का आयोजन करते हैं। दोरला नृत्य का प्रमुख वाद्य विशेष प्रकार का ढोल होता है।

परब नृत्य - यह बस्तर की धुरवा जनजाति का एक लोकप्रिय नृत्य है। इसमें पुरुष और महिलाएं दोनों सामूहिक रूप से भाग लेते हैं। नर्तक सफेद लहंगा, सलूखा और मोर के पंखों से सजी आकर्षक पगड़ी पहनते हैं, महिलाएं भी सफेद साड़ी पहनकर, माथे पर पट्टी, पैरों में घुंघरू और अन्य विशेष सजावट के साथ पंक्ति में नृत्य करती हैं। बांसुरी और ओलखजा जैसे वाद्य बजाए जाते हैं और नृत्य के दौरान कलाकार कई तरह के करतब दिखाते हैं।

सरहुल - सरहुल उरांव जनजाति का अनुष्ठानिक नृत्य है। उरांव जनजाति का निवास रायगढ़ और सरगुजा में है। उरांव वर्ष में चैत्रमास की पूर्णिमा पर साल के फूल आने पर साल वृक्ष की पूजा का आयोजन करते हैं, जिसे वे अपनी आराध्य 'सरना देवी' का स्थान मानते हैं और इसके आस-पास नृत्य करते हैं। सरहुल एक सामूहिक नृत्य है। प्रमुख वाद्य यंत्र मांदर और झांझ हैं।

सैला अथवा डंडा नृत्य—यह सरगुजा का लोकप्रिय जनजातीय नृत्य है जो दशहरे एवं धान की कटाई के पश्चात् आरम्भ होता है, जिसे छत्तीसगढ़ में छेर-छेरा त्यौहार के नाम से जाना जाता है। इसमें केवल पुरुष डंडा लेकर समूह में नृत्य करते हैं। नृत्य के समय प्रत्येक नर्तक अपने बगल के नर्तक के डंडे पर डंडा मारता है। सभी डंडे एक साथ टकराते हैं, जिससे मधुर एवं कर्णप्रिय ध्वनि निकलती है। मांदर इसका प्रमुख वाद्ययंत्र है।

निष्कर्ष

छत्तीसगढ़, विकास के मानकों पर भले ही अग्रणी राज्यों में शुमार न हो, परंतु सांस्कृतिक समृद्धि के मामले में यह भूमि अद्वितीय है। यहाँ की संस्कृति, मानवीय मूल्यों का एक जीवंत प्रमाण है, जहाँ दया, क्षमा, ममता, सरलता और औदार्य जैसे गुण लोगों के जीवन में रचे-बसे हैं। ये गुण न केवल व्यक्तिगत जीवन को सुसंस्कृत बनाते हैं, बल्कि समाज को भी एक सूत्र

में बांधते हैं, एकता और भाईचारे का वातावरण निर्मित करते हैं। छत्तीसगढ़ ने सदैव विभिन्न संस्कृतियों को अपनाया और पोषित किया है, जिससे यहाँ की सांस्कृतिक विविधता और भी समृद्ध हुई है। यह भूमि अनेक संस्कृतियों का संगम स्थल रही है, जहाँ विभिन्न परंपराएं और रीति-रिवाज एक-दूसरे से मिलते-जुलते और एक-दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं। अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखते हुए भी, छत्तीसगढ़ ने बाहरी संस्कृतियों को आत्मसात किया है, जिससे एक समृद्ध और जीवंत सांस्कृतिक ताना-बाना बुना गया है।

अपनी प्राचीन और आदिम विशेषताओं को संजोए हुए, छत्तीसगढ़ की संस्कृति आज भी अपनी जड़ों से जुड़ी हुई है। यहाँ के अधिकांश निवासी प्रकृति के प्रति गहरी आस्था रखते हैं, पेड़-पौधों, नदियों, पहाड़ों और जीव-जंतुओं को देवतुल्य मानकर उनका सम्मान करते हैं। प्रकृति के साथ उनका यह गहरा संबंध उनके जीवन के हर पहलू में दिखाई देता है, उनके रीति-रिवाजों, त्योहारों और कलाओं में। हालांकि, प्रकृति प्रेम के बावजूद, छत्तीसगढ़ के लोगों के लिए श्रम और ईमानदारी सर्वोपरि हैं। वे कर्मठ और परिश्रमी होते हैं, अपने कर्तव्यों के प्रति समर्पित रहते हैं और ईमानदारी को अपना सबसे बड़ा धर्म मानते हैं। यहाँ के लोग मेहनत और लगन से अपना जीवन यापन करते हैं और किसी भी प्रकार के छल-कपट से दूर रहते हैं। उनका मानना है कि सच्ची पूजा ईमानदारी और कर्मठता से ही होती है।

सन्दर्भ सूची

1. छत्तीसगढ़—शिवानुराग पटैरया, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत, नई दिल्ली, 2021, (भूमिका से)
2. छत्तीसगढ़ी लोक जीवन और लोक साहित्य का अध्ययन - शकुंतला वर्मा, रचना प्रकाशन, पृष्ठ—102

सहायक सन्दर्भ सूची

1. छत्तीसगढ़ी लोक जीवन और लोक साहित्य का अध्ययन - शकुंतला वर्मा, रचना प्रकाशन, जयपुर
2. छत्तीसगढ़ वृहद सन्दर्भ—संजय त्रिपाठी, श्रीमती चन्दन त्रिपाठी, उपकार प्रकाशन, आगरा, संस्करण, 2020
3. समग्र छत्तीसगढ़—छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रन्थ अकादमी, रायपुर, संस्करण 2017
4. छत्तीसगढ़ समग्र अध्ययन—रमेश देवांगन, मैकग्रा हिल एजुकेशन, भारत, 2025
5. छत्तीसगढ़ विशेष—प्रतियोगिता साहित्य सीरिज, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 2019



वट सावित्री (बढ अमावस्या)

आशा शर्मा

शोधकर्त्री, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय,
जयपुर, राजस्थान

सारांश

भारत सांस्कृतिक विभिन्नता का देश है। भारत के प्रत्येक प्रान्त की अपनी विशेष संस्कृति और रीतिरिवाज हैं यही भारतीय लोक संस्कृति भारत के प्रत्येक प्रान्त को आपस में जोड़ती है। भारतीय लोगों को जोड़ने वाला व लोक संस्कृति को दर्शाने वाला पर्व है वट सावित्री उपवास।

वट सावित्री एक हिन्दू त्योहार है, जिसे विवाहित महिलाएं अपने पति की लंबी आयु के लिए मानती है। यह व्रत ज्येष्ठ मास में कृष्ण पक्ष की अमावस्या को मनाया जाता है कहीं कहीं यह व्रत ज्येष्ठ माह में शुक्ल पक्ष की पुर्णिमा को भी मनाया जाता है। वट सावित्री उपवास में महिलाएं वट वृक्ष (बरगद) के पेड़ की पूजा करती है, देवी पार्वती (हिन्दू धर्म में पत्नी व स्त्री गुणों का प्रतीक) ओर सावित्री से सफल और शुभ विवाहित जीवन, पति की लंबी आयु, स्वास्थ्य, व सुरक्षा की कामना करती है।

वट सावित्री कथा का वर्णन संस्कृत महा काव्य महाभारत में भी है, महाभारत के वन पर्व में सावित्री ओर सत्यवान कथा वर्णित है। वट सावित्री नारी के उच्च नारीत्व गुण व आदर्श चरित्र का उदाहरण समाज के सामने प्रस्तुत करता है। वट सावित्री की प्रसिद्ध कहानी यमराज के साथ मृत्यु पर सावित्री के ज्ञानवर्धक वार्तालाप, अपने पति के जीवन को बचाना, उसके यश की कामना करना, अपने वंश को बढ़ाने तथा यम से तेजस्वी पुत्रों का वरदान प्राप्त करने वाली साहसी नारी की कहानी है। सावित्री ने समाज के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत किया कि नारी अपनी इच्छा शक्ति से कुछ भी कर सकती है आदर्श चरित्रवान स्त्री एक श्रेष्ठ समाज की नींव डालती है तथा उसे बढ़ाती है। वट सावित्री व्रत को करने व बरगद की पूजा की शुरुवात समाज में इसलिए की गई प्रत्येक नारी को सावित्री जैसे गुणों को ग्रहण करने तथा साहसी बनने का संदेश पहुंचाया जा सके। जिस प्रकार सावित्री ने दृढ़ निश्चय से अपनी मानो कामना पूरी की उसी प्रकार सभी नारियां अपने मनोरथों को पूर्ण कर सके। भारतीय संस्कृति की देन यह वट सावित्री पूजन न केवल आध्यात्मिक हैं अपितु वैज्ञानिक और पर्यावरणीय दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। वट (बरगद) का पेड़ सबसे अधिक पूजनीय वृक्षों में से एक है इसमें ब्रह्मा का वास है यह वृक्ष दीर्घायु है।

मुख्य शब्द- सांस्कृतिक, नारीत्व, व्रत, आध्यात्मिक

भूमिका

वट सावित्री की कथा का वर्णन संस्कृत महाकाव्य महाभारत में है। महाभारत में कुल 18 पर्व है सत्यवान और सावित्री की कहानी महाभारत के तीसरे पर्व में वर्णित है। इस पर्व को वन पर्व या अरण्यक पर्व कहा जाता है। महाभारत के वन पर्व

में पांडवों के वनवास के 12 वर्षों का वर्णन किया गया है। इस पर्व में नैतिकता और सद्गुणों का प्रवचन दिया गया है। इस सावित्री और सत्यवान की कहानी परिवर्तमहातंय पर्व में बताई गई है।

सावित्री सत्यवान की कथा

सावित्री मद्र देश (महाभारत के अनुसार जम्मू कश्मीर) के राजा अश्वपति की पुत्री थी जो कि साल्व देश के दृष्टिहीन राजा धुमत्सेन के पुत्र सत्यवान से प्रेम करती थी और सत्यवान से विवाह करना चाहती थी। देवर्षि नारद द्वारा सावित्री और उसके पिता को यह अवगत हुआ की सत्यवाका जीवन बहुत छोटा है वह अल्पायु है अतः सावित्री को उससे विवाह नहीं करना चाहिए परन्तु सावित्री एक दृढ़ निश्चय रखने वाली महिला थी उसने सारी कठिनाइयों के बावजूद सत्यवान से विवाह किया। विवाह के पाश्चात्य सत्यवान को उसके परिवार सहित शत्रुओं द्वारा देश से निष्काशित कर दिया जाता है सावित्री अपने पति और परिवार के साथ जंगल में रहने लगती है। एक दिन सत्यवान रोजाना की तरह जंगल में काम करने जाता है उस दिन सावित्री भी अपने पति के साथ जंगल में जाती है। सत्यवान काम कर थक जाता है और सावित्री की गोद में सर रख कर सो जाता है उसी समय यम देव (मृत्यु के देवता) वहाँ आ जाते हैं वे सत्यवान के प्राण हर के जाने लगते हैं तो सावित्री उनका मार्ग रोक लेती है और अपने पति के प्राणों के लिए यम के साथ तर्क वितर्क करने लगती हैं यम देव के साथ लंबी चर्चा के बाद यम सावित्री से प्रभावित होकर उसे वरदान मांगने हेतु कहते हैं सावित्री जो कि एक बुद्धिमान, दृढ़ निश्चय, उच्च नारीत्व गुण और उच्च चरित्रवान नारी थी यम देव से वर मंगती हैं की उसके पिता को दृष्टि मिल जाए, उनका खोया राज्य वापस मिल जाए, वह सदा सौभाग्यवती रहे और उसे वीर पुत्रों की प्राप्ति हो यम देवता सावित्री की बुद्धि और निष्ठा से प्रभावित होते हैं और सावित्री को उसके पति के प्राण लौटा देते हैं और दोनों को दीर्घायु व सौभाग्यशाली होने का वर देकर अपने धाम लौट जाते हैं।

वट सावित्री पूजन

वट सावित्री उपवास एक हिन्दू त्योहार है इसे वट पूर्णिमा या वट अमावस्या भी कहा जाता हैं। यह त्योहार हिन्दू मास के ज्येष्ठ महीने में मनाया जाता है। भारत में वट सावित्री उपवास दो बार मनाया जाता है। स्कन्दपुराण के अनुसार वट सावित्री व्रत ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को मनाया जाता है जिसे वट सावित्री पूर्णिमा कहते हैं जबकि निर्णयमृतादि के अनुसार यह ज्येष्ठ मास की अमावस्या को मनाया जाता है जिसे वट सावित्री अमावस्या या बड अमावस्या कहा जाता है। दोनों में कोई अंतर नहीं बस तिथियाँ का फर्क है। वट सावित्री पूर्णिमा महाराष्ट्र, गुजरात सहित दक्षिण भारत के क्षेत्रों में प्रचलित है तथा वट सावित्री अमावस्या (बड अमावस्या) राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार में मनाई जाती है।

वट सावित्री पूजन विधि

इस उपवास में वट(बरगद) के पेड़ की पूजा की जाती है विवाहित महिलाओं द्वारा यह व्रत किया जाता है। महिलाएं सोलह शृंगार कर वट वृक्ष की पूजा करती है वट की परिक्रमा करते हुये मोली का धागा या रक्षा सूत्र पेड़ के बांधती है और देवी पार्वती(हिंदू धर्म में पत्नी व कुछ स्त्री गुणों का प्रतीक है) और सावित्री से खुशहाल जीवन, अपने पति की लंबी आयु की कामना करती है।

वट वृक्ष (बरगद का पेड़) का महत्त्व

धार्मिक दृष्टि से महत्त्व

हिन्दू धर्म में वट वृक्ष का अत्यधिक महत्त्व है पुराणों के अनुसार यह एकमात्र ऐसा पेड़ है जो कि धरती पर सदियों से जीवित रहता है इसलिए इसे अक्षयवट भी कहा जाता है अतः अपने कुल को भी अक्षय बनाए रखने के लिए भी इस

पेड़ की पूजा की जाती है। बरगद का पेड़ घना, लंबा, मजबूत व कई जड़ों वाला होता है ऐसा माना जाता है के इसमें ब्रह्मा का वास होता है। हिन्दू धर्म के अनुसार बरगद के पेड़ में शिव और यमराज का वास है सभी शिव मंदिरों और श्मशानों में यह पेड़ लगाया जाता है इसी पेड़ के नीचे बैठ कर सावित्री ने यम राज से मृत्यु ओर अमरता पर वार्तालाप किया था। इस पेड़ को ज्ञान का पेड़ भी खा जाता है इसी पेड़ के नीचे कई साधुओं और तपस्वियों ने साधना की है। श्री कृष्णा ने अर्जुन को गीता का उपदेश उपदेश कुरुक्षेत्र के ज्योतिसर में अक्षय वट के पास दिया था। इस प्रकार वट वृक्ष अति पूजनीय पेड़ है।

वैज्ञानिक व पर्यावरणीय दृष्टि से महत्व

बरगद का पेड़ यानी फिक्स बेघालेसिस की ऑक्सीजन उत्पादन की क्षमता अत्यधिक होती हैं। इस पेड़ के पत्ते व छाल रक्तस्त्राव को रोकने में सहायक होते हैं। यह सूजन व दर्द को कम करता है। घना होने के कारण छाया दार और और पक्षियों का घर होता है। आयुर्वेद में इस पेड़ के पत्ते, लकड़ी, छाल, दूधिया रस (बरगद से निकलने वाला पदार्थ) आदि से दवाइयां बनती है। इस प्रकार वट वृक्ष को पूजने के पीछे का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि यह न केवल आध्यात्मिक धार्मिक अपितु वैज्ञानिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं।

सावित्री एक आदर्श नारी

सावित्री का चरित्र और उसकी दृढ़ निष्ठा सभी महिलाओं के लिए आदर्श हैं। यह कथा सावित्री के प्रेम व परिवार के पार्थी समर्पण को दिखती हैं। सावित्री समाज के सामने आदर्श प्रस्तुत करती है कि एक नारी चाहे तो कुछ भी कर सकती है सत्यवान के प्राणों की रक्षा करना यह दिखाता है कि नारी की निष्ठा और उसकी इच्छा शक्ति किसी भी विपरीत परिस्थिति से लड़ सकती है और जीत सकती है।

वट सावित्री का महत्व

वट सावित्री (बड अमावस्या) कथा, उपवास ऐसी व्यवस्था है जो कि समाज में आने वाली पीढ़ियों को समाज में नारी के उच्च नारीत्व गुणों से परिचित करवाती है। साथ ही वट वृक्ष को पूजने के पीछे के आध्यात्मिक, धार्मिक और वैज्ञानिक तथ्यों से अवगत करवाई है। सावित्री के रूप में समाज में नारी की मजबूत, निर्भिक, बुद्धिमान, चरित्रवान छवि और स्थिति को प्रकट करता है। वट सावित्री पूजन हमारी लोक संस्कृति की अमूल्य देन हैं यह व्रत हमें सावित्री के रूप में नारी की सकृति से अवगत करवाता है तो दूसरी ओर वट के रूप में पेड़ों को लगाने उन्हें पूजने को प्रेरित करता है। वट सावित्री पूजन की मान्यता केवल इसलिए नहीं है कि ये कथा हमारे पुराणों में दी गई है यह इसलिए भी उपयोगी की यह हमें नारी के श्रेष्ठ व्यक्तित्व से अवगत कराती है वट वृक्ष के रूप में प्रकृति को पूजने के लिए प्रोत्साहित करती है।

संदर्भ सूची

1. शास्त्री, रामनारायण .वेदव्यासप्रणीत महाभारत. द्वितीय खंड (वन पर्व और विराट पर्व) गीता प्रेस गोरखपुर।



बौद्ध एवं जैन धर्म का भारत पर प्रभाव

ज्योति

शोध छात्रा, इतिहास विभाग,
B. M. U. रोहतक, हरियाणा

परिचय

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में छठी शताब्दी ई० पू० का एक महत्वपूर्ण योगदान कहा जा सकता है क्योंकि प्राचीन वैदिक धर्म अपने अत्यधिक बढ़ते धार्मिक आडंबरों और एक ही वर्ण के वर्चस्व से धीरे-धीरे पतन की ओर अग्रसर हो रहा था। उपनिषदों की मान्यताओं पर भी अब प्रश्न उठाए जाने पर लगे थे। क्योंकि वे बहुत पेचीदा और जटिल हो गए थे। इस समय नये-नये विचारों और दार्शनिक सिद्धान्तों की जैसे बाढ़-सी आ गई थी जिसके परिणामस्वरूप अनेकों धार्मिक सम्प्रदायों का उदय हुआ। और ये सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी हुआ था। चीन, युनाल, ईरान और ईओनिया में भी नये धार्मिक विचारों का प्रचार-प्रसार हुआ। जिसने धार्मिक आंदोलन का रूप ले लिया। जहाँ बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म एक धर्म के रूप में उभरे वहीं शैव एवं वैष्णव सुधारवादी संप्रदाय के रूप में प्रकट हुए।

बौद्ध का प्रभाव

बौद्ध धर्म की उत्पत्ति आकस्मिक नहीं थी। बल्कि ये सदियों से वैदिक धर्म का हिस्सा रहा है, महात्मा बुद्ध का भी यही मानना था कि वो (महात्मा बुद्ध) केवल इसके प्रकट होने का जरिया बने। महात्मा बुद्ध का जन्म 483 ई० पू० क्षत्रिय वर्ण में हुआ। इनके जन्म के 7 दिन बाद ही इनकी माता की मृत्यु हो गयी थी, इनके जन्म का नाम सिद्धार्थ था। सिद्धार्थ बचपन से ही संसार से विरक्त भाव रखते थे। और 29 वर्ष की आयु में सिद्धार्थ ने घर का त्याग किया। उसके लगभग 6-7, वर्ष बाद 35 वर्ष की आयु में उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। ज्ञान प्राप्ति के बाद वो सिद्धार्थ से गौतम बुद्ध हो गए और उन्होंने बौद्ध धर्म का प्रसार-प्रचार करना शुरू कर दिया। आज बौद्ध धर्म भारत में ही नहीं बल्कि विश्व में भी मान्य धर्मों में से एक है।

1. भारतीय आदर्श पर प्रभाव

बौद्ध धर्म हो या जैन धर्म दोनों का ही भारतीय आदर्श पर काफी प्रभाव पड़ा था। वैदिक धर्म में व्याप्त त्रुटियों और आडंबरों से आमजन त्रस्त था। वो एक ऐसा आदर्श धर्म चाहते थे जिसमें ये सब ना हो। बौद्ध धर्म का जो रूप था वो बिना किसी चमक-दमक का रहा। वहीं भारतीय संस्कृति की आत्मा हमेशा से सत्य, करुणा अहिंसा, नैतिकता व श्रद्धा की रही है परन्तु बीच में ये सब लुप्त हो गए थे। और बौद्ध धर्म में ये सब व्याप्त था तो इसे अपनाना सरल हो गया। भिक्षुओं का जीवन इसका उदाहरण है कि सादगी और नैतिकता से जीवन कैसे जिया जाता है। उन्होंने इसका उपदेश भी दिया। बौद्ध धर्म का हर एक उपदेश यथार्थवादी था जैसे उन्होंने जीव हत्या पर निषेध किया परन्तु औषधि के रूप में इसके इस्तेमाल की

इजाजत दे दी और भिक्षा में मिले मांस की भी मनाही नहीं थी। बौद्ध धर्म के प्रभाव से प्रभावित होकर चण्ड अशोक भी बौद्ध अशोक हो गया। इतना ही नहीं अशोक ने विदेशों में भी बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार कराया और अपने पुत्र को श्रीलंका धर्म के प्रचार के लिए भेजा।

2. राजनीति पर प्रभाव

भिक्षु संघों की व्यवस्था पर ही गणराज्यों को अनुशासित किया गया। भिक्षु संघों के जैसे ही गणराज्यों की बैठक बुलाई जाती थी। कम आयु के लड़के-लड़कियां बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर संघ में प्रवेश करके बौद्ध धर्म के प्रसार-प्रचार के लिए विदेशों तक जाते थे जिससे विदेशों से सम्पर्क स्थापित होने में सरलता प्राप्त हुई। एवं व्यापारिक संबंधों के साथ-साथ राजनीतिक संबंध प्रगाढ़ हुए। संघों के आधार पर ही गौतम बुद्ध ने बौद्ध गणराज्यों के आदर्श बनाये थे। इसके निर्णय व्यक्ति परक नहीं अपितु संघ के जैसे समूह परक होते थे। धम्म विजय ने शस्त्र विजय की जगह ले ली। करुणा और दया के कारण अब बंदियों को छोड़ दिया जाता था। परन्तु कुछ का विपरित प्रभाव भी हुआ कि कम उम्र में ही युवा पीढ़ी अपने कर्तव्यों से विमुख लगी तो राष्ट्र शक्ति क्षीण होने लगी। अहिंसा के मार्ग पर चलने से सैन्य दृष्टि से भारत दुर्बल हुआ और विदेशी वंशों की स्थापना होने लगी।

3. सामाजिक प्रभाव

बौद्ध धर्म ने समानता और जनतंत्र की भावना को बढ़ावा दिया। जाति-पाति वर्ण भेद को धर्म में कोई स्थान नहीं दिया गया। संघ में सभी को प्रवेश दिया जाता था, जिससे इसको प्रसार मिला एवं बहुत जल्द ही जन समुदाय के बीच लोकप्रिय हो गया। स्त्रियों को भी संघ में प्रवेश के साथ समान दर्जा प्राप्त था। उनकी स्थिति सामाजिक स्तर पर बढ़ी। वो अब समाज में भिक्षुणियों के जैसे घूम सकती थी। भिक्षुणी संघ के जैसे ही नारियों के भी संघ बनने लगे। वहीं अब मांसाहार के स्थान पर शाकाहारी जीवन को महत्त्व दिया जाने लगा। आमोद प्रमोद के स्थान पर धर्म यात्रा को बढ़ावा मिला। हिंसा पर नियंत्रण हुआ। आपसी मेल-जोल बढ़ने से लोग समीप आए और पर्यटन को भी बढ़ावा मिला।

4. शिक्षा और साहित्य पर प्रभाव

बौद्ध धर्म ने भारत के बाहरी देशों से संपर्क स्थापित करने का रास्ता दिया। इसके साहित्य को पढ़ने, जानने समझने, और इसके स्थानों का भ्रमण करने के लिए बहुत से विदेशी भारत आये एवं भारतीय विदेश गए। भारत का दक्षिण-पूर्वी एशिया, दक्षिणी एशिया, मध्य एशिया से संपर्क बौद्ध धर्म के कारण स्थापित हुआ। और कह सकते हैं कि ब्रह्म 'भारत की नींव इसी धर्म के कारण पड़ी थी। इसका साक्षात् उदाहरण बोरोबुर्दु मन्दिर है। शुरुआत में बौद्ध धर्म का प्रचार मगधी भाषा में हुआ। बुद्ध के वचन एवं अनेक साहित्य ग्रंथों का संकलन पाली में हुआ। बाद में महायान सम्प्रदाय के लगभग सभी ग्रन्थ संस्कृत में लिखे गए। पालि और संस्कृत को मिलाकर एक नई भाषा चलाई गई जिसे मिश्रित (लिटपक) संकर-संस्कृत कहते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में बौद्ध विहारों एवं मठों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है खासकर विश्वविद्यालयों की स्थापना बौद्ध धर्म की देन है। नालंदा, ओदन्तपुरी,, तक्षशिला, विक्रमशिला, वल्लभी आदि की स्थापना में बौद्ध धर्म का योगदान है। इनमें दर्शन की शिक्षा देने के साथ- साथ अन्य विषय भी पढ़ाए जाते। इसमें कई आवासीय थे तो विदेशों से भी विद्वान लोग शिक्षा ग्रहण करने आते थे। भारत का प्राचीनतम पुस्तकालय बौद्ध धर्म की देन कहा जा सकता है जो नालंदा विश्वविद्यालय के साथ बना था। यह धर्मगंज नामक जगह पर बना था। इसके तीन खण्ड थे जिन्हें रत्नसागर, रत्नोदधि, रत्नरज्जुक कहा जाता था। यह शायद यह अपने तरह का भारत के साथ- साथ विश्व का पहला पुस्तकालय था। इसमें बौद्ध धर्म के भी अनेकों ग्रंथ थे परन्तु मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा इसे जलाकर नष्ट किया गया। लेकिन उसमें से जो कुछ बचा वो अमूल्य है। भारतीय सभ्यता का अंतरराष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र इसमें काफी उत्कृष्ट कार्य कर रहा है।

5. कला पर प्रभाव

भारतीय कला पर बौद्ध धर्म का अमूल्य योगदान रहा है चाहे मूर्तिकला हो, भवन निर्माण कला या चित्रकला। भारत में पूजी जाने वाली पहली मानव मूर्ति सम्भवतः महात्मा बुद्ध की थी। उसके बाद हिन्दू और अन्य धर्मों में मूर्तियां बननी शुरू हुई। मानव आकृतियों को बहुत ही सजीव बनाया जाता था। वहीं सजावट के लिए पशु-पक्षियों की आकृतियाँ भी बेजोड़ नमूना थी। गोपुरम, स्तम्भ निर्माण और यक्ष- यक्षिणी की भी मूर्तियां बनाई जाने लगीं। इनकी सभी मूर्तियों में आत्मा और कौशल को विशेष स्थान प्राप्त था। स्थापत्य कला में पहाड़ काटकर गुफाओं का निर्माण पहले पहल बौद्ध धर्म में किया गया। अशोक के समय की बराबर और नागार्जुनी गुफाएँ इसका उदाहरण हैं। उसके बाद ये सुन्दर भवनों, धार्मिक स्थलों और आवासीय रूप में बनने लगे। जैसे कार्ले, कन्हेरी नासिक आदि चौत्य हैं। स्तूपों का भी निर्माण होने लगा इनका निर्माण केवल पत्थर से ही नहीं वरन ईंट, मिट्टी, लकड़ी आदि सभी के स्तूप बनाए जाते थे जिनकी प्रतीकात्मकता और प्राकृतिक चित्रण का आज भी जोड़ नहीं है। ईंट से निर्मित सारनाथ का स्तूप आज भी बेमिसाल है। अजन्ता की गुफाओं से चित्रकला की उत्कृष्टता का पता चलता है। वहाँ बने बौद्ध धर्म से सम्बन्धित चित्रों के कौशल और रंगसाजी की अपनी एक गरिमा है। इसे देखकर ऐसा लगता है कि इसने संसार को अपनी आँखों में समेट लिया हो।

6. धर्म पर प्रभाव

बौद्ध धर्म की उत्पत्ति के बाद हिन्दू धर्म में प्रचलित बहुत सी बुराइयाँ खत्म हुई। जैसे ब्राह्मणों का वैदिक धर्म से वर्चस्व समाप्त हुआ एवं सभी को समान दर्जा मिला। रुढ़िवादिता खत्म हुई तो धर्म सरल बनने लगा। यज्ञ, बलि आदि कम होने लगे जिससे जीव हत्या बंद हुई। अब दैवीय शक्ति के स्थान पर व्यक्तिगत शक्ति पर बल दिया गया और बुद्ध की मूर्तियों को साथ- साथ हिन्दू देवी- देवताओं की मूर्तियां भी बनकर पूजने लगी। विहारों का भी निर्माण होने लगा और पुरानी आर्य-पूजा पद्धति को बौद्धों की मूर्तिपूजा द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। आगे चलकर मंदिरों का भी निर्माण विहारों की तर्ज पर होने लगा और बुद्ध को विष्णु के 10 अवतारों में से 9वां अवतार मानकर बौद्ध धर्म को हिन्दू धर्म में समेटने का प्रयास किया गया।

7. भौतिक प्रभाव

जब बौद्ध धर्म प्रकाशित हुआ उस समय व भौतिक विलासपूर्ण जीवन के काफी बढ़ गया था। वैदिक धर्म में ब्राह्मणों का बोलबाला था और वे भोग-विलासी जीवन व्यतीत करते थे। आमजन का जीवन भी ज्यादा अच्छा नहीं था। कोई भी सदाचारी जीवन नहीं व्यतीत कर रहा था। वहीं बौद्ध ने सादगी व सरलता का ज्ञान दिया। मोक्ष को बिना किसी बड़े यज्ञ एवं बलि के भी पाया जा सकता है एवं कम वस्तुएँ संचित करके भी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया जा सकता है ये भी बताया। पहले संघ में कर्जदारों, और गुलामों का प्रवेश वर्जित था परन्तु वक्त के साथ नियमों में बदलाव किए गए। बौद्ध धर्म ने यह शिक्षा भी दी कि यदि कोई गरीब भिक्षुओं को दान देता है तो अगले जन्म में वो धनी पैदा होगा। भिक्षुओं की दृष्टि में वर्ण कर्म और गुणों पर आधारित थे वहीं वैदिक धर्म में वर्ण जन्म पर आधारित था।

जैन धर्म

जैन धर्म को पहले बौद्ध धर्म की एक शाखा के रूप में माना जाता था परन्तु विद्वानों ने खोजों से पता लगाया कि जैन धर्म बौद्ध धर्म की शाखा नहीं बल्कि एक अलग धर्म है। वहीं जैन पुराणों के अध्ययन से पता चलता है कि आदि काल से जैन धर्म भारतीय संस्कृति का हिस्सा रहा है और जैन पुराणों में ये भी वर्णन है कि जब आधुनिक सभ्यता का विकास नहीं हुआ था तब से भारत का इतिहास रहा है। जैन धर्म के संस्थापक महावीर जैन नहीं अपितु पार्श्वनाथ थे और उनसे भी पहले 22 तीर्थंकर रह चुके थे। महावीर जैन धर्म के अंतिम तीर्थंकर थे। उनका जन्म क्षत्रिय वंश में 544 ई० पू० वैशाखी में हुआ था इनके पिता का नाम सिद्धार्थ था। इनके जन्म का नाम वर्धमान था। 30 वर्ष की आयु में बड़े भाई से आज्ञा लेकर वर्धमान

ने गृहत्याग किया। और 12 वर्ष की कठोर तपस्या के बाद 42 वर्ष की आयु में इन्हें कैवल्य प्राप्त हुआ। उसके बाद इन्होंने अपना प्रथम उपदेश राजग्रह में दिया, और शिक्षाओं का प्रसार-प्रचार किया। 468 ई० पू० में लगभग 72 की आयु में महावीर को निर्वाण प्राप्त किया। इन्होंने 30 वर्ष तक जैन धर्म की शिक्षाएं इन्होंने आमजन तक पहुँचाई।

1. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान

जैन धर्म का भारत के प्राचीनतम धर्मों में महत्वपूर्ण स्थान है। जैन पुराणों में वर्णन से पता चलता है कि आदि काल से ही जैन धर्म भारतीय संस्कृति को सुपुष्पित, सुपल्लवित करता रहा है। जैन पुराणों में भारत का इतिहास तब से शुरू होता है, जब हिंसक-अहिंसक पशु स्वच्छंद विचरते थे। और जब भाई-बहन ही पति-पत्नी के रूप में रह लेते थे, जब कोई गाँव व नगर नहीं होते थे एवं वृक्षों से ही खाने व वस्त्रों की पूर्ति हो जाती थी उसे कल्पवृक्ष भी कहा जाता था। मनुष्य विचार शून्य एवं भावनाहीन था तो धर्म-साधना और पुण्य-पाप का ज्ञान तो दूर तक नहीं था। इस तरह ऐसी संस्कृति में सुधार करने का प्रथम श्रेय जैन तीर्थंकरों को धर्म के साधकों को है।

2. असभ्य असंस्कृत लोगों की सभ्यता का पाठ पाना

14 कुलकरों तिरसठ शलाका पुरुषों का आदिकाल के असभ्य एवं असंस्कृत लोगों को सभ्यता का पाठ पढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने अपने-अपने कालों में हिंसक पशुओं से रक्षा के उपाय बताए। बच्चों के पालन-पोषण, पशुपालन, प्रकृति के प्रक्रोपो से रक्षा, निर्माण कार्य, कृषि कर्म, व्यापार उद्योग आदि सिखाए। इससे योग भूमि कर्म भूमि बन गई। इन चौदह कुलकरों के बाद 63 शलाका पुरुष हुए, जिन्होंने धर्मोपदेश, सचरित्र, अच्छे-बुरे का ज्ञान दिया। इनमें ही 24 तीर्थंकर भी शामिल थे। जिन्होंने समय-समय पर अपने विचार एवं ज्ञान के द्वारा मोक्ष का मार्ग दिखाया। भारतीय संस्कृति अवतारवाद में विश्वास रखती है इसलिए ऋषभदेव के जैन तीर्थंकर होने के बाद भी हिन्दुओं-जैनियों में उनकी मान्यता व पूज्यता को लेकर कोई मतभेद नहीं है। जैनियों के लिए वो तीर्थंकर हैं तो वहीं हिंदुओं के लिए साक्षात् विष्णु का अवतार है उनके इश्वरावतार के बारे में शिव पुराण में वर्णन है।

3. व्यापक सांस्कृतिक दृष्टिकोण

भारतीय संस्कृति का दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक और वसुधैव कुटुम्बकम् का है परन्तु जैन धर्म के दृष्टिकोण ने करुणा और उदारता की जिस सीमा को परिलक्षित किया है वह अद्भुत है जैन धर्म के विचार कभी भी संकुचित दृष्टिकोण के नहीं रहे। अपनी इसी उदार नीति के कारण ही जैन धर्म को अन्य धर्मों से संघर्ष करना पड़ा। राष्ट्रीय दृष्टि से देखें तो जैनियों ने पूरे देश को अपनी भक्ति का क्षेत्र बनाया किसी एक भू-भाग को ही नहीं। उनका विस्तार उत्तर में हिमालय से, पूर्व में मगध व पश्चिम में काठियावाड़ तक था। जैन तीर्थंकर तपस्या या प्रचार के लिए कभी देश से बाहर नहीं गए। अकाल के वक्त में भी देश से विमुख नहीं हुए। दक्षिण में भी जैन धर्म के बड़े-बड़े आचार्य हुए। जिन्होंने जैन मंदिरों का निर्माण कराया व ग्रन्थों की रचना की।

4. लोक भावनाओं के विकास में योगदान

संस्कृत भाषा का वैदिक परंपरा में बड़ा आदर रहा है। विभिन्न साहित्यों की रचना भी इसी में की गई। परन्तु विभिन्न भाषाओं के कारण ये लोक प्रचलित नहीं हो पाई और ये दैव भाषा बन कर रही। जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर महावीर स्वामी ने अपने उपदेशों में लोक जन भाषा अर्ध मगधी का प्रयोग किया और इसी में इनके उपदेश संकलित किए गए। जैन आचार्यों ने विभिन्न प्रांतों में उनकी भाषा का उपयोग किया। तमिल साहित्य में जैनियों का शताब्दियों का योगदान रहा है जीवक चिंतामणि इसका उदाहरण है और तिरुवल्लुर का कुराल तमिल साहित्य की उत्तम कृति है। प्राचीन कन्नड साहित्य भी जैन

लेखकों और विद्वानों से शुरू होता है ऐसा कहा जाता है। हेमचंद्र का नाम जैन लेखकों में सर्वश्रेष्ठ था। आधुनिक भाषाओं जैसे हिंदी, गुजराती, महाराष्ट्री आदि भाषाओं में जैन साहित्य मिलता है।

5. कलाकृतियों के क्षेत्र में योगदान

कला के क्षेत्र में जैन धर्म का महत्वपूर्ण योगदान है। जैनियों की कलाकृति में मनुष्य भावना साफ़ परिलक्षित होती है। क्योंकि वो सिर्फ प्रकृति के चित्रण मात्र से संतुष्ट नहीं होते थे। प्राचीन काल में बालकों को इसके लिए विशेष प्रशिक्षण दिया जाता था। दक्षिण भारत के श्रवणबेलगोला तथा कारकल में बाहुबली की विशाल मूर्तियाँ इसका उदाहरण है और सांस्कृतिक धरोहर के रूप में देश को गौरवपूर्ण कर रही हैं। इसके अतिरिक्त एलोरा की गुफाओं में जैन गुफाएँ बहुत सुंदर हैं। इनमें छोटा कैलाश, इन्द्रसभा, जगन्नाथ सभा दर्शनीय है। गोमटेश्वर की मूर्तियाँ भव्य एवं सुंदर हैं। इनमें उनको इतना ध्यानमग्न दर्शाया गया है कि उन्हें पता ही नहीं चला कि कब लताएँ उनके पैरों से लिपट गईं। स्तूप वाला आयागपट, मथुरा का जिनभूति आयागपट भी प्रमुख हैं।

6. अहिंसात्मक भावनाओं की वृद्धि में योगदान

भारतीय सामाजिक जीवन में वैदिक परंपरा एवं श्रमण परम्परा में अहिंसा को लेकर हमेशा से विरोध रहा है। इनमें भी जैन और बौद्ध दोनों के विचार भी इसे लेकर भिन्न रहे हैं। जहाँ बौद्ध धर्म ने जीव हिंसा को अस्वीकार किया परन्तु विशेष परिस्थितियों में माँस के सेवन को स्वीकारा है। वहीं जैन धर्म में 6 प्रकार की अहिंसा को स्वीकारा गया है, प्रथ्वीकाय, जलकाय, वायुकाय, अग्निकाय, वनस्पतिकाय और त्रास जीव (चलने-फिरने वाले) इनके प्रति संयमपूर्ण व्यवहार करने को कहा गया। जिससे मानव-जीव प्रेम भाव बढ़ा व हिंसा को रोक मिली। उनके लिए अस्पताल भी बनाये जाने लगे।

निष्कर्ष

बौद्ध धर्म और जैन धर्म दोनों ने ही भारतीय संस्कृति का पर गहरा प्रभाव छोड़ा। दोनों धर्म उस समय उभरे जब आमजन का जीवन त्रस्त था और उन्हें ऐसे ही सरल धर्म इसकी जरूरत थी। क्योंकि वैदिक धर्म में बहुत-सी त्रुटियाँ आ गयी थी। बौद्ध धर्म का जहाँ अपने सरल नियम, मध्यम मार्ग के कारण देश में ही नहीं वरन विदेशों तक प्रसार हुआ और आज भी उनके अनुयायी बाहर देशों में पाए जाते हैं, क्योंकि महात्मा बुद्ध को कठोर तप से ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था तो उन्होंने इसकी शिक्षा नहीं दी। और सच्चरित्र एवं नैतिक आचरण पर बल दिया। वहीं जैन धर्म ने भी इस पर बल दिया परन्तु महावीर स्वयं कठोर तप व आचरण में विश्वास रखते थे। वो इस मामले में बौद्ध धर्म से आगे थे। वे नहीं चाहते थे कि उनके कारण किसी भी छोटे से छोटे जीव को नुकसान पहुंचे। धूप, वर्षा, सर्दी आदि सभी को बिना किसी के सहायता की सहन करते थे। जैन धर्म में जब कोई प्रवेश करता तो सिर का एक-एक बाल अपनी हाथों से नोचता जिससे उसकी सहनशीलता प्रकट होती है। दोनों ही धर्मों को राज्य संरक्षण भी प्राप्त हुए थे। परन्तु वक्त के साथ जहाँ बौद्ध धर्म ने खुद को हिन्दू धर्म (वैदिक धर्म) से बिल्कुल अलग कर लिया। वहीं जैन धर्म के अनुयायियों ने उनसे संपर्क बनाए रखा। तो परिणाम स्वरूप जहाँ बौद्ध धर्म धीरे-2 देश से लुप्त होता चला गया वहीं जैन धर्म आज भी देश में बड़े पैमाने पर व्याप्त है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सहाय डॉ. शिवस्वरूप प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन, प्रकाशक : रविंद्र जैन मोतीलाल बनारसीदास 41 यू.ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली 110007, फोन : 011-23851985, सप्तम मुद्रण : दिल्ली : 2020.
2. महाजन वी. डी. प्राचीन भारत का इतिहास, संशोधित संस्करण, पुनः मुद्रित, निरजा पब्लिशर्स एवं प्रिंटेर्स (प्रा) लि.

- 54/3/2, जिंदल पैडी कम्पौंड, काशीपुर रोड़ रुद्रपुर -263153 उत्तराखंड द्वारा मुद्रित एवं एस चांद एण्ड कम्पनी लिमिटेड 7361 रामनगर, नई दिल्ली -110055 द्वारा प्रकाशित पुनः मुद्रित 2019.
3. दत्त सर रमेशचंद्र, अनुवादक : गोपालदास बाबू, संपादक : सिंह ओमप्रकाश, प्राचीन भारतीय सभ्यता का इतिहास, प्रकाशक : प्रकाशन संस्थान, 4268-ठ/3, अंसारी रोड़, दरियागंज नयी दिल्ली-110002, आवृत्ति -2023.
 4. शर्मा. एल. पी., प्राचीन भारत, प्रकाशक : लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता अनुपम प्लाजा, ब्लॉक न. 50, संजय प्लेस, आगरा -282002, पुनः मुद्रित 2022
 5. पाण्डे एस. के. प्राचीन भारत, प्रकाशक रू प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स भू जीशान मार्केट, गोविन्दपुर, इलाहाबाद BO: 4, बन्द रोड़ (गौरव क्लीनिक कैम्पस), एलनगंज, इलाहान्गद मो. 9235920425, 9415821496, नवीन संस्करण 2014.
 6. शर्मा रामशरण, प्रारम्भिक भारत का परिचय, प्रकाशक ओररएन्ट ब्लैकस्वॉन प्रा. लिमिटेड, 3-6-752, द्रहमायत नगर, हैदराबाद, 500029 (तेलंगाना) भारत, पुनः मुद्रित संस्करण 2019.
 7. गौतम, पी. एल. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, प्रकाशक कैरियर लांचर इंफ्राट्रक्चर प्रा. लिमिटेड, ए-45 मोहन कॉर्पोरेटिव इंड्रस्टियल एरिया, नियर मोहन एस्टेट मेट्रो स्टेशन, न्यू दिल्ली -110044, द्वितीय संस्करण
 8. मजूमदार रमेशचन्द्र, अनुवादक : गुप्त परमेश्वरीलाल, संपादक : पाठक विशुद्धानंद, प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास इंटरनेशनल, 41, यू० ए० बंगलो रोड़, (बैंक लेन), जवाहर नगर, दिल्ली-11007, नवम पुनः मुद्रण - दिल्ली 2023
 9. शर्मा रामशरण प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, पंद्रहवा संस्करण 2019.



भारतीय लोकनाट्य परम्परा

केतन तिवारी

शोधार्थी; इतिहास विभाग
कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल

सारांश

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र को नाट्य संबंधी सबसे प्राचीन ग्रंथ माना जाता है। बात प्रेक्षागृहों की हो तो छत्तीसगढ़ में स्थित सीतामढ़ी तथा जोगीमारा गुफाएं भारत की सबसे प्राचीन रंगभूमियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। प्राचीन काल में अनेक दरबारी लेखकों ने संस्कृत में नाट्य लेखन को विशेष महत्त्व दिया। मध्यकाल में भले ही नाट्य लेखकों को राजाश्रय प्राप्त नहीं हो पाया, लेकिन भक्ति आंदोलन के फलस्वरूप वैष्णव धर्म से संबंधित नाटकों का संपूर्ण भारतवर्ष में प्रचार-प्रसार हुआ, जिसने जात्रा, रामलीला तथा रासलीला जैसे लोकनाट्यों को लोकप्रिय बनाया। वर्तमान में भारत में धर्म, अनुष्ठान, हास्य-विनोद से संबंधित अनेक लोकनाटकों का प्रचलन है, जो अतीत से एक लंबी यात्रा तय करते हुए यहाँ तक पहुँचे हैं। भारतवर्ष में लोकनाट्यों की समृद्ध परंपरा है तथा प्रत्येक लोकनाट्य अपने में अनोखी विशेषताओं को लिए हुए है।

सार शब्द- लोकनाट्य, रामलीला, अंकिया नट, रासलीला, रम्माण, भवाई, दसकाठिया, जात्रा, करियाला, माच, नौटंकी, पंडवानी, स्वांग, तमाशा, दशावतार, यक्षगान, मुडियेट्ट, कुटियाट्टम।

प्रस्तावना

किसी भी क्षेत्र की लोक कला, उस क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत को अभिव्यक्त करती है। समाज में लोक कलाओं के अनेक रूप विद्यमान होते हैं जैसे- लोक उत्सव, लोकगीत, लोकनृत्य, लोक संगीत, लोक वाद्ययंत्र तथा लोकनाट्य आदि। लोक कलाएं शहरी समाज से परे उस ग्रामीण वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो आज भी अपनी जड़ों से जुड़ा हुआ है तथा अपनी विरासत, परंपरा और संस्कृति को निरंतर आगे बढ़ा रहा है। ऐसी ही एक लोकविधा है— 'लोकनाट्य', जो हमारे ग्रामीण समाज की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है। भारत के विभिन्न राज्य अपने में विविध प्रकार के लोकनाट्यों को समेटे हुए हैं।

नाट्यकला का इतिहास

“ईसा पूर्व तीसरी सदी में भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नाट्य का वर्णन किया है, जिसके अनुसार देवताओं के मनोरंजन के लिए कोई साधन नहीं था, अतः इंद्र के साथ अन्य देवताओं ने ब्रह्मा से मनोविनोद के लिए कोई साधन देने की प्रार्थना की, जो श्रव्य के साथ दृश्य भी हो। इस नाट्यवेद की सृष्टि के लिए ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लिया। इस तरह जो वेद बना उसे 'नाट्यवेद' की संज्ञा दी गई।”¹ “भारत में प्रेक्षागृहों की अवस्थिति अतिप्राचीन है। तीसरी शताब्दी में सीताबैंग और जोगीमारा की गुफाओं में प्रेक्षागृहों की उपलब्धता मिलती है।

पाणिनि के सूत्रों में भी नाटक खेलने वाले 'नटों' का उल्लेख मिलता है तथा पतंजलि के महाभाष्य में भी 'बालिवध' जैसे नाटकों के खेले जाने के विवरण प्राप्त हैं। संस्कृत भाषा में अति प्राचीनकाल से नाटक लिखने की परंपरा मिलती है और भास, अश्वघोष तथा कालिदास के नाटकों के बाद तो संस्कृत में नाटक लिखने की परंपरा में अतिशय वृद्धि हुई। लेकिन मध्यकाल में अभिनय के प्रति उदासीनता और संस्कृत नाटकों को राजाश्रय ना मिलने से संस्कृत में नाटक लिखने की प्रवृत्ति में शिथिलता आई, तो भी इस समयांतर में भक्ति आंदोलन का विकास हुआ। मुख्य रूप से भक्ति संतों द्वारा कृष्ण भक्ति का प्रचार वृहद् स्तर पर होने लगा और इन्होंने कृष्ण की लीलाओं को अभिनय के माध्यम से जनता के सामने प्रस्तुत किया। ये लीलाएं आगे चलकर राम के चरित्र के लिए आधार बनीं।¹²

लोकनाट्यों के ज्ञात अस्तित्व की बात दसवीं शताब्दी से की जाती है और प्रायः इसे संस्कृत नाटकों के पराभव से जोड़ा जाता है। यह अवश्य है कि दसवीं शताब्दी के आसपास लोकनाट्य रूप पूरे भारत में ज्यादा उभरे हुए दिखाई देते हैं और क्रमशः संस्कृत नाटकों का स्थान लेते दिखाई देते हैं। किंतु इससे पूर्व अर्थात् संस्कृत नाटकों के जन्म से पूर्व और संस्कृत नाटकों के समानांतर इनका अस्तित्व रहा है।¹³

प्रमुख भारतीय लोकनाट्य और उनका वर्गीकरण

लोकनाट्य सामान्य जनता के बीच से उद्भवित होते हैं। इसे अनुकरण से मनोरंजन करने की मूल प्रवृत्ति ने जन्म दिया है।¹⁴ भारतीय लोकनाट्य कला को व्यापक रूप से निम्नलिखित तीन वर्गों में बांटा जा सकता है—

1. अनुष्ठानिक नाट्यकला- अंकिया नट, कोला, रामलीला, रासलीला, भूत, रम्माण।

2. मनोरंजन नाट्यकला- भवाई, दसकाठिया, गरोडा, करियाला, माच, नौटंकी, स्वांग, तमाशा, भांड, ओजा-पाली, विल्लू पट्टू आदि।

3. दक्षिण भारतीय नाट्यकला- यक्षगान, बुरा कथा, पगति वेशालू, बायलता, ताल मड्डाले, थेय्यम, कृष्णअट्टम, कुरुवंजी।¹⁵

अंकिया नाट और भाओना

“अंकिया नाट असम की पारंपरिक नाट्य शैली है, इसके प्रस्तुतीकरण को ‘भाओना’ कहा जाता है।¹⁶ “इसका प्रवर्तन शंकरदेव ने किया। अंकिया में मुख्यतः कृष्ण और राम से संबंधित पौराणिक नाटक प्रदर्शित किए जाते हैं। इनमें शंकरदेव लिखित रुक्मिणीहरण, कालीयदमन, केलिगोपाल, पारिजातहरण, सीतास्वयंवर तथा रामविजय; माधवदेव रचित अर्जुनभंजन, रासझूमर तथा भूमिलेटोवा एवं गोपालदेव प्रणीत कृष्णजन्म तथा उन्हें नंद के यहाँ पहुंचाने से संबंधित जन्मयात्रा नाटक प्रमुख हैं।¹⁷

कीर्तनिया

कीर्तनिया मिथिला का धार्मिक नाट्य है। राजवंश की इस परम्परा को दरभंगा के महेश ठाकुर ने विशेष प्रश्रय दिया। इसके मूल में कीर्तन की प्रधानता रही है। नेपाल की दरबारी नाट्य प्रवृत्ति के साथ-साथ मिथिला में कीर्तनिया का प्रदर्शन प्रारंभ हुआ। इसमें कृष्ण एवं शिव संबंधी पौराणिक लीलाओं का प्रदर्शन किया जाता है। इसका मुख्य अभिनेता नायक होता है।¹⁸

रामलीला

रामलीला उत्तर भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय लोकनाट्य रूप है, जिसमें सामान्यतः शारदीय नवरात्रों के 10 दिन श्रीराम के जीवनचरित्र को गीतों, नृत्यों तथा संवादों के माध्यम से अभिनीत किया जाता है। रामलीला में पारसी थिएटर और नौटंकी

का प्रभाव भी साफ दिखाई देता है। “वाल्मीकि रामायण में आए उल्लेखों से एक अनुमान यह भी किया जा सकता है कि इसका विकास राम कथा गायन की परंपरा से हुआ होगा। कपिला वात्सायन ने उल्लेख किया है कि- इस कथा का प्रारंभिक रूप 1000 ईसा पूर्व या 800 ईसा पूर्व तक में मिलता है और निश्चय ही यह समय वाल्मीकि द्वारा रामायण की रचना काल से पहले का है। रामलीला, वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त तुलसीकृत रामचरितमानस पर विशेष रूप से निर्भर है। कुछ विद्वान काशी में तुलसीदास के प्रयत्न से प्रारंभ होने वाली रामलीला से पूर्व की रामकथा पर आधारित नाट्य की एक परंपरा मेवाभगत की रामलीला के रूप में मानते हैं।”⁹

रासलीला

“उत्तर भारत में रासलीला की परम्परा 15वीं शती से चल रही है। जनश्रुति है कि वल्लभाचार्य ने इसका मंगलारंभ किया था। स्वामी विठ्ठलनाथ ने 84 कोस परिक्रमा वाली ब्रजभूमि के स्थल खोज करके करहला, मथुरा के स्वामी घमण्डदेव के साथ भागवतकथा के सहारे रासलीला की विशिष्ट रूपरचना की। रासलीला द्वारा कृष्ण के जीवन की प्रमुख घटनाओं का प्रदर्शन किया जाता है। श्रावण और फाल्गुन माह में ‘रास’ की अधिक घूम रहती है। रासलीला ब्रजभाषा में होती है, किंतु देशभर के अहिन्दीभाषी भक्त-दर्शक भी इसका आनंद लेते हैं। रासलीला के तीन प्रमुख रूप हैं— महारास, अष्टयाम लीला और चैतन्य लीला।”¹⁰ “वर्तमान रासलीला का स्वरूप नारायण भट्ट लिखित ब्रजोत्सव चन्द्रिका तथा प्रेमांकुर नामक ग्रंथों से रूपायित हुआ कहा जाता है। अष्टछाप के कवियों ने अपनी काव्य कृतियों द्वारा इसे विकास का संबल प्रदान किया।”¹¹

रम्माण

उत्तराखंड के जोशीमठ क्षेत्र की पैनखंडा पट्टी के सलूङ-डुंग्रा, डुंग्री-बरोशी और सेलंग गांवों में लोकोत्सव रम्माण का आयोजन किया जाता है। सलूङ-डुंग्रा ग्राम में आयोजित होने वाले रम्माण को यूनेस्को द्वारा विश्व की अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर घोषित किया गया है। स्थानीय देवता भूमि क्षेत्रपाल (भूमियाल) को समर्पित लोकोत्सव रम्माण की शुरुआत वैशाख माह की संक्रांति से हो जाती है। यह उत्सव 13 से 14 दिनों का होता है। लोकोत्सव रम्माण एक वार्षिक अनुष्ठान है, देवयात्रा है, मुखौटा नाट्य का प्रदर्शन है, मेले का स्वरूप है तथा देव पूजा का माध्यम है। अर्थात् यह विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों को अपने में संजोए हुए हैं। मुख्य रूप से श्रीराम के जीवन से संबंधित नाट्यों का मंचन करने के कारण इसे रम्माण के नाम से जाना जाता है।

भवाई

“भवाई गुजरात व राजस्थान की पारंपरिक नाट्य विधा है। प्रारंभ में इसका मंचन जनसाधारण की भक्ति भावना जगाने के उद्देश्य से किया जाता था, बाद में इसमें ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, रूमानी प्रकरण जुड़ने लगे।”¹² “भवाई के आदि प्रवर्तक असाइत ठाकुर कहे जाते हैं। भवाई खेल ‘वेश’ कहलाते हैं। ये मनोरंजन प्रधान होते हैं। ये वेश तरगाणा जाति के लोग करते हैं। समसामयिक जीवन की किसी भी घटना, व्यवहार और प्रसंग को लेकर अपनी प्रत्युत्पन्न मति द्वारा उसे व्यंग्य एवं विनोद के रूप में बड़ी ही रोचक शैली में प्रस्तुत कर सामाजिक कुरीतियों, पाखंडों तथा दुराचारों का भंडाफोड़ करने में ये लोग कमाल हासिल करते हैं। इनके प्रत्येक वेश में नृत्य की प्रधानता तथा संवाद की क्षिप्रता रहती है। विदूषक के रूप में रंगलो की भूमिका विशेष महत्त्व लिये होती है। भवाई में स्त्रियों की भूमिका भी पुरुष ही निभाते हैं। ये पुरुष काँचलिया कहलाते हैं।”¹³

दसकठिया

दसकठिया ओडिशा क्षेत्र में लोकप्रिय लोक नाट्यकला की एक विधा है। इस विधा में, दो कथावाचक होते हैं— ‘गायक’,

जो मुख्य गायक होता है, तथा 'पालिया', जो सहकथा वाचक होता है। कथा वर्णन के साथ-साथ नाटकीय संगीत की जुगलबंदी चलती है, जिसे कठिया नामक एक लकड़ी के बने वाद्य यंत्र की सहायता उत्पन्न किया जाता है। इस विधा का एक सन्निकट रूपांतर है— छैती घोड़ा, जिसमें दो वाद्य यंत्रों ढोल तथा मोहरी तथा तीन कथावाचकों का प्रयोग किया जाता है।¹⁴

गरोडा

यह गुजरात के 'गरोडा' समुदाय की एक लोकप्रिय कला विधा है। इसमें रूमानीयत तथा वीरता की कहानी का वर्णन करने के लिए रंगीन तस्वीरों का प्रयोग किया जाता है।¹⁵

जात्रा

जात्रा बंगाल की सशक्त नाट्यविधा है। इसकी परम्परा लगभग एक हजार वर्ष पुरानी है। प्रारंभ में भक्तलोग मंडलियाँ बना-बनाकर अपने उपास्यदेव की नानाविधि लीलाएँ करते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान जाया करते थे। यह यात्रा ही जात्रा कहलाती थी और यही जात्रा का प्रारम्भिक स्वरूप था। बाद में पूर्वी भारत के कृष्णभक्ति आंदोलन का इस पर प्रभाव पड़ा। ऐतिहासिक विषयों के अतिरिक्त देशभक्ति, राष्ट्रीय आन्दोलन, असहयोग आंदोलन, समाज सुधार, जाति प्रथा, अस्पृश्यता निवारण से संबंधित अनेकानेक विषयों ने जात्रा को प्रभावित किया। बंगाल की प्रथम जात्रा विद्यासुन्दर जात्रा कही जाती है। गीतों की अधिकता होने के कारण जात्राएँ संगीत प्रधान होती हैं।¹⁶

करियाला

करियाला हिमांचल प्रदेश का लोक नाट्य है। जिसमें समसामयिक जीवन से सम्बन्धित छोटे-छोटे स्टाॅग प्रदर्शित किये जाते हैं। ये स्टाॅग अपने निराले ठाठ के लिए प्रसिद्ध हैं। इन स्टाॅगों में सामाजिक विषमताओं तथा ढकोसलों पर करारी चोट की जाती है।¹⁷

माच

“माच मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र की लोक नाट्यकला है। इसका अविर्भाव 17वीं शताब्दी के आस-पास उज्जैन में हुआ था तथा यह पौराणिक कथाओं पर आधारित थी। बाद में, इसके रंगपटल में, रूमानी लोक कथाओं को सम्मिलित का दिया गया। इस विधा की अनोखी विशेषता इसके संवाद होते हैं।”¹⁸ “माच नाट्य शैली के तीन महत्वपूर्ण पात्र रू चोबदार (गदाधारी, जिसकी भूमिका सूत्रधार की है), भिश्ती (जो नाट्यारंभ के पहले मंच पर पानी छिड़कता है) और फर्राश (जो मंच पर कालीन बिछाता है) हैं, जिनके बिना मंचन असंभव है।”¹⁹ “माच के आदि प्रवर्तक गुरु गोपालजी ने सर्वप्रथम राजस्थानी ख्यालों का मालवी रूपान्तर किया और उन्हीं ख्यालों का आधार लेकर लोकशैली में माच ख्याल की रचना की। माच में विदूषक का बड़ा महत्व है। यह प्रायः नायक के साथ रहता है। यह बड़ा चतुर, गुणी और विनोदी होता है।”²⁰

नौटंकी

“नौटंकी की चर्चा अबुल फजल की पुस्तक ‘आइन-ए-अकबरी’ में भी मिलती है।”²¹ “नौटंकी ख्यालों का एक प्रकार है। राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश इसके प्रमुख क्षेत्र हैं। उत्तर प्रदेश में हाथरस तथा कानपुर इन ख्यालों के प्रसिद्ध गढ़ हैं। इनमें हाथरसी शैली की नौटंकी के प्रवर्तक नत्थाराम गौड़ तथा कानपुरी नौटंकी के श्रीकृष्ण पहलवान कहे जाते हैं। मंगलाचरण प्रायः भजन, गजल आदि विभिन्न राग-रागिनियों में गाये जाते हैं।”²² “नौटंकी गीति नाट्य, म्यूजिकल आपेरा, बैले आदि से मिलती-जुलती हुई कला है। इसका प्रचलन फारसी थियेटर के पूर्व 12वीं शती के आसपास माना जाता है। इन कृतियों में प्रायः फारस की कथाओं, भारतीय ऐतिहासिक चरित्रों या वृत्तांतों, धार्मिक आख्यानों, मुस्लिम बादशाहों, शाहजादियों के रंग-रहस्य

भरे अफसानों और लोककथाओं की भरमार है। धार्मिक नौटंकीयों के अतिरिक्त सभी नौटंकियां प्रायः अश्लील होती हैं, अतः भद्र समाज के लिए वर्जित मानी जाती हैं, किन्तु लोक-जीवन के सर्व साधारण व्यक्ति इसके मंचन और दर्शन में विशेष रुचि लेते हैं।”²³

ओजा-पाली

ओजा-पाली असम की एक अनोखी वर्णनात्मक नाट्यकला विधा है जो प्रारम्भिक रूप से मनसा देवी या नाग देवों के पर्व से संबंधित है। इसका कथा वाचन एक लम्बी प्रक्रिया है, जिसके तीन भिन्न भाग होते हैं बनिया खंड, भटियाती खंड तथा देव खंड। ओजा मुख्य कथा वाचक तथा पाली सह-गान के सदस्य होते हैं।²⁴

पोवड

शिवाजी द्वारा अपने शत्रु अफजल खान को मार दिए जाने के बाद शिवाजी की वीरता की प्रशंसा में एक नाटक को रचना की गयी, जिसे बाद में पोवड कहा गया। ये स्वांगसश गीतिकाव्य हैं, जो शौर्य की कहानियां कहते हैं। इन्हें गोधालिस तथा शाहिर के नाम से जाने जाने वाले लोक संगीतकारों के द्वारा गाया जाता है। यह मुख्यतः महाराष्ट्र क्षेत्र में लोकप्रिय है।²⁵

स्वांग/सांग

सांग का अर्थ स्वांग से है। यह हरियाणा का नकलपरक नाट्य है। स्वांग धारण कर किसी के रूप को आरोपित करना ही सांग भरना है। लंबा कथागीत सांग का मुख्य प्रयोजन है। यह कथागीत सवाल-जवाबमय होता है। इसमें पद्य की प्रधानता पाई जाती है। बीच-बीच में गद्यखंड ‘वार्ता’ कहलाता है। सांग के कथानक जनजीवन में प्रचलित लोकप्रिय विषयों से सम्बन्धित होते हैं, परन्तु वर्तमान में सचरित्र कथानकों से लेकर छोटले, फुहड़ तथा अशिष्ट कथानकों का प्रचलन भी धड़ल्ले के साथ हो गया है। प्रो. मोहन मैत्रेय के अनुसार हरियाणा में सांग लेखन की शुरुआत सन् 1750 के आसपास किशनलाल भाट ने की।²⁶

तमाशा

“तमाशा एक लौकिक दृश्य नाटक है, जिसका संबंध मराठी साहित्य, गायन तथा नाट्य विधा की समृद्ध परंपरा से है। इसमें अंगपरिचालन, भाव-भंगिमाएं, हस्तमुद्राएं सामान्यतः काल्पनिक और प्रतीकात्मक होती हैं। तमाशा के मुख्य आकर्षण हैं— लावणी और मुरकी अर्थात् तमाशा की नर्तकी। मुरकी नृत्यकला में पारंगत होती हैं।”²⁷ “तमाशा महाराष्ट्र का प्रसिद्ध नाट्यरूप है। यों इसने भी कभी पेशवाओं के दरबार में सम्मान पाया था, लेकिन कुल मिलाकर ऊंची जातियों और तबकों के लोग हमेशा इसके विरोधी रहे। यह बात अलग है कि रामजोशी (18वीं शताब्दी) और पट्टे बापूराव (20वीं शताब्दी) जैसे कई संभ्रांत और सुशिक्षित लोगों ने समाज का विरोध मोल लेकर इस विधा को अपनाया और आगे बढ़ाया। पट्टे बापूराव की ही प्रेरणा से तमाशा में स्त्री पात्रों की भूमिका के लिए अभिनेत्रियों की प्रतिष्ठा हो सकी। इससे तमाशा का शृंगारिक और कामोत्तेजक पक्ष और प्रबल हुआ। एक खेल में विभिन्न प्रकार की लगभग तीन दर्जन लावणियाँ रहती हैं।”²⁸

विल्लू पट्ट

विल्लू-पट्ट गीत का अर्थ है—धनुर्गीत। यह दक्षिण में लोकप्रिय संगीत नाट्यकला का एक रूप है, जिसमें रामायण की कहानियों को धनुष के आकार के एक वाद्य यंत्र की सहायता से वर्णित किया जाता है।²⁹

भांड-पाथर/भांडपथ

“कश्मीर की भांड पाथर परंपरा नृत्य, संगीत और नाट्यकला का अद्भुत संगम है जिसमें व्यंग्य, मजाक और नकल उतारने हेतु हंसने और हंसाने को प्राथमिकता दी जाती है।”³⁰ “भांड शब्द संस्कृत के भाण का अपभ्रंश है जिसका अर्थ

व्यंग्यात्मक नाटक का एक भेद होता है। पथ्र का अर्थ पात्र से है। इन नाट्यों के लिए जो रंगशाला काम में ली जाती है उसे भांडजेशन कहते हैं। भांडपथ्र में अधिकतर सामाजिक कुरीतियों का भंडाफोड़ रहता है। प्रतीकों के माध्यम से असत् पर सत् की विजय का संदेश देकर समाज में सदाचारी वृत्तियों का विकास करना ही इसका मुख्य लक्ष्य है। इसके प्रवेश नृत्य में बादशाह रंगशाला में आता है। उसके पीछे-पीछे उसके दरबारी, एक जमींदार, सेनापति, सिपाही इत्यादि होते हैं। प्रत्येक पात्र की गति और चलने की भंगिमा उसके चरित्र को व्यक्त करती है।”³¹

दशावतार

“भारत में कोंकण क्षेत्र और गोवा राज्य में दशावतार की प्रस्तुतीकरण की प्रथा अतिविकसित मानी जाती है। भगवान विष्णु के विभिन्न अवतारों का मंच प्रदर्शन होता है दशावतार की अवधारणा को नाटकीय रूप देने का श्रेय जयदेव को जाता है, जिन्होंने विष्णु के 10 अवतारों का ‘गीत गोविंद’ के रूप में वर्णन किया।”³² “महाराष्ट्र में दशावतार का प्रारंभ सर्वप्रथम श्यामजी नाईक काले ने किया। यह बात सन् 1728 के आसपास की है। इसके प्रारंभ में सूत्रधार मंगलदाता गजानन की स्तुति करता है। यह स्तुति ध्रुपद में होती है। इसे सूत्रधार तेज कंठ में गाकर दुगुन-चौगुन तक पहुंचाता है। सभी पात्र अपने मुँह पर बड़े कलात्मक मुखौटे धारण करते हैं।”³³

नकल या भांड

“प्रस्तुतिकर्ता कलाकार को ‘बहुरुपिया’ या ‘नकलची’ (किसी की नकल करने वाला) कहा जाता है। वह सामाजिक या राजनितिक संदेश पहुंचाने के लिए हास्य, मूर्खता, हाजिरजवाबी और परिहास का उपयोग करता है।”³⁴ “नकल उत्तर प्रदेश के नक्काल-भांडों का स्वांग प्रधान नाट्य है। नाना प्रकार की कलात्मक नकलों के लिये नक्काल बड़े पहुंचे हुए होते हैं। कश्मीर, लखनऊ तथा बनारस में उनके खासे घराने हैं। नक्काल लोग बड़े हाजिरजवाबी, चुटकुलेबाज, मसखरे, प्रत्युत्पन्न मतिवाले तथा कई भाषाओं के जानकार होते हैं। महफिल में नकलें पेश करने के पहले ये लोग बारी-बारी से अपने घोड़े दौड़ाते हैं।”³⁵ “घोड़ों के बाद ये नानाप्रकार की नकले निकालते हैं, जो महफिल में कहकहे पैदा कर देती हैं। ऐसा कहा जाता है कि नवाब नासिरुद्दीन हैदर के समय में कश्मीरी नक्काल लखनऊ में आये। नवाब वाजिदअलीशाह के समय में यह कला अपनी पराकाष्ठा तक पहुंच चुकी थी।”³⁶

यक्षगान

“ऐसा माना जाता है कि पहला यक्षगान (यद्यपि यह तेलुगु में था) 16वीं शताब्दी में लिखा गया था, जिसे ‘गंगा गौरी विलास’ कहा गया। इसके बाद ही 17वीं शताब्दी में पुनरुत्थान का आरंभ हुआ और इसी काल में कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में यक्षगान विधा विकसित हुई। यक्षगान के अधिकांश कथानक धार्मिक अथवा पौराणिक ग्रंथों जैसे- महाभारत व रामायण से लिए गए हैं।”³⁷ “यक्षगान के पात्र कुछ वर्गों में बंटे होते हैं। एक वर्ग नायक का है जो संस्कृत नाटक के धीरोदात्त चरित्रों से मिलता जुलता है। कृष्ण, बलराम, राम, अर्जुन और कर्ण इसी वर्ग के चरित्र हैं। दूसरा वर्ग रौद्र मनोदशा वाले भीम, इंद्र या गंधर्व जैसे चरित्रों का है। तीसरे वर्ग में शिकारी, आदिवासी आदि आते हैं। फिर, रावण और कुंभकर्ण जैसे चरित्र हैं जो वीर और साहसिक तो हैं, किंतु विनाशकारी और दुष्ट स्वभाव के हैं। एक अन्य वर्ग रावण के भाई विभीषण या रावण के पुत्र अतिकाम जैसे चरित्रों का है। फिर, एक विशेष वर्ग वीरभद्र, नरसिंह तथा अन्य अवतारों का है, जो पाप के विनाश के लिए आकार ग्रहण करते हैं। इन नायकों और प्रतिनायकों के अतिरिक्त हनुमान, बाली, जंबुवान जैसे चरित्र भी हैं, जिनकी रूपसज्जा और शिरोभूषण विशेष प्रकार के होते हैं। एक वर्ग ऋषियों या गुरुओं जैसे चरित्रों का भी है जो कथकलि के मिन्नक्कु से मिलते जुलते चरित्र हैं।”³⁸

बुरा कथा

बुरा कथा आन्ध्र प्रदेश की एक लोकप्रिय नृत्य-नाट्य परम्परा है। इसका नाम प्रस्तुति के दौरान व्यापक रूप से प्रयुक्त एक तत्वाद्य बुरा के नाम पर रखा गया है। इसकी प्रस्तुति में एक मुख्य कलाकार या कथावाचक तथा दो बन्था या सह-कलाकार होते हैं जो लय प्रदान करते हैं तथा सह-गान में भाग लेते हैं।³⁹

पगाती वेशालू

यह तेलंगाना क्षेत्र तथा आंध्र प्रदेश में लोकप्रिय लोक परम्परा है। यह, मुख्यतः वेशम (छद्म रूप) नामक एक मुख्य चरित्र तथा अन्य सह-चरित्रों के इर्द-गिर्द बुना गया एक भूमिका अभिनीत नाटक होता है।⁴⁰

बायलता/बयलाट

“उत्तर कर्नाटक में यक्षगान की एक शैली बयलाट के नाम से प्रसिद्ध है। बयलाट दो शब्दों से मिलकर बना है— बयालु तथा आट। इसमें बयालु से तात्पर्य खुले हुए स्थान तथा आट से तात्पर्य खेल अथवा लीला-मंच से लगाया जाता है। संक्षेप में बयलाट का अर्थ खुले हुए स्थान में लीला मंच से है।”⁴¹ “बायलता के सामान्यतः पांच प्रकार होते हैं— दसारत, सन्नाता, डोड्डाटा, पारिजात तथा यक्षगान। कहानियां राधा-कृष्ण के प्रेम पर आधारित होती हैं। पारिजात तथा यक्षगान का वर्णन एकल सूत्रधार द्वारा किया जाता है, जबकि अन्य तीन विधाओं को सहगान के रूप में तीन-चार व्यक्तियों के द्वारा एक विदूषक की सहायता से प्रस्तुत किया जाता है।”⁴²

ताल-मड्डाले

ताल एक प्रकार का करताल तथा मड्डाले एक प्रकार का ढोल होता है। इसे सामान्यतः यक्षगान का पूर्वानुगामी समझा जाता है। यह नाटक बैठी हुई अवस्था में तथा बिना किसी पोशाक, नृत्य तथा अभिनय के प्रस्तुत किया जाता है। इसमें कथा वर्णन एक भागवत के द्वारा किया जाता है जिसे अर्थधारियों के एक समूह का सहयोग मिलता है।⁴³

थेय्यम या तैय्यम

“थेय्यम की प्रस्तुति केरल में की जाती है। इसमें एक खुला नाट्यमंच होता है और इसकी प्रस्तुति स्थानीय मन्दिरों के समक्ष की जाती है, ताकि देवताओं के अतिरिक्त पूर्वजों की आत्मा के प्रति भी सम्मान प्रकट किया जा सके। सामान्यतः इनमें वैष्णववाद, शक्तिवाद और शैववाद के प्रसंग होते हैं। कलाकार अलंकृत पगड़ियाँ और रंगबिरंगे परिधान धारण करते हैं।”⁴⁴ “इस लोकनृत्य में प्रेतात्माओं को देवताओं के रूप में दिखाया जाता है। दक्षिण भारत में प्राचीन काल में पूर्वजों व वीरों की आत्माओं की पूजा की प्रथा प्रचलित थी, तैय्यम नृत्य विभिन्न जातियों द्वारा अपने पूर्वजों की ही पूजा के समान है। इस लोकनाट्य में मुखौटों का भी प्रयोग होता है।”⁴⁵

कृष्णाष्टम

कृष्णाष्टम परंपरा का जन्म 17वीं शताब्दी के लगभग मध्य का माना जाता है। केरल के कल्लिकोड़ा क्षेत्र में राजा मनवाड़ ने इस शैली पर विशेष ध्यान दिया। राजा मनवाड़ ने ही कृष्णगीति की भी रचना की।⁴⁶ “कृष्ण-गीति के कृतियों पर आधारित यह आठ दिनों तक चलने वाला एक आनंदोत्सव है। इसमें लगातार आठ रातों तक श्रीकृष्ण की जीवन लीला के वर्णन की प्रस्तुति होती है।”⁴⁷

कुरुवंजी

कुरुवंजी मद्रास के उत्तर नेल्लूर जिले से ओडिसा की दक्षिण सीमा तक फैले हुए आंध्रप्रदेश की नाट्य सम्पदा का एक आरंभिक सूत्र है। 'कुरुवंजी' अर्थात् कुरव नामक आदिवासियों का नृत्य। इसमें पुरुष पात्र का अभाव रहता है। लगभग छह-सात स्त्री पात्र मिलकर इसका अभिनय करते हैं। परम्परागत रूप से कत्तियरकार नाट्य की उद्घोषणा करता है। उद्घोषणा के पूर्व गणेश की वन्दना की जाती है तत्पश्चात् नायिका अपनी सखियों के साथ प्रवेश करती है। वह विरहाकुल होती है। कुराती नामक एक कुरव स्त्री आकर उसकी हस्तरेखा देखती है और उसे विश्वास दिलाती है कि उसे नायक की उपलब्धि अवश्य होगी। इसमें नायक कभी मंच पर नहीं आता। केवल गीतों एवं सखियों और कुरुवंजी के बीच नायिका के संवादों द्वारा उसका परिचय दिया जाता है। हास्य के लिए कभी-कभी सिंगी का पति सिंगा अपनी पत्नी को खोजता हुआ मंच पर आकर श्रोताओं का मनोरंजन करता है।⁴⁸

मुडियेट्ट

“मुडियेट्ट केरल राज्य में संपन्न किया जाने वाला लोक नृत्य और नाटक है। यह देवी काली और दारिका राक्षस के बीच युद्ध की पौराणिक कथा को चित्रित करता है। इसका प्रदर्शन करने वाले अलौकिकता का अनुभव कराने हेतु भारी भरकम श्रृंगार करते हैं तथा मुख पर चित्रकारी कर लंबे मुकुट इत्यादि के साथ भव्य वेशभूषा धारण करते हैं।”⁴⁹ “प्रत्येक वर्ष मुडियेट्ट की प्रथम प्रस्तुति एर्नाकुलम जिले के कलम्बुकाउ मंदिर में की जाती है। तत्पश्चात् यह प्रस्तुतियां एक के बाद एक अन्य मंदिरों में की जाती हैं। पारंपरिक रूप से मुडियेट्ट पर मरार समुदाय का एकाधिकार रहा है। कालांतर में कुरुप समुदाय के लोगों ने भी इस कला में कुशलता प्राप्त कर ली।”⁵⁰

कोडियट्टम/कुटियाट्टम

“कोडियट्टम भारत में नाट्यकला का ऐसा प्राचीनतम रूप है, जो अभी तक प्रचलन में है। यह केरल में 10 वीं शताब्दी से अस्तित्व में है। इस पर केरल की चकयार तथा नांबियार जातियों का परंपरागत विशेषाधिकार है। इस नाटक को संस्कृत, प्राकृत तथा मलयालम में प्रस्तुत किया जाता है। जिसमें मिजावु तथा एडक्का वाद्ययंत्र पार्श्व संगीत प्रदान करते हैं।”⁵¹ “कोडियट्टम के चरित्रों को चाकयार (कलाकार), नांबयार (वादक) तथा नांगयार (स्त्री पात्र) की संज्ञा दी गई है। सूत्रधार और विदूषक भी कोडियट्टम के विशेष पात्र हैं।”⁵² “कुटियाट्टम को प्रारंभ करने का श्रेय केरल के राजा कुलशेखरवर्मन को है जिन्होंने संस्कृत नाटकों को जनसुलभ बनाने हेतु स्थानीय बोली में उनका अनुवाद कर उन्हें प्रदर्शित करने की परम्परा प्रारंभ की। यही परम्परा आगे चलकर कुटियाट्टम के नाम से प्रचलित हुई। नाटक में विदूषक बड़ा महत्वपूर्ण रोल अदा करता है। यह प्रायः नायक के साथ रहता है। नायक जो संवाद संस्कृत में बोलता है, विदूषक उसका मलयालम में छाया अनुवाद करता है।”⁵³

तेरुक्कुत्तु

“तमिलनाडु की पारंपरिक लोकनाट्य कलाओं में तेरुक्कुत्तु का विशेष स्थान है। यह मुख्यतः मारियम्पन (वर्षा की देवी) और द्रौपदी अम्मा के वार्षिक मंदिर-उत्सव के समय प्रस्तुत किया जाता है। एक प्रकार से तेरुक्कुत्तु के माध्यम से संतान की प्राप्ति और अच्छी फसल के लिये दोनों देवियों की भी आराधना की जाती है।”⁵⁴ “तेरु का अर्थ पथ तथा कुत्तु का अर्थ नाटक से है। यह गेय नाटक है, अतः इसका संगीत बड़ा महत्वपूर्ण है। राजसी पात्र छोटे-छोटे रंगबिरंगे शीशों जड़े ऊँचे-ऊँचे मुकुट पहनते हैं। भुज किरीट धारण करते हैं और पात्रों की कोटि और प्रकृति के अनुसार उनके मुख रंगे जाते हैं और आँखों के नीचे गहरे काले, लाल रंगों की बूंदकियाँ और अर्द्धवृत्त बनाये जाते हैं। खलनायकों के मुँह लाल रंग से रंगे जाते हैं और सफेद और काले रंग की बूंदकियाँ होती हैं। भीम आदि पात्रों की मुखसज्जा नीले और काले रंग से होती हैं। नरसिंह बड़ा ही नाटकीय सिंह-मुखौटा पहनते हैं। इसका विदूषक कोमाली कहलाता है।”⁵⁵

विदेशिया

विदेशिया बिहार का लोक नाट्य है। जिसे अखिल भारतीय स्तर पर 'भिखारी ठाकुर' ने प्रतिष्ठित किया। यह भोजपुरी की एक विलक्षण नृत्य नाट्य शैली है। भोजपुरी क्षेत्र के निम्न मध्य वर्ग के व्यक्ति प्रवास पीड़ा से प्रायः संतुष्ट रहे हैं। जीविकोपार्जन के लिए परदेश-प्रस्थान उनकी नियति रही है। प्रवास-पीड़ा से उद्भूत यह विरहकाव्य पूर्वाचल की एक निधि बन गयी है। अंग्रेजों द्वारा कोड़े मार मारकर मारीशस, फिजी आदि देशों में बसाए गए गिरमिटिया मजदूरों की वियोग व्यथा इसमें मुखरित हुई है। धीरे-धीरे इस शैली में अन्यान्य विषयों-प्रसंगों का समावेश हो गया। इसमें प्रायः सोरठी, झूमर, कजरी, पुरबिया और आल्हा छन्दों का प्रयोग होता है।⁵⁶

गवरी

गवरी राजस्थान के उदयपुर, डूंगरपुर तथा बाँसवाड़ा क्षेत्र में बसे भील-गमेतियों का मेरु नाट्य है। इसका कथानक शिव की केन्द्र बनाकर संगठित किया गया है। इसमें शिव का जो रूप मिलता है वह अत्यन्त विचित्र है। शिव तथा भस्मासुर का प्रतीक राईबुड़िया, मोहिनी तथा पार्वती की प्रतिमूर्ति दोनों राइयाँ, कुटकड़िया तथा पाट भोपा; ये पाँचों गवरी के प्रमुख नायक होते हैं, जो माझी कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त नौ पंथ वाले होते हैं। इनमें दो राईबुड़िया के, दो दोनों राइयों के, एक गौरज्या का भोपा, एक मामादेव का भोपा, एक बड़ा खेला, एक छोटा खेला तथा एक मांदल बजाने वाला वारता होता है। गवरी में जो दृश्य अभिनीत किये जाते हैं वे खेल, भाव अथवा सांग के नाम से पुकारे जाते हैं। कुटकड़िया इस नाट्य का सूत्रधार होता है जो प्रत्येक खेल के पूर्व उसकी संक्षिप्त कथा सुनाता हुआ कुटकड़ाई करता है। इसके साथ-साथ एक झामट्या होता है जो झामटे देता हुआ झामटड़े सुनाता रहता है। इससे आने वाले खेल तथा उसको कथा की जानकारी दर्शकों को पहले से हो जाती है।⁵⁷

गोंधल/गोंधुल

गोंधल की प्रथा धर्ममूलक है। नामदेव के पूर्व से ही यह प्रथा चली आ रही है। क्योंकि नामदेव द्वारा रचित एक स्वतंत्र अभंग श्लोकांश के नाम से प्राप्त है। गोंधल प्रथा महाराष्ट्र में अनुष्ठानिक महत्त्व रखती है। इस अनुष्ठान को यथाविधि सम्पन्न करनेवाले लोगो की जाति ही गोंधली नाम से विख्यात है। गोंधली पहले पाँच देवी-देवताओं की स्तुति करता है, तत्पश्चात् किसी कथा-प्रसंग को आरम्भ कर किसी चरित्र का बखान करता है। शब्दार्थ की दृष्टि से गोंधल का तात्पर्य गड़बड़ी अथवा अव्यवस्था से है। गोंधली गीत गाते समय अम्बा के समक्ष नृत्य करता है। इस आयोजना के साथ नकल और स्वांग भी जोड़े जाते हैं। कदाचित् इसीलिये नाटक के मिले-जुले रूप को देख कर यह धर्मप्रधान अनुष्ठानिक मनोरंजन 'गोंधल' कहा जाने लगा हो। गोंधल में प्रकार संगीत एवं धर्म के बहाने नाट्य तत्त्वों की अभिव्यंजना होती है। गोंधल के स्वांग मनोरंजक होते हैं।⁵⁸

चविट्टु नाटकम्

चविट्टु केरल में प्रचलित ईसाई समाज का एकमात्र नाट्य है। यह मुख्यतः क्रिसमस व ईस्टर पर प्रदर्शित किया जाता है। इसका प्रचलन मालाबार के हिन्दू नाटकों की स्पर्द्धा में पुर्तगाली शासकों ने किया। 17वीं-18वीं शताब्दी में मालाबार के तट पर पुर्तगाल से आये ईसाइयों ने इस शैली में ईसाई मत से संबंधित वीरगाथाओं को प्रदर्शित किया। चविट्टु का अर्थ पाँव अथवा कदम होता है। इसमें चेण्डा (नगाड़े) तथा एलतालम (मजीरे) की तालों के साथ अभिनेताओं के कदम समान रूप से पड़ते रहते हैं। अभिनेताओं के तालानुगत कदमों में ही इस नाटक का समस्त सौंदर्य निहित समझा जाता है। अभिनय की दृष्टि से इसमें कई प्रकार की कलाबाजियाँ दिखाई जाती हैं। इसमें भाग लेने वाले को नानाप्रकार के व्यायाम तथा अस्त्रशस्त्रों

का पूर्वाभ्यास कराया जाता है। यह 80 मुख्य पात्रों द्वारा 15 दिन तक खेला जाने वाला एक लम्बा नाटक है। यह नाटक इटली के शार्लमैन क्लासिकों एवं एरिओस्टो के ओरलेण्डो फ्यूअरिओरो पर आधारित है।⁵⁹

जट-जटिन

जट-जटिन मुख्यतः उत्तर बिहार का महिला पात्री नाट्य है। इसमें महिलाएँ ही स्वाँग धारण करती हैं। गायकी भी महिलाओं द्वारा प्रस्तुत की जाती है और नृत्य अदायगी भी महिलाओं की अपनी वैशिष्ट्यमूलक होती है। जट-जटिन में प्रधानतः दो दल होते हैं। एक जट यानी पति का तथा दूसरा जटिन यानी पत्नी का। कहीं-कहीं यह जाट-जाटनी के नाम से भी लोकप्रिय है। मंगनी, विवाह, गौना, नवदम्पति तथा वियोग इसके कथानक के मुख्य प्रसंग हैं। पति, पत्नी, माता, पिता, सास, श्वसुर, सखी, सहेलियाँ, भाई, भौजाई, ननद आदि पात्रों की अवतारणा ने जट-जटिन को एक सुन्दरतम पारिवारिक धरातल प्रदान किया है। मिथिला तथा भोजपुरी क्षेत्र में भी इसका प्रचलन रहा है।⁶⁰

दोड्डाता

कर्नाटक का दोड्डाता एक पौराणिक नाट्य है। किरातार्जुनीय इसका मुख्य कथा आधार है। इसका मंच अत्यन्त सादा होता है। एक चौकी पर सामान्य चंदोवा तानकर इसका प्रदर्शन दे दिया जाता है। प्रारंभ में गणपति-पूजन होता है तदनन्तर सरस्वती की आराधना। मंडली का मुखिया भागवन्तर होता है। नृत्य, वाद्य वादन तथा सांस्कृतिक परिवेश की दृष्टि से दोड्डाता आदिम जाति तथा आर्य संस्कृति से प्रभावित हुआ परिलक्षित होता है।⁶¹

नकाब

नकाब बंगाल के मैमनसिंह जिले का मुख्य मनोरंजन है। नृत्य की प्रधानता के कारण यह विधा नकाब नृत्य के नाम से अधिक चर्चित रही है। बड़ई और रंगेरे इसके प्रमुख सहयोगी होते हैं। इसमें अवतारों से सम्बन्धित जो स्वरूप धारण किये जाते हैं, उनमें शिव स्वरूप का अधिक जोर है। इसका अभिनेता कमर में लाल वस्त्र, गले में माला तथा सिर पर जटाजूट धारण करता है। इसका एक और हास्य प्रधान रूप भी मिलता है जो बूढ़ा-बूढ़ी के नाम से जाना जाता है।⁶²

बिदापत

उत्तर बिहार के आंचलिक नाट्यों में बिदापत का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अभिनेता प्रायः हरिजन वर्ग के श्रमजीवी होते हैं। इसका नायक मूलगाइन कहलाता है। बिदापत शब्द विद्यापति का अपभ्रंश है। इसी शब्द से इस शैली का सूत्रपात हुआ। प्रारंभ में इसमें विद्यापति के लिखे नाटक प्रदर्शित किये जाते थे। आज भी सभी नाटकों में प्रारंभिक भगवती वंदना विद्यापति की ही रचित होती है। पारिजातहरण इस विधा का मुख्य नाटक है। यद्यपि यह विद्यापति का लिखा नहीं है परन्तु इसमें जब राधिका और उनकी सखियों का रास दिखाया जाता है तब जो पद गाये जाते हैं वे विद्यापति रचित ही हैं। इसका अभिनय स्थल रंगस्थली कहलाता है। प्रत्येक नाट्य-प्रदर्शन के पूर्व भगवान की नृत्यलीला मांगलिक समझी जाती है। बिदापत में विदूषक का बड़ा महत्व है। यह बेसिर पैर की बातें करनेवाला बेजोड़ हँसैया होता है जो अपने कला-करिश्मों से दर्शकों में खलबली मचा देता है।⁶³

भागवतमेल

16वीं सदी के अंत में अच्युत्तपा नायक नामक तंजौर नरेश ने तमिलनाडु के मेलातूर नामक गाँव में 501 ब्राह्मण परिवारों को कुचिपुडि क्षेत्र से लाकर बसाया। इन भागवतालु ब्राह्मणों ने भागवत पद्धति से भाषा नाटकों को प्रस्तुत किया। इन्हीं नाटकों को भागवतमेल के नाम से जाना जाता है। नायक-वंश ने पौराणिक नाटकों के साथ-साथ कतिपय जीवनवृत्त से सम्बन्धित

नाटकों का भी भागवतमेल के लिए प्रणयन किया। कोणांगी, भागवतमेल का विदूषक होता है। अभिनेता द्वारा गाए जाने वाले गीत श्दरवुश कहे जाते हैं। इन 'दरवुओं' में विभिन्न रागों का संयोजन किया जाता है। एक चरित्र के लिए एक ही राग का विधान होता है। श्रहलादचरित में हिरण्यकश्यप के प्रवेश का 'दरवु' भैरवी राग में गाया जाता है।⁶⁴

उपरोक्त के अतिरिक्त अन्य लोकनाट्य भी भारत में प्रचलित हैं। जिसमें बंगाल का गंभीरा (जिसमें मुखौटों का प्रयोग होता है), महाराष्ट्र का ललित (जो स्वांग प्रधान लोकनाट्य है), ब्रज का भगत (धार्मिक, ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथा-आख्यानों पर आधारित तथा हास्यरस से परिपूर्ण), कुचिपुड़ी क्षेत्र का भामकलापम (कृष्ण के सत्यभामा को छोड़कर रुक्मणी के पास जाने पर आधारित), उत्तराखंड की सोर घाटी का हिलजात्रा (कृषि और रोपाई पर आधारित मुखौटा नाट्य) आदि प्रमुख हैं।

निष्कर्ष और सुझाव

भारतीय लोकनाट्यों के अध्ययन से पता चलता है कि इनमें से कुछ लोकनाट्य जैसे- रामलीला, रासलीला, अंकिया नट आदि धार्मिक प्रकृति के हैं तथा अनुष्ठान के एक अभिन्न अंग के रूप में अभिनीत किए जाते हैं। वहीं कुछ अन्य लोकनाट्य जैसे- स्वांग, करियाला, तमाशा, नौटंकी आदि का मुख्य उद्देश्य दर्शकों का मनोरंजन करना है। तथा दक्षिण भारतीय लोकनाट्य शास्त्रीय नियमों का पालन करते हैं। यूनेस्को द्वारा भी भारतीय लोकनाट्यों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलायी गई है तथा अब तक कुल चार भारतीय लोकनाट्यों- कोडियट्टम (संस्कृत नाट्यकला), रामलीला, रम्माण तथा मुडियेट्टू को यूनेस्को ने अपनी अमूर्त सांस्कृतिक धरोहरों की सूची में शामिल किया है, जो यह दिखाता है कि भारत में लोकनाट्यों की समृद्ध परंपरा है तथा इनके संरक्षण की अत्यंत आवश्यकता है। लोकनाट्यों के संरक्षण हेतु लोक कलाकारों को प्रोत्साहन देने की भी आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. बाबुलकर, मोहनलाल; लोकवार्ता शोध पत्रिका; लोकवार्ता शोध संस्थान, रॉबर्ट्सगंज; जनवरी-मार्च 1996; पृष्ठ संख्या 33
2. वही; पृष्ठ संख्या 33-34
3. त्रिपाठी, डॉ वशिष्ठनारायण; भारतीय लोकनाट्य; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; 2001; पृष्ठ संख्या 9
4. भट्ट, दिवा; उत्तराखंड की सांस्कृतिक अभिव्यक्तियां; प्रकाश पब्लिकेशन, अल्मोड़ा; 2012; पृष्ठ संख्या 146
5. सिंघानिया, नितिन; भारतीय कला एवं संस्कृति द्वितीय संस्करण, मैकग्रा हिल एजुकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, चेन्नई; 2018; पृष्ठ संख्या 7.4
6. <https://ccrtindia.gov.in/wp.content/uploads/2021/02/Traditional.Theatre.Forms.of.India.Part.1.pdf>
7. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 294-295
8. वही; पृष्ठ संख्या 295
9. त्रिपाठी, डॉ वशिष्ठनारायण; भारतीय लोकनाट्य; 2001, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; पृष्ठ संख्या 36,42
10. दीक्षित, सूर्यप्रसाद; संस्कृति पत्रिका; सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश; जून-जुलाई 1993; पृष्ठ संख्या 13-14
11. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 309-310
12. <https://ccrtindia.gov.in/wp.content/uploads/2021/02/Traditional.Theatre.Forms.of.India.Part.1.pdf>
13. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 306-307
14. सिंघानिया, नितिन; भारतीय कला एवं संस्कृति; मैकग्रा हिल एजुकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, चेन्नई; 2018; पृष्ठ संख्या 7.7

15. वही; पृष्ठ संख्या 7.7
16. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 299
17. वही; पृष्ठ संख्या 295
18. सिंघानिया, नितिन; भारतीय कला एवं संस्कृति; मैकग्रा हिल एजुकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, चेन्नई; 2018; पृष्ठ संख्या 7.8
19. <https://ccrtindia.gov.in/wp.content/uploads/2021/02/Traditional.Theatre.Forms.of.India.Part.1.pdf>
20. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 307-309
21. सिंघानिया, नितिन; भारतीय कला एवं संस्कृति; मैकग्रा हिल एजुकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, चेन्नई; 2018; पृष्ठ संख्या 7.8
22. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 303-304
23. दीक्षित, सूर्यप्रसाद; संस्कृति पत्रिका; सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश; जून-जुलाई 1993; पृष्ठ संख्या 16-20
24. सिंघानिया, नितिन; भारतीय कला एवं संस्कृति; मैकग्रा हिल एजुकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, चेन्नई; 2018; पृष्ठ संख्या 7.8
25. वही; पृष्ठ संख्या 7.8
26. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 311-312
27. <https://ccrtindia.gov.in/wp.content/uploads/2021/02/TraditionalTheatreFormsofIndiaPart.2.pdf>
28. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 300
29. सिंघानिया, नितिन; भारतीय कला एवं संस्कृति; मैकग्रा हिल एजुकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, चेन्नई; 2018; पृष्ठ संख्या 7.9
30. <https://ccrtindia.gov.in/wp.content/uploads/2021/02/Traditional.Theatre.Forms.of.India.Part.1.pdf>
31. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 307
32. <https://ccrtindia.gov.in/wp.content/uploads/2021/02/TraditionalTheatreFormsofIndiaPart.2.pdf>
33. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 301-302
34. सिंघानिया, नितिन; भारतीय कला एवं संस्कृति; मैकग्रा हिल एजुकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, चेन्नई; 2018; पृष्ठ संख्या 7.9
35. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 302
36. वही; पृष्ठ संख्या 303
37. <https://ccrtindia.gov.in/wp.content/uploads/2021/02/TraditionalTheatreFormsofIndiaPart.2.pdf>
38. वात्स्यायन, कपिला; पारंपरिक भारतीय रंगमंच: अनंत धाराएं; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली; 2015; पृष्ठ संख्या 34-35
39. सिंघानिया, नितिन; भारतीय कला एवं संस्कृति; मैकग्रा हिल एजुकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, चेन्नई; 2018; पृष्ठ संख्या 7.10
40. वही; पृष्ठ संख्या 7.10
41. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 304
42. सिंघानिया, नितिन; भारतीय कला एवं संस्कृति; मैकग्रा हिल एजुकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, चेन्नई; 2018; पृष्ठ संख्या 7.10
43. वही; पृष्ठ संख्या 7.10
44. वही; पृष्ठ संख्या 7.11
45. <https://ccrtindia.gov.in/wp.content/uploads/2021/02/TraditionalTheatreFormsofIndiaPart.2.pdf>

46. <https://ccrtindia.gov.in/wp.content/uploads/2021/02/TraditionalTheatreFormsofIndiaPart.2.pdf>
47. सिंघानिया, नितिन; भारतीय कला एवं संस्कृति; मैकग्रा हिल एजुकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, चेन्नई; 2018; पृष्ठ संख्या 7.11
48. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 296
49. सिंघानिया, नितिन; भारतीय कला एवं संस्कृति; 2018, मैकग्रा हिल एजुकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, चेन्नई, पृष्ठ संख्या 11.4
50. <https://ccrtindia.gov.in/wp.content/uploads/2021/02/TraditionalTheatreFormsofIndiaPart.2.pdf>
51. सिंघानिया, नितिन; भारतीय कला एवं संस्कृति; 2018, मैकग्रा हिल एजुकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, चेन्नई, पृष्ठ संख्या 7.4
52. <https://ccrtindia.gov.in/wp.content/uploads/2021/02/TraditionalTheatreFormsofIndiaPart.2.pdf>
53. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 296
54. <https://ccrtindia.gov.in/wp.content/uploads/2021/02/TraditionalTheatreFormsofIndiaPart.2.pdf>
55. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 301
56. दीक्षित, सूर्यप्रसाद; संस्कृति पत्रिका; सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश; जून-जुलाई 1993; पृष्ठ संख्या 21
57. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 246
58. परमार, श्याम; लोकधर्मी नाट्य परंपरा; हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी; 1959; पृष्ठ संख्या 68
59. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 297
60. वही; पृष्ठ संख्या 299
61. वही; पृष्ठ संख्या 302
62. भानावत, डॉ. महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; 2014; पृष्ठ संख्या 303
63. वही; पृष्ठ संख्या 305
64. त्रिपाठी, डॉ वशिष्ठ नारायण; भारतीय लोकनाट्य; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; 2001, पृष्ठ संख्या 88-89



वैदिक संस्कृति : प्राचीन जड़ों से आधुनिक प्रभाव तक

प्रीति भारती

लक्ष्मीबाई कॉलेज,

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

शोध सारांश

वैदिक संस्कृति भारतीय सभ्यता की जड़ों में गहराई से निहित एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक एवं बौद्धिक परंपरा है, जिसका प्रभाव आधुनिक समाज तक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यह शोध पत्र वैदिक संस्कृति के प्रमुख तत्वों-धार्मिक मान्यताओं, दार्शनिक दृष्टिकोणों, सामाजिक संरचनाओं, तथा वैज्ञानिक एवं साहित्यिक योगदानों का विश्लेषण करता है।

शोध में वैदिक धर्मग्रंथों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) के माध्यम से धर्म, कर्म, योग, तथा अध्यात्म पर चर्चा की गई है, जो आज भी भारतीय दर्शन, आचार-विचार एवं जीवनशैली को प्रभावित करते हैं। वैदिक संस्कृति में निहित गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, और धातु विज्ञान जैसे वैज्ञानिक दृष्टिकोणों की भी समीक्षा की गई है, जिनका प्रभाव आधुनिक विज्ञान एवं चिकित्सा पद्धतियों में देखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त, यह अध्ययन वैदिक समाज की संरचना, शिक्षा प्रणाली, तथा पर्यावरणीय दृष्टिकोण पर भी प्रकाश डालता है, जो सतत विकास और नैतिक मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा के संदर्भ में आज भी प्रासंगिक हैं। निष्कर्षतः, वैदिक संस्कृति न केवल भारत की सांस्कृतिक पहचान का मूल आधार है, बल्कि इसकी शिक्षाएँ और परंपराएँ आधुनिक विश्व के सामाजिक, नैतिक एवं वैज्ञानिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

मुख्य शब्द :- वैदिक संस्कृति, वेद, धर्म, दर्शन, विज्ञान, समाज, आधुनिक प्रभाव।

प्रस्तावना

वेद भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम ग्रन्थ माने जाते हैं। वेद ज्ञान के अथाह भण्डार हैं। वेदों का ज्ञान एवं आचरण जीवन को सुसंबद्ध एवं नैतिक रूप से जीने की महत्वपूर्ण कुंजी है। इस प्रकार वेद हमें एक सफल तथा वास्तविक जीवन जीने हेतु मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली पूर्णतया वैदिक ज्ञान आधारित शिक्षा प्रणाली थी। यह न केवल हमें कोरा ज्ञान प्रदान करती थी। अपितु जीवन को अत्यधिक व्यवहारिक एवं सकारात्मक मनोभावों से युक्त कर वास्तविक लक्ष्य का मार्ग दर्शन करती थी। वस्तुतः मानव जीवन के दो पक्ष हैं बाह्य पक्ष एवं आन्तरिक पक्ष। बाह्य पक्ष भौतिक जीवन से सम्बन्धित होता है। भौतिक सुख ही इस पक्ष का ध्येय होता है। आन्तरिक पक्ष का भौतिक साधनों या सुखों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वस्तुतः जीवन का आन्तरिक पक्ष आध्यात्मिक पक्ष कहा जाता है जिसका लक्ष्य आत्मोत्सर्ग करना होता है। आत्मोत्सर्ग की अवस्था नैतिक मूल्यों एवं नीतिनिष्ठ आचरणों द्वारा आत्म अवस्थित होकर व्यष्टि चेतना का समष्टि चेतना के प्रति आह्वान है। इस विचार की ध्वनि वैदिक साहित्य में 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'¹ के रूप में दिखाई पड़ती है।

वर्तमान की जड़ें अतीत में विद्यमान होती हैं। भारत का अतीत गौरवमय रहा है। इससे वर्तमान आलोकित हुआ है और भविष्य के प्रति आस्था उपजी है। भारत का अतीत सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक कारकों से उतना प्रभावित नहीं रहा जितना कि यहाँ की आध्यात्मिकता ने उसे प्रभावित किया है। यहाँ पर मानव का जीवन 'सर्व भूते हिता रता' रहा है। यहाँ की संस्कृति ने विश्व-बन्धुत्व तथा अति मानवता का स्वप्न देखा है, स्वप्न को साकार किया है। प्राचीनकाल में आध्यात्मिकता से ही राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक धारों प्रवाहित हुई हैं। सत्याचरण, प्रेम, अहिंसा आदि पर ही सामाजिक जीवन की नींव रखी गई थी। सहयोग और सह अस्तित्व उसका प्राण था। व्यक्ति समाज की आधारभूत इकाई था। जीवन का निश्चित उद्देश्य था, निश्चित आदर्श थे, भौतिक साधनों का उपयोग इन उद्देश्यों तथा आदर्शों की पूर्ति के लिए किया जाता था। प्राचीनकाल में शिक्षा इस सिद्धान्त पर आधारित थी कि अनादिकाल से भारत में शिक्षा स्वयं के लिए नहीं अपितु धर्म के लिए प्राप्त की जाती थी। यह मुक्ति और आत्मबोध का साधन थी और जीवन का महान् लक्ष्य मुक्ति था।

वैदिक संस्कृति की विशेषताएँ

कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था :- ऋग्वेद में वर्ण व्यवस्था के कतिपय संकेत मिलते हैं। पुरुष सूक्त के एक मन्त्र के अनुसार परमतत्त्व रूपी पुरुष के शरीर से चार तत्व उत्पन्न हुए - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। यह क्रमपूर्वक चार व्यवस्थाओं के प्रतीक माने जाते हैं, उन्हें ही वर्ण बताया गया है। ऋग्वेद काल में यह वर्ण व्यवस्था कर्म पर आधारित थी। व्यवसाय अथवा कर्म की प्रकृति पर ही वर्ण का निर्धारण होता था जैसे अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ आदि से सम्बन्धित वर्ण ब्राह्मण कहलाता था। युद्ध, शासन व्यवस्था में संयुक्त वर्ण क्षत्रिय, कृषि व्यापार आदि से सम्बन्धित वर्ण वैश्य और सेवा करने में निपुण वर्ण शूद्र कहलाता था। इस प्रकार के समाज में किसी भी प्रकार की जटिलता देखने को नहीं मिलती है। कर्म परिवर्तन के आधार पर किसी भी वर्ण में व्यक्ति अन्य वर्ण में जा सकता था। मानव कल्याण के वैश्विक दृष्टिकोण का विचार प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति में सदैव व सर्वाधिक रहा है। “वसुधैव कुटुम्बकम्” और “सर्वे भवन्तु सुखिनः”² जैसी मानवतावादी विचारधाराओं का प्रादुर्भाव सबसे पहले भारत में ही हुआ जो कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का केन्द्र है।

लोकमंगल और समरसता का भाव :- वर्तमान में समाज के स्वार्थी, स्वकेन्द्रित होने की समस्या तथा अपने व पराए का भेद समाप्त हो इसके लिए वैदिक ऋषियों ने ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की अवधारणा का प्रतिपादन किया जिसके अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी ही परिवार के रूप में परिभाषिता की गयी है।

अयं निजः परोवेतिगणना लघु चेतसाम्।

उदारचरित्रानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्।¹

अर्थात् यह अपना है तथा यह दूसरे का ऐसा विचार तुच्छ विचारधारा वाले लोग करते हैं। उदारचरित्र लोगों के लिए तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही एक परिवार के समान है। उल्लेखनीय है कि वर्तमान वैश्विक परिदृश्य जिसे भूमण्डलीकरण का युग कहा जा रहा है, के लिए ऐसी भावना का विकास एक समरसतापूर्ण भविष्य को उद्घाटित करता है।

पर्यावरण चेतना

आज के समय में पर्यावरणीय संकट एक अति विनाशकारी संकट के रूप में सामने आया है। वस्तुतः इस संकट से तो जीव सभ्यता के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न खड़ा हो गया है। आधुनिक काल का प्रारम्भ औद्योगीकरण व विज्ञानीकरण के साथ हुआ। इस समय प्रकृति के विदोहन में कई गुना तक वृद्धि हो गयी। प्राकृतिक घटक जो अब तक मात्र सुरक्षा एवं सम्बल की तरह देखे जाते थे, अब वे संसाधन के रूप में सम्पदा के स्रोत दिखने लगे क्योंकि विज्ञान इनके विदोहन के लिए नए संसाधन जुटा देता है तथा उद्योग इन्हें संशोधित कर सम्पदा का रूप दे देता है।

इन सब प्रक्रियाओं ने पर्यावरण प्रदूषण को जन्म दिया। विज्ञान के माध्यम से मानव ने वस्तुजगत के रूपान्तरण की जो प्रविधि विकसित की उससे न केवल वस्तु का रासायनिक परिवर्तन हुआ अपितु रासायनिक उच्छिष्ट के रूप में एक नया

संकट भी खड़ा हो रहा है। सही मायने में भौतिक, जैविक एवं रासायनिक स्तर पर इतना तीव्र परिवर्तन होने से समस्त पृथ्वी ही भौगोलिक पारिस्थितिकीय असन्तुलन से ग्रस्त हो जाती है। इन सब बातों के परिप्रेक्ष्य में यह महत्वपूर्ण है कि हम मानव तथा प्रकृति के मध्य सम्बन्धों की स्थिति को जाने। वैदिक वाङ्मय का सम्पूर्ण वातावरण ही प्रकृति से आप्लावित है। 14 वेदों के रचयिता, मन्त्रद्रष्टा ऋषियों का परिवेश, परिधान, भोजन, दिनचर्या इत्यादि सभी प्राकृतिक हैं। उनके देवता भी प्राकृतिक हैं। उनके लिए पृथ्वी माता हैं, पर्जन्य पिता हैं, सूर्य आत्मा हैं, जल व वनस्पतियाँ मित्र हैं।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

पर्जन्यः पिता स उ न पिपतु।। - अथर्ववेद 12/1/2

यह साधारण मन्त्र ऋषियों की प्रकृति के प्रति गहरी आत्मीयता को प्रकट करता है। अधिकांश प्रकृतिकपरक मन्त्र ऐसे ही सरल भावों से भरे हैं जिनमें प्रकृति के प्रति समर्पण एवं उससे समन्वय का संगीत स्वर गुंजित होता रहता है। वैदिक वाङ्मय में प्रकृति के प्रति प्रतिबद्धता को हम सर्वाधिक सशक्त रूप में 'ऋत' के सिद्धान्त में पा सकते हैं। वैदिक युग में ऋत, सत्य का ऐसा रूप है जो नैतिक एवं प्राकृतिक जगत में समानान्तर रूप में प्रवाहित है। मानव की सत्यनिष्ठा प्रज्ञा को 'ऋतम्भरा' कहा गया है तथा प्रकृतिचक्र की विधायिका विभाजिका को 'ऋतु' की संज्ञा दी गयी है।¹⁵ यहाँ पर आकर नैतिक व प्राकृतिक जीवन में पूर्ण तादात्म्य हो जाता है।

शिक्षा व्यवस्था

वेद कालीन समाज में शिक्षा की व्यवस्था सुव्यवस्थित रूप में विद्यमान थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की संज्ञा उपनयन संस्कार के पश्चात द्विज होती थी, जो उपनयन संस्कार के पश्चात अंतेवासी बनकर गुरुकुल में रहकर विधिवत शिक्षा ग्रहण करने के अधिकारी होते थे। इससे पूर्व उन्हें घर में ही बड़ों के द्वारा शिक्षा दी जाती थी। स्त्रियों की शिक्षा ग्रहण करने की अधिकारी होती थी घोषा, लोपामुद्रा, अपाला, गार्गी इत्यादि इसका प्रमाण हैं। तत्कालीन स्त्रियाँ विधिवत रूप से घुड़ सवारी, नृत्य, पाकविद्या, गायन इत्यादि की शिक्षा ग्रहण करने की अधिकारी होती थी। किसी भी समाज की संपन्नता के स्तर का आकलन तत्कालीन समाज में विद्यमान नैतिकता का स्तर, स्त्रियों की दशा, शिक्षा का स्तर इत्यादि आधार पर ही सटीक तौर पर किया जा सकता है। इस रूप में यदि देखा जाए तो वैदिक संस्कृति में यह सभी प्रकार की व्यवस्थाएं अत्यधिक उन्नत अवस्था में विद्यमान थी अर्थात् वेद कालीन संस्कृति एक समृद्ध संस्कृति का सूचक है।

अन्धतमः प्रविशन्ति येद्विद्यामुपासते।

तो भूयडव ते तमो ये विद्ययारता।।¹⁶

अर्थात् वे अन्धकार में प्रवेश करते हैं जो मात्र विद्या की उपासना करते हैं। वे एकांगी होते हैं जो मात्र विद्या में रत रहे हैं। अतः भौतिक, आध्यात्मिक दोनों विद्याओं की उपासना की गई थी।

“गुरुकुलों में ऋषियों द्वारा पाठ को कण्ठस्थ कराया जाता था। प्रवचन तथा उच्चारण पर बल दिया जाता था तथा तप, आत्मदर्शन की युक्ति, प्रवचन तथा उच्चारण पर बल दिया जाता था।”¹⁷ गुरुकुलों में मानसिक चिन्तन तथा ध्यान से ज्ञान प्राप्त कराया जाता था। शिक्षण पद्धति में पाठों का उच्चारण, भाष्य व्याख्या तथा वाद-विवाद सम्मिलित थे। जो देश में वास्तविक ज्ञान का प्रचार करने वाले 'चरक' विद्वान थे वो देश में वास्तविक ज्ञान का प्रचार करते थे। शिक्षा के निमित्त पंचाल परिषद नामक संस्थाएं थीं। इसके अतिरिक्त विद्वत्सभाओं का भी आयोजन हुआ करता था। जैसे - राजा जनक की सभा जिसमें प्रमुख विद्वान याज्ञवल्क्य थे।

“उपनीय गुरुः शिष्य शिक्षयेच्छौचमादितः

आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च।”¹⁸

ब्रह्मचारी निष्ठापूर्वक धार्मिक निर्देशों का पालन करता था तथा शंका होने पर उसका निवारण करता था। धर्म आधारित नियमों का पालन करते हुए लौकिक तथा पारलौकिक जीवन को समझ पाने में सक्षम था। वह आध्यात्म का ज्ञान भी धर्म

द्वारा ही करता था। मनुष्य के जीवन में तप, दान, अहिंसा, सत्य वचन व ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अनिवार्य माना गया क्योंकि ये धार्मिक प्रवृत्तियों के मूल थे।

वर्तमान प्रासंगिकता

वैदिक संस्कृति, जो प्राचीन भारत की बौद्धिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक धरोहर को संजोए हुए है, आज के वैश्वीकृत और तकनीकी रूप से उन्नत समाज में भी अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है। इसकी गहरी जड़ें केवल धार्मिक या सांस्कृतिक संदर्भ तक सीमित नहीं हैं, बल्कि यह जीवन के विभिन्न आयामों—शिक्षा, चिकित्सा, पर्यावरणीय संतुलन, योग, दर्शन, और सामाजिक संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

1. शिक्षा और ज्ञान परंपरा- वैदिक संस्कृति की शिक्षा पद्धति, जिसमें 'गुरुकुल' प्रणाली और अनुभव आधारित ज्ञान शामिल थे, आज के समावेशी और नैतिक शिक्षा प्रणाली के लिए एक प्रेरणा स्रोत है। आधुनिक शिक्षाविद भी 'होलिस्टिक लर्निंग' और 'संवेदनशील शिक्षा' की ओर लौट रहे हैं, जो वैदिक शिक्षा पद्धति के मूल सिद्धांतों पर आधारित हैं।

2. योग और स्वास्थ्य विज्ञान- योग, जो वैदिक परंपरा से उपजा है, आज वैश्विक स्तर पर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए एक महत्वपूर्ण साधन बन चुका है। इसके साथ ही, आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली भी आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में पूरक चिकित्सा के रूप में अपनाई जा रही हैं।

3. पर्यावरणीय चेतना और सतत विकास- वैदिक साहित्य में प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाए रखने की परंपरा को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" की अवधारणा वैश्विक जलवायु संकट और सतत विकास के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक हो गई है। वैदिक संस्कृति की जल संरक्षण, कृषि तकनीकें और प्राकृतिक संसाधनों के प्रति सम्मान की भावना आज की पर्यावरणीय नीतियों के लिए मार्गदर्शक हो सकती है।

4. सामाजिक संरचना और नैतिकता- वैदिक संस्कृति में सामाजिक सद्भाव, समानता और दायित्वों पर बल दिया गया है। 'धर्म' केवल धार्मिक कर्मकांडों तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक व्यापक जीवन दर्शन था, जो नैतिकता, कर्तव्य और समाज के कल्याण को प्राथमिकता देता था। आज के वैश्विक नैतिक संकट और सामाजिक असमानता को दूर करने के लिए वैदिक विचारधारा से बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

5. आध्यात्मिकता और मानसिक संतुलन: आज की भागदौड़ भरी जिंदगी में मानसिक शांति और आत्ममंथन की आवश्यकता अधिक महसूस की जा रही है। वैदिक संस्कृति की ध्यान (मेडिटेशन) और आत्मज्ञान की परंपरा आधुनिक मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के समाधान में सहायक हो सकती है।

निष्कर्ष

वैदिक संस्कृति न केवल भारत की प्राचीन सभ्यता की आधारशिला रही है, बल्कि इसके मूल तत्व आज भी भारतीय समाज, परंपराओं और विचारधारा में गहराई से समाए हुए हैं। वेदों में निहित दार्शनिक, सामाजिक, धार्मिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोणों ने भारतीय उपमहाद्वीप को एक समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर प्रदान की है, जो समय के साथ विकसित होती रही है।

वैदिक परंपराओं का प्रभाव भारतीय समाज में भाषा, धर्म, शिक्षा, प्रशासन, कला, और विज्ञान के विविध क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। आधुनिक काल में योग, आयुर्वेद, कर्म सिद्धांत, आध्यात्मिकता और नैतिक मूल्यों का पुनरुत्थान, वैश्विक स्तर पर वैदिक संस्कृति की प्रासंगिकता को दर्शाता है। साथ ही, लोकतांत्रिक आदर्शों, समानता, और कर्तव्यपरायणता जैसी अवधारणाएँ, जो वैदिक साहित्य में विद्यमान थीं, आज के समाज में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

हालाँकि, आधुनिक समय में बढ़ते औद्योगीकरण, वैश्वीकरण और सामाजिक परिवर्तन के कारण वैदिक परंपराओं को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। फिर भी, यह संस्कृति अपने अनुकूलनशील स्वभाव के कारण निरंतर प्रासंगिक बनी हुई है। वैदिक ग्रंथों में निहित ज्ञान और जीवनशैली के सिद्धांतों का अध्ययन न केवल भारत के सांस्कृतिक विकास

को समझने में सहायक है, बल्कि यह समग्र रूप से मानव सभ्यता को नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक दिशा देने में भी सहायक सिद्ध हो सकता है।

इस प्रकार, वैदिक संस्कृति की जड़ें जितनी गहरी और प्राचीन हैं, इसका प्रभाव उतना ही व्यापक और आधुनिक भी है। इसकी निरंतरता और अनुकूलन क्षमता इसे न केवल भारत के लिए, बल्कि संपूर्ण विश्व के लिए एक मूल्यवान धरोहर बनाती है।

संदर्भ

1. आचार्य, हजारीप्रसाद. वैदिक सभ्यता और संस्कृति. वाराणसी: चौखंभा विद्याभवन, 2005.
2. शर्मा, रामकुमार. वैदिक भारत का सामाजिक और सांस्कृतिक अध्ययन. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2012.
3. मिश्र, सत्यव्रत. वैदिक समाज और धर्म: एक अध्ययन. प्रयागराज: भारतीय विद्या प्रकाशन, 2010.
4. तिवारी, सुरेशचंद्र. वैदिक शिक्षा प्रणाली और आधुनिक युग. वाराणसी: मोतीलाल बनारसीदास, 2015.
5. शास्त्री, धर्मानंद. वैदिक विज्ञान और पर्यावरण चेतना. जयपुर: राजस्थानी ग्रंथागार, 2018.
6. द्विवेदी, विष्णुकांत. भारतीय संस्कृति का उद्भव और विकास. लखनऊ: साहित्य भवन, 2020.
7. त्रिपाठी, राजेश्वरनाथ. वैदिक धर्म, समाज और आचार संहिता. पटना: ज्ञानदीप पब्लिकेशंस, 2013.
8. कुमार, हरिदत्त. वैदिक साहित्य में जीवन दर्शन. कोलकाता: संस्कृत भारती, 2016.



‘श्री रामचरितमानस’ के ‘अयोध्याकाण्ड’ में वर्णित भारतीय संस्कार एवम् परंपराएं

प्रणिता गोगोई

(शोधार्थी) कॉटन विश्वविद्यालय, पानबाजार,
गुवाहाटी, असम

शोध सार

भारतीय साहित्य के मनीषी एवम् युग पुरुष गोस्वामी तुलसीदास हिंदी साहित्य के एक महान राम भक्त कवि के रूप में परिचित हैं। वह भारतीय जन-मानस के आदर्श पुरुष के स्रष्टा हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के दूत माने जाते हैं। भारतीय समाज जीवन को उन्होंने आदर्श, नैतिकता एवं सामाजिक मूल्यबोध की शिक्षा दिया है। उनके राम काव्यों में ‘श्री रामचरित मानस’ की श्रेष्ठता को कभी नकारा नहीं जा सकता। ‘रामचरित मानस’ में उन्होंने भारतीय संस्कार एवं परंपराओं का ऐसा निर्वहन किया है जो सदैव स्मरणीय थे, हैं और रहेंगे। ‘अयोध्याकाण्ड’ में उन्होंने परंपराओं और संस्कारों के वर्णन द्वारा भारतीय जन-जीवन को न केवल आदर्श पुरुष दिया बल्कि जीवन मूल्य, सामाजिक मूल्यबोध का भी ज्ञान देकर उनके जीवन को कवि ने पुष्ट किया। अयोध्याकाण्ड में राम के भावी राज अभिषेक, वन गमन प्रसंग, दसरथ मृत्यु, राम भरत मिलाप आदि प्रसंगों का उल्लेख करते हुए लोकजीवन के झांकी प्रस्तुत करना वे नहीं भूले। उन्होंने रामचरित मानस के रचना द्वारा लोकरक्षक की भूमिका का पालन किया एवम् राम के मर्यादापुरुषोत्तम रूप द्वारा संस्कारों और परंपराओं की प्रतिष्ठा करते गये।

बीज शब्द- अयोध्याकाण्ड, भारतीय, संस्कार, परंपराएं, तुलसीदास।

अध्ययन की पद्धति

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन हेतु वर्णनात्मक एवम् व्याख्यात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। साथ ही प्रयोजनानुसार सहायक ग्रंथ एवं इंटरनेट आदि का भी सहायता लिया गया है।

अध्ययन की सीमा

अध्ययन की सुविधानुसार शोध पत्र की सीमा को रामचरित मानस के अयोध्याकाण्ड को ही केन्द्र में रखा गया है। यहाँ वर्णित भारतीय संस्कार एवं परंपराओं के वर्णन तक ही प्रस्तुत शोध पत्र की सीमा बद्ध है।

अध्ययन का उद्देश्य- इस शोध पत्र का उद्देश्य है—

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में भारतीय सभ्यता-संस्कृति के वर्णन के बारे में जानना।

रामचरित मानस के अयोध्याकाण्ड में वर्णित भारतीय परंपराओं और संस्कारों का उल्लेख करना जो लोकजीवन के आदर्श

एवम् आधार स्वरूप हैं।

प्रस्तावना

साहित्य समाज को पथ प्रदर्शित करते हैं। साहित्य द्वारा समाज में हो रही भिन्न समस्याओं का उल्लेख कर उसका हल निकाला जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जिस समय साहित्य रचना कर रहे थे उस समय समाज की अवस्था अत्यंत दयनीय और शोषणीय रही। पर उन परिस्थितियों में भी वह आदर्श एवम् नैतिकता को नहीं भूले। उन्होंने हर परिस्थिति का मुकाबला कर एक स्वस्थ एवम् आदर्श समाज की कल्पना की। आदर्श समाज के कल्पना करते हुए वह भारतीय संस्कारों का उल्लेख करते गये। वह भारतीय संस्कार और परंपराओं के रक्षक हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरित मानस' के 'अयोध्याकाण्ड' में वर्णित भारतीय संस्कार एवम् परंपराओं का ही आलोचना किया जायेगा।

मूल विषय

'संस्कार एवम् परंपरायें' हमारे समाज के आधार स्वरूप हैं और वही हमें सामाजिक पहचान दिलाने में मदद करते हैं। परंपराओं के बगैर मनुष्य जीवन पशुतुल्य हैं। जब से मनुष्य परंपराओं की आड़ में जीने लगे तभी से वह विकास की चीढ़ी पर कदम रख पाये हैं। परंपराओं के तरह 'संस्कार' भी मनुष्य जीवन के अन्यतम परिचायक है। 'संस्कार' हमारे जीवन को आकार देते हैं और हमें एक अच्छा इंसान बनने में मदद करते हैं। मनुष्य जीवन में जन्म से मृत्यु पर्यंत संस्कार का एक क्रम बंधा हुआ है, जिसे तोड़ उसके लिए जी पाना मुश्किल हैं। परंपरा भी पीढ़ियों से चली आ रही हमारे संस्कृति और इतिहास के निर्णायक स्वरूप है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य को 'संस्कारों एवम् परंपराओं' के बीच ही जीना पड़ता है। उन्हीं परंपराओं का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित-मानस' के 'अयोध्याकाण्ड' में भी किया है। राम उनके आदर्श पुरुष एवम् मर्यादापुरुषोत्तम हैं। परंतु कवि ने यहाँ राम के साथ-साथ अन्य प्रसंग द्वारा भी परंपराओं का निर्वाह किया है। भारतीय जन-गन सदियों से 'परंपराओं एवम् संस्कारों' से बंधा हुआ है, जिसका प्रमाण तुलसीदास ने 'अयोध्याकाण्ड' में दिया है, जिसकी आलोचना निम्नवत रूप में है—

राज्याभिषेक की परंपरा

'श्री रामचरितमानस' के 'अयोध्याकाण्ड' में राम के राज्याभिषेक प्रसंग को मुख्य रूप से वर्णन किया है। भारतीय परंपराओं में चली आ रही एक अन्यतम परंपरा है राज्याभिषेक की परंपरा। भारतीय इतिहास में राज्याभिषेक की परंपरा एक पुरानी परंपरा है। यह एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान है, जिसमें किसी शासक या राजा को सत्ता में बैठाया जाता है और उन्हें विशेष अधिकार और जिम्मेदारियाँ सौंपी जाति हैं। यहाँ श्री राम के राज्याभिषेक अनुष्ठान की तैयारियों से कवि ने अयोध्याकाण्ड की शुरुवात की है। अयोध्याकाण्ड में इस परंपरा का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास ने भली-भाँति करके दिखाया है। जहाँ अयोध्यापति राजा दशरथ पुत्र श्री रामचन्द्र के राज्याभिषेक के लिए गुरु(वशिष्ट मुनि) के आज्ञा लेते हुए दिखाइ पड़ते हैं। राज्याभिषेक के लिए गुरु की अनुमति के साथ ही शुभ दिन, शुभ मुहूर्त की वांछनीयता आदि का उल्लेख भारतीय परंपरा अनुसार ही वर्णित किया गया है क्योंकि हर मंगल कार्य के लिए गुरु आज्ञा, शुभ दिन एवम् शुभ मुहूर्त की आवश्यकता भारतीय परंपरा अनुसार ही है। इसका उल्लेख तुलसीदास इस प्रकार किया है—

“सब बिधि गुरु प्रसन्न जियँ जानी। बोलोउ राउ रहँसि मृदु बानी॥

नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजु॥”

दसरथ अपने पुत्र श्री रामचन्द्र के राज्याभिषेक के लिए अधिक व्याकुल है पर एक राजा होते हुए भी परंपरा अनुसार मुनिवर से उनके आज्ञा की कामना करते दिखाई पड़ रहे हैं।

शुभ कार्य से पहले गणेश पूजन की परंपरा

भारतीय परंपरा अनुसार प्रत्येक शुभ कर्म से पहले गणेश पूजा एवम् आराधना की जाती है और यहाँ भी तुलसीदास ने श्री रामचन्द्र को राज- अभिषेक पूर्व गणेश की पूजा करते हुए दिखाया है। मुनिवर वशिष्ठ प्रजा को यह कहते हैं कि—

**“रजहु मंजु मनि चौंके चारु। कहहु बनावन बेगि बजारु
पूजहु गनपति गुर कुलदेवा। सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा।”²**

हर एक भारतीय आज भी इस परंपरा का पालन कर रहे हैं। किसी भी प्रकार के शुभ कामों से पहले श्री गणेश देवता, गुरु और फिर कुलदेवता की पूजा करते आये हैं। इनके पूजन बिना कोई भी शुभ कार्य सफल नहीं होता। जिसका पूर्णतरु प्रतिष्ठा तुलसीदास ने किया है।

बहू एवम् सास-ससुर के संबंध की परंपरा

आज के समय में बहू और सास-ससुर के संबंध में काफी अनबन देखी जाती है, परंतु गोस्वामी तुलसीदास ने उसी समय इन संबंधों का प्रेमपूर्वक निर्वाह करके दिखाया। जहाँ वन गमन के लिए सीता अपनी सास कौशल्या से आज्ञा लेने में सकुचाती है उसी समय सास उन्हें प्रेमपूर्वक समझाती है कि वन जाना उनके लिए सही नहीं है। वह यही चाहती है कि बहू उन्हीं लोगों के साथ रहे, महल का सुख भोग करे, उन्हें वन जाकर किसी भी प्रकार का कष्ट उठाना न पड़े—

**“आपन मोर नीक जौं चहहू। बचन हमार मानि गृह रहहू
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई।”³**

कौशल्या सीता को यही उपदेश देती है कि हमारे आज्ञा का पालन करते हुए हमारे साथ ही रहो। क्योंकि परंपरा अनुसार सास-ससुर के सेवा से बढ़कर कोई दूसरा बड़ा धर्म नहीं है—

**“एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा।।
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी।।”⁴**

परंतु पत्नी धर्म का पालन कर जब सीता वन जाने को तैयार हुई तब सासू मां कौशल्या ने अनेक प्रकार से आशीर्वाद देकर उन्हें विदा किया—

**“सीताहि सासु असीस सिख दीन्ह अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिरु अति हित बारहिं बार।।”⁵**

भारतीय परंपराओं में बहू के लिए अपने सास- ससुर की सेवा एक प्रकार का धर्म माना गया। आजकल इस संबंध में प्रेम एवम् सम्मान की कमी है। प्रेमपूर्ण संबंध प्रायः लुप्त हो चुके हैं। परंतु आज भी यह मान्यता प्रचलित है कि वही बहू लक्ष्मी समान है जो अपने सास-ससुर की सेवा करती हैं। तुलसीदास ने पारिवारिक संबंधों द्वारा इसका पालन करते हुए यही दिखाया है कि भारतीय परंपराओं में सास एवम् बहू के मधुर संबंध का सजीव उदाहरण विद्यमान है।

पत्नी धर्म पालन की परंपरा

गोस्वामी तुलसी दास ने पती-पत्नी संबंध का उल्लेख भी श्री राम एवम् सीता द्वारा किया है। विवाह उपरान्त भारतीय नारियों के लिए पती ही सर्वोपरि होते हैं और यहाँ भी सीता माता द्वारा उस का निर्वाह करते दिखाया गया है। जब सब प्रकार से सीता माता को वन जाने की मनाही के लिए समझाया जाता है तब वह अत्यंत दुखी होकर कहती है कि पति के बिना स्त्री को सभी सूर्य के समान तपाने वाले हैं। भोग भी उस समय रोग के समान लगते हैं—

**“जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।।
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू।।**

भोग रोगसम भूषण भारू। जम जातना सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहूँ सुखद कतहूँ कछु नाहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनू निहारें॥”⁶

नारियों के लिए पती से बढ़कर इस संसार में दुआ कोई नहीं है। जो तुलसीदास ने सीता माता के द्वारा दिखाया है। सीता माता अपने प्राणाधार पति रामचन्द्र को छोड़कर महल में नहीं रहना चाहती। वह भिन्न प्रकार से पति को समझाना चाहती है कि पत्नी के लिए पती के बिना किसी प्रकार का सुख दुःख में बदल जाता है। भारतीय परंपरा की एक अन्यतम परिचायक तत्व है कि पत्नी धर्म में पति के सेवा में ही खुद को समर्पित किया जाता है और सीता भी उसी धर्म का पालन के लिए अधीर है।

‘अयोध्याकाण्ड’ केवल परंपराओं का ही वर्णन नहीं करता यह तो भारतीय संस्कारों का अपार भंडार हैं। दसरथ पत्नी कौशल्या के कूप को दिखाते हुए भी यहाँ तुलसीदास संस्कारों को निभाना नहीं भुले हैं। जहाँ ‘अयोध्याकाण्ड’ की शुरुवात में ही गुरु के सम्मान एवम् आदर भाव को दिखाया है।

गुरु के प्रति सम्मान

तुलसीदास के जीवन में गुरु की अपार महिमा है। वह गुरु बिना इस संसार को असार मानते हैं। भारतीय संस्कारों में गुरु का आदर एवम् सम्मान भी अनिवार्य है। जिस कारण वह भारतीय संस्कारों के अन्यतम गुरु महिमा का प्रतिपादन इस प्रकार करते हैं—

“जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥
मोहि सम यहू अनुभयउ न दूजें। सबु पायउं रज पावनि पूजें॥”⁷

अर्थात् गुरु को भजने वाले ही संसार के समस्त ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं। जिस कारण कवि ने श्रीराम एवम् दसरथ दोनों के मन में गुरु के प्रति श्रद्धा एवम् भक्ति भाव को दिखाया है। वशिष्ठ मुनि के प्रति श्रद्धा भी इसी के फलस्वरूप है।

बड़ों के प्रति सम्मान एवम् छोटे के प्रति स्नेह

बच्चों को बचपन से यही सिखाया जाता है कि बड़ों का आदर सम्मान एवम् छोटे को स्नेह एवम् आदर दिया जाये। गोस्वामी तुलसीदास ने भी अयोध्याकाण्ड में यही वर्णित किया है। परम गुणी-ज्ञानी राम को चौदह साल वनवास देने को उपरान्त भी वह अपने पिता से एक उल्टा सवाल भी नहीं पूछते हैं और ना ही माता कैकेयी को प्रति किसी प्रकार का विद्वेष की भावना रखते हैं। पिता के आदेश पाकर ही वह वन गमन के लिए तैयार हो जाते हैं। वह किसी भी परिस्थिति में मीठी बचन कहना नहीं भुलते हैं—

“धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी॥
पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥”⁸

श्री राम चौदह साल तक वनवास पाकर भी अत्यंत धीर एवम् सुस्थिर हैं। वह किसी भी परिस्थिति में कभी विचलित नहीं होते। वह इसे धर्म की गति मानकर स्वीकार लेते हैं। इसके द्वारा तुलसीदास यही संस्कार देते हैं कि कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो उन्हें स्वीकार करना है। राम वन जाने के लिए तैयार होते हैं लक्ष्मण भी इस जिद में होते हैं कि वह भी अपने बड़े भाई की सेवा में ब्रती रहेंगे पर राम उन्हें बड़े ही प्यार से समझाते हुए नजर आते हैं और यही कहते हैं कि जो लोग माता, पिता, गुरु एवम् स्वामी की शिक्षा का पालन करते हैं, वही जन्म लेने की सार्थकता पाते हैं—

“मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायें।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायें॥”⁹

ऐसे ही राम कथा द्वारा 'अयोध्याकाण्ड' में उन्होंने भारतीय संस्कृति, रीति रिवाजों और परंपराओं को दर्शाया जो अतिथि सत्कार, प्रजा हितैषी राजा, ब्राह्मण-पूजन एवम् भोजन, नदियों को माता ज्ञान करना आदि हैं। यह सब भारतीय रीति रिवाजों एवम् परंपराओं का ही अंग है। इसी कारण उदयभानु सिंह लिखते हैं— “सर्व कवि की दृष्टि जितनी व्यापक और विराट होनी चाहिए वैसी दृष्टि थी उनकी। समाज के विकृत स्वरूप पर दृष्टि देकर उन्होंने उद्धार की परिकल्पना की, उनकी यही प्रतीति थी कि राम के बिना समाज का कल्याण नहीं हो सकता, राम के इसी स्वरूप को जन-जन तक पहुँचाने का बेड़ा उन्होंने उठाया और उन्हें सफलता भी मिली जैसी हिंदी के किसी और कवि को नहीं मिली।”¹⁰

तुलसीदास ने राम कथा के व्यापक फलक द्वारा संस्कारों को सहेज कर रख छोड़ा जो प्रत्येक भारतीयों के लिए सदा स्मरणीय रहेंगे। परंपरायें ही मानव जीवन को जड़ों से जोड़ते हैं और गोस्वामी तुलसीदास ने वही किया। संस्कार मानव को सभ्य होना सिखाते हैं और उन्हीं संस्कारों की सीख कवि हमें देते गये और लोककल्याण की कामना में सदैव ब्रती रहे। अवश्य ही तुलसीदास का 'रामचरित मानस' भारतीय जनमानस के अभिन्न अंग है और हमेशा रहेगा। जहाँ लोक जीवन एवम् संस्कारों का विस्तार असीमित है। केवल अयोध्याकाण्ड ही नहीं श्री रामचरित- मानस के प्रत्येक काण्ड परंपराओं एवम् संस्कारों का अपार भण्डार हैं।

संदर्भ सूची

1. गोस्वामी तुलसीदास : श्री रामचरित मानस, अयोध्याकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर, 2000, पृष्ठ - 9
2. वही, पृष्ठ -11
3. वही, पृष्ठ - 68
4. वही, पृष्ठ - 72
5. वही, पृष्ठ - 76
6. वही, पृष्ठ -72
7. वही, पृष्ठ - 8
8. वही, पृष्ठ - 60
9. वही, पृष्ठ—77
10. सिंह, उदयभानु(सं.) : तुलसी, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2018, पृष्ठ -18



संत साहित्य में मानव मूल्य

डॉ. रजिंदर कौर

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग

माता सुंदरी कॉलेज

शोध सार

संसार की समस्त प्रगति का केंद्र बिंदु मानव है। मानव अपने जीवन में बहुत से कार्य करता है पर उन सब के पीछे मानवता उद्देश्य के रूप में निहित रहती है और यही मानवता सभी मानवीय मूल्यों का आधार कही जा सकती है। वस्तुतः मानवता का व्यावहारिक रूप ही मानव मूल्यों की संज्ञा पता है। साहित्य सदैव ही मानव जीवन के किसी न किसी मूल्य के साथ जुड़ा रहता है। संत साहित्य तत्कालीन सामंतवादी और रूढ़िवादी परिवेश में मानवतावादी चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति है जो गहरे मानवीय सरोकारों की उपज कही जा सकती है। संतों की वाणी में हमें उन सभी बुराइयों के प्रति विद्रोह की भावना देखने को मिलती है जो उस समय समाज में विद्यमान थी। संतों का काव्य युगों तक मानवता को प्रेरित करता रहेगा।

बीज शब्द- मानव, मूल्य, व्यक्तिगत, नैतिक, समाज, निंदा, संतोष।

मूल लेख

मानव को ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना माना गया है। मानव को वास्तविक अर्थ में मानव बनाने का श्रेय उन उदात्त मूल्यों का है जिनके माध्यम से वह अपना जीवन व्यतीत करता है। मूल्यों के माध्यम से ही जीवन गौरवमय बनता है। किसी भी देश की भौतिक प्रगति को यदि उस देश का शरीर कहा जाए तो उसमें प्राणतत्व का संचार इन्हीं मूल्यों के माध्यम से ही होता है। मूल्यों का निर्माण समाज निर्मित मान्यताओं, धारणाओं, आदर्शों तथा उच्चतर आकांक्षाओं के द्वारा होता है। मूल्य देश, काल तथा परिस्थिति सापेक्ष होते हैं, तथा इनमें परिस्थिति जन्य परिवर्तन होते रहते हैं।

मनुष्य ने जब पशु के समान जीवन जीने की अपेक्षा कुछ उत्तम जीवन जीने की इच्छा की तभी से मानव मूल्यों का विकास प्रारंभ हुआ। मनुष्य ने जब प्रत्येक कार्य के औचित्य, अनौचित्य पर विचार करना प्रारंभ किया और अनेक मूल्यों को अपने जीवन में स्थान दिया तभी से मूल्य हमारे जीवन का महत्वपूर्ण अंग बनते गए। जहाँ तक साहित्य का प्रश्न है तो यह कहा जा सकता है कि साहित्य में मानव के हित का भाव किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान रहता है। अतः मानव जीवन के मूल्यों को इसमें स्थान मिलना स्वाभाविक ही है। साहित्य का मूल्य के साथ संबंध निरूपित करते हुए गुलाब राय कहते हैं “साहित्य के मूल्य जीवन के मूल्य से भिन्न नहीं है अतः जिसका जीवन में मूल्य है उसका साहित्य में भी मूल्य है।”¹

हिन्दी साहित्य में संत शब्द अपने पारिभाषिक अर्थ में निर्गुण कवियों के लिए प्रयोग किया जाता है। हिन्दी साहित्य में संत साहित्य का विशेष स्थान है। अपनी सरलता, स्वाभाविकता, सरसता की दृष्टि से संत साहित्य अद्वितीय है। उनका साहित्य भावपूर्ण तथा अनुभूतिप्रवण है। अधिकतर संत कवि समाज के निम्न वर्ग से सम्बंध रखते थे। वे साहित्य, भाषा तथा

व्याकरण के पठन-पाठन से वंचित रहे। इसलिए इन संत कवियों के साहित्य में किसी शास्त्र या सिद्धांत के प्रति कोई आग्रह नहीं है। इन कवियों के काव्य में वह परिष्कार, साहित्यकता आदि नहीं देखने को मिलती जो एक सुशिक्षित कवि के काव्य में अपने आप ही आ जाती है। संतो के काव्य सृजन का लक्ष्य केवल सत्य का निरूपण, विवेचन तथा प्रसार ही रहा। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने सरल शब्दों में अपने भावों की अभिव्यक्ति की। उनके काव्य का साध्य केवल सत्य का प्रचार तथा प्रसार करना और लोकमंगल की कामना करना रहा। संत कवि पर्यटनशील थे अतः उनकी भाषा में अनेक बोलियों के शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। इन संत कवियों में कबीर का स्थान सबसे ऊँचा कहा जा सकता है। अन्य प्रमुख कवियों में रैदास, गुरु नानक, धर्मदास, सींगा दादू दयाल, सुन्दरदास, मलूकदास, चरनदास, यारी साहब आदि संतो के नाम उल्लेखनीय हैं।

जिस समय ये संत कवि साहित्य सृजन कर रहे थे उस समय भारत के विशाल भूखण्ड की जनता आक्रमणकारियों की क्रूरता, अनानवीयता, प्रकृति कोप तथा राजकोप से निरंतर टूट रही थी। समाज में विलासिता, कामुकता, अविवेक, ऊँच-नीच की अमानवीयता का बोलवाला था। इसी कारण इन संतो की वाणी में हम इन सभी बुराइयों के प्रति विद्रोह की भावना देखते हैं। संतो ने मानव के जीवन के सामने कुछ नैतिक आदर्श रखे, यही नैतिक आदर्श ही आज मानव मूल्यों के नाम से जाने जाते हैं।

संतो के काव्य में वैयक्तिक मूल्यों की प्रधानता हर जगह दिखाई देती है। इनका मानना था कि समाज की गलित अवस्था को परिष्कृत करने के लिए व्यक्तिगत सुधार आवश्यक है। उन्होंने मानव के लिए अनेक गुण आवश्यक बतलाए जो कि व्यक्तिगत होते हुए भी सीधे समाज सुधार से जुड़े थे। वास्तव में उस समय समाज में अनेक बुराइयाँ व्याप्त थी। संतों ने इन बुराइयों का निरीक्षण किया और इन बुराइयों को दूर करने के लिए विभिन्न आदर्शों को अमानने की शिक्षा दी। इसके लिए उन्होंने कुछ गुणों को अपनाने तथा कुछ दोषों को त्यागने की बात कही। गुणों के साथ दोष त्याग ने मूल्य की तरह ही स्थान पाया।

हृदय की पवित्रता को संत कवियों ने मानव जीवन के परिष्कार के लिए सर्वप्रथम मूल्य माना। हृदय की पवित्रता के लिए आवश्यक है कि मन में व्याप्त विषय विकारों को दूर करना। कबीर कहते हैं—

“कैसे कहा बिगारिया, जे मुडे सौ बार।

मन को काहे न मूँडिए, जामै बिछै बिकार।।”²

मन में जब पवित्रता आ जाती है तब मनुष्य असीम शीतलता का अनुभव करता है और ऐसे समय में सभी बाहरी भेदभाव समाप्त हो जाते हैं। संत कवि चरनदास कहते हैं—

बैरी भितर एक सा. ऐके रूपक रूप।

ऐसी होवे दृष्टि जब, समझे मन भूप।।”³

अतः मन की शीतलता मनुष्य के आदर्श जीवन के लिए अति महत्वपूर्ण है। मन की शीतलता को पाने के लिए आवश्यक है कि वह सभी विकारों से मुक्त हो। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार आदि विकारों को संतो ने त्याग्य बताया है।

मन की शीतलता को भंग करने का पहला कारक काम को माना है। संतों ने कामी मनुष्य की स्थिति हाँडी में उबलते चावल के समान बताया है। वह हर समय दग्ध होता रहता है और उसमें से गरम- गरम भाप निकलती रहती है जो उसे कामातुर बनाये रखती है।

“जैसे हाँडिया अदहन दीजै, अगि लएगा गयै करि लीजै।

आनी आँच बाफ जो आवै, कामिनी संग काम जो धावै।”⁴

संतों का मानना था कि मनुष्य इस संसार में आकर अनेक दुष्कर्म करता रहता है। भगवान इन दुष्कर्मों को अधिकांश क्षमा कर देते हैं लेकिन काम, वासना में लिप्त होकर पथ भ्रष्ट होना एक ऐसा पाप है जो अक्षम्य है।

मन की शीतलता को भंग करने वाला दूसरा कारक है क्रोध। इसलिए कभी भूलकर भी क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोधी मनुष्य स्वयं भी दुखी रहता है तथा दूसरों को भी दुख देता है।

“क्रोध महाचंडाल है, जानत है सब कोय।

जा के अंग बरनन करूं, सुनयो सुरत समय।।”⁵

लोभ पापों का उद्गम स्थल है। जो मनुष्य की संतोष की भावना को नष्ट कर देता है। क्रोध, झूठ, हिंसा आदि लोभ के सहचर हैं जो पग-पग पर मानसिक विक्षोभ अशान्ति और सामाजिक अशांति का कारण बनते हैं। जब मनुष्य का मन लोभ से रहित हो जाता है तो जहाँ एक ओर उसका अपना जीवन उन्नत होता है वही दूसरी ओर समाज में भी शांति, पवित्रता तथा संगठन का सूत्रपात हो जाता है।

मन में अशान्ति का एक अन्य कारण मोह भी है। यह एक मानसिक व्याधि है। संतो ने घृणा, विद्वेष की भावना को दूर करने से पूर्व मोह के निष्कासन को अनिवार्य बताया है। उनके अनुसार संसार के सभी रिश्ते-नाते क्षणभंगुर हैं। इनसे मोह करने से कोई लाभ नहीं। पत्नी, संतान, बंधु, बांधव, कुटुम्ब एवं परिवार मोह के प्रमुख साधन हैं। ये मनुष्य को अज्ञानी और विवेकहीन बनाए रखते हैं। इनके मोह जाल में फंसा व्यक्ति एक ओर अपना जीवन कष्टमय बना लेता है तो दूसरी ओर समाज में भी संकीर्णता फैलाता है। जो इन से बच सके वही व्यक्ति साधु कहे जाने के योग्य है। दादू साहब कहते हैं—

“दादू मोह संसार कौ, बिहरे तन मन प्राण

दादू छूटै ग्यान करि, को साधू संत सुजान।”⁶

अहंकार को तो संतों ने सामाजिक मृत्यु माना है क्योंकि अहंकार के कारण मनुष्य समझता है कि वह दूसरों से अधिक ऊंचा है, अधिक सुशिक्षित है, अधिक ज्ञानी तथा अधिक प्रतिष्ठित है। इन विचारों के कारण वह मस्त रहता है। दूसरों के साथ सहानुभूति नहीं करता और दूसरों की सहानुभूति एवं प्रेम भी खो बैठता है। इस प्रकार समाज में असमानता, विघटन तथा वैषम्य का बीजारोपण हो जाता है। यह अहंकार अनेक प्रकार का हो सकता है, यथा रूपजन्य अहंकार, यौवनजन्य अहंकार, धन, परिवार, जाति, स्वधर्म, विद्या जन्य आदि। कबीर इन सबसे बचने की सलाह देते हुए कहते हैं—

“कबीर गर्व न कीजिए, काल गहै कर कैस।

ना जानौ कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस।।”⁷

संत कवियों के अनुसार जब तक व्यक्ति में अहं का भाव रहता है तब तक वह अज्ञानी रहता है।

क्रोध, मोह, अहंकार की तरह निन्दा भी एक ऐसा अवगुण है जो मनुष्य के लिए संतो ने त्याज्य माना है।

संतो ने ऐसी मनोवृत्ति वाले व्यक्तियों की कड़ी आलोचना की है जो दूसरों के दोष देख कर प्रसन्न होते हैं और यह नहीं देखते कि उनमें कितने दोष हैं—

“दोष पराया देखि करि, चले हसंत हसंत।

अपने याद न आवई, जाको आदि न अंत।”⁸

दादू तो यहाँ तक कहते हैं कि निन्दा के परिणाम अत्यंत भयानक होते हैं। नरक भोगने के साथ-साथ मुँह में कीड़े पड़ जाते हैं—

“दादू निन्दा किये नरक है, कीट पड़े मुख माँहि।”⁹

संतों ने निन्दा के द्वितीय पक्ष का उल्लेख भी किया है जिसमें इन कवियों ने परकृत निन्दा को अपने लिए लाभदायक माना है। निन्दा के द्वारा व्यक्ति को अपने अभावों की सूचना मिलती रहती है। उनके अनुसार निन्दक को सदा अपने पास रखना चाहिए क्योंकि वह तो साबुन एवं पानी के बिना ही स्वभाव को निर्मल एवं पवित्र कर देता है। यदि निन्दक निकट रहता है तो व्यक्ति को आशंका रहती है कि उसकी थोड़ी सी चूक भी अपयश का कारण बन सकती है इसलिए वह सदा सावधान रहता है। अतएव निन्दक का आदर करना चाहिए—

**“निन्दक नेड़ा राखिये, अंगणि कुटी चाय बछाई
निब साबण पाणी बिना, निरमल करै सुभाई।।”¹⁰**

इस प्रकार संत कवियों ने काम, क्रोध, मोह, अहंकार आदि दुर्गुणों का त्याग करने तथा हृदय में कोमल भावों को प्रश्रय देने का मार्ग सुझाया।

संतों ने सामाजिक व्यवहार के संतुलन एवं सामंजस्य के लिए व्यक्ति में सत्य और संतोष का होना परम आवश्यक बताया है। संतों के अनुसार असत्य बोलने वाला भले ही परम ज्ञानी हो लेकिन कोई लाभ नहीं। संतोष रूपी धन प्राप्त करने के बाद मनुष्य को संसार के अनेक प्रकार के धन भी महत्त्वहीन लगने शुरू हो जाते हैं।

**“गोधन, गजधन, वाजिधन, और रतन धन खानि।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान।।”¹¹**

संतों की भक्ति साधना व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक उत्थान तथा कल्याण की भावना से ओत-प्रोत थी। संतो ने समाज में गुरु को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। इनका मत है कि केवल गुरु ही इस जगत से उद्धार कर सकता है उसके बिना जीना व्यर्थ है। वहीं ऐसा वैध है जो इस तन एवं मन की व्याधि को दूर कर सकता है। दादू गुरु में अपरिमित शक्ति मानते हैं जो पशु से मनुष्य, मनुष्य से ज्ञानी ज्ञानी से देवता तथा देवता से ब्रह्म बनाने में समर्थ है। वह गुरु की महता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि गुरु के अभाव में एक-एक लाख चाँद और कई सूरज भी मन के अंधकार को दूर करने में असमर्थ हैं—

**“इक लष चन्दा आनि धरि, सूरज कोटि मिलाय।
दादू गुरु गोव्यंद बिन, तौभी तिमिर न जाय।।”¹²**

संतों ने गुरु को ईश्वर से भी श्रेष्ठ माना है। उनके अनुसार परमात्मा की कृपा तथा मोक्ष प्राप्ति गुरु की कृपा से ही संभव है। वे मानते हैं कि ब्रह्म की प्राप्ति के लिए गुरु की कृपा अत्यन्त आवश्यक है। संत कवि कबीर कहते हैं—

**“गुरु गोविन्द दोउ खड़े काके लागे पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोबिन्द दियो बताय।।”¹³**

व्यक्ति ही समाज की इकाई होता है। यदि एक-एक व्यक्ति अपने दोषों को दूर करके सदाचार करने लगे तो निश्चय ही स्वच्छ समाज की रचना तथा स्थापना हो सकती है।

अपने सामाजिक मूल्यों में इन्होंने सतसंगति पर बहुत बल दिया है। इनका मत था कि मनुष्य जैसी संगति करता है वैसा ही फल उसे प्राप्त हो जाता है।

**“कबीर तन पंषी भया, जहाँ तन तहाँ उडि जाइ
जो जैसी संगति करै सो तैसे फल खाइ।।”¹⁴**

इसलिए यह परम आवश्यक है कि हम बुरों लोगों का साथ त्याग दें।

मध्यकालीन समाज में जाति-पाति का भी भेदभाव विद्यमान था। सभी सन्तों ने अपने साहित्य अथवा वाणियों में जाति-पाति, ऊँच-नीच तथा छुआछूत की भावना का प्रबल विरोध किया है। इनका मत था कि सभी मनुष्य एक ही ईश्वर की संतान हैं उनमें भेदभाव उचित नहीं। सन्तों ने तो एकमात्र मानव-धर्म को ही सार्वभौमिक धर्म तथा इनसान की एक ही जाति मानी।

इन कवियों ने अपने नैतिक मूल्यों में निर्वैरता, दया, अहिंसा, परोपकार, कर्तव्य पालन, ईमानदारी, त्याग, सेवा तथा शिष्ट व्यवहार को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

संतों ने सर्वप्रथम वैररहित व्यक्ति एवं दया से परिपूर्ण व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों से श्रेष्ठ बताया है। उनके अनुसार ऐसी व्यक्ति को संसार का प्रत्येक प्राणी अपना दिखाई देता है। इससे समदृष्टि उत्पन्न होती है।

संतकवि समाज को परिष्कृत देखना चाहते थे। इसलिए उन्होंने प्रत्येक जीव के प्रति दयालु होने का उपदेश दिया।

उन्होंने ईश्वर की सर्वव्यापकता व्यंजित करते हुए कहा कि ब्रह्मा तो सभी में विद्यमान है।

दादूदयाल की दया भावना तो पराकाष्ठा पर पहुँच गई जब उन्होंने कहा कि हरे हरे पेड़ को भी नहीं तोड़ना चाहिए, सूखे से काम चला लेना चाहिए क्योंकि भगवान तो वनस्पति में भी व्याप्त है—

“सूका सहजै कीजिए, गीला मानै नाहि

काहे को दुःख दीजिए, साहिब है सब माहि।।”¹⁵

त्याग और उदारता मानव हृदय में दया और अहिंसा की पृष्ठभूमि का निर्माण करती है। इन सवृत्तियों के फलस्वरूप मानव परोपकार में प्रवृत्त हो जाता है। इससे समाज में साम्य एवं ऐक्य का प्रसार होता है।

संत कवि ‘मैं’ और ‘तु’ की शूद्रता से ऊपर उठकर अखिल विश्व को एक सामाजिक भ्रातृभाव में बँधा देखते हैं। जब तक हृदय से संशय और भ्रम बसते हैं तब तक समष्टि का अभाव रहता है। जब दुविधा मिट जाए तब कोई दूसरा नहीं रहता, प्रत्येक प्रकार का भेदभाव मिट जाता है।

“दादू ससा आरसी. देखत दूजा होई।

भरस भया दुविधा मिटी, तब दूसर नाही कोई।”¹⁶

संत, समाज से उन सभी संकीर्णताओं को समाप्त कर देना चाहते थे जिनके कारण समाज विदुपताओं से घिर जाता है। इसलिए संत कवियों ने व्यक्ति को कूप मण्डूकता से निकाल कर उसकी वृत्तियों को उदात्त बनाने की प्रेरणा प्रदान की, जो व समाज के लिए संजीवनी का कार्य करती है।

इन नैतिक मूल्यों के अतिरिक्त ईमानदारी पर भी इन संत कवियों ने बल दिया है। इनका मानना है कि मनुष्य केवल इसलिए वन्दनीय नहीं कि वह हिन्दू है या मुसलमान वह केवल इसलिए वन्दनीय है क्योंकि वह ईमानदार है अन्यथा मनुष्य जीवन व्यर्थ है। मल्लूकदास कहते हैं—

“सब कोउ साहेब बन्दते. हिन्दु मुसलमान।

साहेब तिसको बन्दता, जिसका ठौर ईमान।”¹⁷

इन संत कवियों ने कथनी और करनी की एकता पर भी पर्याप्त बल दिया है। उनके अनुसार जिनकी कथनी और करनी एक है, वे भगवान के निकट पहुँचते हैं।

दादू दयाल ऐसे व्यक्ति के संसर्ग से भी बचने की सलाह देते हैं जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं—

“दादू कथनी और कुछ, करणी करै कुछ और।

तिन थे मेरा जीव डरै, जिनके ठीक न ठौर।”¹⁸

संतों ने किसी भी प्रकार के कर्मकाण्ड तथा धार्मिक दिखावे को बेकार बताया। उन्होंने सभी प्रकार के धार्मिक आडम्बरों का खण्डन किया। उनका मानना है कि सारे संसार का सृजनकर्ता एक ही ईश्वर है। इस ज्योति का वास्तविक रूप निर्गुण है पर भक्तों के उद्धार के लिए यह अवतार ग्रहण करता है इसलिए निर्गुण और सगुण की लड़ाई बेकार है क्योंकि दोनों में कोई भेद नहीं है।

इन कवियों का मत है कि मनुष्य जब तक संसार में रहता है तब तक मोह ममता के चक्कर में पड़ा रहता है ऐसे में केवल हरि की भक्ति ही एकमात्र उपाय है जिससे वह इस भवसागर में डूबने से बच सकता है।

इसलिए लगभग सभी संत कवियों ने माया से बचने की प्रेरणा दी है। कबीरदास जी कहते हैं—

“माया महाठगनी हम जानी।

तिरगुन फांसि लिये कर डौले, बोलै मधुरी बानी।”¹⁹

इसीलिए इन कवियों ने केवल ईश्वर का स्मरण करने की प्रेरणा सर्वत्र दी है क्योंकि केवल उसी से हमारा उद्धार हो सकता है। इनके अनुसार ईश्वर कुछ दूर नहीं है तो हमारे अपने में है जैसे कस्तूरी मृग की नाभि में होता है और वह उसे बाहर खोजता फिरता है वैसे ही भ्रमवश मनुष्य भी ऐसा करता है पर सत्य यह है कि ईश्वर उससे दूर नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संत साहित्य मूल्यपरक साहित्य है। तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक दृष्टि से विषमताओं, असफलताओं एवं अभावों के बीच जीवन व्यतीत करने वाले सामान्य जन को संत वाणी ने निरंतर संतोष, दया, करुणा, परोपकार, सेवा, क्षमा, उदारता, धैर्य तथा सत्य जैसे मानव मूल्यों से संपोषित किया जिससे वह तत्कालीन समाज को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने में सफल हुए।

संदर्भ

1. साहित्य के मूल्य सिद्धांत, साहित्य समीक्षा, गुलाब राय, पृष्ठ 18
2. कबीर ग्रंथावली, संपादक पारसनाथ तिवारी, द्वितीय खंड पृष्ठ 221
3. चरणदास की बानी, भाग 1, पृष्ठ 17
4. दरिया ग्रंथावली, दरिया साहब बिहार वाले, डॉ धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, पृष्ठ 285-86
5. संतवाणी संग्रह, भाग 1, पृष्ठ 149
6. संत सुधाकर, दादू दयाल, पृष्ठ 487
7. संतवाणी संग्रह, कबीर, प्रथम भाग, पृष्ठ 8
8. कबीर ग्रंथावली, सं पारसनाथ तिवारी, पृष्ठ 139
9. दादू दयाल की वाणी, सं मंगलदास, पृष्ठ 436
10. कबीर ग्रंथावली, सं श्यामसुंदर दास, पृष्ठ 65
11. कबीर ग्रंथावली, सं पारसनाथ तिवारी, द्वितीय खंड, पृष्ठ 239
12. संत सुधाकर, खंड एक, पृष्ठ 450
13. वही, पृष्ठ 110
14. वही, पृष्ठ 149
15. दादू दयाल की वाणी, भाग 1, पृष्ठ 78
16. वही, पृष्ठ 235
17. संत सुधाकर, द्वितीय खंड, मलूक दास, पृष्ठ 38
18. संतवाणी संग्रह भाग-1 दादू दयाल प्रश्न 93
19. संत सुधाकर, कबीर, पृष्ठ 101-102



डिजिटल युग में भारतीय परंपरा

साक्षी

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रस्तावना

हम एक गतिशील समाज में निवास करते हैं जिसका आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं तकनीकी विस्तार तेजी से हो रहा है। इस लेख का उद्देश्य डिजिटल युग में लोक संस्कृति एवं जीवनमूल्यों के सैद्धांतिक प्रभावों की जाँच करना है। आज के इस डिजिटल युग में लोक संस्कृति एवं जीवन मूल्यों के बोध का प्रश्न मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से डिजिटल पटल पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है।

डिजिटल युग ने हमारे जीवन को बहुत सरल बना दिया है। आजकल हम सभी अपने स्मार्टफोन, कंप्यूटर या लैपटॉप के माध्यम से अपने कामों को पूरा करते हैं। इससे हमें समय की बचत होती है और हमें अपने कामों को आसानी से पूरा करने में मदद मिलती है। स्मार्टफोन के बढ़ते बाजार, बढ़ती कनेक्टिविटी, सस्ते इंटरनेट और युवा आबादी के कारण फैल रही डिजिटल दुनिया इस अभियान का उद्देश्य इंटरनेट के माध्यम से देश में डिजिटल क्रांति लाना है, साथ ही इंटरनेट को सशक्त करके भारत के तकनीकी पक्ष को मजबूत करना है। डिजिटल माध्यम से कोई इंजीनियर या डॉक्टर आदि बन सकता है, परन्तु संस्कार तो गुरु से प्रत्यक्षतः ही मिल सकता है। याद करिए “दरस-परस” की हमारी परम्परा मिलने-जुलने से लोगों में जो आत्मीय भाव पैदा होता है, वह वीडियो कॉलिंग के माध्यम से कभी नहीं हो सकता है। डिजिटल प्रौद्योगिकी कई बार हमें हृदयहीन, उदासीन, एवं स्वयं केन्द्रित भी बना रही है।

डिजिटल माध्यमों के माध्यम से शिक्षा प्राप्त की जा सकती है, डिजिटल इंडिया अभियान की विभिन्न योजनाओं जैसे डिजिटल लॉकर, राष्ट्रीय छात्रवृत्ति पोर्टल, ई-स्वास्थ्य, ई-शिक्षा, ई-साइन आदि को शुरू करके इस कार्यक्रम का अनावरण किया गया है। देश भर में लोग इस कार्यक्रम के तहत प्रौद्योगिकी में सुधार कर रहे हैं। डिजिटल इंडिया का उद्देश्य देश को डिजिटल-सक्षम समाज में परिवर्तित करना है।

कठपुतली कला के नवीनीकरण में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका

यूनिशन इंटरनेशनल डे ला मैरियोनेट के अनुसार, मौखिक इतिहास कठपुतली कला का इतिहास 9वीं शताब्दी ईसा पूर्व से बताते हैं। महाभारत, जिसकी रचना ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के आसपास हुई थी, में भारत में कठपुतली कला के शुरुआती संदर्भ हैं। संस्कृत व्याकरणविद पाणिनि ने ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में कठपुतलियों का वर्णन किया था, और योग सूत्र के लेखक पतंजलि ने ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में उनका उल्लेख किया था।

कठपुतली भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का एक अनिवार्य हिस्सा रही है। मनोरंजन के माध्यम से परे, इसने परंपरा, शिक्षा और सामाजिक संदेश में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालांकि, इस प्राचीन कला को संरक्षित करना और इसे

आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाना बहुत मुश्किल हो गया है। AI में डिजिटलीकरण में सहायता करके, पारंपरिक कठपुतली डिज़ाइन, प्रदर्शन तकनीकों और लोककथाओं के संरक्षण को सुनिश्चित करके इस कला रूप में क्रांति लाने और विस्तार करने की क्षमता है। इसके अलावा, AI-संचालित आभासी अनुभव, इंटरैक्टिव डिजिटल प्रदर्शन और शिक्षण प्रणाली समकालीन दर्शकों को शास्त्रीय कार्यों से परिचित करा सकती हैं।

तकनीकी प्रगति कठपुतली कलाकारों को वैश्विक दर्शकों तक पहुँचने में सक्षम बनाएगी। AI-संचालित 3D मॉडलिंग, एनीमेशन, वर्चुअल रियलिटी (VR) और ऑगमेंटेड रियलिटी (AR) उनके शिल्प को नए स्तरों तक बढ़ा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, AI-संचालित ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म, ऑनलाइन प्रदर्शन और डिजिटल संग्रहालय कठपुतली कलाकारों के लिए नए रोजगार के अवसर पैदा कर सकते हैं। नतीजतन, AI न केवल कठपुतली को डिजिटल रूप से संरक्षित करेगा बल्कि आधुनिक समय में इसकी प्रासंगिकता सुनिश्चित करते हुए इसे वैश्विक स्तर पर पुनर्जीवित भी करेगा।

प्रौद्योगिकी और डिजिटल माध्यमों का प्रभाव

वर्तमान में प्रौद्योगिकी का प्रभाव परंपराओं पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। डिजिटल युग में, परंपराओं को नए रूप में मनाया जा रहा है। जैसे कि त्योहारों, धार्मिक अनुष्ठानों, या पारंपरिक गीतों को अब ऑनलाइन मंचों पर देखा और सुना जा सकता है। इसने पारंपरिक मान्यताओं को एक व्यापक और वैश्विक दर्शक वर्ग तक पहुँचाया है।

इसके अलावा, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म ने परंपराओं को एक नया मंच दिया है। लोग अब अपने धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों को सोशल मीडिया पर साझा करते हैं, जिससे पूरी दुनिया में एक दूसरे की परंपराओं और सांस्कृतिक विविधताओं का आदान-प्रदान संभव हो सका है।³

आज, भारत एक उभरता हुआ डिजिटल पारिस्थितिकी तंत्र है, जिसने डिजिटल युग में अपनी सॉफ्ट पावर को प्रदर्शित करने के लिए एक उल्लेखनीय माध्यम पाया है। भारत की सॉफ्ट पावर के सबसे उल्लेखनीय तत्वों में से एक इसका सांस्कृतिक निर्यात है, जहाँ पारंपरिक शिल्पकला, व्यंजन, संगीत और फिल्में सीमाओं को पार कर ल्वनज्जइम और सोशल मीडिया जैसे प्लेटफॉर्म के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय दर्शकों तक पहुंची है। इसी तरह, डिजिटल युग में भारत की सॉफ्ट पावर उसके कूटनीतिक प्रयासों और संघों में परिलक्षित होती है। देश अन्य देशों के साथ अपने संबंधों को समृद्ध करने, सांस्कृतिक संबंधों को सुविधाजनक बनाने और अंतर्राष्ट्रीय चुनौतियों का समाधान करने के लिए प्रौद्योगिकी का लाभ उठाने में सक्रिय रहा है। “अतुल्य भारत”, “स्टार्टअप इंडिया” और “डिजिटल इंडिया” जैसी पहलों ने न केवल अर्थव्यवस्था को ऊपर उठाया है, बल्कि देश को डिजिटल नवाचार में अग्रणी के रूप में भी स्थापित किया है।⁴

डिजिटल युग में भारत की सॉफ्ट पावर : वैश्विक ज्ञान अर्थव्यवस्था

भारत डिजिटल युग में अंतर्राष्ट्रीय ज्ञान अर्थव्यवस्था में एक केंद्रीय खिलाड़ी बनने के लिए अपनी सॉफ्ट पावर का लाभ उठा रहा है और प्रतिभाशाली और युवा व्यक्तियों की अपनी विशाल आबादी के कारण सॉफ्टवेयर विकास, आईटी सेवाओं और डिजिटल नवाचार के लिए एक केंद्र के रूप में उभरा है। देश के तेजी से बढ़ते तकनीकी उद्योग ने न केवल अंतर्राष्ट्रीय तकनीकी दिग्गजों से निवेश आकर्षित किया है, बल्कि कुशल श्रमिकों का एक समूह भी तैयार किया है जो वैश्विक स्तर पर निगमों के डिजिटल बदलाव को आगे बढ़ा रहे हैं। भारतीय तकनीकी कंपनियों की अंतर्राष्ट्रीय सफलता और सिलिकॉन वैली में भारतीय पेशेवरों की समग्र सेवा भारत के बौद्धिक संसाधनों की क्षमता को प्रदर्शित करती है। साथ ही, डिजिटल युग में शिक्षा और अनुसंधान पर जोर ने देश को ज्ञान की महाशक्ति के रूप में स्थापित किया है। भारतीय प्रबंधन संस्थान (IIM) और भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (IIT) जैसे उच्च स्तरीय प्रतिष्ठानों की स्थापना ने कुशल पेशेवरों और विशेषज्ञों की एक पीढ़ी तैयार की है जो प्रौद्योगिकी, व्यवसाय और नवाचार में पाठ्यक्रम का नेतृत्व कर रहे हैं। शिक्षा और कौशल विकास पर जोर वैश्विक समुदाय में भारत की प्रमुखता को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ाता है और ज्ञान और नवाचार की वैश्विक आवश्यकता के

साथ सरेखित करता है। गूगल, माइक्रोसॉफ्ट और आईबीएम जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियों में भारतीय तकनीक का योगदान डिजिटल नवाचार में एक प्रमुख अभिनेता के रूप में भारत की स्थिति को और उजागर करता है। डिजिटल नवाचार पर बढ़ते फोकस के कारण, कई स्टार्टअप में तेजी से वृद्धि हुई है और भारत की सिलिकॉन वैली के रूप में जाना जाने वाला बेंगलुरु तकनीकी स्टार्टअप और उद्यमिता के लिए एक जंक्शन रहा है।⁵

डिजिटल युग में महिला

वर्तमान में, जब हम डिजिटल युग में प्रवेश कर चुके हैं, तब महिला सशक्तिकरण और नारीवाद के मुद्दे प्रौद्योगिकी के माध्यम से अधिक सशक्त रूप में प्रस्तुत हो रहे हैं। सोशल मीडिया और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म ने महिलाओं को अपने विचार, अनुभव और संघर्ष साझा करने का एक नया मंच दिया है, जिससे एक वैश्विक सहयोग का वातावरण निर्मित हो रहा है। इस सांस्कृतिक परिवर्तन के माध्यम से नारीवाद का संदेश न केवल स्थानीय स्तर पर, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी फैल रहा है। इस संदर्भ में, नारीवाद आंदोलनों को पारंपरिक आदेशों को चुनौती देने और समकालीन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए नया दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। अंततः, नारीवाद के लिए भविष्य की दिशा में एक महत्वपूर्ण तत्व समावेशिता है। इसे विभिन्न आयामों में लागू करना आवश्यक है, जिसमें नृजातीयता, वर्ग, और यौन पक्षपातीकरण शामिल हैं। वास्तव में, नारीवाद को अनिवार्य रूप से सभी महिलाओं की आवाजों को सुनने की आवश्यकता है, चाहे वे किसी भी पृष्ठभूमि से हो। समावेशी नारीवाद का मतलब है कि हम विभिन्न अनुभवों और विचारधाराओं को स्वीकार करते हुए एक ऐसा वातावरण निर्मित करें, जहाँ सभी महिलाएँ एक समान अवसर और समर्थन प्राप्त कर सकें। यह दृष्टिकोण न केवल महिलाओं के लिए बल्कि समस्त समाज के लिए परिवर्तन का साधन बनेगा, जिससे समृद्धि, समानता और न्याय के सिद्धांत को आगे बढ़ाया जा सकेगा।⁶

शिक्षा में डिजिटल साक्षरता का महत्व

डिजिटल साक्षरता में कई प्रकार के कौशल शामिल हैं, जिनमें डिजिटल प्लेटफॉर्म को नेविगेट करने की क्षमता, ऑनलाइन जानकारी का गंभीर मूल्यांकन करना और संचार व समस्या समाधान के लिए डिजिटल टूल का उपयोग करना शामिल है। आधुनिक युग में छात्रों को शैक्षणिक और व्यावसायिक रूप से सफल होने के लिए डिजिटल साक्षरता में दक्षता आवश्यक है। शैक्षणिक संस्थानों की जिम्मेदारी है कि वे छात्रों को तेजी से प्रौद्योगिकी संचालित दुनिया में आगे बढ़ने के लिए आवश्यक डिजिटल कौशल से लैस करें। इसके अलावा डिजिटल साक्षरता व्यक्तियों को डिजिटल युग में सूचित और जिम्मेदार भागीदार बनने के लिए सशक्त बनाती है, जिससे वे सुरक्षित, नैतिक और उत्पादक तरीके से प्रौद्योगिकी के साथ जुड़ने में सक्षम होते हैं।

शिक्षा में प्रौद्योगिकी के एकीकरण ने शिक्षण और सीखने की गतिशीलता को बदल दिया है। डिजिटल संसाधनों और उपकरणों के प्रसार से शिक्षकों के पास छात्रों को संलग्न करने, सीखने के अनुभवों को निजीकृत करने और सहयोगात्मक और इंटरैक्टिव शिक्षण वातावरण की सुविधा प्रदान करने के नए अवसर हैं। प्रौद्योगिकी विविध शिक्षण शैलियों को पूरा कर सकती है, मल्टीमीडिया सामग्री, इंटरैक्टिव सिमुलेशन और अनुकूली शिक्षण प्लेटफॉर्म प्रदान कर सकती है जो छात्रों की जटिल अवधारणाओं की समझ को बढ़ा सकती है। इसके अतिरिक्त प्रौद्योगिकी ने शिक्षा तक पहुँच का विस्तार किया है, भौगोलिक बाधाओं को तोड़ दिया है और दूरस्थ और ऑनलाइन सीखने के अवसर प्रदान किए हैं।⁷

निष्कर्ष

आज के सांस्कृतिक क्षरण, आन्तरिक खोखलेपन और मूल्य विघटन के डिजिटल युग में हमें आंचलिक साहित्य की प्रासंगिकता को समझते हुए उसमें निहित लोक सांस्कृतिक पहलू एवं मानवीय मूल्यों पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। वर्तमान

युग की तमाम जटिल समस्याओं का समाधान इसमें निरूपित जीवन मूल्यों के आदर्श को आत्मसात करके किया जा सकता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की कोई भी उपलब्धि उन अंतिम लक्ष्यों को पूरा नहीं कर सकती जिनकी आकांक्षा समाज या मानव जाति को करनी चाहिए। डिजिटल युग की प्रगति का मूल्यांकन और नियंत्रण संचार एवं प्रौद्योगिकी के बाहर उत्पादित मूल्यों के माध्यम से किया जाना चाहिए। इस शोध आलेख में, हमने एक सांस्कृतिक घटना के रूप में डिजिटल युग में मानवीय मूल्य एवं लोक संस्कृति का आंचलिक दृष्टि से सैद्धांतिक अध्ययन प्रस्तुत किया। मनुष्य के मानसिक जिज्ञासावृत्तियों का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से आंचलिक डिजिटल मॉडल विकसित किया और डिजिटल समाज की आध्यात्मिक, सामाजिक और तकनीकी मॉडल का वर्णन किया है। मानव जीवन की मधुरता तथा प्राकृतिक बौद्धिकता का अस्तित्व मानव द्वारा निर्मित एक निर्जीव मशीनी माध्यम में भला कैसे हो सकता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने सर्वप्रथम हृदय-पक्ष को ही नकार दिया है तथा इसने बुद्धि-पक्ष पर अत्यधिक बल दिया, संज्ञानात्मक तथ्य यह है कि कला, साहित्य और संस्कृति के विकास में बुद्धि के साथ हृदय का सदा सामंजस्य रहा है। इसकी उपेक्षा कभी भी नहीं हुई।

संदर्भ सूची

1. गूगल, “डिजिटल युग और मैं”, 17 अगस्त 2023
2. यादव, ऋषि, “एआई के माध्यम से परंपरा को पुनर्जीवित करना: डिजिटल युग में भारत की ज्ञान प्रणाली”, “State Times” 7 मार्च 2025
3. कुमार, डॉ. संदीप, “हिन्दी साहित्य और भारतीय समाज : संस्कृति, परम्परा और नवाचार”, पृ.132, 11 दिसम्बर 2024
4. अमरेश, प्रीति, “डिजिटल युग में भारत की सॉफ्ट पावर : मीडिया, प्रौद्योगिकी और वैश्विक ज्ञान अर्थव्यवस्था”, “डिप्लोमेटिस्ट”, 30 नवंबर 2024
5. अमरेश, प्रीति, “डिजिटल युग में भारत की सॉफ्ट पावर : मीडिया, प्रौद्योगिकी और वैश्विक ज्ञान अर्थव्यवस्था”, “डिप्लोमेटिस्ट”, 30 नवंबर 2024
6. जीनगर, डॉ. अमृत लाल, कुमारी, डॉ. प्रियंका, चौधरी, डॉ. रजनी, “महिला सशक्तीकरण और नारीवाद”, “MEADOW PUBLICATION”, पृ.94-95, 2 जनवरी, 2025
7. राव, डॉ. टी. सी., हर्षवर्धन, “भविष्य का निर्माण”, पृ.36, 9 मार्च, 2024



मुगलकालीन भारतीय स्थापत्य कला

लक्ष्मी कुमारी

शोधकर्ता, इतिहास विभाग,
कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा, झारखण्ड

सारांश

वर्तमान शोध पत्र मुगलकालीन के इतिहास में स्थापत्य कला की महत्वपूर्ण रूप से ध्यान केन्द्रित करना है। मुगलकाल में स्थापत्य कला के कार्यों के बारे और विभिन्न क्षेत्रों के संबंध में अध्ययन करने का प्रयास किया जाना। इसमें कला के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला जाएगा। मुगलकाल स्थापत्य कला में भव्यता और स्थापत्य प्रदान करता है।

मुख्य शब्द - मुगलकालीन, स्थापत्य, सजावट, नमूने, मिश्रण।

प्रस्तावना

मुगल स्थापत्य में गुम्बद और मिनार का व्यापक उपयोग हुआ है, जो एक विशिष्ट पहचान देते हैं। मुगल स्थापत्य में सजावट का विशेष महत्व था, जिसमें विभिन्न प्रकार के पैटर्न और डिजाइन शामिल थे। मुगल शासकों के शासनकाल में ईरानी एवं हिंदू शैली के समन्वय की स्थापत्य कला विभिन्न शैलियों का सम्मिश्रण है, जिसमें कुछ स्वदेशी है और कुछ विदेशी।

साहित्यिक समीक्षा एवं विधि

इस शोध पत्र में मुगलकालीन स्थापत्य कला में कलाओं को प्रश्रय दिया तथा स्थापत्य कला के कई नमूने अपने शासनकाल में प्रस्तुत हैं। यह लेख मुख्य रूप से प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों पर आधारित होगा।

विचार-विमर्श

मुगलकालीन स्थापत्य कला में ललित कलाओं के विकास की ओर मुगल बादशाहों ने पूर्ण ध्यान दिया। इस कला में इस्लामी कला से गोल गुम्बद, ऊँची-ऊँची मीनारे और मेहराब, छते, खम्भे और नुकीली मेहराबें ली गयी थी।¹

मुगल स्थापत्य कला देशी एवं विदेशी के कारण विकसित हुई। मुगल शैली पर फारसी, अरबी एवं मध्य एशियाई पर करा सम्मिश्रण है।²

मुगल शैली तरह से क्लासिक और सरुचिपूर्ण बन गई, जिसे दिल्ली, आगरा और फतेहपुर, सीकरी में सभी मुगल सम्राटों ने अपनाया।³

आगरा का किला अकबरी स्थापत्य कला का एक अद्वितीय उदाहरण है, जिसे महान सम्राट अकबर ने बनवाया।⁴ यमुना नदी के दाहिने किनारे पर स्थित यह दुर्ग डेढ़ मील के घेरे में बना है। पर्सि ब्राउन ने इस दरवाजे की प्रशंसा में लिखा है निस्संदेह

ही ये भारत के सबसे अधिक प्रभावशाली दरवाजे में है।⁵

जहाँगीरी महल अकबर द्वारा निर्मित किया गया था। जहाँगीरी महल राजपूत साम्राज्य की महिलाओं के लिए पूजा स्थल भी है। यह महल एक विशाल आंगन, सजावटी, बाल्कनियों, हिंदू और इस्लामी वास्तु शैलियों का मिश्रण भी है।⁶

जोधाबाई का महल राजपूत और मुगल शैली की स्थापत्य कला के तत्वों का बेहतरीन मिश्रण है। महल में घूमते हुए आप रानी के दैनिक जीवन की भव्यता को महसूस कर सकते हैं। जोधाबाई पैलेस फतेहपुर सीकरी पूरे साल खुला रहता है। आप इसे दिन में सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच देख सकते हैं। जोधाबाई के महल की योजना राजपूत शैली से प्रेरित है, जिसमें कुछ हिस्से में हिंदू और इस्लामी प्रभाव का मिश्रण है।⁷

जहाँगीर स्थापत्य के बजाय चित्रकला में अधिक रुचि रखता था। अतः उसकी झलक उसकी स्थापत्य में मिलना अवश्यम्भावी थी।⁸ जहाँगीर के निर्माण की गति धीमी हो गई और अकबर के काल में स्थापत्यकला का उत्कृष्ट स्वरूप झलकती है।⁹

मुगल सम्राट जहाँगीर के शासनकाल में नूरजहाँ बेगम ने स्थापत्य कला के क्षेत्र में रुचि ली। उसने मुगल सम्राट स्थापत्य कला के विकास में अपना बहुमूल्य योगदान दिया, जिसका आगरा में निर्मित एतमोदुद्दौला के मकबरे में देखने को मिलता है।¹⁰

मुगलकाल में शाहजहाँ ने स्थापत्य कला अपने विकास के चरम-सीमा पर जा पहुँची। शाहजहाँ का काल स्थापत्य कला का स्वर्ण युग कहलाता है। शाहजहाँ ने आगरा में मुमताज महल, ताजमहल मयूर सिंहासन, दीवाने आम, दीवाने खास, रंगमहल एवं मोती मस्जिद आदि भवनों का निर्माण करवाया।

ताजमहल का निर्माण शाहजहाँ ने मुमताज की स्मृति में करवाया था। कई लेखकों ने इसे कई नामों से स्थापत्य की रानी संगमरमर में साकार स्वप्न, काल के गाल पर अमिट आँसू, पत्थर द्वारा प्रेम की अभिव्यक्ति आदि कहा है। यह उस युग की कला का उत्कृष्ट नमूना है।¹¹ ताजमहल को वास्तुकला की दृष्टि से समस्त भारतीय-इस्लामी संरचनाओं में एक सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि माना जाता है। इसकी बेहतरीन वास्तुकला में घनपन और रिक्तता का, अवतलता और उत्तलता का, धूप और छाँव का लयबद्ध मेल-मिलाप है। मेहराब और गुंबद इसकी सुंदरता में चार चाँद लगाते हैं। प्रकृति की हरियाली, वीथिका के लाल-भूरेपन और इसके ऊपर फैले हुए आसमान के नीलेपन की युति के कारण यह स्मारक प्रकृति के हर तरह के रूप और माहौल में देखते ही बनता है। संगमरमर पर की गई नक्काशी और उसमें जड़े हुए कीमती और अर्ध कीमती रत्न इस स्मारक को अनोखा बना देते हैं। ताजमहल के अनूठेपन का कारण शाहजहाँ के उद्यान विशेषज्ञों और वास्तुशिल्पकारों के कार्यों में पाई जाने वाली विलक्षण नवीनता है। मकबरे को चौरफे उद्यान के बीचों-बीच स्थापित करने के बजाय उसे उद्यान के एक छोर पर स्थापित करना ऐसी ही एक श्रेष्ठ योजना है जिसके कारण इस मकबरे को दूर से देखने पर भी एक त्रिआयामी दृश्य दिखाई देता है। इसके अलावा, यह ज़मीन से उठे हुए मकबरों की किस्म का एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। राजपूतों ने मुगलों की स्थापत्य कला के अनुसार मंदिरों और भवनों का निर्माण करवाया।¹²

मुगल मकबरों की तरह, राजपूत छतरियाँ भी हिंदू राजाओं की स्मृति में समाधियों के रूप में निर्मित की गईं। मध्यकाल के अंत में, मुगलों के विशाल मकबरों की शैली को देखते हुए राजपूतों ने अपने मकबरे बनाना शुरू किया, जिन्हें छतरियाँ कहा जाता है।¹³ 17वीं सदी के मध्य से इन राजपूत छतरियों का निर्माण प्रारंभ मध्यकाल में स्थापत्य कला का विकास हिंदू और मुस्लिम शैलियों के बीच समन्वय का प्रतीक बन गया था। राजा जसवंत सिंह द्वारा आगरे में यमुना नदी के किनारे बनाई गई विशाल छतरी, जो उनके भाई अमर सिंह राठौर और उनकी पत्नी की स्मृति में थी, इस प्रकार के स्मारकीय निर्माण की एक उत्कृष्ट मिसाल है। हालाँकि, गलती से इसे जसवंत सिंह की छतरी कहा जाने लगा। ओरछा में राजा वीर सिंह बुंदेला द्वारा बनवाई गई छतरी भी कलात्मक दृष्टिकोण से उल्लेखनीय है, और समय के साथ, छतरियों का निर्माण राजपूत राजाओं में लोकप्रिय हो गया।

मराठा शासकों ने भी इस परंपरा को अपनाया और गोवर्धन, अलवर, जयपुर, उदयपुर, जोधपुर के पास माण्डौर, बीकानेर,

कोटा, छतरपुर और ग्वालियर में भव्य छतरियों का निर्माण करवाया। इन छतरियों में खंभों, मुड़े हुए नुकीले मेहराबों, छज्जों, और धारीदार गुंबदों का उपयोग विशेष रूप से किया गया। बागों और बहते पानी की व्यवस्था भी इन स्मारकों का अभिन्न हिस्सा थी। शिवपुरी में संगमरमर से की गई जड़ाऊ अलंकरण कला इस समय की विशेषता थी।

फतेहपुर सीकरी में जोधाबाई का महल, हिंदू वास्तुकला शैली में बनाया गया और पंचमहल, जो पूरी तरह से भारतीय बौद्ध विहारों की योजना पर आधारित था, दर्शाते हैं कि कैसे मुगल काल में भी दोनों संस्कृतियों के बीच वास्तुकला का समन्वय हुआ। फतेहपुर सीकरी की अन्य इमारतें भी हिंदू मंदिरों की सजावटी शैलियों से प्रेरित थीं।¹⁴

इस समन्वय का महत्व केवल स्थापत्य सौंदर्य तक सीमित नहीं रहा; यह हिंदू-मुस्लिम सद्भावना का जीवंत प्रमाण भी था। इतिहासकार भगवत शरण उपाध्याय ने इसे बहुत सुंदर ढंग से व्यक्त किया है, जब वे कहते हैं कि इन दोनों स्थापत्य शैलियों का मिलन ऐसा था जैसे दूध और पानी का संगम हो। इस क्षेत्र में सौंदर्यशास्त्र ही प्रमुख कारक रह गया था।

मुगल स्थापत्य ने वैश्विक स्तर पर भी अपनी विशिष्टता स्थापित की। दिल्ली और आगरा के किले, कुतुब मीनार, सीकरी के बुलंद दरवाजे, मोती मस्जिद और ताजमहल, जैसे अद्वितीय निर्माणों का कोई मुकाबला मुस्लिम जगत में भारत से बाहर नहीं था। मुगल काल में स्थापत्य का काफी सुंदर समन्वय हुआ था।¹⁵

मुगल स्थापत्य कला में गुंबद और मीनारों का व्यापक उपयोग किया गया है, जो उनकी संरचना में एक विशिष्टता प्रदान करते हैं। मेहराब का उपयोग संरचना को भव्यता और स्थायित्व प्रदान करता है।

मुगल शासक प्रकृति प्रेमी थे, और उनके हर स्थापत्य में बगीचे का विशेष महत्व है, जैसे कि शालीमार बाग और ताजमहल का बगीचा, फव्वारे और अन्य जल संरचनाओं का उपयोग मुगल स्थापत्य में किया जाता है, जो उन्हें और अधिक आकर्षक बनाते हैं।

सजावटी काम, जैसे कि पचिनकारी और जाली-जालीदार स्क्रीन, मुगल स्थापत्य को एक उत्कृष्ट कलात्मक स्पर्श प्रदान करते हैं। मुगल स्थापत्य समरूपता और भव्यता के लिए प्रसिद्ध है, जो इसकी इमारतों को एक विशिष्ट रूप प्रदान करती है।

मुगल स्थापत्य में भारतीय और इस्लामी शैलियों का एक सुंदर मिश्रण है, जो इसकी इमारतों को एक अद्वितीय रूप प्रदान करता है।

निष्कर्ष

मुगल स्थापत्यकला एक अद्वितीय और प्रभावशाली शैली, जो मुगल स्थापत्य कला में सुंदरता और भव्यता के लिए प्रसिद्ध है। मुगल स्थापत्यकला का एक मिश्रण है। मुगल स्थापत्यकला एक समृद्ध सांस्कृतिक और कलात्मक विरासत को दर्शाती है। मुगल स्थापत्य दुनिया की सबसे प्रभावशाली और प्रशंसनीय विरासतों में से एक है। मुगलों की भवन निर्माण कला की शैली विदेशी है, जबकि हैवल की शैलियाँ मानती है कि यह विदेशी और शैलियों का मिश्रण है। इस प्रकार कहा जा कता है कि मुगल काल में हिंदू-मुस्लिम का सुंदर समन्वय हुआ था।

संदर्भ

1. एल.पी. शर्मा, मध्यकालीन भारत, (1975), पृ. सं. 306
2. हेतिसंह बघेला, भारतीय संस्कृति का विकास, (2008), रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, पृ. सं. 164
3. एम.एल. भागी, मिडिल इंडिया एण्ड कल्चर, (1965), इंडियन पब्लिकेशन, पृ. सं. 315
4. वी. स्मिथ, अकबर द ग्रेट मोगुल (1966), एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, पृ. सं. 316
5. पीयूष चौहान, मध्यकालीन भारत (2012), नई दिल्ली, पृ. सं. 251

6. <https://audiala.com>
7. <https://agraturism.in>
8. रहीस सिंह, मध्यकालीन भारत (2012), पीयर्सन, पृ. सं. 125
9. लईक अहमद, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ. सं. 130
10. शहंजहाँ खान, मुगल हरम की बेगामत, 2016, राजस्थानी ग्रंथागार, पृ. सं. 119
11. एस.एल. नागोरी, मध्यकालीन समाज, धर्म, कला एवं वास्तुकला (2005) सबलाइम पब्लिकेशन, जयपुर, पृ. सं. 207, 208
12. <https://indianculture.gov.in>
13. निकोलो मुनुकी, मुगल इंडिया, विलियम्स इरविन, कैलीफोर्निया, वॉल-2, 1965, पृ. सं. 346
14. एस.आर. शर्मा, द मेकिंग ऑफ मॉडर्न इंडिया, पृ. सं. 151-154
15. जेम्स फर्गुसन, हिस्ट्री ऑफ इंडियन ईस्टर्न आर्किटेक्चर, पृ. सं. 320



“औद्योगिकीकरणाचा ग्रामीण समुदायावर झालेल्या परिवर्तनाचे समाजशास्त्रीय अध्ययन”— (विशेष संदर्भ : नागपूर जिल्हा)

संशोधक : देवानंद ना. कांबळे
समाजशास्त्र विभाग
संत गाडगे बाबा अमरावती विद्यापीठ, अमरावती

प्रोफेसर. डॉ. किशोर ऊ. राऊत
समाजशास्त्र विभाग
संत गाडगे बाबा अमरावती विद्यापीठ, अमरावती

या अभ्यासात नागपूर जिल्ह्यातील ग्रामीण भागामध्ये झालेल्या औद्योगिकीकरणामुळे सामाजिक आणि आर्थिक वा सांस्कृतिक पातळीवर लक्षणीय परिवर्तन झाले आहे. या क्षेत्रामध्ये झालेल्या बदलांचा आढावा घेण्यात आला आहे. पारंपारीक शेतीप्रधान जीवनशैलीतून ग्रामीण जनता औद्योगिक कामकाजा कडे वळली आहे. विशेषतः रोजगाराच्या संधी, लोकसंख्येचे स्थलांतर, कुटुंबसंस्था, शिक्षण, विवाहसंस्था, आणि महीलांच्या सहभागातील बदल पाहिले गेले आहेत. या बरोबरच जीवनशैलीतील आधुनिकता या बदलांनी पारंपारीक ग्रामीण रचना बदलली असून एक नवा सामाजिक वर्ग निर्माण झाला आहे.

औद्योगिकीकरण, ग्रामीण समाज, नागपूर जिल्हा, सामाजिक बदल, आर्थिक परिवर्तन, स्थलांतर, आणि ग्रामीण जीवनशैली.

आपला देश हा कृषीप्रधान असून ग्रामीण भाग हे समाजाचे महत्वाचे घटक आहेत. भारतात औद्योगिकीकरणाचा प्रभाव हा प्रामुख्याने शहरी भागांमध्ये जाणवतो, मात्र गेल्या काही दशकात ग्रामीण भागातील समाज देखील या प्रक्रियेत सहभागी झाला आहे. नागपूर जिल्हा, जो मध्यभारतातील एक महत्वाचा औद्योगिक व कृषी भाग आहे. या ठिकाण औद्योगिक क्षेत्राचे मोठे प्रमाण आहे. एमआयडिसी, म्हणजेच औद्योगिक क्षेत्र, वीज प्रकल्प व सेवा क्षेत्रामुळे येथे ग्रामीण जीवनातही हळुहळु औद्योगिक परिवर्तन घडत आहे. या प्रक्रियेमुळे पारंपारीक सामाजिक रचना, पारंपारीक शेतकरी कुटुंबांचे स्वरूप रोजगाराचे माध्यम, सामाजिक मुल्ये, नातेसंबंध, कामाच्या संकल्पना आणि जीवनशैलीत मोठे बदल घडून आले आहेत. ग्रामीण समाजाची रचना, जीवनशैली, अर्थव्यवस्था, मुल्यव्यवस्था इत्यादी अनेक बाबी ऐतिहासिकदृष्ट्या स्थिर स्वरूपाच्या होत्या. परंतु विसाव्या शतकात विशेषतः स्वातंत्र्यानंतरच्या काळात देशाने औद्योगिकीकरण हा राष्ट्रीय विकासाचा एक महत्वाचा पाया मानला जातो. या औद्योगिक विकासांमुळे ग्रामीण भागावरही परिणाम झाला, आणि त्यातून अनेक प्रकारची सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, व पर्यावरणीय परिवर्तनाची प्रक्रीया सुरू झाली. विशेषतः नागपूर जिल्हा हा विदर्भातील एक महत्वाचा भाग आहे असे समजल्या जाते. म्हणूनच या ठिकाणी औद्योगिकीकरणाचा ग्रामीण समुदायावर झालेल्या परिवर्तनाचे समाजशास्त्रीय दृष्टीकोणातून अभ्यास करणे आवश्यक वाटते.

औद्योगिकीकरणाच्या प्रक्रीयेमुळे ग्रामीण भागात रोजगारांचे नविन पर्याय निर्माण झाले, स्थलांतराच्या लाटांमध्ये मोठ्या प्रमाणात वाढ झालेली दिसून येते. शहरांप्रमाणे ग्रामीण भागातील लोकांमध्ये त्यांच्या

जीवनशैलीत म्हणजेच पारंपारीक पद्धती सोडुन आधुनिकतेने जागा घेतली असे म्हणण्यास हरकत नाही. शैक्षणिक आणि आरोग्य सुविधा मोठ्या प्रमाणात विकसित झाल्या आहेत. तर दुसऱ्या बाजूला सामाजिक विषमता, सांस्कृतिक मुल्यांचे अधःपतन प्रक्रिया, पर्यावरणीय हानी, शेतीच्या क्षेत्रात घट, अश्या अनेक समस्याही निर्माण झाल्या. त्यामुळे औद्योगिकीकरण हे केवळ आर्थिक बदलांचे माध्यम न राहता एक सामाजिक परिवर्तनाची प्रक्रिया बनले आहे. समाजशास्त्रीय दृष्टीकोणातून पाहता ग्रामीण समुदाय ही एक सुसंलग्न सामाजिक रचना आहे. ज्यामध्ये नातेवाईक संबंध, परंपरा, श्रमविभागणी, सहजीवन यासारखे घटक प्रभावी असतात. परंतु औद्योगिकीकरणामुळे या सर्व घटकांवर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष परिणाम झाले आहेत. ग्रामीण भागातील लोकांनी नव्या उद्योगांकडे वळणे, शहरीकरणाची प्रक्रिया गतीमान होणे, शिक्षण व तंत्रज्ञानाचा प्रसार होणे हे सकारात्मक परिणाम असले तरी त्याबरोबर कुटुंबव्यवस्थेतील ताण, सामाजिक तणाव, बेराजगारी, स्थलांतर यासारख्या समस्या वाढीस लागल्या आहेत.

नागपुर जिल्ह्याचा विचार केल्यास, येथे मध्ये भारतातील अनेक महत्वाचे उद्योग, औद्योगिक वसाहती, वसतिगृही, औद्योगिक गुंतवणुक प्रकल्प आहेत. मिहान हा नागपुर मधिल एक महत्वाकांक्षी प्रकल्प असून त्याचा परिसरातील ग्रामीण जीवनावर मोठा प्रभाव पडलेला आहे. पारंपारीक कृषीप्रधान गावांमध्ये आता अनेक ठिकाणी औद्योगिक भुखंड विकसित झाले आहेत. स्थानीक लोकांचे जीवनमान, सामाजिक संबंध, रोजगाराच्या पद्धती यामध्ये मोठया प्रमाणात परिवर्तन घडुन आले आहेत. असे म्हणण्यास काहीही हरकत नाही.

या अभ्यासामध्ये नागपूर जिल्ह्यातील काही निवडक गावांमध्ये औद्योगिकीकरणामुळे झालेल्या सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजकीय, आणि सांस्कृतिक बदलांचा सखोल समाजशास्त्रीय आढावा घेण्याचा प्रयत्न करण्यात आला आहे. ग्रामीण समुदायाच्या पारंपारिक स्वरूपात जे बदल झालेत, त्याची कारणे प्रक्रिया आणि परिणाम समजुन घेणे, हे संशोधनाचे मुख्य उद्दिष्टे आहे. या संदर्भात काही मुलभुत प्रश्न उभे राहतात:

- १) पारंपारिक कुटुंबव्यवस्थेवर कोणता परिणाम झाला आहे.
- २) औद्योगिकीकरणामुळे ग्रामीण जीवनशैलीमध्ये कोणते परिवर्तन झाले आहेत.
- ३) ग्रामीण – शहर स्थलांतराची प्रक्रीया कशी बदलली आहे?
- ४) रोजगाराच्या संधीमध्ये कोणत्या प्रकारची रूपांतरण झाले आहेत?
- ५) औद्योगिकीकरणामुळे स्थानिक संस्कृती, भाषा, सण— उत्सव यामध्ये सुद्धा कोणत्या स्वरूपाचे बदल झाले आहे?

या सर्व प्रश्नांचा विचार करतांना विविध समाजशास्त्रीय संकल्पना जसे की सामाजिक बदल, आधुनिकता, भुमंडलीकरण, संरचना व क्रिया इत्यादिचा आधार घेऊन अभ्यास करण्यात आला आहे. तसेच पद्धतशिर संशोधन पद्धतींचा अवलंब करत प्रत्यक्ष क्षेत्रभेटी, मुलाखती, प्रश्नावली व निरीक्षण या साधनांचा वापर करण्यात आला आहे. या अभ्यासाचे महत्व असे की तो ग्रामीण भागातील समाजशास्त्रीय बदलांचे प्रत्यक्ष दस्तावेजीकरण करतो. केवळ आकडेवारीच्या आधार नव्हे तर ग्रामीण लोकांच्या अनुभवांवर आधारित या अभ्यासात औद्योगिकीकरणाच्या सामाजिक परिणामांचा अधिक सखोल व वास्तवदर्शी चित्र उभे करण्याचा प्रयत्न करण्यात आला आहे.

उद्दिष्टे (Objectives) :

- १) नागपुर जिल्ह्यातील ग्रामीण भागातील औद्योगिकीकरणाचे प्रमाण समजुन घेणे
- २) औद्योगिकीकरणामुळे झालेल्या सामाजिक, आर्थिक, व सांस्कृतिक बदलांचे विश्लेषण
- ३) ग्रामीण स्त्रि – पुरुषांच्या जीवनशैलीत झालेल्या बदलांचा अभ्यास
- ४) स्थानीक लोकांचे औद्योगिकीकरणाबद्दलचे दृष्टीकोण समजुन घेणे

गृहीतकल्पना

- 1) औद्योगिकीकरणामुळे ग्रामीण समाजाच्या जीवनशैलीत मुलभुत बदल झाले आहेत.
- 2) सामाजिक नातेसंबंध, मुल्यव्यवस्था आणि व्यवसाय पद्धतीवर याचा प्रभाव पडतो.
- 3) युवक व स्त्रिया औद्योगिक क्षेत्राकडे अधिक आकर्षित होत आहेत.
- 4) स्थलांतराचे प्रमाण वाढले असून कुटुंबसंस्था व संस्कृतीवर त्याचा परिणाम होतो.

संशोधन पद्धती :

संशोधन प्रकार : वर्णनात्मक व विश्लेषणात्मक

नमुना : नागपूर जिल्ह्यातील पाच तालुक्यातील प्रत्येकी दहा गावाचा म्हणजे एका गावातील दहा उत्तरदाता असे पाच तालुक्यातील पाचशे उत्तरदाते निवडले आहेत (नागपूर, हिंगणा, कामठी , कळमेश्वर, सावनेर)

सर्वेक्षण साधन : अनुसुचि, प्रत्यक्ष मुलाखती.

निष्कर्ष :

नागपूर जिल्ह्यातील ग्रामीण भागावर औद्योगिकीकरणाने खोलवर परिणाम झालेले आहे हे मात्र निश्चित कारण या अभ्यासातून असे दिसून आले आहे की औद्योगिक प्रकल्प, कारखाने, वसाहती, यामुळे ग्रामीण समाजाचे पारंपारीक स्वरूप बदलले आहे. या बदलांना समाजशास्त्रीय दृष्टीने 'संकमण' किंवा परिवर्तन असे संबोधता येईल.

ग्रामीण भागातील जीवनशैलीत लक्षणीय बदल घडलेले आढळले. पारंपारीक शेतीप्रधान अर्थव्यवस्था हळुहळु रोजगारकेंद्रित अर्थव्यवस्थेत रूपांतरीत होत आहे. कृषीवर अवलंबून असलेली मोठी लोकसंख्या आता औद्योगिक व सेवा क्षेत्राकडे वळताना दिसते. या प्रक्रियेत स्थानिक तरुणांनी उद्योगधंदे, कारखाने, वाहतुक, बांधकाम इत्यादी क्षेत्रांमध्ये प्रवेश केला आहे. शिक्षण आणि कौशल्य विकासाची गरज अधोरेखित केली आहे असे म्हणता येईल.

औद्योगिकीकरणामुळे सामाजिक नातेसंबंध व कुटुंबव्यवस्था ही सुद्धा बाधीत म्हणजेच प्रभावित झाली आहे. संयुक्त कुटुंबव्यवस्थेची जागा आता विभक्त कुटुंबाने नकळत पणे घेतली आहे. आज समाजात वैयक्तीकतेला अधिक मोठया प्रमाणात महत्व दिल्या जात आहे. आज रोजी स्त्रियांची कामकाजातील सहभाग वाढला असून त्याचे सकारात्मक परिणाम आणि नकारात्मक परिणाम दोन्ही स्वरूपात दिसून आले आहे. स्त्रियांचे आर्थिक स्वावलंबन वाढले असले तरी कौटुंबिक ताण, तणाव, विभक्त कुटुंब, मुल्यांमध्ये बदल अशा अनेक प्रकारे त्यांच्या समोर प्रश्न निर्माण झाले आहे असे म्हणता येते.

सांस्कृतिकदृष्ट्याही ग्रामीण भागामध्ये पाश्चीमात्य संस्कृतीचा मोठया प्रमाणात शिरकाव झाला. सण उत्सवांचे स्वरूप बदलले, पारंपारीक कला लोककला, नृत्य, संगीत, यांचा अभ्यास करतांना कमी प्रमाण आढळून येतो. तरुण पिढीमध्ये मोबाईल, इंटरनेट आणि सोशल मीडिया यांचा प्रभाव वाढलेला आहे. स्थानीक बोलीभाषांचा वापर कमी होत चालला असून त्यामध्ये मोठया प्रमाणात नागरी संस्कृतीचा शिरकाव होत आहे.

पर्यावरणीय दृष्टीने विचार करता, औद्योगिक प्रकल्पांमुळे नैसर्गिक संसाधनांवर ताण आला आहे. भुजल पातळीतील घट, जमीन प्रदूषण, हवेतील दुषितता यासारख्या समस्या निर्माण झाल्या आहेत. शेतीयोग्य जमिनीचे औद्योगिक भूखंडांमध्ये रूपांतर झाल्यामुळे स्थानिक शेतकऱ्यांवर आर्थिक व सामाजिक परिणाम झाले आहे. तथापी, या सर्व बदलांचा एकसंध दृष्टीने विचार केल्यास असे लक्षात येते की औद्योगिकीकरण ही एकदिशात्मक प्रक्रिया नसून तिचे सामाजिक परिणाम हे अनेक स्तरांवर आणि विविध प्रकारचे असतात.

ग्रामीण समाजात आधुनिकतेचा प्रवेश झाला आहे. परंतु तो पारंपारिकतेच्या विरुद्ध न जाता त्याच्याशी संघर्ष करित आहे. म्हणजेच ग्रामीण समाज आज 'संकमणावस्थेत' आहे जो न पूर्णपणे पारंपारिक राहिला आहे, ना पूर्णपणे आधुनिक झाला आहे.

1. आर्थिक पातळीवर – रोजगाराच्या संधी वाढल्या, आर्थिक सक्षमीकरण झाले. पण त्याचवेळी उत्पन्नातील विषमता आणि अस्थिरता वाढली.
2. सामाजिक पातळीवर – नातेसंबंध, कुटुंबसंस्था, स्त्री – पुरुष भूमिकांमध्ये बदल झाला. पाण सामाजिक ताणतणाव, विघटन आणि मूल्यमान्यतांमध्ये द्वंद्व निर्माण झाले.
3. सांस्कृतिक पातळीवर – आधुनिक माध्यमांचा वापर वाढला, पारंपारीक जीवनशैलीत घट झाली. परंतु काही ठिकाणी नव्याने सांस्कृतिक जाणि निर्माण झाल्याचेही दिसले.
4. पर्यावरणीय पातळीवर – संसाधनांचे शोषण, प्रदुषण, हरित क्षेत्रात घट याचे परिणाम ग्रामीण जीवनमानावर झाले.

औद्योगिकीकरण म्हणजे केवळ प्रगती नव्हे तर एक परिवर्तन आहे – ज्यात संधी आणि आव्हाने दोन्ही समाविष्ट आहेत.

आपणास या विषयी सुचवणी अशी करता येते की ती खालील प्रमाणे

1. औद्योगिक विकासात स्थानीक ग्रामीण समुदायाचा सहभाग वाढवावा.
2. प्रशिक्षण शिक्षण आणि कौशल्य विकास केंद्रे उभारावीत
3. पर्यावरण संरक्षणचे उपाय राबवावेत.
4. पारंपारीक संस्कृती, कला आणि मुल्यांचे संवर्धन केले जावे.
5. ग्रामविकास व औद्योगिक धोरणांमध्ये समन्वय साधावा.

संदर्भसूची :

1. जोशी, वी. एन. (२०२१). औद्योगिकीकरण आणि सामाजिक बदल. नागपुर: चेतना प्रकाशन.
2. देशपांडे, एस. ए. (2019) ग्रामीण समाजशास्त्र. पुणे: सावित्रीबाई फुले प्रकाशन.
3. Dube, S. C. (2018). Indian Village. New Delhi. Allied Publishers.
4. Sharma, K. L. (2020). Social Stratification and Change in India. Rawat Publication.
5. Desai, A. R. (2022). Rural Sociology in India. Popular Prakashan.
6. Jodha, S. S. (2021). Rural Transformation in India. Oxford University Press.
7. "Impact of Industrialization on Rural India", Economic and Political Weekly, Vol. 56, 12 March 2022.
8. "Changing Rural Society in Maharashtra", Sociological Bulletin, Vol. 71, No. 3, 2021
9. "Rural- Urban Dynamics in Vidarbha", Indian Journal of Social Work, Vol. 84, No. 2 2023.



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Mansi Sharma

Ph.D. Scholar, Department of Political Science
University of Lucknow, Lucknow, Uttar Pradesh

for the paper titled

**INDIA'S SOFT POWER STRATEGY : HARNESSING CULTURAL
DIPLOMACY FOR SHAPING GLOBAL GEOPOLITICS**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Rashmi Jayaswal

Jamia Millia Islamia

for the paper titled

**MARITIME HERITAGE OF ANCIENT INDIA: EARLY
EVIDENCE OF SEAFARING AND MARITIME TRADE OF
INDIANS**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

शोध समालोचन Shodh Samalochan

ISSN:2348-5639

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Abhijna

Assistant professor

Department of History

Sri Dharmasthala Manjunatheshwara College, Ujire

for the paper titled

THE SANCTITY OF WATER IN INDIAN CULTURE

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr Niti Arora

Associate Professor (Economics)

Mata Sundri College for Women, University of Delhi

for the paper titled

**EXPLORING CONNECTION BETWEEN CULTURAL HERITAGE
AND INDIAN ECONOMIC SYSTEM FROM ANCIENT TO
MODERN TIMES**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Chudasama Bhikhanbhai Punjabhai
Research Scholar- Sggu

for the paper titled

**BEYOND PANELS: VISUAL POLITICS AND NARRATIVE FORM
IN BHIMAYANA**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Debmitra Sanyal
Assistant Professor
PIIT College, Greater Noida

for the paper titled

**CONTINUITY AND CHANGE IN INDIAN CIVILIZATION: AN
ANALYTICAL STUDY OF TRADITIONS, AESTHETICS, AND
CULTURAL TRANSITIONS FROM ANTIQUITY TO THE
GLOBAL AGE (WITH A FOCUS ON BUDDHISM)**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Pooja Vyas

Research Scholar, Banasthali Vidyapith, (Rajasthan)

Dr. Asha Kumari Singh

Assistant Professor, Banasthali Vidyapith, (Rajasthan)

for the paper titled

**JAIPUR'S ROYAL CUISINE: EXPLORING FOOD CULTURE AND
RAJMATA GAYATRI DEVI'S CULINARY CONTRIBUTION**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Rahul Raj
Research Scholar
Malwanchal University, Indore

for the paper titled

**CULTURAL HERITAGE OF THE INDUS VALLEY
CIVILIZATION: A STUDY OF IDENTITY, INNOVATION, AND
INFLUENCE**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Prabhat Ranjan Singh
Research Scholar
Department Of Political Science
University Of Lucknow

for the paper titled

CULTURAL DIVERSITIES OF NORTHEAST INDIA

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Shubham Mishra

Research Scholar

Department Of Public Administration
Siddharth University, Siddharth Nagar

for the paper titled

**CONSUMER PROTECTION IN INDIAN CULTURE AND
HISTORICAL CONTEXT: A SOCIO-LEGAL ANALYSIS**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Amit Kumar Singh

Jawaharlal Nehru University, New Delhi

for the paper titled

**FROM VEDAS TO VIRTUAL REALITY: THE TRAJECTORY OF
KNOWLEDGE SYSTEMS IN INDIAN CULTURE**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr Anjani Kumari Badarala

Lecturer in History

Hanuman Raju Gunturi

Research Scholar

for the paper titled

RELIGIOUS CONDITIONS IN THE CHALUKYA PERIOD

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Reena Kumari
Department – History
Jamshedpur, Jharkhand

for the paper titled

**DEVELOPMENT OF MINING AND METALLURGY AFTER
INDEPENDENCE**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Nirmal Kumar Nirmohi
Senior Research Fellow, Department
of Sociology
Veer Kunwar Singh University, Ara,
Bihar-802301

Prof. (Dr.) Sudhir Kumar Singh
Principal & Head of Department
Sociology
Rohtas Mahila College, Sasaram,
V.K.S.University,
Ara, Bihar

for the paper titled

**PRESERVATION AND REVITALIZATION OF ANCIENT
LANGUAGES THROUGH ICTs IN INDIA**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Shubham Yadav

Research Scholar

Department of Western History
University of Lucknow.

for the paper titled

BUDDHIST ECOLOGICAL MOVEMENT IN THAILAND

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Sandip Kumar

Assistant Professor and Head, Department of Music (Vocal)
Dev Samaj College for Women, Ferozepur City, Punjab

for the paper titled

**THE SOUND OF KNOWLEDGE: INDIAN CLASSICAL MUSIC AS
A SACRED SCIENCE IN THE INDIAN KNOWLEDGE SYSTEM**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Minaxi Sharma

Research Scholars, Department of Social Work, University of Lucknow

Snehlata Jaiswal

Research Scholars, Department of Social Work, University of Lucknow

for the paper titled

**SOCIO-ECONOMIC AND LEGAL STATUS OF TRANSGENDER:
UNDERSTANDING THE BROADER DYNAMICS OF SOCIAL
INCLUSION AND INEQUALITY**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Rohit Raj Gupta

Research Scholar

Department of History, Pondicherry University
Kalapet, Puducherry

for the paper titled

**FROM MILITARY MEDICINE TO CIVIL HEALTH: A HISTORY
OF INDIAN MEDICAL SERVICE**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Amarjeet Kumar

Junior Research Fellow

Department of Public Administration

Veer Kunwar Singh University, Ara, Bihar

for the paper titled

**ICT & AI IN PHILOSOPHY: REIMAGINING DIALOGUES WITH
BUDDHA AND MAHAVIR**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

Pijush Bahalia
University of Kalyani

for the paper titled

**IMPACT ON RIVER BANK EROSION: A STUDY OF LALGOLA
CD BLOCK, MURSHIDABAD, WEST BENGAL**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Prashant Tripathi

Assistant Professor

Dept. of History, Motilal Nehru
College (Evening), University of Delhi

for the paper titled

**INDIAN TRADITIONAL KNOWLEDGE IN COLLECTIVE
ENVIRONMENTAL CONSERVATION**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

Roshni Pareek
Research scholar
St. Wilfred P.G. College,
University of Rajasthan (Jaipur, Rajasthan)

for the paper titled

**COLONIAL INFLUENCE ON INDIAN LANGUAGE AND
LITERATURE (1750-1947)**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Priyanka
Research Scholar
Vinoba Bhave University, Hazaribag

for the paper titled

**BEYOND THE MUTINY : RE-EXAMINIG THE 1857 REVOLT
THROUGH DIVERSE HISTORICAL LENSES**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Priyanka Sharma

Research Scholar, Department of History
P. N. G. Government P. G. College Ramnagar
Kumaun University, Nainital, Uttarakhand

for the paper titled

**FROM ANCIENT ROOTS TO MODERN BRANCHES: INDIA'S
TIMELESS HERITAGE AND THE EVOLUTION OF CUSTOMS
AND VALUES**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Ms. Vijeta Dixit

Assistant professor, Department of History
Khun Khun ji Girls PG College, Chowk, Lucknow

for the paper titled

**INDIAN CULTURE AND ITS GROWING INTERNATIONAL
INFLUENCE**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Mrs. Sanyukta Padhi
Research Scholar, Govt. V.Y.T.P.G.
Autonomous College, Durg, C.G.

Dr. Sheila Vijay
Supervisor, Assistant Professor,
Department of English, Dr. K.C.B.
Govt. P.G. College, Bhilai-3, C.G.

Dr. Tarlochan Kaur Sandhu
Co-Supervisor, Assistant Professor, Department of English,
Govt. V.Y.T.P.G. Autonomous College, Durg, C.G.

for the paper titled

FLORA, FERTILITY, AND GANESHA: A SACRED BOND

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Preeti Singh

Assistant Professor

Department of Journalism and Mass Communication
Swami Vivekanand Subharti University, Meerut

for the paper titled

**SOCIAL MEDIA AND THE VIRTUAL CELEBRATION OF INDIAN
FESTIVALS: A CULTURAL SHIFT**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Shubhendu

Ph.D. Scholar, Central University of South Bihar, Gaya

Swati Kumari

Ph.D. Scholar, Central University of South Bihar, Gaya

for the paper titled

**WATER, WORSHIP AND WISDOM: THE INTERPLAY BETWEEN
BIHAR'S RIVERS AND LOCAL TRADITIONS**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Aakanksha Bhatnagar
Research scholar
Kumaun university

for the paper titled

**THE TAJ – AN ARCHITECTURAL MARVEL OR AN EPITOME
OF LOVE**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Santosh Kumar
Research Scholar
Department of History
University of Delhi

for the paper titled

THE LEGACY OF RAMAYANA IN THE MODERN TIMES

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

Ashutosh Singh

Kurukshetra University Kurukshetra Haryana

Prof. Gopal Parshad

IIHS, Kurukshetra University, Kurukshetra

for the paper titled

**EMERGENCE OF NATIONALISM & REVIVAL OF INDIGENOUS
MEDICAL ACTIVITIES IN COLONIAL BENGAL : A
HISTORICAL STUDY**

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

किशोर कुमार

शोध छात्र

इतिहास विभाग, डी.एस.बी. परिसर,

कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

for the paper titled

सावित्रीबाई फुले: शिक्षा और सामाजिक सुधार की अग्रदूत

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

विवेक कुमार

शोधार्थी मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

for the paper titled

उपनिषदों और भगवद्गीता में जीवन दर्शन : आधुनिक संदर्भ
में प्रासंगिकता

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

अर्चना तिवारी

प्रोफेसर, पाश्चात्य इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

विशाल कुमार

शोध-छात्र, पाश्चात्य इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

for the paper titled

1857 की क्रांति और अनुबंधित श्रमिक अप्रवासन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. गणेश कुमार कोशले
शासकीय नवीन महाविद्यालय
कमलेश्वरपुर, मैनापाट, छत्तीसगढ़

for the paper titled

चार्वाक दर्शन प्रासंगिकता आज व काल

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

विपुल तिवारी

शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

for the paper titled

प्राचीन भारतीय मूर्ती और सांस्कृतिक धरोहर स्थल

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. विजयभाई एम. कंटारिया

शामलदाश आर्ट्स कॉलेज भावनगर,

महाराजा कृष्णकुमारसिंहजी भावनगर विश्वविद्यालय, भावनगर, गुजरात

for the paper titled

भारतीय स्वच्छता विरासत में सिंधु सभ्यता : एक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

प्रिया तिवारी

शोधार्थी, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय
कानपुर (उत्तर प्रदेश)

for the paper titled

भारतीय मनीषा में लोकतंत्र

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

शोध समालोचन Shodh Samalochan

ISSN:2348-5639

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Certificate of Publication*

is awarded to

अशोक कुमार

सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग
जीडीसी मेमोरियल महाविद्यालय,
बहल, भिवानी (हरियाणा)

for the paper titled

भारत में परम्परागत जल प्रबंधन प्रणालियाँ

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

शुभम कुमार

शोधार्थी, बाबासाहेब भीमराव अम्बेदकर बिहार, विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

डॉ. दिलीप कुमार यादव

शोध निर्देशक, सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, लंगट सिंह महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

for the paper titled

मुंगेर प्रमण्डल का ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्त्व

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. शिवाश्री सिन्हा

शिक्षिका, शिक्षा विभाग

पी.एस.बुनियाद बिगहा, डोभी, गया शिक्षा विभाग

for the paper titled

भारतीय नाट्यशास्त्र और परंपरागत रंगमंच

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. अभिषेक अग्रवाल

सहायक प्राध्यापक (इतिहास विभाग), कलिंगा विश्वविद्यालय, कोटनी, नया रायपुर (छ.ग.)

डॉ. श्रद्धा गर्ग

सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान विभाग), शासकीय नवीन महाविद्यालय रीठी, जिला कटनी (म.प्र.)

for the paper titled

प्राकृतिक आपदा नियंत्रण एवं जन जागरण में मीडिया की भूमिका

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

मोहित कुमार शर्मा

शोध छात्र, इतिहास विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

विवेक कुमार

शोध छात्र, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

ज्योत्सना भट्ट

शोध छात्रा, इतिहास विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

for the paper titled

जनपद शाहजहाँपुर का ऐतिहासिक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

काजल पौनियाँ

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज, महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

डॉ. अंजू बंसल

शोध निर्देशक, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज बिजनौर

for the paper titled

श्री अरबिन्दो की दृष्टि में राष्ट्रीय, अध्यात्म व मानवता का सम्बन्ध

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

सुमन बिष्ट

रिसर्च स्कॉलर (इतिहास)

पी.एन.जी.पी.जी. कॉलेज, रामनगर, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

for the paper titled

पितृसत्तात्मक भारतीय समाज में सूफीवाद और महिलाओं की
भूमिका का विश्लेषण

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

अविनाश बनर्जी

शोधार्थी

हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

for the paper titled

छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति में लोकगीत और लोकनृत्य

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

आशा शर्मा

शोधकर्त्री, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय,
जयपुर, राजस्थान

for the paper titled

वट सावित्री (बढ अमावस्या)

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

ज्योति

शोध छात्रा, इतिहास विभाग,
B. M. U. रोहतक, हरियाणा

for the paper titled

बौद्ध एवं जैन धर्म का भारत पर प्रभाव

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

केतन तिवारी
शोधार्थी; इतिहास विभाग
कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल

for the paper titled

भारतीय लोकनाट्य परम्परा

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

प्रीति भारती

लक्ष्मीबाई कॉलेज,

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

for the paper titled

वैदिक संस्कृति : प्राचीन जड़ों से आधुनिक प्रभाव तक

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

प्रणिता गोगोई

(शोधार्थी) कॉटन विश्वविद्यालय, पानबाजार,
गुवाहाटी, असम

for the paper titled

‘श्री रामचरितमानस’ के ‘अयोध्याकाण्ड’ में वर्णित भारतीय
संस्कार एवम् परंपराएं

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. रजिंदर कौर
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
माता सुंदरी कॉलेज

for the paper titled

संत साहित्य में मानव मूल्य

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

साक्षी

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली

for the paper titled

डिजिटल युग में भारतीय परंपरा

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

लक्ष्मी कुमारी
शोधकर्ता, इतिहास विभाग,
कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा, झारखण्ड

for the paper titled

मुगलकालीन भारतीय स्थापत्य कला

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152



Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple
Languages Quarterly Research Journal

Published by : Gaganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

<https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन Shodh Samalochan

Certificate of Publication*

is awarded to

देवानंद ना कांबळे

समाजशास्त्र विभाग, संत गाडगे बाबा अमरावती विद्यापीठ, अमरावती

प्रो. डॉ. किशोर ऊ. राउत

समाजशास्त्र विभाग, संत गाडगे बाबा अमरावती विद्यापीठ, अमरावती

for the paper titled

औद्योगिकीकरणाचा ग्रामीण समुदायावर झालेल्या परिवर्तनाचे
समाजशास्त्रीय अध्ययन (विशेष संदर्भ : नागपूर जिल्हा)

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

June 2025 (Special Issue), Vol. 12, Issue-6

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152